TIGHT BINDING BOOK

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178807

UNIVERSAL
LIBRARY

Osmania University Library

Call No H83 M96R.

Accession No S.H

Author

Title

This book should be returned on or before the date last marked t

राजाधिराज

राजाधिराज

कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी

राजकमल प्रकाशन दिल्ली

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम बार १९५८

गोपीनाथ लेठ द्वारा नवीन प्रेस, दिल्ली से मुद्रित । राजकमल
पब्लिकेशन्स लिमिटेड दिल्ली द्वारा भारतीय
विद्याभवन बंबई के लिए प्रकाशित ।

पाठक से

'पाटणनी प्रभुता'को आरम्भ किये हुए कई वर्ष बीत गए। मंजरीका सृजन करते काफी समय हुआ। पिछले कुछ वर्षों तक काक और मंजरी की कथा मानो वास्तविक जीवन का खण्ड हो, ऐसा मुझे लगता रहा। वे पात्र, वह जीवन, वे षड्यन्त्र—मनमौजी होते हुए भी वंश की अकड़,वृद्ध होते हुए भी विचक्षण महाआमात्य,और बहादुर होते हुए भी स्वार्थी काक, और महत्वाकांक्षिणी लीलादेवी, तेजस्वी, पतिपरायण, प्रेरणामूर्ति मंजरी—ये सब काल्पनिक चित्र भी मेरे मन में जीवित की तरह प्रत्यक्ष रहे हैं। और उपन्यास के साथ-साथ इनको विदा करते हुए मुझे वेदना भी हुई है।

मंजरी की मृत्यु से इस कथा को पूर्ण करने पर कुछ लोगों को इसमें दोष दिखलाई दिया है, किन्तु कला के अन्वेषण और सत्यात्मक दृष्टि के लिए आघात सहकर भी मुझे यह करुण अन्त रखना ही पड़ा। मंजरी साहित्य में पहले से भी अधिक लोकप्रिय हुई, उसके जीवन से पाठकों ने रस ग्रहण किया। 'इसका भविष्य क्या होगा' यह जानने के लिए लोगों ने मुझे व्यग्र बना डाला। 'इस परिणाम से पाठको के हृदय अधीर हो उठे हैं' ऐसा मुझसे बहुत-से लोगोंने कहा तथा पत्र लिखे। एक अपरिचित भाई ने अपने उद्‌गार इस प्रकार प्रकट किए

'इस प्रकार मंजरी पर दुःख की नांदयाँ बहीं, वह हम सहन कर गए, इस आशा में कि काक को आप यथासमय मंजरी के पास पहुँचा देंगे और आनन्द-जल से हमको भिगो देंगे किन्तु आप तो यमराज के समान निर्दयी निकले। काक और मंजरी के मिलाप द्वारा हमारी आंखें प्रेम से भिगो देने और आनन्द में हृदय को डुबा देने के बजाय आपने दयाहीन और निष्ठुर की तरह पाठकों के हृदय को चीर डाला और

उन्हें क्रूरता से समुद्र में ढकेल दिया। आपने दुःख त्रास और शोक पराकाष्ठा कर दी। ज्ञात होता है, दया का अंश भी आपके हृदय में है।'

इतने रस से मंजरी का विकास देखने के उत्सुक पाठकों का ह दुःखाभिभूत हो उठा यह स्वाभाविक है। कला का दृष्टिबिन्दु भुला दे मुझे ठीक नहीं जंचा। यदि यह दृष्टि-बिन्दु भ्रष्ट हो तो रस भरे हुए जी को अस्त-व्यस्त करना, और इस प्रकार कला के निश्चल सत्य का अनुसरण करना अक्षम्य अपराध नहीं समझा जायगा।

इस पुस्तक के साथ गुजरात के इतिहास की 'वार्तामाला' की तीस मणि पूरी हो रही हैं। मेरी कृतियों को भरपूर आदर मिला है, यह दे कर मैं समझता हूँ कि अतीत गुजरात के गौरव में भारतीय पाठक व रस ग्रहण कराने का मेरा यह प्रयत्न व्यर्थ नहीं गया है।

इन पुस्तकों की उचित प्रशंसा से कुछ दूसरी दृष्टि के नये साहित्य कार एवं आलोचक-जीव तिलमिला उठे हैं और मेरे इन साधारण प्रयासों को अनेकप्रकार के आक्षेपों से भर दिया है। इन आक्षेपों का उत्त देने की मुझे आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। प्रकाशित कृतियों के सम्बन्ध में अपनी धारणा बनाने का प्रत्येक को अधिकार है। मेरा तं उत्तर यही है कि यदि इनमें जीवन नहीं है तो अपने आप ही ये पाठकों से ओझल हो जायंगी, और कदाचित् अग्नि नारायण को आहुति देते समय घृत की तरह एक बार यह फिर ज्वलन्त हो उठें।

कन्हैयालाल मुंशी

विषय सूची

पहला खण्ड

१. नवागन्तुक	....	३
२. आम्रभट सब कुछ भूल जाता है	....	७
३. भृगुकच्छ का दुर्गपाल	....	१२
४. मणिभद्र क्यों आया ?	....	१६
५. मंजरी की महत्वाकांक्षा	....	२५
६. नगरसेठ के घर	...	२८
७. जंबूसर का घेरा	....	३२
८. स्वतंत्र लाट का अन्तिम सत्ताधीश	....	३६
९. लाट की राज्यलक्ष्मी	....	४१
१०. यह मुंह कहीं देखा है !	....	४८
११. काक पहचान जाता है	....	५२
१२. नेरा तोतला	....	५५
१३. अपरिचित की खोज में	....	६३
१४. रेवापाल और आम्रभट	....	६८
१५. काक की चिन्ता	...	७४
१६. आम्रभट की आँखों के सामने अंधेरा छा जाता है	....	७८
१७. रेवापाल का हृदय	....	८१
१८. काक की याचना	....	८६
१९. काक की राजनीति	....	९२
२०. मित्रवधु	...	९७
१. अपरिचित की खोज	....	१०१

२२. मंजरी को धोखा १०६
२३. हेमचन्द्र चकित हो जाता है ११२
२४. भृगुकच्छ का नवीन गढ़ ११६
२५. देवा नायक १२६
२६. सूरि का आत्मनिरीक्षण १३३
२७. वागीश्वरी के दर्शन ... १३६

दूसरा खण्ड

१. सोरठ का किनारा १५१
२. प्रभात ... १५५
३. वाग्भट १५६
४. गिरनार १६१
५. सशक्त भी निर्बल हो जाता है १६६
६. राणक देवडी १७०
७. काक का सन्देह १७७
८. बर्बरक १८१
९. काक का राजगढ़ में प्रवेश १८६
१०. लीलादेवी की विपत्ति १९३
११. काक लुप्त हो गया १९८
१२. समर्थ २०३
१३. राजाधिराज २०७
१४. वाग्भट का कैदी २१३
१५. राज्यकर्ता की राजनीति २१९
१६. राज्यरक्षक की राजनीति २२४
१७. काक को किसने बुलाया ? २३१
१८. वाहड़ महेता की कसौटी २३८

१६. जगदेव परमार की कर्तव्यपरायणता २४३
२०. काक से भेंट २४६
२१. परमार की चिन्ता २५३
२२. प्रेमकुँअर का निश्चय २५६
२३. पुरुष को वश में करने की कला २६५
२४. लीलादेवी का खेल २७२
२५. राजद्रोही २७६
२६. काक का दूसरा रूप २८१
२७. चौकी में ... २८७
२८. जयसिंहदेव का शौर्य २९२
२९. काक का क्या हुआ ? ३००

तीसरा खण्ड

१. अक्षय तृतीया का उत्सव ३०७
२. नर्मदा की आरती ३१४
३. मंजरी का स्थान ३२१
४. गढ़ में ३२६
५. सोमेश्वर कहाँ गया ? ३३२
६. मंजरी शस्त्र चलाना सीखती है ३३९
७. आंबड़ को गुरुपद खलता है ३४५
८. वंथली की हलचल ३५१
९. प्रणयी की गुप्त बातें ३५३
१०. वाहड़ काक को छुड़ाने जाता है ३६०
११. देशलदेव ... ३६६
१२. देशलदेव की चिन्ता ३६९
१३. देशलदेव को दण्ड ३७५

१४. खेंगार निश्चय करता है ३८४
१५. सती का आशीर्वाद ३९०
१६. भविष्यवाणी ३९४
१७. भग्न-हृदय वाहड़ महेता ४०१
१८. चढ़ाई की तैयारी ४०७
१९. सोमेश्वर की योजना ४१८
२०. मुंजाल महेता का संकट ४२१
२१. विजय-प्रस्थान—प्रथम ४२८
२२. विजय-प्रस्थान—द्वितीय ४३६
२३. जयसिंहदेव महाराज फिर युद्ध में ४४४
२४. जयसिंहदेव महाराज युद्ध से लौटे ४५०
२५. 'खम्मा मेरे रा' को' ४५६
२६. राणक रा' का महल छोड़ती है ४६४
२७. काक कैसे आ पहुंचा ? ४६८
२८. 'जय सोमनाथ' ४७३
२९. भावी महापुरुष से प्रथम परिचय .. ४८०
३०. महाराज को कैद . ४८८
३१. काक का प्रस्थान .. ४९६
३२. भोगावा के तीर पर ५०३

चौथा खण्ड

१. भृगुकच्छ के गढ में ५११
२. नेरा तोतला का अन्तिम पराक्रम .. ५१६
३. माता या अर्धांगिनि ५२४
४. माँ का हृदय . ५२९
५. देवा और नेरा एक ही मार्ग पर .. ५३९

६. नाथ की आज्ञा ५४५
७. प्रेम समाधि का अन्त ५५४
८. स्वातंत्र्य-यज्ञ की समाप्ति ५६१

उपसंहार ५६७

*

पहंला खण्ड

: १ :

नवागन्तुक

विक्रम संवत् ११६६ के चैत्र मास का प्रभात था।

भृगुकच्छ (भड़ौंच) अपने काम-काज में लग चुका था परंतु अभी दुर्ग के द्वार नहीं खुले थे। दुर्ग में प्रवेश करने को उत्सुक लोग, प्राचीन गाँव और दुर्ग के बीच की खाई को पार करके, टीले पर चढ़कर परकोटे के द्वार खुलने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

भृगुकच्छ दो थे; एक लाट के प्राचीन राजाओं वाला पुराना, और दूसरा त्रिभुवनपाल सोलंकी का बसाया हुआ नया नगर।

इस नई बस्ती के चारों ओर एक अत्यन्त नया प्राचीर बनवाया गया था। इस प्राचीर के और प्राचीन नगर के बीच एक गहरी और चौड़ी खाई सरिता-पथ के समान स्वाभाविक ढंग से बनी हुई थी जो नए नगर को प्रायः चारों ओर से घेरे हुए थी।

आजकल बाहर की ओर जहाँ खाई गहरी है वहीं इस खाई का मुख था। उसी के सामने बड़ी-बड़ी नौकाएँ लंगर डालती थीं और वहाँ से यात्री गाँव में प्रवेश करते थे।

यहीं एक ऊँचे टीले पर तीन-चार जैन साधु खड़े हुए थे। जान पड़ता था वे दूर से चलते चले आ रहे हैं। उनमें से एक साधु सबसे दूर वाले टीले के कगार पर खड़ा था। वह लगभग बीस-पच्चीस वर्ष का था। उसके मुख का रूप, आँखों का तेज और चमकते हुए भाल का गौरव असाधारण था। देखने वाला इस चक्कर में पड़ जाता था कि ऐसी कच्ची उमर में इस सुन्दर पुरुष ने अखंड वैराग्य का कठिन जीवन क्योंकर स्वीकार किया होगा! उसकी विशाल आँखें जितनी तेजोमय थीं उतनी ही गहन भी थीं। उसने थोड़ी देर तक ऊँचे दुर्ग के कंगूरों

की ओर देखा; नौका में बैठ कर खाई पार करते हुए मनुष्यों की ओर दृष्टिपात किया; फिर घूमकर त्रिभुवनपाल सोलंकी द्वारा निर्मित सोमनाथ महादेव के भव्य मंदिर के सुन्दर शिखरों की ओर देखता रहा।

फिर वह नदी की ओर घूमकर इस प्रकार देखने लगा मानो इन सबसे उसे संतोष न मिला हो! जहाँ वह खड़ा था उस कगार के नीचे गंभीर और गौरवशील रुद्रकन्या नर्मदा की पतितपावन तरंगें सूर्य की बालकिरणों में नाच रही थीं और सदा के समान ऊर्मि-भरी आतुरता से भृगु के इस पवित्र धाम का आलिंगन कर रही थीं।

यदि कोई [illegible] होता तो उसे इन तरंगों की अनन्त आरसी में आर्यावर्त्त में हुए अनेक परिवर्तनों का प्रतिबिम्ब दिखाई दे जाता।

इन्हीं तरंगों ने आर्य नाम ही से अपरिचित इतिहासकाल में नागलोक के वीरों को स्नान कराया था; हैहयश्रेष्ठ सहस्रार्जुन को प्रचंड भुजाओं को तेज प्रदान किया था; हैहयों के संहार से तृप्त हुई परशु को धोते जामदग्नेय की कालाग्नि के समान मुखमुद्रा को शांत किया था; और समस्त भारत को ऐक्य प्रदान कर वानप्रस्थ लेने वाले भगवान कौटिल्य के पापों को धोकर उनकी मुमुक्षु आत्मा को शुद्ध किया था।

मस्त यादवों की जलक्रीड़ा, भोजों की सुकुमार ललनाओं का अंगलालित्य और ग्रीक लोगों के सुदृढ़ सुन्दर शरीर इन्होंने देखे थे। सिकंदर की स्वतंत्र फौजोंके निःश्वास सुने थे;दहा को दुर्जय सेना और त्रिभुवनपाल के गजराजों के दर्शन किए थे, और दुर्धर्ष सेनापति बारप का बल देखकर आश्चर्य चकित हो गई थीं।

इन्होंने लाट देश के स्वातन्त्र्य का अस्त देखा था और सुनी थी पाटण के सोलंकी मूलराज के पुत्र चामुंड की विजयसेना की गर्व-भरी गर्जना!

किंतु इस समय तो वे केवल सूर्य की बालकिरणों में नृत्य कर रही थीं, और उस साधु को इन सब बातों पर विचार करने का अवकाश भी न था। वह तो त्रिभुवनपाल की लाट को गुजरात में सम्मिलित

करने के दाँव-पेच और स्वयं जिस कारण से लाट आया था इन्हीं दो बातों पर विचार कर रहा था। फिर भी उसकी दृष्टि नीचे लंगर डाले हुए एक पोत पर पड़ी। इस पोत से उतरे हुए एक यात्री को देख कर उसके मुख पर संतोष छा गया, उसके होठ मुस्कराहट से पुलक उठे।

उस यात्री को देखकर उस साधु का एक साथी उसके निकट आया।

'सूरिजी ! महेता के आँबड़'—बोलने वाला नवयुवक साधु के मुख की ओर देखकर रुक गया।

'विजयचंद्रजी ! किसी का नाम लेनेसे क्या तात्पर्य?' नवयुवक साधु ने मीठी किन्तु तलवार की धार के समान काटती हुई आवाज़ में कहा।

जिसे विजयचंद्र ने 'महेता के आँबड़' के नाम से पहचाना था वह एक सलोना नवयुवक योद्धा था। उसके कानों के कुंडल और हाथ की पहुँची, उसका लंबा भाला और पीछे एक नौकर के हाथ में धनुष उसकी समृद्धि और उसके शौर्य की साक्षी दे रहे थे। उसके पीछे-पीछे दो-तीन सैनिक उसका असबाब लेकर चल रहे थे।

आँबड़—शिष्टभाषा में कहा जाय तो आम्रभट—के साथ एक श्याम वर्ण का ठिगना और मोटा ब्राह्मण चल रहा था। उसकी त्वचा काले संगमरमर की-सी थी और उसके कपाल पर चंदन का त्रिपुंड काले पत्थर के शिवलिंग का स्मरण करवा रहा था। उसके एक स्कंध पर डोरी लोटा, दूसरे पर कम्बल और माथे पर कानटोपी थी।

'हर भोलानाथ ! अन्त में जीते जी भृगुकच्छ के दर्शन तो हुए।

'सचमुच !' इस पर आम्रभट ने कहा। 'महाराज ! अब हमें पृथक् होना पड़ेगा। बन सके तो दर्शन दीजिएगा।'

'चिन्ता न करो; विधि का लिखा होगा तो बिना भेंट किए छुटकारा कहाँ ?' ब्राह्मण देवता बोले। 'यहां से मन भरा कि अवश्य खंभात आऊंगा। भगवान् करे फिर लौटकर सोरठ न जाना पड़े। बहुत हो चुका।'

आम्रभट हंस दिया।

'मणिभद्र जी, अपनी बहन के यहाँ कितने दिन टिकोगे ?'

'कितने दिन ? हर भोलानाथ ! भगवान् सोमनाथ करे जीवन वहीं व्यतीत हो जाय !' ब्राह्मण ने आत्म-संतोष से कहा। 'मेरी बहन भी क्या है हमें एक दूसरे के बिना चैन ही नहीं पड़ता।'

आम्रभट को विचार आया कि इस स्वरूपवान् भाई की बहिन कैसी होगी ! 'लेकिन आपके बहनोई—'

वाक्य पूरा करने से पहले ही आम्रभट की दृष्टि उस साधु पर पड़ी और दोनों के मुख ऐसे होगए कि मानो अभी हास्य कर उठेंगे। किंतु साधु का मुख क्षण-भर में जैसा था वैसा ही गंभीर हो गया और वह इस प्रकार देखने लगा मानो आम्रभट से परिचित ही न हो। आम्रभट ने भी थोड़ी कठिनाई से अपरिचिय का स्वाँग रचा।

ब्राह्मण देवता इन परिवर्तनों को न देख सके क्योंकि वे तो अपनी ही बात में लगे हुए थे।

'मेरे बहनोई—अरे ! भोलानाथ रक्षा करें ! ये कैसी घड़ी में मिल गए ?' कह कर ब्राह्मण ने साधु की ओर उंगली से संकेत किया।

आम्रभट ने उसकी बात पर ध्यान न देते हुए उन साधुओं को नमस्कार किया।

'महाराज, द्वार कब खुलेंगे ?'

'बस, तैयारी है', उस नवयुवक साधु ने कहा। 'तुम कहाँ से आ रहे हो ?'

'मैं वंथली से आ रहा हूं। जयसिंहदेव महाराज का सुभट हूं और भृगुकच्छ के दुर्गपाल के लिए संदेशा लाया हूँ। आप कहाँ से विहार कर रहे हैं ?'

'हम तो वटप्रद* से चले आ रहे हैं।' कहकर साधु ब्राह्मण की ओर आमुख हुआ।

---

* बड़ौदा

'विप्रवर ! आप कहाँ से आ रहे हैं ?'

'अरे हम तो आए हैं,' विप्रवर ने हाथ लम्बे किए, 'बहुत दूर से !'

सभी हँस पड़े ।

'मणिभद्र जी सोमनाथ पाटण से आए हैं ।' आम्रभट ने बात पूरी की—'अत्यन्त विनोदी हैं ।'

'सम्पूर्ण जगत् ही विनोदमय है,' मणिभद्रजी ने हँसकर तत्वज्ञान का निरूपण किया । 'क्यों साधु महाराज, समझ में आया ? अपने रामके लिए तो जहां गए वहीं घर । खाना-पीना, आनंद करना और तीनों काल गायत्री का जप करना । इसके बाद संसार झख मारता है । हर-हर भोलानाथ ! पधारिएगा भटराज ! जय सोमनाथ ।' इतना कहकर मणिभद्र अपने विपुलाकार शरीर को लेकर हास्यास्पद गति से प्राचीन भृगुकच्छ की ओर मुड़ गया ।

क्षणभर तक वह नवयुवक साधु और आम्रभट निःशब्द खड़े रहे; दोनों इस सोच में पड़ गए कि एक दूसरे से परिचित होने की बात प्रकट करें या न करें ।

'आप कहाँ ठहरेंगे ?' आम्रभट ने पूछा ।

'देवभद्रसूरि महाराज के आश्रम में । तुम ?'

'नगरसेठ के यहाँ ।'

इतना कहकर आम्रभट ने नमस्कार करके विदा ली ।

: २ :

आम्रभट सब कुछ भूल जाता है

आम्रभट ने कुछ दूर खड़े एक व्यक्ति से पूछा :

'भाई ! दुर्गपाल गढ़ कब खोलेगा ?'

'शीघ्र ही । कहाँ से आए हो ?'

'वंथली से ! दुर्गपाल महाराज अभी गढ़ में होंगे ?'

'नहीं ! अब तो वे गांव में निवास करते हैं ।' कहकर उसने प्राचीन भृगुकच्छ की ओर हाथ लम्बा किया ।

'किस स्थान पर ?'

'सम्बा बृहस्पति के बाड़े में ।'

'कितनी दूर है ?'

'सामने वाले पथ से चले जाओ, दाईं ओर एक चौक मिलेगा वहां पूछना कोई भी बता देगा ।'

'और नगरसेठ कहाँ रहते हैं ?'

'वे तनिक दूर रहते हैं--पट्टणी चौक में । मैं उधर ही जा रहा हूँ ।' उस शहरी ने कहा ।

'वहाँ मेरे सैनिकों को पहुंचा दीजिएगा ?' आम्रभट ने अपने गण को बुलाया । 'हमीर ! तुम इन भाई के साथ जाओ और तेजपाल को मेरे आगमन की सूचना दो । मैं दुर्गपाल महाराज से भेंट कर अभी आया ।'

जब उसकी आज्ञानुसार उसके सैनिक उस नागरिक के साथ चले गए तो आम्रभट ने अपने चारों ओर देखा ।

वह छोटा अवश्य था किंतु जीवनके प्रति आकर्षण उसमें पर्याप्त मात्रा में था । माता-पिता ने उसका लाड-प्यार से लालन-पालन किया था और उस काल में जितनी प्रकार की शिक्षाएं प्रचलित थीं उन सभी में शिक्षित किया था । पाँच वर्ष हुए वह युद्ध में भी भाग लेने लगा था, किंतु उस का रसिक स्वभाव शान्ति के आनन्द का आस्वादन करने के लिए आतुर था । सामने कल्लोल करती नर्मदा, नभ में विचरण करते हुए मन्दिर-शिखर, प्रभात के आनन्द में मग्न नगर और तेजपाल सेठ की पुत्री—उसकी भावी पत्नी—से मिलने की आशा ने उसके हृदय में न जाने किन-किन भाव-लहरियों को तरंगित कर दिया ! किंतु महाराज और

उसके पिता की आज्ञा के बोझ ने इन लहरियों को उठने से पहले ही दबा दिया। एक निःश्वास लेकर वह गाँव की ओर घूम गया।

उसका तेजस्वी मुख, आभूषणों से चमकते अंग, सुसंस्कृत और प्रभावशाली व्यक्तित्व देखकर दूकान खोलते व्यवसायीगण पलट कर उसकी ओर देखने लगे; किन्तु आम्रभट इस ओर ध्यान दिये बिना ही साम्बा बृहस्पति का बाड़ा पूछता हुआ चला जा रहा था।

उस समय की प्रचलित प्रथा के अनुसार यदि वह बंदर पर रुका होता, दुर्गपाल को सँदेशा भेजा होता तो उसके और उसके पिता के पद को शोभा देने वाली रीतिसे पालकी में बिठाकर उसका स्वागत किया जाता। किन्तु आम्रभट के सरल और उमंगी स्वभाव को यह प्रपंच पसंद न था। ऐसे स्वभाव का परिणाम यह हुआ कि विचारमग्न होकर चलते-चलते थोड़े ही समय में वह इस अपरिचित गांव में पथ चूक गया।

थोड़े समय पश्चात् साम्बा बृहस्पति के बाड़े की खोज करते-करते वह गांव के ऐसे भाग में पहुँचा जो ब्राह्मणों का मोहल्ला-सा दिखाई देता था। मकान छोटे और निर्भूषण थे। उनमें से किसी एक में से वेदोच्चार या घनपाठ की ध्वनि निकल रही थी। आम्रभट को आश्चर्य हुआ। लाट का दुर्जय भटराज और भृगुकच्छ का दुर्गपाल, त्रिभुवनपाल महाराज का परम मित्र और उसके पिता जैसे प्रतापी मंत्री का शत्रु—कैसे इस मोहल्ले में रहता होगा! वह तनिक तिरस्कार से हँस पड़ा। कहाँ पाटण में उसके पिता का महल, कर्णावती और खंभात में प्रासाद, और कहाँ इस सत्ताधीश का झोंपड़ा!

इस मोहल्ले में घरों के द्वार खुले पड़े थे किन्तु कोई व्यक्ति दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था। प्रत्येक द्वार के सामने खड़ी गौएँ इस नवागन्तुक को निश्चेष्ट होकर देख रही थीं। दुर्गपाल का निवासस्थान किससे पूछे यह उसे सूझ न पड़ा।

थोड़ी दूर पर एक छोटे महादेव के मन्दिर से आता हुआ घण्टा-

रव सुनाई दिया। यह सोचकर कि वहाँ कोई होगा, आम्रभट उस ओर गया।

मन्दिर की ओर जाने के लिए उसने पाँव बढ़ाया ही था कि ऐसे खड़ा हो गया मानो धरती से चिपक गया हो। मन्दिर के मध्यद्वार से एक स्त्री निकल रही थी।

आम्रभट की आँखें आश्चर्य से फट गईं। वह स्त्री नहीं कोई देवांगना थी। उम्र तीसेक वर्ष की होगी, नाग के फण के समान भव्य, केश से लेकर मृणाल के समान पाँव की उंगलियों तक सब कुछ आम्रभट को अपूर्व लग रहा था। प्रत्येक अंग में लालित्य, प्रत्येक रेखा में आकर्षण! उसकी आँखों में मेनका की उन्मत्तता थी और थी ऋषिवरों के मन को हर लेने वाली मोहकता। बेचारे नवयुवक का उमंगों से भरा हृदय तो मूर्छित ही हो गया।

उषा के समान उज्वलता प्रसारती हुई वह आई। आम्रभट की आँखें चकाचौंध हो गईं। दो पैंड दूर ही वह खड़ी हो गई। उसकी आँखों में आश्चर्य झलक आया और उसने पूछा—

'किससे काम है?'

आम्रभट के कानों से गन्धर्वों की संगीत-लहरी टकराई। अपने आपको संभालने के लिए पीछे की दीवाल पर हाथ टेक दिया।

वह देखती रही और तनिक हँस दी। हास्य सुन कर युवक के निःस्पंद मस्तिष्क में चेतना लौटी।

'अ—साम्बा बृहस्पति का बाड़ा य—'

'हाँ' कहकर वह सुन्दरी पास ही के मकान में अदृष्ट हो गई।

आम्रभट को लगा मानो धरती पर प्रलयकाल का अंधकार छा गया हो। वह बन्द होते हुए द्वार के पीछे अन्तर्धान होती हुई मोहिनी की ओर एकटक निहारता रहा।

उसे अपने शरीर का भान न रहा। वह कहां था, किस काम से उधर आया था, किन-किन उद्देश्यों से भृगुकच्छ आया था—यह सब

भूल गया। उसे लगा कि उसका चित्त, उसका जीवन, उसकी आशाएँ तो उस द्वार के पीछे बंद होते जा रहे हैं।

'ए भाई—अरे—ए भाई—यहाँ किस काम से खड़े हो?' एक आवाज़ आई।

निकट के दूसरे घर में से एक विद्यार्थी जाम आचमनी लेकर निकला था। आम्रभट को लगा कि वह उसीसे कुछ पूछ रहा है।

बड़ी कठिनाई से आम्रभट ने अपने चित्त को स्थिर किया, कपाल पर से स्वेद-कण पोंछे और आंखों को लड़के पर टिका कर पूछा—

'क्या?'

'क्या, क्या? किससे काम है?'

अन्तिम प्रश्न जिस स्वर में किया गया था उसमें छिपी ललकार का ध्यान कर आम्रभट ने कहा—

'दुर्गपाल से।'

'अच्छा, दुर्गपाल महाराज से? वे तो उस ओर रहते हैं।'

'तो साम्बा बृहस्पति का बाड़ा यह नहीं है?'

'यह पुराना बाड़ा है, महाराज नए बाड़े में रहते हैं। चलो, पथ दिखा दूं।'

आम्रभट के पांव नहीं उठे। बड़े परिश्रम से उसने पूछा—

'यह घर किसका है?' जिस घर में वह स्त्री गई थी उस ओर उंगली से उसने संकेत किया।

'यह तो पाठशाला है। क्यों?'

'कुछ नहीं, वैसे ही।'

: ३ :

भृगुकच्छ का दुर्गपाल

भौंचक्का होकर आम्रभट विद्यार्थी के पीछे-पीछे चल रहा था। थोड़ा ही चलना पड़ा होगा कि साम्बा बृहस्पति का नया बाड़ा आ गया। घर छोटे होते हुए भी नए थे। वेदध्वनि के स्थान पर अश्वों की हिनहिनाहट और पागुर करती गौओं के स्थान पर त्वरित गति से चलते-फिरते राज-पुरुषों की पदध्वनि सुनाई दे रही थी।

'भटजी! उस द्वार में से होकर जाओ। महाराज वहीं मिलेंगे,' कहकर विद्यार्थी अपने मार्ग चल दिया।

आम्रभट में उस ओर बढ़ने का उत्साह न रहा; वह तो लौटकर हृदय को हर ले जानेवाली सुन्दरी की खोज करना चाहता था। राज्य-प्रपंच उसे नीरस लगने लगा; सत्ता और संपत्ति का भोग क्षुद्र लगने लगा; उसका जीवन-सर्वस्व तो दो जादू-भरे नैनों के ध्यान में समाया हुआ था।

वह वहाँ कितनी देर खड़ा रहा इसका उसे स्मरण न रहा; एक सुभट ने आकर जब प्रश्न किया तो उसका ध्यान भंग हुआ।

'भटजी, यहाँ कैसे खड़े हो?'

'मुझे—मुझे—दुर्गपाल महाराज से मिलना है।'

'तो अंदर बाड़े में चलिए न।'

वह सुभट उसे अंदर लेगया। द्वार के अंदर चारों ओर लिपा-पुता एक चबूतरा था। जिस पर इक्के-दुक्के व्यक्ति बैठे हुए बातें कर रहे थे। उनमें से अधिकतर सैनिक थे।

'वह सैनिक आम्रभट को एक अधेड़ उम्र के सुभट के निकट ले गया।

'रुद्रमल्ल जी! महाराज क्या कर रहे हैं?'

'सोमनाथ पाटण से एक ब्राह्मण आए हैं उन्हींके साथ वार्तालाप कर रहे हैं।

सोमनाथ पाटण से आए हुए ब्राह्मण की बात सुनकर आम्रभट के कान खड़े होगए। क्षणभर के बाद उसके शून्य मन में स्थिरता आई।

'ये भटजी कौन हैं ?' रुद्रमल्ल ने नमस्कार करते हुए पूछा।

'मुझे दुर्गपाल महाराज से मिलना है।'

'कहाँ से आए हैं ?'

'वंथली से, महाराज की आज्ञा से आया हूँ।'

'महाराज पधार गए ?'

'हाँ ! महाराज, मीनलदेवी सभी आगए हैं।'

'आपका नाम ?'

'आम्रभट। दुर्गपाल महाराज से कहिए कि उदा महेता के पुत्र महाराज का संदेशा लेकर आए हैं।'

'उदा महेता—मंत्री महाराज ?' शंकित होकर रुद्रमल्ल ने पूछा किन्तु आम्रभट का रूप संस्कारी व्यक्तित्व और आभूषणों का ठाठ देखकर उसे विश्वास होगया और सम्मान से बोला—

'पधारिए, पधारिए। लेकिन इस प्रकार अकेले ? कब पधारे ?'

'मैं सीधा बंदर पर से चला आरहा हूं। मेरे गण नगरसेठ के यहाँ चले गए हैं।'

'आइए, विराजिए। भटराज को मैं अभी सूचित करता हूं। एक क्षण भी न लगेगा।'

'कोई बात नहीं।'

आम्रभट निकट पड़े तकिए का सहारा लेकर बैठ गया। रुद्रमल्ल शीघ्रता से अंदर चला गया।

इसके पहले कि आम्रभट का चित्त फिर जाकर उस सुंदरी में अटक जाय रुद्रमल्ल आगया।

'भटजी, पधारिए।'

राज्य-प्रपंच के अर्थहीन जीवन पर एक निःश्वास लेकर आम्रभट उठ खड़ा हुआ। अंदर जाने से पहले उसने अपने मन को स्वस्थ और सावधान किया। भृगुकच्छ के इस दुर्गपाल के शौर्य के विषय में उसने नाना कथाएं बड़े-बड़े योद्धाओं के मुंह से सुनी थीं। उसकी चतुराई के विषय में उसके पिता जैसे मुतसद्दी मंत्री ने भी उसे बार-बार सावधान किया था। सम्पूर्ण देश में जिसका डंका बज रहा हो ऐसे महापुरुष मुंजाल महामंत्री को भी इसकी खुले मुंह प्रशंसा करते हुए उसने सुना था; और त्रिभुवन को भी वश में करनेवाले महाराज-स्वयं जयसिंहदेव को इस का नाम तनिक डर से लेते हुए सुना था।

ऐसे पुरुष से एक अनुभवहीन नवयुवक भेंट करने जा रहा था और वह भी ऐसे काम से जिसके लिए बड़े-बड़े महारथी इसके निकट आते काँपते थे। बड़ी कठिनाई से उसने क्षोभ को दबाया। उदा महेता का पुत्र होने के कारण महापुरुषों से भेंट करना साधारण बात थी अतः वह अपना क्षोभ दबाने में तुरंत सफल होगया।

जिस कमरे में उसने प्रवेश किया उसमें प्रकाश क्षीण था। इसके पहले कि उसकी आँखें उस प्रकाश में देखने की अभ्यस्त हो जायँ हिंडोल पर बैठा हुआ एक व्यक्ति बड़े स्नेह से आगे बढ़ आया और उसके दोनों हाथ पकड़ लिए।

'कौन उदा महेता के आँबड़।'

आम्रभट इन शब्दों के बोलनेवाले को ठीक से देख भी न पाया था कि उसकी दृष्टि कमरे के द्वार की ओर गई। अंदर जाती हुई एक स्त्री की एड़ी और उसपर झूलता लुगड़े का पिछला भाग दिखाई दे गया। निमिष मात्र के लिए वही अपरिचित सुंदरी उसकी आँखों के सामने आगई। तत्पश्चात्, होठ काट कर वह अपना स्वागत करनेवाले की ओर आमुख हुआ।

लंबा, स्नायुबद्ध, गौरवर्ण शरीर, कंधे पर सूखने के लिए खुले हुए केशों में मढ़ा हुआ गौरवशाली मुख; छोटी, काली मूंछें; गरुड़राज के

समान तीखी नाक, चमकती हुई चंचल आँखें; ये सभी विशेषताएं उस ने क्षण भरमें देख लीं। एक बात से उसे बड़ा आश्चर्य हुआ—स्नेहमय स्वागत में छिपा हुआ उत्साह।

'गुजरात का नाथ' के पाठक को आश्चर्य न होगा। आज पंद्रह वर्ष पश्चात् भी काक पहले के ही समान सरल, सशक्त और सुगठित था। उसके मुख पर कुछ मांस भर अधिक चढ़ आया था और अधेड़ उम्र की रेखाएं अवश्य स्पष्ट हो उठी थीं।

'भटराज—'

'आँबड़' काक ने कहा। 'मेरे मित्र का पुत्र आज मेरे घर आया है। आओ बेटा' कहकर काक ने आम्रभट का आलिंगन किया।

'कौन आँबड़ भाई!' एक कोने में से आवाज़ आई। काक के बाहु-पाश से छूटकर देखा तो एक कोने में मणिभद्र जी मुंह फाड़कर हँसते हुए दिखाई दिए।

आम्रभट चकित होगया। 'अरे ब्राह्मण देवता आप यहां?'

'मैंने क्या कहा था? यही मेरी बहन का घर है।'

'आम्रभट ने काक की ओर देखा; वह इस विचार में पड़ गया कि किस प्रकार इस आबनूस-से ब्राह्मण की बहन इस तेजस्वी योद्धा के घर की शोभा बढ़ाती होगी? और एक एड़ी देखकर ही उस सुंदरी का स्मरण हो आया। वह मन-ही-मन हँस दिया।

काक ने तीक्ष्णता से दोनों की ओर देखा।

'तुम एक ही पोत से आए हो?'

'हाँ' आम्रभट ने कहा।

'अच्छा, मणिभद्र जी! आप नहा-धोकर निपट लीजिए तब तक मैं आँबड़ के साथ बातें कर लूं। आओ आँबड़!' कहकर काक ने आम्रभट का हाथ पकड़ कर अपने पास हिंडोले पर बिठा लिया। मणिभद्र और रुद्रमल्ल दोनों वहाँ से चले गए।

'कहो, तुम्हारे पिता जी वंथली आगए?'

'हाँ!' आम्रभट के मुंह से असावधानी से निकल गया। बात कहने की नहीं थी।

'महाराज और मीनलदेवी वथली कब आए?'

'मेरे प्रस्थान करने के चार-पाँच दिन पहले।'

'सब कुशल है न?'

'हाँ, महाराज ने यह पत्र दिया है।' कमरबंध खोलकर आम्रभट ने एक पत्र निकाला और काक को दे दिया।

काक ने पत्र खोल कर पढ़ा—

'भृगुकच्छ के दुर्गपाल भटराज काक को वामनस्थली से समस्त राजावलिविराजित बर्बरक विजेता परम भट्टारक महाराजाधिराज जयसिंह देव वर्मा की आज्ञा है कि जूनागढ़ के घेरे में भाग लेने के लिए पत्र पढ़ते ही भृगुकच्छ पत्रवाहक आम्रभट को सौंप कर यहां चले आओ—विक्रम संवत् ११६६।

हस्ते महेता शोभ।'

पत्र पढ़ लेने के पश्चात् काक क्षण-भर तक उसकी ओर देखता रहा।

आज पन्द्रह वर्ष हुए जयसिंहदेव उससे अप्रसन्न थे। इसलिए एकाएक उसकी सहायता माँगने में उसे कुछ रहस्य दिखाई दिया।

'मुझे बुला भेजने का कारण?'

'महाराज अब अत्यंत अधीर हो गए हैं। कर्णावती से दादाक महेता को और आपको बुलाया है। पिताजी को भी बुलाया है।'

'पन्द्रह वर्ष पहले यह सब क्यों न किया?'

'उसमें एक बात थी।'

'क्या?'

'पिछले समय रा' खेंगार ने जब वंथली से परशुराम भटराज को निकाल बाहर किया था तो महाराज अत्यंत क्रोधित होगए थे और खेंगार को क्षमा माँगने के लिए कहा था।'

'हाँ—'

'उस पर खेंगार ने अपनी देवड़ी रानी की कंचुकी और लंहगा महाराज को—'

'भेंट भेज दिए थे। यह तो मुझे मालूम है। खेंगार ठट्ठे बाज़ का ठट्ठे बाज़ ही रहा। सायल से वंथली तक तो वह विजय प्राप्त कर आया है; अब काक से क्या काम ?'

'महाराज ने प्रण किया है कि इस साल के अंत तक या तो पाटण न रहेगा या जूनागढ़।'

काक हँस दिया। 'महेता जी मिले थे ?'

'हाँ—उन्होंने ये भी कहलवाया है कि महाराज को पन्द्रह वर्ष पहले दिये हुए अपने वचन को निभाने का यही समय है।'

'कौनसा ?'

'कि महाराज यदि आज्ञा करें तो आप जाकर खेंगार को पराजित करें।'

'और तो सब कुशल है न वहाँ ?'

'मैंने प्रस्थान किया उसके एक दिन पहले ही खेंगार ने एक छापा मारा; हमारे पाँच सौ व्यक्ति खेत रहे। परशुराम स्वयं बड़ी कठिनाई से बच सके।'

'अच्छा ? और सेना भी मँगवाई है ?'

'नहीं। मुंजाल महेता ने कहा है कि आप अकेले ही जायँ। अधिक सैनिकों की आवश्यकता नहीं है; और लीला देवी—'

'हाँ-हाँ—'

'लीलादेवी ने भी संदेशा भेजा है।'

'क्या ?'

'कि आप न जायंगे तो वे स्वयं भृगुकच्छ आयंगी।'

'ऐसा ? यह सब क्यों ?'

'मुझे जिस समय बुलाया उस समय बड़ी चिन्तातुर दिखाई दे रही थीं।'

लीलादेवी लाट के सोलंकियों की एकमात्र उत्तराधिकारिणी थी और लाट को गुजरात में सम्मिलित करने के उद्देश्य से ही काक ने उसका ब्याह जयसिंहदेव महाराज के साथ करवा दिया था।

'मालूम होता है मेरा भाव बढ़ रहा है।'

'क्यों न हो ?' कहकर आम्रभट काक की ओर सम्मान से देखने लगा।

तलवार की धार-सी तीक्ष्ण दृष्टि से काक ने आम्रभट को देखा, किन्तु वाक्य निष्कपट भाव से कहा गया था यह समझकर वह हँस पड़ा।

'तुम्हारा सामान कहाँ है ?'

'मैंने अपने गणों को नगरसेठ के यहाँ भेज दिया है।'

'हाँ ठीक तो है। तुम तो उनके जामाई बनने वाले हो न ! जाओ मैं भी प्रस्थान की तैयारी करता हूँ। रुद्रमल्ल ! आँबड़ महेता के लिए पालकी मँगवाओ।'

काक उठ खड़ा हुआ; आम्रभट ने विदा ली।

थोड़ी देर तक काक वहाँ खड़ा रहा और शिकारी के चौकन्नेपन से बात के रहस्य पर विचार करता रहा —'इसमें तो भाई उदा का कुछ हाथ दिखाई देता है।'

गंभीर विचार में मग्न भृगुकच्छ का दुर्गपाल धीरे-धीरे अन्दर चला गया।

: ४ :

मणिभद्र क्यों आया ?

जैसे ही मणिभद्र महाराज अन्दर के कमरे में गए उनके हृदय में न जाने कैसे-कैसे विचार उठ खड़े हुए।

पहले इसका जीवन भंग और ब्राह्मभोज में समान रूप से बँटा हुआ था। किंतु इस शांत और सरल जीवन में एक बाधा पड़ गई। उसके गुरू की नातिन मंजरी कुछ समय के लिए किसी कारणवश अपने पति को छोड़कर जूनागढ़ आई। विवाहिता युवती पर दृष्टि न डालना एक निश्चित धर्म-सिद्धांत है। फिर गुरु की पुत्री की पुत्री भाणजी के समान होती ही है, यह शास्त्र-वचन है। फिर भी, इन विप्रवर के हृदय में विचित्र उमंगों का संचार हुआ। उसे लगा कि जीवन में रस है, भंग और मोदक के प्रति अरुचि हो गई; और सोते-जागते वह गुरू की नातिन का दर्शन करने लगा।

वह तो जैसी आई थी वैसी ही अपने पति के पास लौट गई, किन्तु मेघाच्छन्न आकाश के तिमिर में जिस प्रकार ध्रुव तारा चमकता रहता है उसी प्रकार वह उसके भंग और भूख से ग्रस्त जीवन में चमकती रही।

कुछ दिनों पश्चात् उसने सुना कि वह अपने पति काक के साथ भृगुकच्छ गई है। इतना सुनते ही मणिभद्र महाराज के मस्तिष्क की भटकती नौका को मानो दिशा मिली। वह भृगुकच्छ जाने को तड़पने लगा, रात-दिन उसे भृगुकच्छ के स्वप्न आने लगे। किन्तु जन्म से ही उसने जूनागढ़ से बाहर पांव भी न रखा था, उसके सभी यजमान जूनागढ़ में थे, और प्रवास से उसे बहुत अधिक भय लगता था। अतः अपना प्रदेश छोड़कर अन्य और अपरिचित प्रदेशों में विचरण करने का साहस उसे न हुआ।

इसी प्रकार कई वर्ष बीत गए। भृगुकच्छ में रहनेवाली मंजरी से भेंट कर मोक्ष प्राप्त करे या ब्रह्मभोजों का विलास भोगे—इसी दुविधा में यह ब्राह्मण मुमुक्षु आत्माओं की भांति धीरे-धीरे विलास की ओर झुक गया।

पन्द्रह वर्ष पश्चात् एक दिन जूनागढ़ के खेंगार की रानी ने उसे भृगुकच्छ जाने की आज्ञा दी। जिस प्रकार ध्रुव को सौतेली मां के शब्द सुनकर ईश्वर-प्राप्ति का मार्ग मिला था उसी प्रकार इस आज्ञा से मणिभद्र को मोक्ष का मार्ग मिल गया। वह आनन्द से नाच उठा। वह जूनागढ़ से प्रस्थान करने के लिए आतुर हो उठा और उसने अपने विपुलाकार शरीर को शोभा न दे वैसी गति से रानी की आज्ञा को सिर-आंखों पर चढ़ाया।

मणिभद्र मंजरी से भेंट करने अन्दर गया। अंदर के कमरे में केवल एक छोटी बालिका झोली हिला रही थी। मणिभद्र ने इस बालिका को पहले कभी न देखा था फिर भी उसे पहचान लिया और हर्षातिरेक से उसे निहारता रहा।

प्रायः सातेक वर्ष की इस बालिका की रेखाओं में उसे अपने अंतर में रमी गुरु की नातिन की रेखाएं दिखाई पड़ीं। वही नाक, वही आंखें, रङ्ग-भर कुछ अधिक साँवला था। मणिभद्र को लगा मानो पुष्प पुनः कलिका बन गया है।

'बेटी! तुम्हारी मां कहाँ हैं?'

'कौन?' बालिका ने चमककर ऊपर देखा।

'मैं! मैं तेरा मामा।'

मणिभद्र हँस दिया और अपने आकार से घबराती हुई बालिका को हृदय से लगा लिया।

'अरे,भाई जग जायगा तो?' बालिका ने घबराकर कहा।

'अच्छा, यह तेरा भाई है' मणिभद्र ने बालिका को छोड़कर झोली में सोये हुए शिशु को उठा लिया।

'आओ राजा बेटा ! बेटी, इसका नाम क्या है ?'

'हमने तो इसका नाम वौसरि रखा है।' आंधी के समान चंचल और भौंरे के समान काले मामा से डरकर पीछे हटती हुई बालिका ने कहा।

'वौ—वौ—वा—स—र—' इस विचित्र नाम को मस्तिष्क में जमाने का प्रयत्न करता हुआ मणिभद्र धीरे-से बोला।

किन्तु इस नाम को धारण करने वाले में उसकी बहन जितना धीरज न था। आधी आंखें खोलकर उसने इस नए मामा को देखा और उसमें परिचय का कोई चिह्न न पाकर ऊँची आवाज में रो पड़ा 'ऊंआ—आ—आ।'

उन्मुक्त हास्य से वातावरण में आनन्द भरकर अपने ही हाथ की झोली बना मणिभद्र बोलने लगा—'उलूलू—लू—भाई रे—'

इस वार्तालाप के आगे बढ़ने से पहले ही अन्दर से आवाज़ आई—'महाश्वेता, क्या हुआ ?'

मणिभद्र घूमा और पन्द्रह वर्ष पश्चात् मंजरी को देखा। 'बहन ! बहन !'

मंजरी पहले के ही समान तेजस्वी और सुन्दर थी। पन्द्रह वर्षों के प्रताप से उसकी रेखाएँ भर आई थीं, उसके मुख का सौंदर्य पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान सम्पूर्ण हो चुका था, और उसके गर्व-भरे नैनों से अमृत की वर्षा हो रही थी।

वह मणिभद्र को देखकर विस्मित हो गई किन्तु उसके घूमने पर वह उसे पहचान गई।

'कौन ? भाई मणिभद्रजी ?'

'हां, मैं ही, मैं ही, बहन, मैं ही।' कह जल्दी से मणिभद्र ने बच्चे को मंजरी के हाथों में दे दिया।

'भाई, बैठो।' मंजरी पाट बिछाने लगी किन्तु मणिभद्रजी मान के भूखे न थे।

'अरी बहन, रहने भी दे। हम तो यह बैठे।' मणिभद्रजी पांव-पर-पांव चढ़ाकर बैठ गए।

'आओ बेटा, मेरे पास !'

वह बालिका तो अब भी मंजरी की साड़ी के पीछे छिपी आश्चर्य में भरकर इस नवागन्तुक को देख रही थी।

'वह तो नहीं आयगा। कुशल तो है ? और सब लोग अच्छे तो हैं ?'

'आनन्द कैसा ? हर भोलानाथ ! जूनागढ़ पर तो यमराज की छाया पड़ रही है, देवी !' मणिभद्र ने दुखित होकर गर्दन हिलाते हुए कहा 'खेंगार महाराज को चारों ओर से घेर रखा है। जो भोलानाथ करे वही सही।'

'तो फिर यहीं चले आते न—'

'बहन ! मन तो प्रतिदिन यही कहता था, लेकिन क्या करूं ? यजमानवृत्ति ही तो ठहरी; और युद्ध के कारण 'बारमा' और श्राद्ध का भी कोई पार नहीं। लो ये भटजी आगए—'

'क्यों, मणिभद्रजी ! भेंट करली बहन से ?' काक ने पूछा।

'हाँ।' कहकर मणिभद्र ने कानटोपी उतार कर नीचे रख दी।

'मंजरी, मुझे जाना होगा।'

'कहाँ ?'

'वंथली।'

'क्यों ?'

काक ने चुपचाप उसे महाराज का आज्ञापत्र दे दिया। मंजरी ने उसे पढ़कर लौटा दिया। पागल की भाँति मणिभद्र काक से मंजरी और मंजरी से काक की ओर देखने लगा और बड़ी शीघ्रता से प्रश्न किया—

'आप वंथली जा रहे हैं ?'

तनिक कठोर होकर काक ने इस छिछोर ब्राह्मण की ओर देखा। दूसरों की बात में माथा मारनेकी मणिभद्र की आदत उसे अच्छी न लगी।

'क्यों ?'

'तब तो हो चुका ?'

'क्या हो चुका ?'

'मैं भी बुलाने के लिए ही आया हूँ ।' मणिभद्र ने कहा। एकाएक उसे कुछ ध्यान आया और वह भय से चारों ओर देखने लगा।

'यहाँ कोई नहीं सुनेगा, किसने भेजा है तुम्हें ?'

'राणकदेवी ने ।' धीमे से मणिभद्र ने कहा।

'राण—' चकित होकर काक बोलते-बोलते रुक गया। क्या, क्या ?'

'आपको उन्होंने जूनागढ़ बुलाया है।'

घबराकर काक पीछे हटा—हैं ?'

'हाँ, सब कुछ सुनाता हूं।'

काक ने आँखों-ही-आँखों में स्वीकृति दी।

'मुझे देवी ने बुलवा भेजा—चुपचाप। जप करने के पश्चात् मैं ब्रह्म-भोज का न्यौता होते हुए भी महल में गया; महाराज और देवी किसी बात पर झगड़ रहे थे। महाराज की आँखें लाल हो रही थीं और देवी की आँखें सजल थीं। हर भोलानाथ ! मैं तो ऐसा घबराया—और भंग भी तो नहीं पी थी।'

'अच्छा, फिर ?' काक ने अधीरता से कहा।

'महाराज क्रोधित होकर चले गए और परिचारिका मुझे अंदर ले गई। मैं तो थरथर काँप रहा था। हर भोलानाथ ! मुझे देवी ने पूछा—'तुम्हारा ही नाम मणिभद्र शुक्ल है न ?' मैंने उत्तर दिया—'हाँ।' 'जटानाथ आचार्य के शिष्य हो न ?' देवी ने प्रश्न किया। 'हाँ, देवी।' मैंने उत्तर दिया। 'उनकी नातिन के पति से परिचित हो ?' उन्होंने पूछा। मुझे हँसी आ गई। हर भोलानाथ ! मैं और आपको न पहचानूँ भला !'

'फिर ?' काक ने बात आगे बढ़ाने का संकेत किया।

'मैंने 'हाँ' कहा। देवी ने कहा—'महाराज—' मुझे और महाराज !—'महाराज ! तुम चुपचाप उनके पास जा सकोगे ?' मैं तो भाई घबरा गया। हर भोलानाथ ! जूनागढ़ का ब्राह्मण भृगुकच्छ कैसे जाय ? 'शुकल जी ! इतना-सा काम करदो। यदि मैं सोरठ की रानी रही तो जन्म-भर तुम्हारा यह उपकार न भूलूंगी।' ऐसा कहते-कहते देवी की आँखों में आँसू झरने लगे। हर भोलानाथ ! मुझे भी रुलाई आ गई। मैंने कहा—'मेरे प्राण तक अर्पित हैं।' हर भोलानाथ ! इतना कह भोले ब्राह्मण ने अपनी आँखों से आँसू पोंछकर काक की ओर देखा। काक की आँखें स्थिर थीं। आँख की पलक ही से उसने मणिभद्र की बात पूरी करने को कहा। मंजरी की आँखें भी गीली हो गईं। गला साफ़ कर मणिभद्र ने फिर कहना आरंभ किया —

'देवी ने कहा—'शुकल जी ! शीघ्र ही प्रभास होकर भृगकच्छ जाओ। वहाँ जाकर काकभट से मिलकर एकान्त में कहना।'

'क्या ?'

'देवी ने मेरे साथ यह सँदेशा भेजा है,—'काकभट जी ! तुमने मुझे अपनी बहन बनाया था। एक समय तुमने मेरी और अनेक बार मेरे 'रा' की भी लाज रखी थी। आज तुम्हारे सिवा मेरा और कोई सहारा नहीं है अतः जहाँ भी हो शीघ्र मेरे पास चले आओ।' इसके बाद देवी ने मेरे साथ एक सामंत कर दिया। वह मुझे प्रभास तक छोड़ गया और फिर मैं यहां तक आया। हर भोलानाथ !'

मंजरी ने काक की ओर देखा। काक विचार-मग्न था। दोनों में से कोई कुछ बोला नहीं। मणिभद्र समझ गया कि वहाँ से अब उसका जाना ही उचित है अतः वह उठ खड़ा हुआ।

'और कुछ ?' काक ने पूछा।

'अरे हाँ—'

'क्या ?'

'अंत में देवी ने कहा था—'मैं पाटण से द्रोह नहीं करना चाहती।'

'मैं देवी से किस प्रकार भेंट कर सकता हूँ ?'

'प्रभास के निकट चोखाड़ है न ?'

'हाँ।'

'वहां मोती अहीर रहता है। उससे कहना कि मैं मणिभद्र शुकल का आदमी हूँ, वह सब प्रबन्ध कर देगा।'

'अच्छी बात है। तुम इस बाड़े में जाओ,उधर आदमी हैं। स्नान-संध्या से निपट लो।'

इतना कहकर काक ने मणिभद्र को विदा किया।

: ५ :

मंजरी की महत्वाकांक्षा

मणिभद्र के जाने के बाद मंजरी ने वौसरि को महाश्वेता को देकर उसे बाहर भेज दिया और स्वयं काक के पास आकर उसके बोलने की राह देखती हुई खड़ी हो गई।

'मंजरी ! दाल में कुछ काला अवश्य है।'

'मुझे भी ऐसा ही लगता है।'

'नहीं तो एक ही साथ तीनों को काक की याद न आती।'

'तीसरा कौन ?'

'लीलादेवी।'

मंजरी हँस पड़ी। उसने विनोद में काक के सामने आँखें नचा कर कहा—'अच्छा, उन्होंने भी बुलावा भेजा है ?'

काक भी हँस दिया। 'हाँ, आमूभट संदेशा लाया है। तुझे लीला-देवी से ईर्ष्या होती है क्या ?'

'मुझे ? किसलिए ? ईर्ष्या करना है तो लीलादेवी करे कि उसे काक न मिला।' गर्व से मंजरी ने कहा।

'शी—शी—' काक ने नाक पर उंगली रखते हुए कहा—'इस तरह पागलों की-सी बात न कर। कोई सुन लेगा। इन्होंने भी मुझे इसी समय बुलाया है इसमें कोई रहस्य अवश्य है।' काक ने गंभीर होकर कहा।

'क्या हो सकता है ?'

'यही तो समझ नहीं पड़ रहा है। दूसरी बातें तो कुछ-कुछ समझ में आती हैं।'

'वे क्या ?'

'जयसिंहदेव महाराज को जूनागढ़ जीतना है इसलिए काक की आवश्यकता आ पड़ी; और उदा मेहता को भृगुकच्छ चाहिए इसलिए मुझे यहां से हटाना है।'

'उदा—' चमककर मंजरी ने पूछा। पहले उदा द्वारा दिये गए दुःखों की याद से उसका भाल सिकुड़ गया।

'हाँ, तभी उसके लड़के आम्रभट के साथ यह आज्ञा-पत्र भेजा है। मेरे स्थान पर वही दुर्गपाल बनेगा।'

'हैं !' मंजरी का मुख फ़ीका पड़ने लगा और उसकी वाणी काँपने लगी।

'चिन्ता की कोई बात नहीं। ये लड़का तो बेचारा बच्चा है—चुटकी में पिस जाय ऐसा ! भृगुकच्छ में उससे कुछ होना-जाना नहीं है।'

'और वहाँ तुमको—'

'मुझे क्या हो सकता है?' गर्व से काक हँस दिया। 'मेरी उपयोगिता सभी जानते हैं। और फिर लीलादेवी और त्रिभुवनपाल महाराज के रहते कोई मेरा बाल भी बाँका नहीं कर सकता। और फिर इतने वर्षों में क्या मैं निर्बल हो गया हूँ ? अकेले हाथ कितनों के छक्के छुड़ा दिए थे, वह क्या भूल गई ?' कहकर काक ने मंजरी के गाल पर टकोर की। मंजरी ने उसका हाथ लेकर दबा दिया; कुछ देर तक दोनों नहीं बोले;

वल दोनों के हृदयों में आपस में संवाद चलता रहा।

'और ये तीसरा बुला—'

'यही सबसे अधिक पेच में डालता है। राणकदेवी को मेरी सहा-ता की क्या आवश्यकता आ पड़ी यही नहीं समझ में आता। मेरी :थिति तनिक बेढंगी हो जायगी।'

'लेकिन उससे भेंट बिना कोई चारा है?'

'भेंट अवश्य करनी पड़ेगी। फिर जो होगा देखा जायगा। अब तू रे प्रस्थान की तैयारी कर। मैं अन्य बातें ठीक करलूँ।'

मंजरी ने स्नेह से काक के हाथ पर हाथ रख दिया और उसकी ओर खने लगी।

'क्यों, मेरा जाना भला नहीं लगता? घबराती है?'

'बिलकुल नहीं,' मंजरी ने कहा। 'मेरे कैलाश जैसे दुर्धर्ष और ज्वालाग्नि के समान दुःसह पति को हो ही क्या सकता है? किसमें इतना ाहस है कि वह मंजरी की ओर उंगली भी उठा सके? प्रसन्न होकर ाओ, मैं तो यही मनाती रहती हूँ कि तुम दंडनाक बन जाओ।'

'इस जीवन में तो दंडनायक बनने का नहीं।'

'यह कैसे जाना?'

'मुझसे जयदेव महाराज डरते हैं और पाटण के मंत्रीगण ाबराते हैं।'

'अच्छा, देखना।' हँसकर मंजरी ने कहा। 'एक स्त्री ने तुम्हें लाट के सिंहासन पर आरूढ़ होने के लिए निमंत्रित किया था। तुमने उसे प्रस्वीकार कर मुझे पसंद कर लिया। तो मुझे तुमको दंडनायक तो ानाना ही चाहिए।' मंजरी की आँखें एक साथ गर्व और प्रशंसा से चमक उठीं।

'और न बन पाया तो?' हंसकर काक ने पूछा।

'तो समझ लेना कि पाटण में मुतसद्दीपन रहा ही नहीं।'

'किन्तु तेरे प्रण का क्या होगा?'

'मेरे प्राण की तो मैंने कभी से रक्षा कर रखी है। तुम मेरे लिए दंड-नायक ही हो और सदा रहोगे।'

काक ने हँसकर मंजरी का हाथ दबा दिया।

'अच्छा अब मैं देवभद्र सूरिजी के उपाश्रम में हो आता हूँ। वहाँ कुछ-न-कुछ पता लगेगा ही।'

काक पगड़ी पहन और तलवार बाँध कर बाहर आया। नमस्कार करते सुभटों को जय-जय कहता हुआ वह घोड़े पर चढ़ा और दो-चार अश्वारोहियों के साथ देवभद्र सूरिजी के उपाश्रम की ओर मुड़ गया।

: ६ :

नगरसेठ के घर

साम्बा बृहस्पति के बाड़े से पालकी में बैठकर नगरसेठ के घर की ओर प्रस्थान किया। उस समय भी आम्रभट के मस्तिष्क के सामने वही अपरिचित सुन्दरी हो थी।

दुर्गपाल उसे भले लगे। उनके सोरठ प्रस्थान करने पर स्वयं भृगुकच्छ का दुर्गपाल बनकर निश्चिंत होकर रह सकेगा इसमें उसे कोई सन्देह न रह गया था। उसके पिता का उसे बार-बार सावधान करना निरर्थक लगा, भृगुकच्छ की सत्ता को अपने हाथ में करना क्यों उन्हें इतना कठिन लग रहा था यह उसकी समझ में नहीं आया।

किन्तु अभी तो उस सुन्दरी को खोज निकालना ही उसका एक-मात्र उद्देश्य था। बाज़ार से निकलते हुए उसने चारों ओर देखा किंतु उस शरीर-विन्यास की दूसरी स्त्री उसे न दिखाई पड़ी। वैसे अप्रतिम सौंदर्य की मूर्ति को खोज निकालना इस गांव में सहज तो होगा!

किन्तु कठिन भी बहुत होगा ! वह, एकाएक महत्त्वशाली पुरुष हो गया था, नगरसेठ की पुत्री के साथ उसका सम्बन्ध भी हो चुका था, किन्तु भृगुकच्छ से अच्छी तरह परिचित कोई विश्वासपात्र मनुष्य उसके पास न होने के कारण यह काम बहुत ही कठिन दिखाई पड़ा।

तकिये पर सिर रख, आंखें बन्दकर वह उस रमणी के अङ्ग-लालित्य को अपनी आंखों के सम्मुख लाने की चेष्टा करने लगा। होठों में कैसा आकर्षक माधुर्य, नाक की कैसी मदभरी बनावट, आंखों में कैसी हृदयभेदक मोहिनी ! आधी दीख पड़ती स्तनों की अपूर्व रेखाएं, पांव तक की रेखाओं में निखरी भव्यता—इन सब विशेषताओं का उसने आजन्म विलासी की बारीकी से विश्लेषण किया। वह विक्षिप्त-सा हो गया।

जन्म से कभी किसी ने उसका अनादर न किया था, जो मांगता वही वस्तु तुरन्त उसे मिलती थी। उदा महेता की सम्पत्ति और सत्ता दिन-दिन इस प्रकार बढ रही थीं कि किसकी मजाल जो पाटण में उसे कोई भी ना कर सके, तो यह तो विजित देश की छोटे गांव-सी राजधानी थी और वह स्वयं उसका दुर्गपाल। और क्या चाहिए ?

वह स्त्री विवाहिता अवश्य थी, तो हो ! उसके बिना वह जीवित नहीं रह सकता अतः उसे खोजना तो पड़ेगा ही। वेश और स्थल से ब्राह्मणी लग रही थी। किस वेदपाठी के भाग्य से इस अप्सरा का निर्माण हुआ होगा ? जो भी हो—किन्तु कौन ऐसा है जो दान और मोदक को देख न ललचा उठे ? ब्राह्मणों के प्रति उसका तिरस्कार श्रावक श्रेष्ठ के पुत्र के योग्य ही था। इन सब विचारों में मग्न होते हुए भी शहर का व्यापार उसकी दृष्टि से न बच पाया। भृगुकच्छ में घर छोटे और मार्ग संकरे थे। मंदिर बहुत और जीर्णावस्था में थे। उनमें न पाटण के मन्दिरों का ठाठ था न मोढेरा के मन्दिरों की भव्यता। फिर भी गुजरात के सभी नगरों से लाट की इस राजधानी

में एक विशेषता थी। मालूम होता था सम्पूर्ण ग्राम छोटी-छोटी दूकानों का बना हुआ है।

प्रत्येक चौक में व्यापारियों की बस्ती ही अधिक थी, गुमाश्ते कान में कलम खोंसे, कन्धे पर पैसों की थैली लिये इधर-उधर दौड़-धूप कर रहे थे, और माल से भरी गाड़ियों की शृङ्खला चली जा रही थी। इस प्रकार का जीवन कुछ अंशों में खंभात में भी था किन्तु इस नगर की रेल-पेल के सामने तो खंभात कहीं ठहरता न था। इसी कारण आम्रभट की पालकी उठाने वाले वेग से न चल पा रहे थे, कहीं-कहीं तो उन्हें रुक जाना पड़ता था। इससे आम्रभट की विचार-शृङ्खला बार-बार टूट पड़ती थी और उसका जी तिलमिला उठता था।

आम्रभट को इस नगर में कई बातें बड़ी विचित्र लगीं। उसके जैसा महत्वशाली व्यक्ति पालकी में बैठकर चला जा रहा था, किन्तु किसी को उसकी ओर ध्यान देने का भी अवकाश न था, नमस्कार करने की बात तो अलग रही। लोग कितने विनयहीन थे कि अपने काम को छोड़कर किसी दूसरी वस्तु की ओर ध्यान तक नहीं दे सकते थे।

उसे विचार आया कि खंभात में पैसा इतना है कि समाता नहीं, फिर भी उससे तिगुने बड़े इस बन्दरगाह में क्यों कुछ दिखाई नहीं पड़ता? कहाँ उसके पिता की दूकान का वैभव और कहां भृगुकच्छ के पट्टणी चौक की दूकानें! उसके पिता की बात अब उसकी समझ में आई। उसके पिता ने खंभात बंदर पर अधिकार करके अतुलित सम्पत्ति एकत्रित की थी और अब उसे इस नए देश पर अधिकार करने के लिए भेजा था। आम्रभट मन-ही-मन हंस दिया, वह भी अपने पिता के समान समृद्ध और सत्तावान् हो जायगा।

ऐसे हवाई किले बनाता हुआ आम्रभट तेजपाल नगरसेठ के यहाँ जा पहुँचा। सेठ बाहर गये हुए थे अतः उनका पुत्र रेवापाल उसका स्वागत करने के लिए खड़ा हुआ था।

रेवापाल बीसेक वर्ष का था—सुन्दर, ठिगना, सशक्त। उसके मुख पर भरे हुए घावों के चिह्न थे। उसके पंजे बता रहे थे कि उनमें शस्त्र चलाने की शक्ति है। उसकी आंखें निश्चल और उसका मुख गम्भीर था। उसे देखते ही सभी का उत्साह ठण्डा पड़ जाता था।

आम्रभट के पालकी से उतरने पर रेवापाल ने उसका स्वागत किया।

'पधारिए आंबड़ सेठ! पिताजी अभी-अभी बाहर गये हैं।' उसकी आंखों में न स्नेह था न आदर, उसकी वाणी में हर्ष की लहरें न थीं। ऐसा लग रहा था मानो और कोई चारा न होने के कारण ही उसको यह करना पड़ रहा

उमंगी आम्रभट तो इस होने वाले साले का व्यवहार देखकर ही ठण्डा पड़ गया।

'मेरे गण आगए?' उसने बड़े संकोच से हँसकर पूछा।

'हां।' गम्भीर होकर रेवापाल ने उत्तर दिया।

'आप कुशल तो हैं?'

'हां,' कहकर एक शब्द भी अधिक कहे बिना वह आगे हो गया, आम्रभट उसके पीछे-पीछे चलने लगा। वह इस गांभीर्य और निःशब्द तिरस्कार का कारण इसलिए नहीं समझ पाया कि वह रेवापाल के जीवन से पूर्णतः परिचित न था।

रेवापाल लाट की नष्ट हुई सत्ता और स्वतंत्रता का भक्त था, उनके नष्ट होते ही वह जीते-जी मुर्दा-सा हो गया था।

: ७ :

जंबूसर का घेरा

लाट के इतिहास के कुछ विस्मृत पन्ने

इस कथा को और रेवापाल की गंभीर प्रकृति को समझने के लिए लाट के इतिहास के कई-एक पिछले पन्ने खोलने होंगे।

लाट का अन्तिम प्रतापी राजा बारप था, किंतु लाट के दुर्भाग्य से पाटण की गद्दी पर उससे भी अधिक प्रतापी सोलंकी मूलराज बैठा। बारप ने मूलराज को पराजित किया और मूलराज ने बारप को मात दी किंतु परिणाम कुछ न निकला। अन्त में बारप के बाद मूलराज के पुत्र चामुंड ने भृगुकच्छ लिया और लाट में अनहिलवाड़ पाटण की सत्ता जमाना आरंभ किया। चामुंड के बाद भीमदेव ने लाट की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया किन्तु कर्णदेव के समय में पाटण ने लाट को अपने में सम्मिलित करने का विचार किया।

जिन्हें 'गुजरात के नाथ' में दिये हुए मुंजाल और त्रिभुवनपाल की पत्नी काश्मीरा देवी—मामा और भाणेजवधु के प्रशंसनीय निर्णय स्मरण होंगे उन्हें याद होगा कि युवावस्था में मुंजाल ने लाट पर चढ़ाई की थी और वहाँ के पद्मनाभ महाराज को भी मार डाला था। लेकिन इससे पाटण को कुछ भी लाभ न हुआ। पद्मनाभ महाराज का पुत्र युद्ध में खेत रहा फिर भी सेनापति ध्रुवसेन ने मही से कावेरी तक लाट की सत्ता बनाए रखी। अनेक बार भृगुकच्छ लिया और फिर खो दिया, हारे और हराए!

इसी काल में दो जनों में प्रगाढ़ मित्रता थी, थे तो दोनों बच्चे किंतु रूप और गुण में समान थे। दोनों युद्धकला में कुशल थे। एक था निर्धन ब्राह्मण और दूसरा था धनवान नगरसेठ का पुत्र। ब्राह्मण पाटण के दंडनायक त्रिभुवनपाल की सेना में भर्ती हो गया, वणिक ध्रुवसेन की सेना में ही बना रहा। एक था काक, और दूसरा था रेवापाल।

काक चतुर था। उसे विश्वास था कि ध्रुवसेन कुछ भी करलें फिर भी पाटण की सेना के आगे उसकी एक न चलेगी। पद्मनाभ महाराज की पुत्री मृणालकुंवर को ध्रुवसेन सदा अपने साथ रखता था। वह लाट की अस्त होती हुई सत्ता और स्वतंत्रता की मूर्ति मानी जाती थी, इसीलिए प्रतिदिन घटती हुई सेना अपना साहस न खोती थी। फिर भी विजय की उसे कोई आशा न थी। इस कठिनाई में काक को एक बात सूझी। यदि त्रिभुवनपाल सोलंकी मृणालकुंवर से विवाह कर लेते हैं तो वे स्वयं लाटके स्वतंत्र राजा बन जायंगे, लाटकी महत्ताको आंच नहीं आएगी, ध्रुवसेनकी प्रतिष्ठा बनी रहेगी और पाटणकी कढ़वाहट भी जाती रहेगी, किंतु यह मार्ग तो बंद था। त्रिभुवनपाल सोलंकी दूसरा ब्याह करना ही नहीं चाहते थे, और यदि वे स्वीकार कर भी लेते तो उनकी पत्नी काश्मीरा देवी ऐसा कभी न होने देती। यदि वह भी हो जाता तो त्रिभुवनपाल में इतनी शक्ति न थी कि वह लाट की स्वतंत्रता के झंडे को उठाए रख सके। अगर वह ऐसा करने का प्रयत्न भी करता तो मुंजाल महेता कभी उसे सफल न होने देते। वास्तविकता जानने के लिए काक ने पाटण जाने का काम अपने सिर लिया।

जब उसे विश्वास हो गया कि एक-न-एक दिन लाट को गुजरात की सत्ता माननी ही होगी तभी उसके चतुर मस्तिष्क में यह बात आ गई कि लाट जितनी शीघ्र गुजरात में सम्मिलित हो जाय उतना अच्छा। वह अपनी सहज बुद्धि के द्वारा ध्रुवसेन की सत्ता को नष्ट करने के प्रयत्न करने लगा।

लाट के पौने भाग के लोगों ने पाटण की सत्ता स्वीकार कर ली थी। ध्रुवसेन की सेना पाटण की सेना के दशांश के बराबर थी और वह भी दिन-दिन घटती जा रही थी। लाट का सम्पत्तिशाली वर्ग युद्ध से ऊबकर उदय होते हुए सूर्य के ताप में आनंद कर रहा था। ध्रुवसेन ने परिश्रम करने में कुछ भी उठा न रखा। अपनी भव्य दाढ़ी के कुछ बालों को दाँतों के बीच में दबाकर वह ध्रुव की भाँति अटल खड़ा

रहा। उसकी छोटी-सी सेना ने न भृगकच्छ और न अपनी राज्यलक्ष्मी के समान राजकन्या मृणालकुँवर पर से अधिकार हटाया।

रेवापाल इस सेना का नायक था। वह लाट की स्वतंत्रता में विश्वास करता था; पाटण और पट्टणियों को अपना कट्टर शत्रु समझता था। भृगुकच्छ का अंतिम कँगूरा जब तक उसके हाथ में रहा तब तक उसने युद्ध किया और जब वह भी हाथ से निकल गया तो ध्रुवसेन के साथ जंबूसर चला गया।

उस दिन से उसके हृदय में एक ज्वाला जल उठी। काक ने भृगुकच्छ लेकर और उसके पिता तेजपालको फुसलाकर उससे देश-द्रोह करवाया। बचपन से ही वह जिस काक को अपना मित्र मानता था वही उसके लिए देश-द्रोहियों का शिरोमणी होगया। इसी काक ने पट्टणियों का समर्थन किया था; त्रिभुवनपाल की विजय में इसीका हाथ था; भृगुकच्छ इसी ने लिया और तेजपाल नगरसेठ को फुसलाकर अपने हाथ में किया। देश के वैरी के प्रति उमड़े भयंकर क्रोधमें मित्रता जलकर भस्म हो गई।

जंबूसर के घेरे का वर्णन पराक्रम के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में किया गया है। ध्रुवसेन की सेना छोटी थी। लाट की स्वतन्त्रता में श्रद्धा रखने वाले भी इने-गिने ही थे। लाट के सोलंकियों के वेश में केवल एक लड़की थी। हाथ से निकली इस बाज़ी को भी खेलने वाले ध्रुवसेन ने वर्षों तक जंबूसर को टिका रखा। हजार घावों से सुशोभित उस वीर ने पाटण की संपूर्ण सेना के छक्के छुड़ा दिए और त्रिभुवनपाल व काक को छका मारा।

इस प्रकार भृगुकच्छ के घेरे में बचे सात सौ योद्धाओं में से कुल इकतालीस रह गए। इस छोटी किंतु अडिग सेना की स्थिति बड़ी गंभीर थी। यमराज उसे ग्रसनेकी ताकमें बैठा हुआ था। उनकी आशाएं नष्ट हो गई थीं। ध्रुवसेनकी एक विधवा पुत्री और उनके साथकी आठ-दस स्त्रियों का क्या होगा यह किसी की समझ में न आया। मृत्यु के लिए तत्पर

वीर की निश्चयात्मक बुद्धि का सहारा लेकर ध्रुवसेन ने इस भव में इन सब बातों का विचार स्थगित कर दिया। इस निपट अंधकारमें भी एक प्रकाश-किरण फिर-फिर दिखाई पड़ती थी। कामरेज और गांधार से सिन्धु-मार्ग से सेना और खाद्य की सहायता मिलने वाली थी।

ध्रुवसेन से अधिक तो मृणालकुँवर दृढ़ थी। बड़े साहस के साथ वह बाला इस सेना को प्रेरित कर रही थी। उसने निश्चय कर लिया था कि वह लाट के सोलंकियों की कीर्ति अन्तिम समय तक मन्द न होने देगी। सम्पूर्ण लाट और गुजरात इस अडिग शौर्य को पागलपन मानते थे। दिन-प्रतिदिन ध्रुवसेन की मृत्यु—क्योंकि झुकने वाला वह नहीं था—निकट आ रही थी। और फिर वह इतना निर्बल हो गया था कि अब समझौता करने की इच्छा भी नहीं रह गई थी।

एकाएक दुर्गपाल काक घेरा छोड़कर पाटण गया। किसलिए गया यह कोई नहीं जान सका। जयसिंहदेव महाराज मालवे में थे। वह मुंजाल महेता और मीनलदेवी से भेंट करके लौट आया। दूसरे दिन ध्रुवसेन के पास संदेशा गया कि काक और तेजपाल नगरसेठ मंत्रणा करने के लिए आना चाहते हैं। ध्रुवसेन अपने पुराने शिष्य और दस वर्ष के वैरियों के नायक काक के शौर्य और बुद्धि से अपरिचित नहीं था। वह उसे अपना कट्टर वैरी और देश-द्रोही मानता था। अतः इस मंत्रणा वाली बात के पीछे छिपी हुई इस मनुष्य की क्या चाल हो सकती है यह उसकी समझमें न आया। जंबूसर तो थोड़ी ही देरमें गिर जायगा फिर किसलिए काक यहां आना चाहता है? परिस्थिति जैसी है उससे बिगड़ने से तो रही, यही सोचकर ध्रुवसेन ने काक से भेंट करना स्वीकार कर लिया।

: ८ :

स्वतंत्र लाट का अंतिम सत्ताधीश

एक जीर्णप्राय घर के चबूतरे पर फरफराती स्वतन्त्र लाट की ध्वजा के नीचे इस हतभागे देश का अन्तिम सत्ताधीश एक पत्थर पर बैठा हुआ था। उसकी सफेद दाढ़ी के अस्त-व्यस्त केश मरते हुए सिंह की अस्त-व्यस्त अयाल की भांति उसके वृद्ध मुख की भव्यता बढ़ा रहे थे। उसकी आंखें रक्तिम और उसके सिकुड़े हुए भाल पर निराशा की रेखाएँ थीं; किन्तु दोनों ही से एकाग्रता टपक रही थी।

उसके शरीर पर स्थान-स्थान पर पट्टियाँ बंधी हुई थीं किन्तु फिर भी वह एक हाथ में एक विशाल भाला लिये हुए था। समय-समय पर उसके होठों से लाट की जय-घोषणा—'जय गंगानाथ'—निकल पड़ती थी। उसके चारों ओर बीसेक योद्धा सटकर खड़े हुए थे। उनके शरीरों पर भी पट्टियाँ थीं। उनकी आंखों में भी मरते हुए केसरी का ज्वलंत तेज था। सभी भूख, प्यास और विश्राम के अभाव में सूखकर क्षीण हो गए थे किन्तु फिर भी उनके अङ्ग-अङ्ग से अडिग शौर्य झांक रहा था।

निःशस्त्र ही काक तेजपाल को लेकर एक योद्धा के पीछे-पीछे आया। चारों ओर श्मशान से भी अधिक सन्नाटा था; केवल मरे हुए योद्धाओं के मुखों को चाटते श्वानों की भयावह भूँक दूर से सुनाई दे रही थी। जब उसने इस भयानक स्थान पर लाट की नष्ट होती राजलक्ष्मीके अंतिम रक्षक को यमराज को भी ललकार कर खड़े होते देखा तो उसके हृदय को आघात लगा। ध्रुवसेन से उसने शस्त्र-विद्या सीखी थी और रेवा-पाल के साथ खाना, खेलना और सोना—सभी तो किया था। वहां खड़े हुए देश की स्वतन्त्रता के लिए अपना जीवन अर्पण करने वाले सभी योद्धाओं से वह परिचित था। वह स्वयं विजयी, विदेशी सेना का नायक और विदेशी राजा का विश्वासपात्र था। वह स्वदेश के हित में

लगा हुआ था या उसके साथ कपट कर रहा था ? क्षण-भर के लिए उसे चक्कर आ गया; व्यथा से उसने आंखें मींच लीं; पल-भर के लिए उसे कंपकंपी छूट गई। उसकी दृष्टि ऊपर फरफराती गंगानाथ की ध्वजा पर पड़ी। विदेशी विजयघोषणा के परिचित शब्द भूलकर वह कह उठा: 'जैसी गंगानाथ महाराजकी इच्छा।' दूसरे ही क्षण वह स्वस्थ होकर आगे बढ़ा और ध्रुवसेन के निकट जाकर साष्टांग प्रणाम किया; 'गुरुदेव प्रणाम !' काक ने जिस योद्धा से शस्त्र-विद्या सीखी थी उसे उसके असली नाम से सम्बोधित किया। ध्रुवसेन ने बिना कुछ बोले गर्व से अपने पांव पीछे खींचकर काक को चरणस्पर्श करने से रोक दिया; उसके स्पर्श करने से वह दूषित हो जायगा यह ध्रुवसेन ने छिपाया नहीं। काक सम्मान से झुक एक ओर तनिक हटकर खड़ा हो गया।

'काक !' थोड़ी देर पश्चात् उपवास और निरन्तर परिश्रम के कारण बैठे हुए गले से वृद्ध योद्धा ने कहा—'किस काम आए हो, हमारी निर्बलता देखने ?'

'गुरुदेव', नम्र होकर सम्मानपूर्वक काक ने कहा। 'महाराज, आप न कभी निर्बल थे और न हो सकते हैं। मैं तो आपसे केवल एक प्रार्थना करने आया हूँ।'

'प्रार्थना ?' रेवापाल बीच ही में बोल उठा। उसके गाल बैठ गए थे। उसकी आंखें विक्षिप्त मनुष्य की आंखों के समान चमक रही थीं। 'हमें दास बनाने आया है ?'

'नहीं भाई', अपमान पीकर स्नेह-भरे स्वर में काक ने कहा। 'मैं तो लाट के अमर योद्धाओं के दर्शन कर कृतार्थ होने आया हूँ और प्रार्थना करने आया हूँ कि अब यह हठ छोड़ दो। जो आपने किया वह न कोई कर सकता था और न कोई करेगा; किन्तु जिस लाट और मृणालकुंवर के लिए यह सब किया अब उन्हीं की भलाई के लिए हठ त्याग दो।'

'और वह भी तेरे कहने से ?' ध्रुवसेन ने तिरस्कार से हंसकर

कठोर स्वर में पूछा—'तेरे कहने से ? किस मुंह से तू आया है यहां ? मुझे मालूम है तू कौन है ? विदेशी पट्टणियों का क्रीत सेवक ! देश की लगन, अपने अन्नदाता की लाज और भाइयों का स्नेह—कुछ भी तो तुझे न रोक सका । स्वयं बिक गया और भृगुकच्छ को भी बेच दिया, अब मुझे क्रय करने आया है ?'

काक इन कठोर अभियोगों को सुनता रहा । फिर स्वस्थ होकर पहले जैसी ही नम्रता से बोला—'गुरुदेव, आप जो कहें वही ठीक, किन्तु मेरी भी तो कुछ सुनिये । जब मैं पट्टणी सेना में सम्मिलित हुआ उस समय लाट की शक्ति और सत्ता थी कितनी ? आप समझते थे कि दोनों हैं किन्तु मुझे विश्वास था कि दोनों मृगतृष्णा के समान हैं ।'

'देश-द्रोह करने से इस मृगतृष्णा के पीछे प्राण दे देना हमें अधिक प्रिय है,' रेवापाल अधीरता से बोल उठा ।

'रेवाभाई, तुम पट्टणियों को नहीं जानते । मैं यदि पट्टणियों की ओर न होता तो भृगुकच्छ भूमिसात् हो जाता, तुम कभी के पिस जाते और लाट की सत्ता और गौरव को सुरक्षित रखने का जो अवसर मैं उत्पन्न कर सका हूँ वह कभी न आता ।' काक ने कठोर होकर कहा ।

'यह सत्ता और गौरव !' काक के अन्तिम वाक्य को सुन चारों ओर हाथ से संकेत करते हुए ध्रुवसेन ने कहा ।

'हां, यही सत्ता और यही गौरव, आज छः महीने हो गए, आप कैसे टिके रह सके, जानते हैं ? गांधार से अनाज किसने भिजवाया, मालूम है ? कामरेज से आदमी भिजवाने का संदेशा किसने भेजा, इसकी भी कुछ खबर है ?'

'किसने ?' रेवापाल ने तिरस्कार से पूछा ।

'मैंने,' काक ने गर्व से उत्तर दिया ।

'किसलिए ?'

'किसलिए ? आप मुझे शत्रु समझते हैं, यह आपकी भूल है। गुरुदेव ! लाट पाटण के हाथ जायगा यह निश्चित है, तब एक निःसहाय बन्दी के समान क्यों ? सम्मान के साथ क्यों नहीं ? और यह आप ही कर सकते हैं। इसीलिए मैंने आपको टिकाये रखा और इस समय भी यही प्रार्थना करने आया हूँ।'

कोई कुछ न बोला। काक डींग मार रहा था या सत्य कह रहा था कोई न समझ पाया। काक आगे बोला—'आप मृणालकुँवर को लाट के सिंहासन पर बिठाना चाहते हैं न ? मैं भी यही चाहता हूं। आपको लाट की सत्ता लेनी है न ? यह मैं भी स्वीकार करता हूँ। आपको भृगुकच्छ का झण्डा चारों दिशाओं में फहराना है ? मेरी कामना भी यही है। इसीलिए मैं आपके पास आया हूं।' काक उत्साहित होकर वेग से बोलता चला जा रहा था। उसकी आंखें चमक रही थीं।

'किन्तु किस प्रकार ?'

'जयसिंहदेव महाराज मृणालकुँवर से विवाह करने के लिए तैयार हैं, आपको दुर्गपाल नियुक्त किया है, और मेरी लाट की सेना रेवाभाई को सौंप देने का आज्ञा-पत्र यह रहा। आप इसे स्वीकार कर लें तो त्रिभुवनपाल और मैं पट्टणी सेना लेकर कल प्रातःकाल प्रस्थान कर देंगे।' कहकर काक ने पाटण का आज्ञा-पत्र सामने रख दिया।

ध्रुवसेन और उसके साथी चकित होकर देखने लगे।

'इसीलिए क्या हम पाटण की दासता स्वीकार करेंगे ?' क्रोधित होकर रेवापाल ने कहा। 'मेरे पिता को विदेशियों के अनुग्रह का दास बनाया, अब मुझे भी बनाना है ? यह कभी न होगा !' दृढ़ता से रेवापाल बोला।

'रेवाभाई,' काक बोला, 'यह चंचल या क्रोधित होने का समय नहीं। गुरुदेव !' काक विनती के स्वर में ध्रुवसेन से कहने लगा, 'आप

वृद्ध और अनुभवी हैं। मुझे द्रोही कहने, क्रीत या दास समझने से लाट का भला न होगा।'

बिना कुछ कहे ध्रुवसेन ने गर्दन हिलाई। काक फिर कहने लगा 'आप मुट्ठी-भर तो हैं ही, चाहूँ तो कल प्रातःकाल जंबूसर ले लूँ। आप स्वयं तो भीष्मपितामह के समान स्वेच्छा से मौत बुलाकर प्राण दे देंगे, किन्तु इसका परिणाम क्या होगा यह भी सोचा है? लाट का प्राचीन गौरव अस्त हो जायगा, मृणालकुंवर निःसहाय हो जायँगी, लाट के सोलंकियों का चिह्न तक शेष न रहेगा, और पाटण के राजा को लाट को भूमिसात् करने का गौरव प्राप्त हो जायगा।' काक तनिक रुक गया, बीच में बोलने को तत्पर रेवापाल को उसने रोका, 'रेवाभाई, मैं समाप्त न कर लूं तब तक शांत रहो। विचार करो! जितना तुम सोचते हो उतना पापी या द्रोही मैं नहीं हूँ। गुरुदेव, आप मेरे पिता के समान हैं, रेवाभाई मेरा छोटा भाई है, भृगुकच्छ में मैंने जन्म लिया और बार-बार वहीं जन्म लूं यही कामना है। विचार तो कीजिए, आपकी ऐसी परिस्थिति में मैं कैसे पाटण से ये शर्तें ला सका? यदि देश-द्रोही होता तो ऐसा क्यों करता? आपकी पराजय मैं नहीं चाहता। मृणालकुंवर का हित यदि मैं न चाहता तो उन्हें गुजरात की स्वामिनी बनाने का विचार ही क्यों करता? मैं तो लाट को गुजरात की सर्वश्रेष्ठ मणि देखना चाहता हूं।'

सभी स्तब्ध होकर खड़े थे, कोई न बोला। एक निःश्वास खींचकर ध्रुवसेन ने अपना पट्टीवाला हाथ कपाल पर रख लिया।

'बोलिए गुरुदेव! सेनापति महाराज! बोलिए! आपके शब्दों पर ही इस समय लाट का गौरव निर्भर रहता है।'

ध्रुवसेन ने धीरे-से अपना सिर ऊपर उठाया, 'भाइयो! इस बात का संबंध केवल हमसे ही नहीं है। पाटण की चाकरी मैं तो कभी करूंगा नहीं, उससे पहले गला घोंटकर मर जाऊंगा। किन्तु मेरे स्वामी की पुत्री का क्या हाल होगा? उससे पूछे बिना मैं कुछ नहीं

कर सकता। यदि इसने ना कह दिया तो फिर कल माथे पर केसरिया बाना ही होगा।' इतना कह वह उठ खड़ा हुआ।

'तो क्या मृणालकुंवर से अभी पूछेंगे ?' काक ने पूछा।

'मैं तो नहीं पूछूंगा। रेवापाल, तुम काक को देवी के पास ले जाओ।'

'किन्तु यदि वे पूछें कि आपका क्या विचार है तो ?' रेवापाल ने पूछा।

थोड़ी देर रुककर वृद्ध योद्धा ने सिर ऊंचा किया और कहा—'कहना, काक की बात ठीक मालूम होती है।'

काक का हृदय हर्ष से उछल पड़ा। लाट के योद्धा निराश होकर एक दूसरे की ओर देखने लगे।

: ६ :

लाट की राज्यलक्ष्मी

रेवापाल के पीछे-पीछे जाते समय काक के मन में कई प्रकार की शंकाएं उठ खड़ी हुईं। एक मुतसद्दी योद्धा को समझाना एक बात है; किंतु बीस वर्ष की स्त्री के हठ पर विजय पा लेना बिलकुल दूसरी बात है। वह यह भी जान चुका था कि इस युद्ध में जितने अडिग साहस से ध्रुवसेन अड़ा हुआ था सोलंकी कुँवरि का साहस भी उससे कम न था।

जंबूसर की श्मशान-सी सूनी गलियों को पार करते हुए काक इसी की याद मन ही-मन हरी करने लगा। पद्मनाभ महाराज के समय में, जब वह और रेवापाल साथ-साथ पाठशाला जाते थे, उसका जन्मोत्सव

मनाया गया था उसका उसे स्मरण हुआ। तत्पश्चात् एक-दो बार उसे देखा था—पाँचेक वर्ष की गुड़िया-सी नन्हीं बालिका! अब वह कैसी होगी? कैसे-कैसे दुख और कैसी-कैसी भयंकर परिस्थितियों का उसने सामना किया होगा? और अभी पाटण का जो मुकुट लेकर वह उसे देने जा रहा है, क्या उसे वह स्वीकार करेगी?

उसने रेवापाल की ओर देखा। होंठ पीसता हुआ वह आगे चल रहा था। उसने सुना था—कानों का अपराध है—कि लाट की स्वतंत्रता के लिए वह जितना परिश्रम करता था उससे कहीं अधिक बड़ी विपत्तियों का सामना कुँअरी को प्रसन्न करने के लिए करता था। उसकी सेवा में जितना परमार्थ था उतना ही स्वार्थ भी था। किन्तु ये तो लोगों की बातें हैं।

थोड़ी देर पश्चात् वे एक खंडहर में परिणित हो चुके प्रासाद के निकट आए। वहाँ एक सैनिक पहरा दे रहा था।

'जय गंगानाथ, भोला!' रेवापाल बोला।

'जय गंगानाथ, बापू।' सैनिक ने उत्तर दिया, 'क्या आज्ञा है?'

'देवी क्या कर रही हैं?'

'बैठी होंगी।'

'जा सूचित कर कि रेवापाल और पाटण का भटराज काक देवी से भेंट करना चाहते हैं।' रेवापाल के शब्द-शब्द में अँगार थे, काक ने बिना कुछ बोले सब सहन कर लिया। थोड़ी ही देर पश्चात् भोला लौट आया।

'बापू, चलिए, देवी बुलाती हैं।'

मैले-कुचैले दालान और निपट अँधेरी जगह में से होकर भोला उसे और रेवापाल को पीछे की ओर के एक कमरे में ले गया। एक हिंडोले पर काला लुगड़ा पहने मृणालकुँवर बैठी हुई थी। दो छिद्रों में से आते नाम मात्र प्रकाश में काक ने सोलंकियों की राज्यलक्ष्मी को देखा। वह छोटी और कोमल दीख पड़ती थी। भाग्य से ही कोई

उसे सोलह वर्ष की कहे। उसके पतले और सुन्दर होंठ बड़ी कठोरता से एक दूसरे से सटे हुए थे, और उसकी आँखों में गहन, निश्चल तेज चमक रहा था। उसकी छोटी किन्तु झुकी हुई नाक और उसकी मोहक किन्तु हठीली ठोढ़ी से उसके प्रभाव की कुछ-कुछ कल्पना की जा सकती थी। उसने दोनों पाँव धरती पर रखकर एकदम हिंडोला रोक लिया और दोनों ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखा।

'ये हैं काक भट ?' उसने पूछा। उसकी वाणी में विचित्र शांति और निश्चयात्मकता थी। रेवापाल ने गर्दन हिलाकर हाँ कहा।

'आइए, कैसे आए ?' उसकी वाणी में किंचित् मात्र भी भावावेश न था।

'देवी,' रेवापाल बोला। 'काक पट्टणी दंडनायक का सँदेशा लाया है।'

'कैसा सँदेशा ?'

'यदि गुरुदेव समझौता कर लें तो पाटण का राजा आपसे विवाह करने और गुरुदेव को दुर्गपाल नियुक्त करने के लिए तैयार है।' रेवापाल ने तिरस्कार-भरे स्वर में काक का सँदेशा कह सुनाया।

'अच्छा !' मृणाल ने इस प्रकार कहा मानो बात किसी और के सम्बन्ध में हो रही हो—'गुरुदेव क्या कहते हैं ?'

'कहते हैं कि उन्हें यह बात ठीक जँचती है, फिर जैसी आप आज्ञा दें। आपकी आज्ञा हो तो हम तो कल ही केसरिया पहनकर निकल पड़ने के लिए तैयार हैं।'

कुँअरी एकाएक काक की ओर मुड़ी और इस प्रकार बोली मानो वह निष्प्राण हो—

'आप ही काकभट हैं ? वही जिनके विषय में कहा जाता है कि लाट उन्होंने ली ?'

'हाँ, देवी !' काक ने नमस्कार किया।

'आप मुझे पाटण की रानी बनाना चाहते हैं ?'

'जी !'

'किसलिए ?'

'क्योंकि उसी में लाट का सुख और गौरव सन्निहित है।'

'और यदि मैं अस्वीकार कर दूं तो ?' कुँअरी ने प्रश्न किया।

'तो कल जंबूसर हार जायगा; मेरे सदा अजित रहने वाले गुरुदेव पराजित होंगे और पद्मनाभ महाराज की पौत्री भटकती फिरेगी।' काक ने भी कुछ कठोर होकर उत्तर दिया। जाने क्यों, इस बालिका का उद्देश्य उसकी समझ में नहीं आया।

'रेवापाल, तुम क्या सोचते हो ?' कुँअरी ने पूछा।

'जैसी आपकी आज्ञा हो ?' क्रोध से भरे रेवापाल ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

'तुम्हें यह योजना ठीक लगती है ?'

'लाट विदेशी के हाथ में जा रहा है इसमें मुझे तो कुछ भी ठीक नहीं दिखाई देता।'

मृणाल कुछ समय तक चुप रही।

'रेवापाल, गुरुदेव चौपाल में हैं ?'

'हाँ'

'जाओ, बुला लाओ।'

'जो आज्ञा' कहकर रेवापाल चला गया। काक इस छोटी-सी बालिका का दबदबा और संयत व्यवहार देखकर चकित हो गया। मीनलदेवी में भी ऐसी निश्चयात्मक बुद्धि और इतनी एकाग्रता न देखी थी। जैसे ही रेवापाल गया वैसे वह काक की ओर मुड़ी; उसके होंठ और भी कठोर हो गए।

'तुम मुझसे क्या करवाना चाहते हो. यह भी मालूम है ?'

'हाँ'

'नहीं,' तलवार से हमला करने वाले अनुभवी योद्धा के-से आत्म-विश्वास से युवती ने कहा। 'कल प्रातःकाल अपने दादा का मुकुट पहन

और हाथ में तलवार लेकर, मृत्यु का आलिंगन करने मैं तुम पर टूट पड़ूंगी। मेरा सिर कट जायगा किंतु मैं अमर हो जाऊंगी। मेरे शौर्य से पृथ्वी गूंज उठेगी, और भविष्य में लोग मुझे अम्बिका के समान पूजेंगे।' उसके स्वर में कम्पन न था और न था उसकी आँखों में असाधारण तेज; थी केवल उसकी अस्वाभाविक निश्चयात्मकता और उदासीन शान्ति। काक के आश्चर्य की सीमा न रही।

'तू चाहता है मैं ऐसा अवसर खो दूं ?'

'हाँ'

'क्यों ?'

'गुजरात की राजमाता बनने के लिए।'

'तुम्हारे राजा की कितनी स्त्रियां हैं ?'

'तीन।'

'और मैं चौथी ? इनमें पटरानी कौन है ?'

'मीनलदेवी ने वचन दिया है कि आप ही, पटरानी बनेंगी।'

'काक, मेरी इच्छा तो स्वयंवर रीति से ब्याहने की है।'

'जयसिंहदेव सोलंकी से बढ़कर योग्य वर कहाँ मिलेगा ?' काक ने प्रश्न किया।

'जो गुजरात पर विजय प्राप्त करे, वही।'

'ऐसा किससे हो सकता है ?'

'बत ऊँ ?' उसने नीचे झुक, होंठ दबाकर, धीमी किंतु स्वस्थ आवाज़ में कहा। काक को कँपकँपी छूट गई। यह लड़की तो अनुभवी स्त्री की चतुराई से बात कर रही थी।

'एक व्यक्ति की मैंने बहुत ख्याति सुनी है। उसने मुंजाल को मात दी; खेंगार के छक्के छुड़ा दिए; अकेले नवघण को पकड़ा; उदा की स्त्री को ले आया; और आज त्रिभुवन को अपनी मुट्ठी में किये हुए है। उस को देखने के लिए मैं इतने वर्षों से तड़प रही थी। बोलो, उससे तो यह हो सकेगा ?'

काक काँप उठा। कितना भयंकर प्रश्न था? कितना आवेश? क्षण-भर के लिए वह बिलकुल अस्थिर हो गया।

'बोलो, ये सब पराक्रम सच है या झूठ?'

'किंतु मैं—मैं—'

'हाँ, तुम गुजरात ले सकते हो।'

'क्या कहती हो? पागल हो गई हो?'

'नहीं। बताओ, अभी तुम्हारे पास लाट की कितनी सेना है? पाँच-छः हज़ार?'

'हां'।

त्रिभुवनपाल बात-की-बात में जीता जा सकता है। कल प्रातःकाल तुम्हारी सेना भृगुकच्छ पर अधिकार कर सकती है। परसों मही से तापी तक लाट तैयार हो जायगी। किंतु पद्मनाभ महाराज का सिंहासन सूना है। हम दोनों उस पर बैठेंगे। फिर गुजरात कौन बड़ी बात है?' उसने शांत होकर प्रश्न किया। उसके लिए तो मानो यह मात्र लेन-देन का प्रश्न था।

पाँव के सामने साँप दिखाई देने पर जो अवस्था होती है वही अवस्था काक की हो गई। यह गहन विचारशक्ति, यह निर्मम योजना, कैसी दृढ़ता और कितना साहस; और वह भी इस बालिका मे!

कुछ देर तक काक को कोई उत्तर न सूझा।

'देवी' क्षोभ-भरी आवाज़ में काक बोला—'आप मुझसे चाहती क्या हैं?'

'धरती पर सर्वश्रेष्ठ वस्तु राज्यपद है, वही देना चाहती हूं।'

'नहीं, मित्र-द्रोह करूँ—स्वामी-द्रोह करूँ—पत्नी-द्रोह करूँ—और वर्णभ्रष्ट होऊँ? मुझसे ये न होगा।' काक धीरे-से बोला।

'तुमसे तो केवल देश-द्रोह ही हो सकता है। मुझे न मालूम था कि तुम कायर हो!' तिरस्कारपूर्वक मृणाल बोली। प्रथम बार उसकी वाणी में निराशा झलकी।

'मुझमें जितना समझती हो उतना साहस नहीं है। हाँ, जयसिंहदेव से ब्याह करो तो मैं तुम्हें संसार की महारानी बना दूँगा, पद्मनाभ महाराज की कुँअरी की आज्ञा दसों दिशाओं में मान्य होगी। और क्या चाहिए?'

'ये सब तो बातें हैं। मुझे पाटण की महारानी बनने में कोई तथ्य नहीं दिखाई देता।'

'दूसरा रास्ता तो केवल मृत्यु का है'।

'तुम्हारा जी नहीं ललचाता?' कुँअरी ने प्रश्न किया।

'अपना संकल्प मैंने बता दिया। उससे अधिक मैं कुछ नहीं कर सकता।'

'तो मैं भी अन्य मार्ग ग्रहण नहीं कर सकती, मुझे तुम्हारी चिंता नहीं।' शांति से मृणाल ने कहा।

'जी।' काक ने उत्तर दिया, 'लीजिए, गुरुदेव पधार गए।'

इतना कहने के साथ ही ध्रुवसेन और रेवापाल आ गए। सभी चिंतातुर मुख से कुँअरी की ओर देखते रहे। उसने एक-एक कर तीनों की ओर देखा और फिर शांति से कहा—

'गुरुदेव! जयसिंहदेव से विवाह करने के लिए मैं तैयार हूं।'

रेवापाल चकित हो गया। काक ने सुख की साँस ली।

'आप क्या करेंगे?'

'मैं?' ध्रुवसेन बोला, मैं कल सन्यास ले लूंगा। रेवापाल को दुर्गपाल नियुक्त करना पड़ेगा।' ध्रुवसेन ने काक से कहा।

'जी।' काक बोला।

'रेवापाल कभी विदेशियों की दासता स्वीकार नहीं करेगा।' दाँत पीसते हुए रेवापाल बोला।

'तो आप ये शर्तें स्वीकार करते हैं?' काक ने अंतिम प्रश्न किया।

'हाँ।' ध्रुवसेन ने कहा। मृणाल शांति से और रेवापाल क्रोध से देखते रहे।

परिणामतः ध्रुवसेन ने संन्यास लिया, कुँअरी जयसिंहदेव की ब्याहिता होकर लीलादेवी हो गई, और रेवापाल के लिए संसार में बिलकुल रस न रहा।

इस बात को चार वर्ष बीत गए।

: १० :

यह मुंह कहीं देखा है !

भृगुकच्छ का दुर्गपाल शीघ्र ही देवभद्रसूरि के उपाश्रय में जा पहुँचा।

कई वर्ष पहले देवभद्रसूरि ने भृगुकच्छ में अपने चतुर्मास 'किये' थे। दुर्बल स्वास्थ्य के कारण अन्य ऋतुओं में भी अधिक दूर विहार नहीं करते थे। आवश्यकता पड़ने पर यहाँ आ पहुँचते थे।

इन सूरि की ख्याति देश-विदेश में फैली हुई थी। जब से—संवत् ११५८ में—उन्होंने कथारत्नकोष लिखा तब से इनकी विद्वता की इतनी धाक बैठ गई थी कि चारों ओर से जैन साधु और पंडित इनके वचनामृतों का आस्वादन करने के लिए भरूच खिंचे हुए चले आते थे।

वे जितने अप्रतिभ विद्वान थे उतने ही हृदय के विशाल भी थे। भूतदया के वे भक्त थे; उनकी प्रवृत्ति का एकमात्र लक्ष्य था मानव-समाज का उद्धार। जैन और अजैन मतों के वाद-प्रतिवाद अथवा राज-पुरुषों के षड्यन्त्रों में उन्हें कोई रस न था। उनके उपाश्रय में साधु और ब्राह्मण दोनों का स्वागत होता था उनके उपदेश संसारी और विरागी दोनों के काम के होते थे। वे अन्य साधुओं के समान राजनीति में हाथ नहीं डालते थे।

सूरि का शरीर अस्वस्थ होने के कारण आजकल वे भृगुकच्छ में थे।

त्रिभुवनपाल की उदारता से निर्मित हुए उनके उपाश्रय में लोगों का आवागमन अन्य दिनों की अपेक्षा अधिक था।

जिस कमरे में देवभद्र था उसी में काक गया। दुर्गपाल ब्राह्मण होते हुए भी अक्सर इधर चला आता था। इस समय उसे वहाँ देखकर लोगों को आश्चर्य न हुआ।

एक कमरे में देवभद्र जी अपने अस्वस्थ शरीर को हाथ पर टेक कर बैठे हुए थे। पास ही में नगर के एक-दो श्रावक बैठे हुए थे। थोड़ी दूर तक एक व्यक्ति सूरिजी के बिलकुल नए लिखे हुए 'पार्श्वनाथ चरित्र' की प्रतिलिपि कर रहा था।

उनका मुख क्षीण और साधारण दर्शक की दृष्टि से निस्तेज था उनकी आँखों में मिठास थी। वाद-विवाद में भी उनकी दृष्टि कठोर नहीं होती थी। उनकी हंसी अल्प किन्तु मीठी होती थी; और विद्वत्ता या विजय का अभिमान तो उनमें था ही नहीं। उनका शरीर ठिगना और दुर्बल था; कई बार तो बोलते-बोलते रुक जाना पड़ता था और सांस लेने में भी महा परिश्रम करना पड़ता था।

जिस समय काक उस कमरे की सीढ़ियां चढ़ रहा था उस समय देवभद्रसूरि शिक्षा-शास्त्र के अनुभवी अध्यापककी भाँति उंगलियां हिला कर बोल रहे थे—

'अहिंसा और राज्यपद इन दोनों में परस्पर विरोध है। राज्याधिकारी या तो हिंसक होता है या हिंसा से रक्षा करने का साधन होता है। फिर अहिंसा के उपासक के लिए अधिकारी का क्या उपयोग हो सकता है ?' सूरि ने सामने बैठे हुए साधु से प्रश्न किया और काक को देखकर उसकी ओर आमुख हुए, 'ये हमारे दुर्गपाल हैं। यदि हम अहिंसा का ही प्रचार करें तो फिर इनका हमारी रक्षा करनेका प्रश्न ही नहीं उठता। फिर हँसकर सूरिजी ने बात पलटी, 'भटराज ! इन सूरिजी से परिचित हो ?'

काक ने देवभद्र से साधु की ओर दृष्टि फेरी। उसे उसका मुख परि-

चित-सा लगा किन्तु बहुत ध्यान से देखने पर भी ठीक से पहचान न सका। इस साधु का शरीर-विन्यास देवभद्र के शरीर-विन्यास से एक-दम विपरीत था। वह युवक और तेजस्वी था; उसकी आंखों में निराला आकर्षण था; और उसके हास्य में वैचित्र्य था। उसका शरीर क्षीण होते हुए भी निर्वीर्य नहीं था।

इस युवक साधु को कहाँ और किस अवस्था में देखा था यह काक को स्मरण न रहा। मन-ही-मन स्मरण करने की चेष्टा करते हुए वह नमस्कार करके बैठ गया।

'ये महाराज कौन हैं ?' काक ने पूछा।

'ये महाराज नहीं, सूरि हैं।' तनिक हँसकर देवभद्र ने उत्तर दिया।

'इनका नाम हेमचन्द्रसूरि है। आज ही 'विहार' करते हुए यहाँ पहुंचे हैं,' देवभद्रसूरि ने कहा। 'उम्र में जितने छोटे हैं, ज्ञान और तप में उतने ही बड़े हैं।'

'मेरा सौभाग्य कि दर्शन करने आया एक महात्मा के, भेंट होगई दो से। मैं वंथली जाने वाला हूँ।'

'क्यों ?'

'जयसिंहदेव महाराज की आज्ञा है।' काक ने हेमचन्द्र की ओर देखकर कहा। उसका मुख भावहीन था।

'यों एकाएक ?' देवभद्र सूरि ने प्रश्न किया।

'कुछ समझ में नहीं आता। उदा महेता का आँबड़ आज्ञा लेकर आया है।'

'ऐसा ? कब ?'

'आज प्रातःकाल।'

'अवश्य कोई विशेष कारण होगा।'

'लगता है महाराज जूनागढ़ लेने के लिए आतुर हो रहे हैं।'

'अरे रे !' देवभद्रसूरि ने कहा, 'राजा सबसे बड़े हिंसक होते हैं। सूरि जी से मैं यही कह रहा था कि राजाओं को समझावें। अहिंसा का प्रचार

सरल नहीं। उनका अस्तित्व, उनके ठाठ-बाठ, उनका सब कुछ हिंसा पर निर्भर है।'

'और इन भाई जैसे उसमें सहायता कर रहे हैं,' हँसकर हेमचन्द्र बोला।

काक सावधान था उसने धीरे-से एक दाव खेला।

'उदा महेता जैसे श्रावकशिरोमणि तो हिंसा त्याग नहीं सकते तो मुझ जैसे सैनिक की क्या बिसात।'

किन्तु उस साधु की मुखमुद्रा में कोई परिवर्तन न हुआ। उसने कहा—'सभी राज-पुरुष उलटे मार्ग पर चल रहे हैं। न जाने कब सीधे मार्ग पर लगेंगे ?'

'जब हमारी तपस्या खरी होगी तभी।' देवभद्रसूरि ने कहा।

'महाराज !' काक बोला, 'मैं आजकल में चला जाऊंगा। कुछ कहना-कहाना है ?'

'हाँ ! मीनलदेवी को मेरा धर्मलाभ कहना। वापस कब आओगे ?'

'जितना शीघ्र हो सकेगा। सोमनाथ भगवान का मन्दिर—पूरा होने आया है, बन सका तो जयसिंह महाराज के जूनागढ़ लेते ही कलश चढ़ाने के लिए उन्हें यहाँ बुला लाऊंगा।'

'तब तो बहुत अच्छा !'

'महाराज ने अब तक भृगुकच्छ को पावन नहीं किया ?' हेमचन्द्र ने पूछा।

'नहीं,' काक ने उत्तर दिया। 'इसीलिए इच्छा है कि इस बार उन्हें यहाँ ले आऊँ। आप तब तक यहीं रहेंगे न ?'

'यह तो आपके लौटने में कितना समय लगेगा इस पर निर्भर है।'

काक हँस दिया। उसे लगा कि या तो यह मनुष्य सर्वथा भोला है या पक्का खिलाड़ी है। उसका पाटण से क्या संबंध है यह जानने के लिए वह उत्सुक हो उठा; आम्रभट से वार्तालाप करते समय जो उचित-अनुचित विचार उसके मन में उठे थे वे पुनः उठ खड़े हुए।

'बहुत समय लगेगा। रेवापाल की आपसे भेंट हुई ?' काक ने आधा देवभद्र और आधा हेमचन्द्र की ओर देखकर पूछा।

'नहीं' देवभद्र ने कहा। 'नगरसेठ अभी-अभी घर गये हैं।'

'तो मैं भी जाऊं। मुझे उनसे मिलना है।' कहकर काक उठ खड़ा हुआ।

'मैं भी थोड़े समय के लिए हो आऊं। आज्ञा है ?' इतना कह हेमचन्द्र भी उठ खड़ा हुआ।

'महाराज ! आज्ञा ?' काक ने प्रणाम कर पूछा।

'बेटा ! धर्मलाभ।' देवभद्र बोले।

हेमचंद्र भी देवभद्र को प्रणाम करके काक के साथ हो लिया।

: ११ :

काक पहचान जाता है

जब काक हेमचन्द्र के साथ कमरे की सीढ़ियां उतर रहा था तभी उसे लगा कि दोनों एक दूसरे को अविश्वास की दृष्टि से देख रहे हैं। शिष्टाचारी सैनिक चतुराई से बात कर रहा था; त्यागी साधु नम्रता से उत्तर दे रहा था। दोनों के मुख भाव-विहीन थे फिर भी दोनों एक दूसरे की थाह लेने के प्रयत्न में लगे हुए थे।

काक ने बहुत सिर मारा; मुख परिचित था, स्वर की भंगिमा भी कुछ-कुछ परिचित जान पड़ी—किन्तु इस साधु को किस स्थान पर देखा था यह याद नहीं आया।

सूरि भी काक के साथ सावधान होकर व्यवहार कर रहा था, उस के मुख पर भोलापन इतना स्पष्ट था कि काक की शंका लगभग जाती रही।

'आप में और सूरिजी में क्या विवाद चल रहा था ?'

'कोई विशेष नहीं। सूरिजी का विचार है कि राज्यकार्य में अहिंसा का कोई स्थान नहीं।'

'हो भी कैसे सकता है ? राज्यकार्य ईर्ष्या, सत्ता की इच्छा और बेईमानी से ही तो चलता है। वहां अहिंसा कैसे संभव है ?'

'यह आपकी भूल है।' नवयुवक साधु ने तेज-भरे स्वर में कहा।

'कैसे ?'

'जब राज्य-कार्य में धर्म का शासन होगा तभी इन पापाचारों का शमन होगा।'

'मुझे तो लगता है कि ऐसी स्थिति में धर्मराज स्वयं बदल जायँगे।'

'तो वह धर्मराज ही क्या ?'

'पाटण में चन्द्रावती से एक यती आए थे। उनकी बात सुनी थी?'

'दस हज़ार महात्माओं के हार जाने पर एक वीतरागी का जन्म होता है।' साधु ने कहा।

'वीतराग' शब्द सुनकर काक के मस्तिष्क में कई-एक तार झनझना उठे। एकाएक एक प्रसंग याद आया—एक नन्हें बच्चे का सुन्दर मुख उसकी दृष्टि के सम्मुख आया। वह मन-ही-मन हंस दिया। अन्त में उसने इस साधु को पहचान ही लिया।

'देखा जायगा।' मन-ही-मन कह काक ने अपना दांव खेला।

'सूरिजी ! बहुत वर्ष हुए हमारी एक-दूसरे से भेंट हुई थी। याद है ?'

हेमचन्द्र चमका, उसके मुख पर तनिक क्षोभ झलक आया।

'हमारी ?'

'हां' काक हंसा। 'आपको उदा महेता ने दीक्षा दिलवाई थी। याद है ? तब आप छोटे थे और मैं एक मामूली सैनिक था। आपके दादा के कहने से मैं पिछली रात को आपको उठा लाने के लिए आया था—याद आया ?'

आश्चर्यचकित होकर हेमचन्द्र ने कपाल पर हाथ फेरा । पन्द्रह वर्ष पहले का प्रसंग—जो उन्हें अच्छी तरह याद था—एक बार फिर आंखों के सम्मुख खड़ा हो गया। साधु ने गर्व से काक की ओर देखा। यह परिवर्तन देखकर काक हंस दिया।

'सूरिजी ! आपने मुझ से क्या कहा था, याद है ? मैं तो वीतराग बनूंगा। आपका लक्ष्य सिद्ध हुआ ?' काक ने तनिक विनोद में पूछा।

'भटराज ! वीतराग बनने की बात करना सरल है; किन्तु बन जाना कठिन है।'

'उदा महेता कैसे हैं?' काक ने नितान्त, निर्दोष और स्नेह-भरे स्वर में पूछा।

'बहुत समय हुआ उनसे भेंट किए,' हेमचन्द्र ने भी वैसे ही निर्दोष स्वर में कहा।

'आज प्रातःकाल आम्रभट आया है। उससे तो आपकी भेंट हुई होगी ?' हंसकर काक ने पूछा।

'वे यहां मिलने नहीं आए । भेंट हो तो कहिएगा मुझसे आकर मिलें।'

'अच्छी बात है । अब तो वह भृगुकच्छ का दुर्गपाल बनने वाला है।'

'ऐसा ? वह तो बिचारा मौजी आदमी है।'

'फिर भी उदा महेता का पुत्र है। मोर के अंडों को भी क्या परखना पड़ेगा ?'

'इतना अच्छा है कि भृगुकच्छ में शांति है, नहीं तो बिचारे के लिए बड़ा भारी पड़ता।'

काक ने देखा कि इस बात में कुछ सार है, अतः उसने कहा—'सूरिजी ! मेरी नीति पर चलेगा तो सब ठीक होगा।'

'नहीं तो ?'

'नहीं तो अब लाट को वश में रखना कठिन होगा। आप उसे

सलाह दीजियेगा—आपका तो अच्छा परिचय है न ?' कहकर काक ने बात पलट दी।

'अब मैं जाऊंगा। आज्ञा ?'

'धर्मलाभ, जिन भगवान् आपको विजय दें।' वृद्ध साधु की गंभीरता से हेमचन्द्र ने कहा। काक मन-ही-मन हंसा।

हेमचन्द्र दूसरी ओर चला गया। काक जाकर अपने घोड़े पर बैठ गया।

थोड़ी दूर जाकर काक ने अपने भट को अपने निकट चलने के लिए कहा।

'सोमेश्वर भट !'

'जी।'

'उस नवयुवक साधु को देखा ?'

'हां।'

'ये बहुत विद्वान् और समर्थ हैं। उदा महेता के परम मित्र हैं। कुछ समय तक ये यहीं 'विहार' करेंगे। प्रतिदिन इनकी सेवा में उपस्थित रहना—सावधानी से।' काक ने धीरे-से कहा। सोमभट चतुर था। काक के शब्द-चातुर्य से वह भली-भांति परिचित था। उसने एक बार पीछे दृष्टि डालकर हेमचन्द्र को देखा और उसका मुख अच्छी तरह हृदय में जमा लिया।

: १२ :

नेरा तोतला

आम्रभट के मन को चैन न था। वह चंचल हो उठा; उस सुन्दरी को खोजने के लिए तड़पने लगा। भृगुकच्छ का अधिकार, तेजपाल

सेठ की पुत्री, विलास—सब कुछ उसके लिए अर्थहीन हो गया।

आँबड़ ने संयम तो सीखा ही न था, राजदरबार के शिष्टाचार भी पूरे-पूरे न सीख सका था। उसने अपने गण को बुलाया।

'हमीरभट।'

'बापू।'

'तू पहले भृगुकच्छ आ चुका है न?'

'हां।'

'एक अत्यन्त आवश्यक काम है।' चारों ओर देखते हुए आम्रभट ने कहा।

'क्या?'

'साम्बा बृहस्पति का प्राचीन बाड़ा देखा है?'

'हाँ। जहाँ दुर्गपाल महाराज पहले निवास करते थे?'

'हां, वही। वहाँ मैंने एक स्त्री देखी थी।'

'हां' मूँछों ही में मुस्कराते हुए हमीर ने कहा।

'उसका नाम और निवास-स्थान का पता मुझे चाहिए।'

'किन्तु वहां तो तीन-सौ स्त्रियां रहती हैं।'

'इसको तुम तुरन्त पहचान जाओगे।'

'किस प्रकार?'

'युवती है, सुन्दर है—' आम्रभट रुक गया।

'बापू! सभी युवतियां सुन्दर लगती हैं और सभी सुन्दर स्त्रियां युवती! यों कैसे काम चलेगा?'

'मूर्ख! यह तो अप्सरा के समान है। लम्बी और संगमरमर के समान अद्भुत है। जहाँ महादेव का मन्दिर है न, वहीं कहीं रहती है।'

'बापू! मुझ ग़रीब की मानोगे?'

'क्या?' अधीर होकर आम्रभट ने पूछा।

'हम अभी तो आए हैं और उस पर महेता जी ने आवश्यक काम से भेजा है। इस 'पंचात' में पड़ेंगे तो मरेंगे।'

आम्रभट ने आंखें तरेरकर हमीर की ओर देखा, 'तुझे सलाह देने का व्यसन कब से लगा ?'

हमीर चुप रहा। उसने नतमस्तक होकर हाथ जोड़ लिए, 'जो आज्ञा।'

'मुझे संध्या तक उसका नाम, स्थान, उसके पति का नाम, पिता का नाम—सब कुछ चाहिए।'

'हो सके तो परिचय भी करवा आऊं !' तनिक कटाक्ष से हमीर ने कहा।

'इसका तो मुझे विश्वास है।' हंसकर आम्रभट बोला, 'हां देख, कोई जान न पाए।'

'जान भी ले तो क्या ? ये लाटिए कर ही क्या सकेंगे ?'

'वे क्या कर सकते हैं ? गर्व से आम्रभट ने कहा। 'केवल, तेजपाल सेठ जान जायं तो अच्छा नहीं लगेगा। अच्छा ! तो समझ गए हो न ?'

'आप तो ऐसे चिह्न बताते हैं कि काम बन ही नहीं सकता।'

'पागल ! वैसी दूसरी स्त्री तो मैंने देखी ही नहीं।' आँबड़ बोला।

'आप हर बार ऐसा ही कहते हैं।'

'इस बार तो तू भी मान जायगा। कैसा वर्ण है उसका ? मानो मोगरे की कली हो।' बोलते-बोलते आम्रभट के मुंह में पानी आ गया।

'किस जाति की है ?'

'ब्राह्मण। उस बाड़े में कभी वैश्य मिल सकती है ? जा, अब देर न कर।'

'काम होते ही आता हूं।' हमीर ने कहा और तलवार बांधकर बाहर निकला।

हमीर अपने स्वामी की विशेषताएँ जानता था। ऐसे अनेक प्रसंगों में उसने आंबड़ की सहायता की थी और अनेक विपत्तियों से उसने उसकी रक्षा की थी। वह समझ गया था कि इस समय उसके स्वामी हठ पर चढ़े हुए हैं और ना कहने से कोई लाभ न होगा। वह विचार

करता हुआ बाहर निकला। नाम ठाम का पता लगाना कुछ भी कठिन नहीं था। किन्तु, उसे लगा, ये सब बहुत सावधानी से करने पर भी हाथ कुछ न लगेगा।

हमीर चतुर होने के साथ ही अभिमानी भी था। संसार का स्वामी पाटण, पाटण के स्वामी जयसिंहदेव, और उदामहेता जयसिंह देव के एक प्रकार से स्वामी ही थे—ये हमीर के सिद्धांत थे। स्वयं उदामहेता का विश्वासपात्र सुभट और उनके प्रिय पुत्र का घनिष्ठ मित्र होने के कारण वह सम्पूर्ण संसार को तिरस्कार की दृष्टि से देखता था। उसने लाट के साथ हुए कई युद्धों में भाग लिया था, और लाट पर विजय प्राप्त कर लेने के पश्चात् भी वह एक-दो वर्ष पट्टणी सेना में रहा था। इसी कारण से लाट के प्रति वह बड़ी तिरस्कार की दृष्टि से देखता था।

सीधे साम्बा बृहस्पति के बाड़े में जाना उसे ठीक न लगा, अतः उसने अपने एक पुराने मित्र को खोज निकालने का निश्चय किया।

उसके मित्र नेरा तोतला को पट्टणी सेना में कोई न जानता हो, ऐसी बात नहीं। वह गप्पी था, पराक्रम का मूल्य जानता था। आराम और आनन्द को छोड़ दूसरा उसे कुछ भी अच्छा न लगता था। भोजन और हास्यविनोद के बिना तो उसका जीना असम्भव था। जहां रहता वहीं गाव-भर के व्यक्तियों से, विशेषकर स्त्रियों से, परिचय करना कभी न चूकता था। और जिस-जिस स्थान पर पट्टणी सेना पड़ाव डालती थी वहां एक-दो स्त्रियों से विवाह करके घर बसाना भी कभी न चूकता था।

हमीर समझ गया कि इस महारथी की सहायता के बिना कुछ भी होना सम्भव नहीं है। अतः उसने चौकी पर जाकर नेरा तोतला का पता पूछा। त्रिभुवनपाल सोलंकी का पता लगने में कठिनाई पड़ सकती थी किन्तु नेरा तोतला का झोंपड़ा ढूंढ़ने में कभी परिश्रम नहीं उठाना

पड़ता था। तेलियों के मुहल्ले के नुक्कड़ पर एक नव परिणीता के घर में वह रहता था, यह जान हमीर उस ओर मुड़ा।

नेरा का घर छोटा और मैला था। एक ओर कोल्हू चक्कर काट रहा था और दूसरी ओर एक तेलन बैठी गन्दी, पीली रेवड़ियां बेच रही थी। गन्दे पथ में हर प्रकार की सड़ी-गली वस्तुएं दृष्टिगोचर हो रही थीं।

हमीर ने जाकर द्वार की सांकल खड़खड़ाई किन्तु कोई उत्तर न मिला। आवाज़ भी दी किन्तु किसी ने द्वार नहीं खोला। अन्त में उस ने निकट की दूकान पर बैठी हुई तेलन से पूछा:—

'नेरा भाई यहीं रहते हैं ?'

'हां।'

'तो उत्तर क्यों नहीं देता ?'

'लुगाई को निकाल कर प्रातःकाल से अन्दर ही बैठे हैं।'

'तो अब क्या करूं ?'

'पीछे की ओर बाड़े का द्वार खुला होगा।'

'किधर से जाऊं ?'

'इस ओर होकर।'

हमीर शीघ्रता से उस ओर गया। पड़ोसिन के कहे अनुसार पिछला द्वार खुला हुआ था। उसे धकेलकर हमीर बाड़े में गया और वहां से घर में घुसा।

उसकी पदध्वनि सुनकर निकट ही के कमरे से आवाज़ आई।

'वा.....वा.....प..... स'—ऐसा लगा मानो कोई मुंह में कुछ भरकर बोल रहा है। हमीर ने स्वर पहचान लिया।

'अरे, ए तोतला ! किधर है ?' हमीर प्रश्न करता हुआ अन्दर गया।

'कौ.....कौ.....' बड़ी कठिनाई से गले के नीचे कुछ उतारते हुए तोतले का स्वर आया।

'अकेला बैठा क्या कर रहा है ? आवाज़ दे-देकर तो मेरा गला ही बैठ गया।' हमीर ने अन्दर पहुंचकर कहा।

अन्दर का दृश्य बड़ों-बड़ों को चकित कर देने वाला था।

नेरा को मनुष्य तो गढ़ा ही न गया था। हाथी बनाते समय वह भूल से आदमी के रूप का बन गया था। वह लम्बा था और कल्पनातीत विपुलाकार था उसका शरीर। उसकी नाक नुकीली तथा झुकी हुई थी; उसके नेत्र शीतला के समान विशाल। तुंद इतनी गोलाकार थी कि मोटी गागर भी उसके सामने पानी भरे। उसके हाथ और पांव मोटे और गोल थे। उसको देखकर अर्द्ध-निपुण कारीगर द्वारा मनुष्य शरीर की लम्बाई के नाप के बनाए गणपति का स्मरण हो आता था।

यह वीर पुरुष उकड़ूं बैठे थे—बड़ी कठिनाई से—और सामने पड़ी थाली में पड़े मोदक उठा-उठाकर मुंह में रखते चले जा रहे थे। यह प्रयोग इतनी शीघ्रता और सफाई से हो रहा था कि कब वे मुंह में पड़ते और कब गले के नीचे उतरते यह निश्चय करना सरल नहीं था। यह उतावला वीर इस तरह हांप रहा था मानो धमनी चल रही है।

उसने आँखें फाड़कर हमीर की ओर देखा और उसे पहचाना। एकाएक उसकी जलदबाज़ी जाती रही। उसके चिन्तातुर मुख पर हास्य फैल गया। उसने फटती हुई धमनी की तरह एक निःश्वास लेते हुए कहा—

कौ....कौ....न...ह....मी....र।'

'हाँ, मैं।'

'हा—हा—हा' नेरा बोला—'हो—हो अ....अच्छा हुआ कि तुम पहले आगए। मैं तो समझा कि मेरी वो आई है। मारने के लिए मैं यह कलछी उठाने वाला ही था।'

'अरे बैठ, बैठ! यों कह न कि लुगाई के आने से पहले मोदक उड़ाने का विचार कर रहा था।'

'हो—हो—हो!' नेरा के हास्य से घर गूँज उठा,'क्या करूँ ? दो

दिन मुझे भूखों मारा और आज प्रातःकाल क्रोधित होकर पीहर चली गई तो मैंने यह किया। हमीर तुझे आए कितने दिन होगए ? ले एक लड्डू तो खा...खा।' कह नेरा ने बचे हुए ग्यारह मोदकों में से एक हमीर को दे दिया।'

'मुझे नहीं खाना है; तू भूखा है, खा ले।' हमीर ने उदारता दिखाई। अतः बिना और आग्रह के नेरा ने वह लड्डू अपने मुँह में रख लिया।

'मैं आज प्रातःकाल ही आया हूं। मित्र, तुमसे एक काम है।'

'खा....खा....खा....लेने दे।' नेरा हकलाता नहीं था, केवल अटकता-भर था और वह भी प्रथम शब्द पर। एक बार उसकी जीभ चल पड़ती तो फिर उसे रोकना बहुत कठिन होता था।

'अच्छा, खा ले।'

'नेरा ने मोदकों को शीघ्रातिशीघ्र गति से मुँह या गले में रोके बिना पेट में पहुंचाना आरम्भ किया। ग्यारह के ग्यारहों लड्डू समाप्त कर, हाथ धो, हमीर के निकट आ उसने 'क...क....क्यों दोस्त,' कहकर हमीर की जंघा पर हाथ मारा। मित्रताका प्रमाण नेरा ने इतने कठोर ढंग से दिया कि हमीर को क्रोध आगया किन्तु स्वार्थ होने के कारण कुछ न बोला।

'देख, मुझे एक स्त्री की खोज करनी है।'

'ब्य...ब्य....ब्याहना है ? मेरी लुगाई की एक बहन—'

'नहीं—नहीं। सुन तो सही। एक स्त्री का पता चाहिए।'

नेरा ने सिर घुमाया और कानों पर हाथ दे दिए।

'तू...तू ऐसी बात मत कर।'

'क्यों ?'

'मैं....मैंने तो व्रत ले लिया है।'

'कैसा व्रत ?'

'पराई स्त्रियों की बात न करने का।' नेरा बोला।

'अरे पागल ! मुझे पराई स्त्री की बात नहीं करनी है, सिर्फ दिखानी

है। देख, हम सभी भट बन गए, तू यूं ही रह गया।'

'तु....तु....तुम्हीं सबने मुझे इस तरह रखा है। मैं युद्ध में होता तो भी तुम जाकर चुगली करते कि मैं पीछे रह गया हूं और भाग गया हूं।'

'अब भी इच्छा है ?'

'कि...कि....कि....किस प्रकार ?'

'एक स्त्री का पता बतादे तो आमभट तुझे भट बनादें।'

'आ....आम्रभट—'

'मूर्ख ! उदा महेता के पुत्र और भृगुकच्छ के दुर्गपाल।'

'हैं !' मुँह फाड़कर नेरा ने पूछा, 'काक का क्या हुआ।'

'वे तो वंथली जा रहे हैं। क्यों, उनसे घबराता है ?'

'मैं...मैं....घबरा....ऊं ?' छाती फुलाकर नेरा ने कहा। 'मैं कभी केसी से घबराया हूं ?'

'नहीं रे, मुझे सहायता करता है कि नहीं ?'

'क्या...क्या...करूँ ? मेरे जैसे योद्धा को कोई भट नहीं बनाता। कितने युद्धों में मैंने भाग लिया—कितने घाव सहे ! फिर भी मैं भट नहीं।'

'मैंने आम्रभट से वचन ले लिया है। मैं तेरा परिचय करवा दूंगा। इतना-सा काम पार लगादे।'

'अ....अ....अभी लो।' चुटकी बजाते हुए नेरा ने कहा और खड़ा होकर तलवार बाँधने लगा।

'वह है कौन ?'

'साम्बा बृहस्पति के बाड़े में रहती है।'

'सा....सा साम्बा' कहते हुए वह तलवार खोलने लगा—'उधर तो दुर्गपाल निवास करते हैं।'

'हाँ। लेकिन उसमें हो क्या गया ? हमें तो मात्र नाम जानना है।'

'प....पर जाना कैसे जाय ? किसकी लड़की है ?'

'यह तो खोजना पड़ेगा।'

'प....प....परन्तु काक जान जायँगे तो ?'

'जानेंगे कैसे ? हम पट्टणी योद्धा हैं। यों डर जायँगे ?'

'अ...अरे ! ड....डरने की तो बात ही क्या है ?'

'और तू तो बड़ों-बड़ों के होश ठिकाने ला देने वाला है।'

'तो...तो मैं ना थोड़े ही कहता हूँ।'

'तो अब तैयार हो जा।'

नेरा तलवार बाँधने लगा। 'किन्तु किस प्रकार खोजूँगा ?'

'य...यह काम मेरा ! वहाँ—वहाँ अविमुक्तेश्वर का देवल है—'

'वहीं।' हँसकर हमीर ने कहा।

'वाह मित्र ! अब भी तेरी बुद्धि वैसी-की-वैसी है।'

'ऐ....ऐसा कहते हैं कि और भी तीव्र होती जा रही है।'

'ठीक ही तो है। मोटा तो केवल शरीर होता है।'

'हो—हो—हो—'कह नेरा ने पगड़ी सिर पर रखी और दोनों सैनिक वहाँ से निकले।

: १३ :

अपरिचित की खोज में

हाथ-में-हाथ लिये, हंसते हुए, पथ में आते-जाते लोगों की हंसी उड़ाते हुए दोनों चले जा रहे थे। इनके विचार से वे सभी स्त्री-पुरुष पाटण के अतः इनके भी दास थे, इनको प्रसन्न करने के लिए ही उन सभी ने जन्म लिया था।

लोगों में भी आज कुछ-कुछ क्षोभ फैल गया था। उन्होंने उड़ती गप सुनी थी कि भृगुकच्छ के दुर्गपाल के पद पर काक के स्थान पर कोई पट्टणी आने वाला है। सभी चारों ओर शंका और भय से देख रहे थे। नेरा के गजानन से तो सभी परिचित थे किन्तु उसके साथ स्वच्छ परिधान धारण किये नए पट्टणी को देखकर लोग चक्कर में पड़ जाते थे।

हमीर व्यवहार-कुशल था किन्तु उसने एक विजित नगर के निःसहाय स्त्री-पुरुषों के बीच तड़क-भड़क या अकड़कर चलने में लज्जित होने की कोई आवश्यता देखी नहीं और शिष्ट वर्ग के मुहल्ले में जाकर स्त्रियों की ओर घूमने में उसे कोई बुराई न दिखाई दी। पाटण या खंभात में वह ऐसा करने का स्वप्न में भी साहस न करता। किन्तु यह तो बेचारा, पराजित भृगुकच्छ था। यहाँ तो पट्टणी मनचाही कर सकता है। सभ्य पाटण के नियम यहाँ कैसे लागू हो सकते हैं?

हमीर और नेरा दोनों टेढ़े-मेढ़े रास्तों से होकर निर्विघ्न साम्बा बृहस्पति के पुराने बाड़े में स्थित अविमुक्तेश्वर के मन्दिर के सामने आ पहुँचे। प्रातःकाल आम्रभट के आने के समय यहाँ जैसी नीरवता थी वैसी इस समय न थी। यह मन्दिर प्राचीन, पूजनीय और माननीय था अतः लोगों की हलचल थी और उसके पीछे के कुँए पर कई स्त्रियाँ पानी भर रही थीं।

हमीर और नेरा दोनों ने देवालय में जाकर दर्शन किए और फिर उसके पीछे के चबूतरे पर पानी भरनेवालियों को देखने के लिए बैठ गए। बेकार बैठकर आती-जाती स्त्रियों को बस देखते ही रहना इन दोनों में से एक की भी प्रकृति से मेल नहीं खाता था; फिर, लम्बी और अप्सरा के समान तो कोई स्त्री आ ही नहीं रही थी। अतः वे बैठे-बैठे उकता गए। उनकी अधीरता ने एक नया रूप धारण किया।

नेरा पालथी मारकर बैठ गया और चारों ओर भयंकर कटाक्षों की वर्षा करने लगा; हर आने-जाने वाली के साथ आँखमिचौनी करने और हँसने लगा। उसका जीवन निम्न वर्ग के लोगों में ही व्यतीत हुआ था। अतः उनसे सीखी रीतियोंकी वह यहाँ भी परीक्षा करने लगा।

अन्त में हमीर ने भी आते-जाते पर टीका करना आरंभ कर दिया; टीका करते ठट्ठा करना आरम्भ कर दिया; ठट्ठा आरम्भ होते ही नेरा अपना नियंत्रण खो बैठा। वह ज़ोर-ज़ोर से पानी भरती हुई स्त्रियों के लक्षणों का विश्लेषण करने लगा।

इन दो अपरिचित पुरुषों को इस प्रकार व्यवहार करते देखकर कुएं पर पानी भरने वाली स्त्रियों में घबराहट फैल गई; कुछ ने पानी भरा और कुछ बिना भरे ही वहाँ से चलने लगीं।

'ये....ये तो सब चलीं—' नेरा बोला।

'जाने दे।' उकताकर हमीर ने उत्तर दिया।

'कि....कि...किन्तु तेरी अप्सरा तो आई नहीं।'

'कौन जाने कब आयगी।'

'आ....ई ई ई। ठुमक—'कहकर नेरा ने एक युवती की ओर देखकर आँख मीच दी। वह युवती गर्व से ठुमककर रुक गई और क्रोध से पीछे घूमी।

'क्या—क्या हुआ?' नेरा बोला।

वह युवती घबराई और वैसे ही क्रोध में पीछे घूमी। सामने शिव-स्तुति करके मंदिर से निकलते हुए मणिभद्र महाराज मिल गए। वह दुर्गपाल के एक आश्रित की पत्नी थी अतः मणिभद्र को देखकर उसमें साहस आया; वह खड़ी हो गई। थोड़ी दूर पर लौटती हुई एक दो स्त्रियाँ भी खड़ी हो गईं।

'भाई! उधर दो हरामखोर बैठे हुए हैं उन्हें निकाल बाहर करो। वे हमारे साथ ठट्ठा कर रहे हैं।'

'अच्छा?' मणिभद्र ने पूछा।

'हाँ। किसी को पानी भरने ही नहीं देते।' दूर खड़ी हुई स्त्रियों में से एक ने निकट आकर कहा।

'ठहरो, मैं अभी निकालता हूँ।' कहकर मणिभद्र धीरे-धीरे चबूतरे पर होकर पीछे की ओर गया। 'ए भाई! कौन हो तुम लोग? यहाँ किस काम से बैठे हो?'

हमीर ने मणिभद्र को पहचान लिया और ओछे स्वर में पूछा—'ए महाराज, तू कहाँ से?'

'कौन आँबड़ भाई का गण, यहाँ कैसे बैठा है? और इन सबकी हँसी क्यों उड़ा रहा है!'

अपने स्वामी के सामने हमीर मणिभद्र का सम्मान करता था किंतु इस समय वह आपे से बाहर हो गया।

'ए भूदेव! तू अपना काम कर; हमारे बीच में क्या पड़ता है?' हमीर ने कहा।

'तुम इन सभी को छेड़ रहे हो इसलिए।'

'ब....ब्राह्मण! ये सभी हमें छे....छे....छेड़ती हैं सो?' नेरा बोला।

साधारणतः मणिभद्र घो के समान नम्र था किन्तु भटराज काक का साला होने के कारण उसे अपने सम्मानकी रक्षा करने के लिए विवश होना पड़ा।

'सावधान।' मणिभद्र क्रोधित होकर बोला, 'स्त्रियों के सम्मुख यदि निर्लज्जता दिखाई तो!'

हमीर अधीर तो था ही, बड़ी कठिनाई से अपने को शांत रख रहा था; किन्तु इस बार वह फट पड़ा। वह एकदम उठा और मणिभद्र की कनपटी पकड़कर कहा—'जाता है कि नहीं बामणा!'

हमीर का सीना और मणिभद्र के प्रति होता हुआ अन्याय देखकर स्त्रियां चीख़-चीख़कर भागने लगीं। नेरा खड़ा-खड़ा ज़ोर-ज़ोर से हंसने लगा।

मणिभद्र उबल पड़ा। उसने दाँत कटकटा कर हमीर की नाक पर ज़ोर से मुष्टिप्रहार कर दिया।

हमीर सशक्त योद्धा था। उसने धक्का मारकर मणिभद्र को चबूतरे के नीचे गिरा दिया और धरती पर पड़े हुए मणिभद्र को ठोकर मारने लगा। वह मुंह से गालियाँ भी देता जा रहा था। पीछे नेरा खड़ा-खड़ा ज़ोर-ज़ोर से हँस रहा था।

इस गड़बड़ से आसपास से कुछ लोग इकट्ठे हो गए।

भूमि पर पड़े हुए मणिभद्र को हमीर ने तीसरी ठोकर मारी ही थी कि अविमुक्तेश्वर के दर्शन करके रेवापाल बाहर आया और उसने भागती हुई स्त्रियों को देखा; द्वार में खड़े, घबराए हुए नागरिकों को देखा, भूमि पर रौंदाते हुए ब्राह्मण को देखा और विदेशी पट्टणी सैनिक को पाद-प्रहार करते देखा।

उसका कठोर मुख और भी कठोर हो गया, उसकी आंखों में बिजली चमक उठी और पलक मारते वह दौड़ पड़ा। उसके हाथ में तलवार चमक उठी और हमीर की टांग इस प्रकार कटकर दो टुकड़े हो गई जिस प्रकार केला कटता है। हमीर चक्कर खाकर भूमिसरत् हो गया। दर्शकों में हाहाकार मच गया। नेरा पिछली गली से सिर पर पांव रखकर भागा।

'महाराज, आप कौन हैं ?' रेवापाल ने मणिभद्र से पूछा।

'बापू !' पिटाई से हांपते हुए मणिभद्र ने उत्तर दिया, 'दुर्गपाल महाराज के यहां रहता हूं।'

'अपने दुर्गपाल से कहना कि विदेशी हरामियों को घुसाकर क्या लाभ उठाया ?' कड़वाहट से रेवापाल बोला। 'और उसके सैनिकों से कहना कि इसे उठाकर मेरे यहां ले जायं।'

'किसके यहां ?'

'तेजपाल नगरसेठ के यहां।'

इतना कहकर रेवापाल मन्दिर में चला गया।

: १४ :

रेवापाल और आम्रभट

नेरा तोतला गली में बहुत दूर नहीं गया था, अतः जब गड़बड़ी कम हो गई तो वह धीरे-धीरे लौटकर आया और गर्दन लम्बी करके देखने लगा। रेवापाल को मन्दिर से दर्शन करके लौट जाते देखकर उसमें साहस आया।

रेवापाल के अन्तिम शब्दों से वह समझ गया था कि आम्रभट नगरसेठ के यहीं ठहरे होंगे। उसने सोच लिया था कि भट की पदवी तो हाथ से निकल चुकी किन्तु रेवापाल के अन्तिम शब्दों ने उसमें पुनः आशा का संचार कर दिया। हमीर आम्रभट का विश्वासपात्र सैनिक था। उसकी रक्षा करने से आम्रभट प्रसन्न होंगे। अवसर भी है—और उसके जैसे समर्थ योद्धा को वे अपने ही पास रख लें यह भी सम्भव है। इतना यदि हो जाय तो फिर भट बनना तो बहुत ही सरल है। यह विचार कर उसने अपनी पगड़ी उतारकर एक पट्टी फाड़कर हमीर के पांव में बांधी और उस बेसुध सैनिक को कन्धे पर रखकर वह पिछले मार्ग से, स्थूल शरीर से जितनी गति बन सकती थी उससे, तेजपाल सेठ के निवास-स्थान की ओर चला।

उधर आम्रभट की अकुलाहट का पार न था। अभी तेजपाल सेठ लौटे न थे, रेवापाल का मुँह तक उसे अच्छा न लगता था किन्तु वह भी बाहर गया हुआ था। उदा महेता का पुत्र और भृगुकच्छ का भावी दुर्गपाल इस प्रकार प्रतीक्षा करता रहे, घर में सिवा नौकरों के कोई आवभगत करने वाला न हो—इस विचार से उसके आत्म-सम्मान को बड़ी चोट पहुँची। हमीर भी अब तक न लौटा था। साम्बा बृहस्पति के बाड़े में एक अलौकिक सुन्दरी की खोज कर लेना उसके विचार से एक साधारण बात थी, उस पर हमीर ने इतना समय लगा दिया इससे उसके क्रोध का पारावार न रहा।

वह तकिए के सहारे लेटा, झूले पर बैठा, खिड़की में खड़ा हुआ, किन्तु हमीर न लौटा। अन्त में उस सुन्दरी के मुखारविन्द को अपनी आंखों के सामने लाने की चेष्टा की किन्तु जैसे-जैसे धीरज घटता जाता था वैसे-वैसे यह चेष्टा भी निष्फल होती जाती थी।

अन्त में सोते-सोते वह अधीर होकर करवटें बदलने लगा।

'आ....आ....आम्रभट महाराज हैं ?' एक अपरिचित स्वर उसके कानों से टकराया। वह तुरन्त उठ खड़ा हुआ और खिड़की से बाहर एक अत्यन्त मोटे पुरुष के कन्धों पर पड़े बेसुध हमीर को देखा। वह फीका पड़ गया। एकदम सीढ़ियाँ उतरकर वह नेरा के निकट गया।

'क्या हुआ ? कैसे हो गया ?' उसने अधीरता से पूछा।

नेरा समझ गया कि यही आमूभट हैं। उसने हमीर को कन्धे पर से उतारकर धरती पर लिटा दिया और झुक-झुककर प्रणाम करने लगा।

'भ....भ....भटजी महाराज की जय हो ! बा....बापू ! मैं नेरा हूँ—पाटण की सेना का।'

'हमीर को क्या हुआ ?'

नेरा को लगा कि यहां चतुराई से काम लेना अत्यन्त आवश्यक है। बात बनाकर उसे सत्य का रङ्ग दे देने में तो वह कुशल था।

'म....म....महाराज ! लाट और पाटण के कुछ मनुष्यों में झगड़ा हो गया। ऐ....ऐसा हुआ कि बस कुछ कहना नहीं ! बेचारा हमीर भाई उसकी लपेट में आ गया। म....महाराज ! ये तो मैं जा पहुँचा नहीं तो हमीर भाई कभी के यम के द्वार पहुंच गए होते। हा हा हा !' वह बड़ा प्रसन्न होकर हँसते मुंह खड़ा रहा।

आमूभट की भवें तन गईं। उसकी आंखों में रक्त उतर आया।

'लाट के सैनिकों ने मेरे हमीर पर हाथ उठाया ?' उसने क्रोधित होकर पूछा।

'बा....बा....पू, हंसी-हँसी में, निरर्थक ही, हँसते-बोलते बात बढ़ गई।'

'कहाँ ?'

'सां....सां....बा—' नेरा इतना ही बोल पाया।

'सांबा बृहस्पति के बाड़े में ?' मुट्ठी भींचकर आम्रभट ने प्रश्न किया।

'व....व....हीं....तनिक दूर....गांव के उस ओर।'

'सावधान, झूठ बोला तो !' पांव पटककर आम्रभट बोला, 'मेरे सैनिक पर किसने हाथ उठाया ?'

'बा...बापू' नेरा ने हाथ जोड़कर कहा।

'उत्तर दे, किसने हाथ उठाया ?'

अंदर आते हुए रेवापाल का कठोर स्वर आया—'मैंने।'

नेरा काँपकर दो पग पीछे हट गया। आम्रभट चकित होगया। प्रातःकाल वह रेवापाल को समझ नहीं पाया था; और इस समय उसके मुंह से ये शब्द सुनकर उसकी क्रोधी प्रकृति को आघात लगा। इस शान्त और कम बोलने वाले पुरुष के रूखेपन से उसे क्षोभ होता था।

'तुमने ?'

नेरा रेवापाल को देखकर मुंह बाए दूर खिसकने लगा।

'हां।'

'क्यों ?'

'आपके सैनिक ने एक ब्राह्मण का अपमान किया था। कहकर रेवापाल जाने को उद्यत हुआ। आम्रभट के अंतर से ज्वाला भभक उठी। उदामहेता का पुत्र, भृगुकच्छ का भावी दुर्गपाल; और अपमान-भर कर देने के कारण उसके सैनिक की यह दशा ! वह वेग से रेवापाल के पास गया और मार्ग रोककर उसके सामने खड़ा होगया।

रेवापाल ने शान्ति से कुछ समय तक कठोर दृष्टि से उसकी ओर देखा और फिर तिरस्कार से कहा—'आम्रभट जी ! मुझसे भिड़ने से

कोई लाभ नहीं होगा।' आमूभट समझ न पाया कि क्या कहे। ऐसा मालूम होता था मानो निष्फल क्रोध के कारण उसके मुँह में झाग भर आयँगे।

'मेरे...मेरे....नौकर की टांग काट दी।' कुछ समय पश्चात् वह बोला।

'पांव ?' रेवापाल ने कठोर और अपमान-भरे स्वर में कहा, 'पट्टणी उच्छृंखल बनेंगे तो सिर भी काटना पड़ेगा।' रेवापाल के होंठ और भी कठोर होगए।

आमूभट ने चारों ओर रक्त-पिपासित दृष्टि से देखा। उसे ध्यान आया कि उसके हाथ में हथियार नहीं है। लाट के नगरसेठ के पुत्र के साथ सम्भलकर व्यवहार करने की उसके पिता की चेतावनी स्मरण आई; वह कुछ ठंडा पड़ा।

'भटजी' रेवापाल ने बात पूरी की, 'आप मेरे पिता के अतिथि हैं; अपने मार्ग जाइए।'

आमूभट को कुछ न सूझ पड़ा। अन्त में वह बोला, 'मैं लाट का दुर्गपाल हूँ। मैं तुम्हारी धमकियों से डरूंगा नहीं।'

'पाटण के दुर्गपाल की धमकी मैं भूलता नहीं।'चमकती हुई आँखों से रेवापाल ने कहा और तिरस्कार से आगे बढ़ गया। आगे बढ़कर जैसे ही वह घूमा वैसे ही उसे और आमूभट, दोनों को एक साथ ही चुपचाप खड़ा सुनता हुआ काक दिखाई पड़ा। उसका मुख गंभीर था।

'रेवाभाई !' उसने बड़ी मिठास से पूछा, 'क्या हुआ ?'

'भटराज !' आम्रभट शीघ्रता से बोला। उसमें साहस का संचार हुआ।

'भृगुकच्छ आते ही मेरा—पाटण का अपमान हो ! मेरे हमीर का पाँव काट डाला !'

'रेवाभाई ने ?'

'हाँ। यह अपमान मैं कैसे सहन करलूं ?'उछलकर लौटते हुए क्रोध

से आमभट ने कहा। काक ने चुपचाप रेवापाल की ओर देखा।

'पूछो अपने मुहल्ले की स्त्रियों को और अपने मणिभद्र को!' तिरस्कार से रेवापाल बोला।

काक की आँखें दमक उठीं। आमभट फीका पड़ गया। उसे नेरा की बात याद आई। अवश्य उस स्त्री की खोज करते हुए ही हमीर को यह शिक्षा मिली है। तुरंत उसने इस सबको ढँक देने का निश्चय किया। पूछा, 'हैं?'

काक की दृष्टि नेरा तोतला पर पड़ी। उसने कठोरता से पूछा, 'तू यहां क्या कर रहा है?'

नेरा कांप उठा। वह दुर्गपाल से भली भाँति परिचित था। उसने हाथ जोड़ लिए, 'बा....बा...पू, म...म—'

'भटराज!' आमभट ने कहा, 'हमीर को उठाकर यही लाया है।' काक ने रेवापाल की ओर देखा।

'यह भी वहीं था।' उसने उत्तर दिया।

एक छलांग मारकर काक नेरा के निकट गया और उसका कान पकड़कर मसल दिया।

'नेरा!' काक ने पूछा, 'क्या हुआ था?'

'बा....पू!' उसने निःसहाय दृष्टि से आम्रभट की ओर देखा' किन्तु उधर से कुछ होता न देखकर पुनः काक की ओर देखा। काक की आंखों में अंगार भड़क रहे थे।

'म....म....महाराज!' नेरा बोला, 'हमीरभट ने ए....एक ब्राह्मण को ठो····ठो···ठोकर मारी और रे····रेवाभाई ने उसकी टांग काट दी।'

'ठोकर क्यों मारी?'

'ब्राह्मण ने हमीर को गाली दी।'

काक ने कठोर होकर रेवापाल की ओर देखा।

'रेवाभाई! सच्ची बात क्या है?'

'हमीर पानी भरने वालियों के साथ ठट्ठा कर रहा था।'

आम्रभट का हृदय कांप उठा।

'और तू भी ?' काक ने नेरा से प्रश्न किया।

'नहीं—नहीं—नहीं—वा—'

'नेरा !' काक की वाणी में भरी रौद्रता से आम्रभट भी सहम गया; 'जो फिर मेरे हाथ पड़ा तो यह सिर धड़ पर नहीं रहने का। सोमेश्वर !'

'जी।' कहकर बाहर खड़ा हुआ सुभट अन्दर आया।

'इस हरामखोर को लात मारकर बाहर निकाल दो।'

'जो आज्ञा' कह सोमेश्वर ने आंखों से ही नेरा को आज्ञा दी। नेरा धीरे-धीरे बाहर चला गया।

'भटराज !' आम्रभट ने धीरे-से काक से कहा, 'इस बिचारे को—'

काक आम्रभट की ओर घूमा, 'आम्रभट, मालूम है यह कौन है ? यह पाटण का नीच-से-नीच सैनिक है।'

'किन्तु मेरे हमीर को यही लाया था।'

'नहीं लाता तो कोई अनर्थ नहीं हो जाता। रेवाभाई ने तो टाँग काटी; मैं होता तो सिर काट देता।'

आम्रभट कुछ भी न बोल सका। काक कुछ नरम पड़ा—'भाई ! इस देश में तुम विदेशी हो। यहां के लोगों में दुर्भावना न फैलनी देना चाहिए।'

रेवापाल ने तिरस्कार से एक बार काक की ओर देखा और घर में चला गया। काक आम्रभट को लेकर ऊपर गया।

'आम्रभट ! प्रस्थान करने से पहले एक सलाह दूं ?'

'हां !' लज्जित होकर आम्रभट बोला।

'लाट और गुजरात भिन्न हैं, यह बात यहां के लोगों के हृदय से निकाल देनी है। नहीं तो—'

'क्यों ?'

'क्यों ? तुम्हें मालूम नहीं कि ध्रुवसेन के अनुयायी केवल अवसर की प्रतीक्षा में बैठे हुए हैं।'

'क्या कह रहे हैं ?' हँसकर आमूभट बोला।

काक के मुख पर गम्भीरता छा गई।

'आमूभट ! ऐसी बातों में हंसोगे तो किसी दिन पाटण को रोना पड़ेगा। तुमने आते ही रेवाभाई का अपमान किया। मालूम है यह कौन है ?'

'हां।'

'नहीं, मालूम नहीं है। होता तो इतनी छोटी-सी बात पर उससे भिड़ न पड़ते। आमूभट ! यह जितना सीधा है उतना निर्जीव नहीं। लाट की राज्यसत्ता अवश्य जयसिंहदेव महाराज के हाथ में है; किन्तु उसकी आत्मा और उसका उत्साह दोनों रेवापाल में हैं। यह लाट के गौरव का अवतार माना जाता है। इसका अपमान होने पर सम्पूर्ण देश गरज उठेगा।'

'तो यह पाटण का शत्रु है ?'

'चाहो तो यही मान लो। किन्तु उसे छेड़ने जाओगे तो लाट खो बैठोगे। इससे बिगाड़ना मत। नहीं तो इतने वर्षों का सब किया-कराया धूल में मिल जायगा।' काक ने कहा, 'अब मैं जाऊंगा। तुम्हें और नगरसेठ को मेरे यहां भोजन करना है इसलिए नगरसेठ के आते ही चले आना।'

: १५ :

काक की चिंता

काक ने अपनी स्वाभाविक विचक्षणता से अनुभवहीन आमूभट का अविचारीपन और अपनी ओर रेवापाल का तिरस्कार देख लिया था। उसके भृगुकच्छ छोड़ देने पर पीछे क्या-क्या होगा उसकी एक

हलकी झांकी उसे दिखाई दे गईं और उसके दूरदर्शी मस्तिष्क में एक चिन्ता घर कर गई।

इस चिंता द्वारा निर्मित भयंकर चित्र को देखकर वह काँप गया। अपनी मंजरी को यहाँ अकेली छोड़कर जा रहा था। वह मर जाय या लाट में आँधी आ जाय तो उसका क्या होगा? उदा महेता के हाथों कड़ए अनुभवों का आस्वादन उसके सामने आ गया। फिर बेचारी को पुनः वैसा ही सहन करना पड़े तो कौन इसकी सहायता करेगा?

आमूभट को या पट्टणी भटराज माधव को सौंपना सम्भव नहीं था; और लाट में ऐसा कोई भी न था कि विपत्ति के समय उसे आश्रय दे।

क्षण-भर के लिए काक की आँखों के सामने अंधेरा छा गया। वर्षों तक उसने न जाने कितने आदर्शों का पालन किया था, उन्हें प्राप्त करने के लिए कठिनाइयाँ झेली थीं; और इस समय तो इन सबके फल मीठे ही लग रहे थे। उसकी प्रियतमा सुख से जीवन-व्यापन कर रही थी; उसका लाट देश परतंत्र होने पर भी गौरवशाली था; उसके स्वामी जयसिंहदेव की आन के साथ-ही-साथ उसकी ख्याति भी चारों दिशाओं में फैल गई थी।

किन्तु ये सब इस समय अवास्तविक लगने लगे। सोरठ जाकर यदि कहीं वह बन्दी बना लिया जाय या प्राण से हाथ धो बैठे तो मंजरी दुःखी और निराधार हो जाती है; लाट में दंगे, क्लेश, अनीति, विजेता की क्रूरता और पराजित के दुःख पुनः उमड़ पड़ते हैं और 'फूलखरणी' के जलने के बाद जैसे उसकी राख मात्र धूल में मिलती है वही दशा उसकी अपनी कीर्ति की हो सकती है; ऐसे परिणाम की समस्त सामग्री इस समय तैयार थी। जयदेव को उससे द्वेष था; उदा इस समय राजा का विश्वासपात्र बनकर वैर का बदला लेने के अवसर की ताक में था; विनाश के छोर पर पहुंची राणकदेवी उसे हारते हुए का सहायक बनने का निमन्त्रण दे रही थी! यहां से वह जा रहा था और

लाट की कठिन समस्या आमूभट जैसे अभिमानी, अनुभवहीन, मूर्ख व्यक्ति के हाथों में छोड़नी पड़ रही थी।

पल-भर के लिए उसके साहसी हृदय में निराशा भर गई, पल-भर के लिए जयसिंहदेव की आज्ञा का अनादर करने की बात मन में आई। दूसरे ही क्षण वह समझ गया कि भृगुकच्छ से जाने के सिवा अन्य कोई चारा नहीं है।

वह बाहर निकलने ही वाला था कि घूमकर फिर नगरसेठ के घर में गया।

'रेवाभाई ऊपर हैं?' उसने एक स्त्री से पूछा।

'हां। थोड़ी ही देर हुई कमरे में गये हैं।'

बचपन में उसने और रेवापाल ने सम्पूर्ण घर में रौंद मारा था इसलिए वह तुरन्त रेवापाल के कमरे की ओर चला गया। रेवापाल का कमरा सब से दूर घर के छोर पर था।

उसने सीढ़ी चढ़ते-चढ़ते आवाज़ दी 'रेवाभाई!' कोई उत्तर नहीं आया। काक लपककर कमरे में गया तो देखा कि वह खाली था। उसने गर्दन लम्बी कर द्वार के बाहर देखा तो भी कोई न दिखाई पड़ा। उसने फिर आवाज़ दी किन्तु कोई उत्तर न आया।

काक विस्मय में पड़ गया। रेवापाल घर के लोगों से बहुत बैठता-बोलता नहीं था। द्वार से बाहर निकला न था। फिर भी, उसका दुपट्टा और उसकी पगड़ी कमरे में नहीं थे।

काक पीछे की खुली हुई खिड़की की ओर गया और चकित हो उठा। पीछे की ओर उतरने के लिए एक सीढ़ी रखी हुई थी। वह लुकता-छिपता खिड़की के निकट गया और बाहर देखा।

इस पीछे के छोटे-से बाड़े में कुछ वृक्ष थे और गौशाला थी। काक ने ध्यान से सुना—एक-दो व्यक्ति चुपचाप वार्तालाप करते हुए सुनाई दिए। रेवापाल की आवाज भी सुनाई दी। यदि वह भृगुकच्छ में न

होता अथवा वहां का दुर्गपाल न होता तो आगे बढ़कर यह निश्चय कर लेता कि रेवापाल किससे बातें कर रहा है। इस समय आगे बढ़ने से लाभ न होगा,यह वह जानता था। इतना तो स्पष्ट था कि किसी सबल कारण के बिना रेवापाल जैसा मनुष्य इस प्रकार पीछे के मार्ग से जाकर बात नहीं करता। ऐसा लगता था कि रेवापाल ने कोई दाँव खेलना प्रारम्भ किया है। पाटण की सत्ता नष्ट करने के सिवा और कोई दाँव रेवापाल खेले ऐसी सम्भावना तो थी ही नहीं। इतने में पीछे से पग-ध्वनि सुनाई दी। काक सावधान हो गया और द्वार की ओर बढ़ा। द्वार तक पहुँचने पर एक स्त्री मिली।

'बेनां भाभी!'

रेवापाल की पत्नी बेनां चमकी; 'कौन काक! तू—तुम यहां?'

'हां मैं ही!' काक हंसकर बोला, 'यह घर कहीं छूट सकता है!'

बेनां पतली और लम्बी थी। रेवापाल की शुष्क, घर संसार की नौका पर बैठकर वह सहनशील और एकनिष्ठ बन गई थी। जितना अमानुषी रेवापाल था उतनी ही वह भी थी। उसने प्रेम और आदर, रास-रंग, इच्छा-तृष्णा,सब कुछ भुला दिए। पति की सेवा-भर के लिए वह जीवित थी। दिनों तक रेवापाल उससे नहीं बोलता था और न वही बोलनेका प्रयत्न करती थी। यदि घण्टों तक रेवापाल न सो पाता तो वह बिना पलक झुकाए पलंग के पाएके पास बैठी रहती थी। कई बार रेवापाल उपवास करता तो बेनां अन्न-जल का त्याग कर देती। जब से जंबूसर गिरा तब से रेवापाल ने काक से मिलना-जुलना बन्द कर दिया था और तब से बेनां ने भी काक से बोलना बन्द कर दिया था। इस समय बेनां चमक उठी और उससे न बोलने का व्रत भंग हो गया।

'तुम कैसे?'

'मुझे भाई से और तुमसे भेंट करनी थी।'

'मुझसे?' करुण हसी हंसकर बेनां बोली।

'हां ! अच्छा हुआ, भेंट हो गई । तुम्हारी बहन को तुम्हारे हाथों सौंपना है ।'

'मुझे ? मैं क्या कर सकती हूं ? और तुम—'

'मैं सोरठ जा रहा हूँ । इसीलिए भाई को और तुमको सौंपना है ।'

बेनां ने गर्दन हिलाई—'मैं कुछ नहीं जानती । तुम जानो तुम्हारे भाई जानें ।'

'किन्तु भाई हैं कहां ? इसीलिए तो मैं आया हूँ । अभी वे कहां मिलेंगे ?'

'तुम कब जाओगे ?'

'कल । आज संध्या को मिल सकेंगे ?'

'संध्या को तो दर्शन करने जायंगे ।'

'गंगानाथ महादेव पर ध्रुवसेन सेनापति के दर्शन करने जाते हैं न ? यही ठीक है । कहना संध्या को उनसे वहीं मिलूंगा । मैंने जो कहा वह कहोगी न ?'

'यदि वे पूछेंगे तो ? नहीं तो, नहीं ।'

काक इस स्त्री की त्यागवृत्ति पर विचार करने लगा और चुपचाप प्रणाम कर विदा हुआ । आने वाली विपत्ति के तारों की अस्पष्ट झंकार उसके कानों से टकराने लगी ।

: १६ :

आम्रभट की आंखों के सामने अंधेरा छा जाता है

आम्रभट बहुत बेचैन हो गया । न जाने कैसे-कैसे आनन्द उठाने की इच्छा लेकर वह भृगुकच्छ आया था; किन्तु यहाँ तो पाँव धरते ही नौकर खोया, अपमान उठाया और हृदय कोई अपरिचित हर ले

गई। इतनी-सी उम्र में इतने दुखों की इतनी लंबी परम्परा का अनुभव उसने नहीं किया था।

इतने ही में नगरसेठ आगए।

'कहो मेरे खंभात के मंत्री के चिरंजीव !' तेजपाल सेठ ने कटाक्ष-भरी आवाज़ में कहा, 'मेरे तो भाग्य खुल गए।' उन्होंने आम्रभट का आलिंगन किया, 'मुझे तो प्रातःकाल ही से लग रहा था कि आज मेरे भाग्य खुलने वाले हैं। कहो, उदा महेता की कृपा तो है न ?'

आम्रभट को यह मनुष्य भी समझ में न आया। उसके शब्द मिश्री जैसे थे। उसकी वाणी में कटाक्ष था। वह गंभीर बात कर रहा है या ठट्ठा कर रहा है यह भी उसके मुखसे समझा नहीं जा सकता था। वह एक कानी आँख के कोने से बराबर आम्रभट को देखता रहता था।

'अरे ए शंकरा !' चिढ़कर उन्होंने अपने दास को पुकारा, 'भटजी की कुछ आवभगत की ? मरभुखे गाँव के दासों में एक कौड़ी की भी तो समझ नहीं होती। जाने कैसे अवकाश के समय में बनाये गए थे ! कहिए, भटजी ! चित्त तो प्रसन्न ? हमारे यहाँ तो पाटण के आनंद नहीं हैं।'

'मुझे तो आपका भृगुकच्छ बहुत भाया।'

'फिर भी पाटण की बराबरी कहाँ ?' काक भटजी तो आज चले। इनके भी पाँव में भंवरी लगी है।' नगरसेठ ने कहा।

'हाँ, महाराज ने बुलाया है।'

'क्यों नहीं ?' तेजपाल ने पुनः अस्पष्ट स्वर में कहा, 'ऐसे व्यक्ति महाराज के निकट न हों तो कहाँ हों? महाराज की कीर्ति भी तो कितनी है ! संसार में मनुष्य से लेकर पशु तक उन्हींका कीर्ति-गान किया करते हैं।'

आम्रभट देखता रहा। फिर कहा, 'हाँ।'

'चलो अब स्नान कर लो। दुर्गपाल के यहाँ आज बहुत समय

लगेगा। मैंने तो प्रातःकाल ही स्नान कर लिया था। शीघ्रता करो, नहीं तो ब्राह्मण के घर का अन्न ठंडा हो जायगा।'

इस तीक्ष्ण वाणी का प्रसाद आस्वादन कर भौचक्का-सा आमूभट नहा-धोकर तैयार हुआ और नगरसेठ के साथ पालकी में बैठकर दुर्गपाल के निवासस्थान के लिए निकला।

साम्बा बृहस्पति के बाड़े में से निकलते समय आमूभट का चित्त प्रातःकाल वाली रमणी में रम गया और नगरसेठ की बातों में उसका ध्यान न रहा। यह अद्भुत रमणी कौन होगी? किसके घर को शोभा होगी? उसके नयनों को पुनः कब पवित्र करेगी?

एकाएक ज्योंही पालकी ने बाड़े में प्रवेश किया त्योंही आमूभट का श्वास ऊपर-का-ऊपर और नीचे-का-नीचे रह गया। दो नन्हें बच्चे दौड़कर निकट के एक घर में प्रवेश कर रहे थे। उनमें से एक लड़की की एड़ी पर जाकर उसकी दृष्टि ठहर गई। उसे प्रातःकाल मंदिर के निकट देखी एड़ियों का स्मरण हो आया। दुर्गपाल के घर में देखी एड़ियां भी याद आईं। अब ये फिर वही एड़ियाँ—सुन्दर, गुलाबी और चित्तभेदक! एड़ियों से उसने अपनी दृष्टि ऊपर उठाई। इन एड़ियों में से एक रूपवती कन्या अंकुरित हो रही थी। 'आश्चर्य!' उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। किस प्रकार उस सुन्दरी ने उसका हृदय हर लिया था कि जहां देखो वहां वही वह दृष्टिगोचर होती थी।

इतने में काक का निवासस्थान आ गया। पालकी से नीचे उतरते ही काक और भटराज माधव से उनकी भेंट हुई। माधव नागर दाक्षक महेता का भतीजा था और बहुत वर्षों से त्रिभुवनपाल का मित्र और सेवक था।

राज्यकार्य-भार की, भृगुकच्छ के उपद्रव की, ध्रुवसेन के समर्थकों की, पाटण की राजनीति और खेंगार को पराजय की बातें हुईं। सबने भोजन किया। वापस घर लौटने का समय हुआ। किन्तु आमूभट का चित्त इनमें था ही नहीं, वह तो उस सुंदरी में अटका हुआ था।

इन्हीं एक-दो मोहल्लों में कहीं वह रहती थी, इतनी निकट और फिर भी इतनी दूर और अप्राप्य! उसे खोजने के काम को छोड़कर राज्य के प्रपंच में उसका जी लगे भी तो कैसे?

अतिथी विदा हुए; काक आमूभट की मूर्खता, अभिमान और अपरिपक्वता पर सोचने लगा।

: १७ :

रेवापाल का हृदय

जिस समय भृगुकच्छ का दुर्गपाल चिंताग्रस्त हो रेवापाल से भेंट करने गंगानाथ महादेव जाने का विचार कर रहा था उसी समय रेवापाल महादेव के पार्श्व में स्थित एक झोंपड़ी के द्वार के सामने बैठा हुआ था।

झोंपड़ी के अन्दर ब्रह्मानन्द सरस्वती ध्यान में लीन थे। रेवापाल अधीर होता जा रहा था; नदी की तरङ्गों को एकाग्र होकर देखती हुई उसकी आंखें बार-बार द्वार की ओर घूम जाती थीं। उसके मुख की रेखाएं कुछ अधिक कठोर हो गई थीं, उसके श्वासोच्छ्वास की अनियमितता उसके अन्तर के क्षोभ का परिचय दे रही थी।

झोंपड़ी में पगध्वनि सुनकर रेवापाल उठकर खड़ा हो गया। थोड़ी ही देर में द्वार खुले और एक वृद्ध सन्यासी बाहर आया।

'बेटा रेवा! आज इतना उद्विग्न क्यों है?' ब्रह्मानन्द ने पूछा।

ब्रह्मानन्द के दाँत गिरने लगे थे और त्वचा झूलने लगी थी। किंतु उनकी आंखें निस्तेज न थीं; और उनके स्नायु का बल विशेष कम नहीं हुआ था। ये सन्यासी पूर्वाश्रम में ध्रुवसेन सेनापति थे। इस

समय कोई उन्हें देखकर यह कल्पना भी न कर सकता था कि इनकी एक हुंकार से पाटण और धारा के नरपति कांप उठते थे। रेवापाल ने साष्टांग प्रणाम करके झोंपड़ी में प्रवेश किया।

'बैठो, बेटा !' ब्रह्मानन्द ने कहा।

'जी' तनिक कांपती हुई वाणी में रेवापाल बोला, 'महाराज, द्वार बन्द कर दूं ?'

'अवश्य।' रेवापाल ने द्वार बन्द कर दिया।

'गुरुदेव ! आज इतने वर्षों पश्चात् आज्ञा मांगने आया हूँ।'

'किस बात की ?'

'अपने हृदय की आग बुझाने की।'

'तो इसमें आज्ञा किस बात की ? रेवा ! तेरे अन्तर को शान्ति प्राप्त हो यही प्रार्थना तो मैं नित्य करता हूं।'

'गुरुदेव ! आप मुझे समझे नहीं। आप चाहते हैं वैसी शान्ति मैं नहीं चाहता।'

'तो ?'

'पट्टणी वापस जायं तभी मुझे शांति प्राप्त हो सकती है।'

'अब तक तू यह भूला नहीं ? रेवा ! कितनी बार कहूँ ? मृणाल-कुँवरि का पाटण से गठबन्धन हुआ तभी से पाटण हमारा स्वामी हो गया। अब इतने वर्षों पश्चात् हो भी क्या सकता है ?'

'गुरुदेव ! आप भी इस प्रकार निराश हो जायंगे तो—'

'भाई, जहां तक आशा की एक भी किरण चमकती रही मैं अडिग रहा। किन्तु अब आशा रखना तो विप्लिसता है।'

आवेश के वेग से रेवापाल ने आंखें मींच लीं। उसके होंठ तनकर कठोर होगए।

'गुरुदेव ! आपने संसार त्याग दिया इसीलिए विप्लिसता लगती है, किन्तु आज जैसा अवसर पुनः लौटकर आने का नहीं।'

'मुझे विश्वास नहीं होता।'

'न हो, अवसर न भी हो तो अब मैं थक गया हूँ, मुझसे अब वह सहन नहीं होता, देखा नहीं जाता। अब तो ऐसा लगता है कि या तो मैं न रहूं या पट्टणी न रहें।' आंखों से आंसू पोंछते हुए रेवापाल ने कहा।

'क्यों, बात क्या है?' तनिक आतुरता से ब्रह्मानन्द ने पूछा।

'गुरुदेव! गुरुदेव! जिधर देखता हूं लाट की आन और सुख को नष्ट होते हुए देखता हूं। आज भी एक बात हो गई। अविमुक्तेश्वर के देवल के सामने दो पट्टणिओं को मैंने स्त्रियों की हँसी उड़ाते हुए देखा। एक सैनिक के हाथों एक पवित्र ब्राह्मण को अपमानित होते देखा। ऐसा आज ही हुआ हो यह बात नहीं, प्रतिदिन कुछ-न-कुछ होता ही रहता है। अधमता की भी सीमा होती है। नरक भी इससे अधिक भयङ्कर नहीं होगा।'

'काक क्या करता रहता है?'

'काक क्या कर सकता है? वह तो एक खिलौना है। वह समझता है उसकी चलती है, किन्तु उसकी पीठ फिरते ही अनेक अत्याचार होने लग जाते हैं। और फिर वह तो कल जा रहा है।'

'कहाँ?'

'वंथली। उसके महाराज की आज्ञा है। और लाट की सत्ता किसके हाथ सौंप जायगा यह भी मालूम है?'

'नहीं।'

'एक मन्त्री का पुत्र है। न उसमें बुद्धि, न व्यवहार-कुशलता, और न शौर्य! उसके आधीन रहने से तो कट मरना अधिक अच्छा। इसीलिए मैं कहता था कि अवसर बहुत अच्छा है।'

'वह ठहरा कहाँ है?'

'मेरे यहाँ। पिताजी तो उससे बहन का पाणिग्रहण करना चाहते हैं।'

'अच्छा?'

'हां। किन्तु मेरा वश चलेगा तो आँबड़ महेता जैसा आया है वैसा ही बचकर नहीं जाने पायगा। गुरुदेव! सोचिए! भोलानाथ ने कितना अच्छा अवसर प्रदान किया है। त्रिभुवनपाल नहीं, काक नहीं, पट्टणी सेना नाम-मात्र की है, और आंबड़ और माधव जैसों के हाथ में लाट की सत्ता! गुरुदेव! आपकी एक हुंकार से लाट फिर हमारे हाथ आ जायगा।' आतुरता से ब्रह्मानन्द की ओर देखते हुए रेवापाल बोला, 'गुरुदेव! तनिक विचार कीजिए, पद्मनाभ महाराज की लाट आज कुचली-रौंदी जा रही है। निराधार लाट को आप सहायता प्रदान न करेंगे तो कौन करेगा?'

'वत्स! मैंने तो सन्यास ले लिया है, इसलिए मेरी बात तो छोड़ दे। और तू जो आंधी खड़ी करना चाहता है उसमें मुझे समझदारी नहीं दिखाई देती।' ब्रह्मानन्द ने गर्दन हिलाते हुए कहा।

'तो क्या बैठा रहूँ? गुरुदेव! एक हज़ार योद्धा तत्पर हैं, पन्द्रह दिन में पांच हज़ार पदाति भृगुकच्छ आ पहुँचेंगे।' तनिक धीमी आवाज में रेवापाल ने रहस्योद्घाटन किया।

'क्या कर रहा है?'

'पन्द्रह दिन से मुझे थोड़ी-बहुत सूचना थी। जैसे ही आज आम्रभट आया मैंने समझ लिया कि इस अवसर पर चूकना न चाहिए। मैंने चारों ओर आदमी भेज दिए हैं। अक्षयतृतीया के पहले ही भृगुकच्छ से मांडवी तक का प्रदेश हमारे अधिकार में आ जायगा।' धीमी किन्तु उत्साह-भरी आवाज में रेवापाल बोला।

'तो तूने तो सब कुछ आरम्भ भी कर दिया है।'

'हां। किन्तु आपकी आज्ञा के बिना आगे न बढ़ूंगा।'

'बेटा! तू जो करे उसमें तुझे विजय प्राप्त हो यही मेरी आशिष है।'

'देव! इस समय तो यही आशीर्वाद दो कि या तो विजय प्राप्त करूं या देह त्याग करूं।'

'रेवापाल! ऐसी एकनिष्ठा वाले को विजय ही प्राप्त होती है।'

रेवापाल एकाग्र दृष्टि से देख रहा था।

'देव ! एक याचना और करता हूँ।'

'हाँ, बोल।'

'आप जोगिया वस्त्र त्याग दीजिए।'

ब्रह्मानन्द चमककर पीछे हट गए।

'क्यों ?'

'देव ! ध्रुवसेन सेनापति के बिना सम्पूर्ण लाट का शौर्य निरर्थक है। किसके बल पर हम छाती टोंककर खड़े होंगे ? किसके वचन हमें मृत्यु का आलिंगन करने के लिए उत्साहित करेंगे ?'

'रेवा ! जोगिया त्याग करना अब कैसे सम्भव है ?'

'देव ! न कहा था आपने कि अपने ही हाथों गंवाए हुए लाट में आपके लिए कोई स्थान नहीं है। तो महाराज ! कीजिए ग्रहण अपना स्थान और फिर से लाट को हस्तगत कीजिए। एक बार फिर निकल पड़िए, एक बार फिर अपने धनुष की टंकार से लाट गुंजा दीजिए।'

'बेटा, तेरे वचन मेरे मन को ललचा अवश्य रहे हैं।'

'तो कहिए—आयेंगे ? अक्षयतृतीया को जोगिया त्याग करेंगे ?'

'नहीं।'

'देव ! कैसी बात कह रहे हैं ?'

कुछ समय तक ब्रह्मानन्द चुप रहे।

'रेवा ! एक वचन देता हूँ।'

'क्या ?'

'तुझे यदि मेरी आवश्यकता जान पड़े, मेरे न रहने से ही यदि तेरा प्रयास धूल में मिल रहा हो तो सन्देशा भेज देना। जोगिया त्याग कर चला आऊंगा। अब तो ठीक है ?' तनिक हंसकर ध्रुवसेन बोला।

रेवापाल ने झुककर ब्रह्मानन्दके चरणों पर अपना माथा टेक दिया। किसी अन्य रीति से वह अपनी कृतज्ञता प्रकट न कर सका। गुरुदेव ने

'देव ! एक काम कीजिएगा ?' रेवापाल ने प्रश्न किया।

'कह।'

'अपना पद्मविजय देंगे ?'

'अवश्य ! तुम्हारे सिवा और कौन योद्धा उसका उपयोग कर सकता है ?'

'देव ! हमने हंसी-हंसी में ही इस धनुष को पद्मविजय नाम दिया था, याद है ? जहां इसकी टंकार होगी वहां विजय निश्चित है।'

'बेटा ! वह उस अटारी पर रखा है, ले ले। और जब मेरी आवश्यकता हो तो इसकी कमान का फुंदना मेरे पास भिजवा देना। पद्मनाभ महाराज की पटरानी ने उसे बांधा था।' रेवापाल उठा और नीचे की अटारी में रखा धनुष खींचकर निकाला; दुपट्टे से झाड़कर साफ किया और फिर भूमि पर रखकर कुछ देर तक उसकी ओर देखता रहा। वह पहले जैसी ही दशा में था।

'यह तो अद्भुत है।'

'बेटा ! गंगानाथ महादेव की कृपा है। जा, विजय लाभ कर।'

रेवापाल ने पुनः दंडवत् प्रणाम किया, ब्रह्मानन्द सरस्वती ने मौन रहकर ही आशीर्वाद दिया। दोनों चुपचाप किन्तु भारी हृदय से विदा हुए। दोनों को लग रहा था कि विधि उनके जीवन का नया पृष्ठ खोल रही है।

: १८ :

काक की याचना

जिस समय रेवापाल झोंपड़ी से बाहर निकला उस समय संध्या हो चली थी। ढलते हुए दिवस का प्रकाश और झीने अंधेरे आकाश में

संवरण करते तारागण रेवा के तेज को गांभीर्य का पुट दे रहे थे। भक्त की तल्लीनता से वह नर्मदा के शांत तट को देख रहा था, विचारमग्नावस्था में धीरे-धीरे वह छत पर गया।

उसके हृदय का भार हलका हो गया था। निराशा से कुम्हलाये हुए उसके हृदय में आशा का नूतन उल्लास जाग उठा था। वर्षों की दबी हुई इच्छाएं आज पूर्ण होती दीख रही थीं। लाट की स्वतंत्रता के लिए एक भयंकर युद्ध करना ही उसके जीवन का उद्देश्य था, वह उद्देश्य आज पूरा होता दीख रहा था।

उसने जंबूसर गिरने के पश्चात् भी इस लक्ष्य को प्राप्त करने की आशा क्षण-मात्र के लिए भी न त्यागी थी। लाट की ग्रहदशा में उसे विश्वास था अतः उसे पट्टणियों को लाट के बाहर निकाल देना कभी भी असंभव नहीं लगा। बड़ी-बड़ी कठिनाइयों में और बड़े कष्ट उठाकर पाल-पोसकर बड़ी की हुई यह आशा आज सिद्ध होने के निकट थी।

इस आशा को सेते हुए भी व्यवहार-कुशलता वह नहीं भूला था। संपूर्ण लाट पर उसकी दृष्टि थी, चारों ओर के उपद्रवी और असन्तुष्ट योद्धाओं से उसका संबंध था और उसकी एकनिष्ठा और देशभक्ति के कारण लाट में उसका इतना सम्मान था कि ध्रुवसेन के सन्यास ग्रहण कर लेने के पश्चात् लोगों को आँखों में वही वह था।

वह नर्मदा की तरंगों की ओर देख रहा था। मन-ही-मन उसने इस जागरित जोगमाया को अर्घ्य अर्पण किया और आशिष की याचना की। उसे लगा कि उन तरंगों से प्रकट होती हुई माता के काल्पनिक कर उसे आशीर्वाद दे रहे हैं।

अर्द्ध सुप्तावस्थामें वह पद्मविजय के प्रचंड धनुषदंड पर हाथ रखकर खड़ा रहा। एकाएक किसी ने उसके कंधे पर हाथ रखा। चमक-

कर वह घूमा और तलवार पर हाथ रखा। सामने मुस्कराता हुआ दुर्गपाल खड़ा था।

रेवापाल ने क्रोध में होंठ काट लिए। उसके दुर्भाग्य का दूत उसके सामने खड़ा था। इस समय भी उसे निश्चित होकर विचार न करने दे रहा था। सम्भव है वह किसी बुरे संकल्प से उसके पीछे आया हो।

'रेवाभाई ? अन्त में भेंट हो ही गई।' काक बोला।

'कैसे आया ?' दाँत पीसकर क्रोध से खरखराती आवाज़ में रेवापाल ने प्रश्न किया।

'प्रातःकाल मैंने बेनां भाभी से कहा था कि इसी समय मैं तुमसे भेंट करने आऊंगा, उन्होंने तुमसे नहीं कहा ?' काक ने निर्दोष स्वर में कहा। रेवापाल अपने पुराने मित्र से परिचित था अतः उसकी मीठी बातों में वह आ जाय ऐसा न था। कुछ देर तक वह आंखें निकालकर देखता रहा।

'किस काम आया है ?' रेवापाल ने अधीर होकर प्रश्न किया।

'मैं कल वंथली जाने वाला हूँ।'

'तो इससे मुझे क्या ?'

'एक याचना करने आया हूं।'

'किसी को दान देने की शक्ति मुझमें नहीं है। यदि हो भी तो तुझे नहीं दूंगा।' रेवापाल तिरस्कारपूर्वक बोला।

'फिर भी, याचना मैं तुम्हींसे करूंगा और तुम्हारे सिवा कोई दान दे भी न सकेगा।' काक ने नम्रता से कहा।

'दान मांग अपने पाटण के स्वामी से,' हठपूर्वक गर्दन हिलाते हुए रेवापाल ने कहा।

'कुछ दान जो बालमित्र दे सकता है वह संसार का स्वामी भी नहीं दे सकता।'

'मैं तेरा मित्र नहीं और न मुझे तेरी मित्रता ही चाहिए।' कह कर रेवापाल चलने लगा।

'किन्तु मुझे तुम्हारी मैत्री की आवश्यकता है। सुन तो लो कि मैं क्या मांगता हूँ ? फिर भले ना कह देना। मुझे एक स्त्री को तुम्हारे संरक्षण में छोड़ना है। रेवाभाई ! इतना-सा भी न हो सकेगा ?' शांत रह, हंसकर विनोद में काक ने पूछा।

काक की बात सुनकर रेवापाल एकदम रुककर उसकी ओर घूम गया। उसकी कठोर दृष्टि में नरमी आई। काक ने देखा कि रेवापाल पिघला।

'भाई ! मुझे अपनी भृगुकच्छ की या पाटण की तनिक भी चिन्ता नहीं। उनका जो होना होगा, होगा, उनका जो तुम्हें करना हो, करना।' काक ने रेवापाल के हाथ में का धनुष देखकर कहा, 'अभी तो एक निःसहाय गौ की रक्षा करनी है। इतना-सा काम लाट में तुम न करोगे तो कौन करेगा ?'

'तुझसे नहीं हो सकता ?'

'मैं तो कल जा रहा हूँ। संभव है लौट कर न आ सकूँ।' काक ने कहा।

'कौन है ?'

'एक विद्वान ब्राह्मण की पुत्री है।'

रेवापाल चकित हो गया। पूछा, 'कौन तेरी पत्नी ?'

'यदि वही हो तो—'

'उसे मैं अपने यहाँ क्यों शरण दूँ ?'

'मुझे कुछ हो जाय तो—'

'तुझे और तेरे सगे सम्बन्धियों को कुछ भी हो, इससे मुझे क्या ?'

'मैं तुम्हारे स्थान पर होता तो यह नहीं कहता।'

'काक ! मैं तुमसे भला-भाँति परिचित हूँ। तेरे जैसा हरामखोर मैंने दूसरा नहीं देखा। इस समय भृगुकच्छ में सब कुछ अव्यवस्थित हो गया है, अतः तू येन-केन प्रकारेण अपनी रक्षा करना चाहता है।'

'रेवाभाई ! मुझे अपनी चिन्ता नहीं। किन्तु इस बेचारी को विदेशसे मैं यहाँ लाया हूँ। मेरे सिवा इसका और कोई नहीं है। मानलो तुमने लाट पुनः हस्तगतकर लिया—तनिक तीक्ष्णतासे रेवापालकी ओर देखकर काक बोला, तो इस बेचारी का कौन सहायक होगा।'

'अपने स्वामियों को क्यों नहीं सौंप जाता ?"

'अपना जीवन सर्वस्व स्वामियों को नहीं मित्रों को सौंपा जाता है।' काक ने उत्तर दिया।

'ऐसे तो कितनों ही के जीवनसर्वस्व तूने लूट लिए'। रेवापाल ने कहा। काक समझ गया कि उसके शब्दों का प्रभाव रेवापाल पर बड़े वेग से होरहा है किन्तु उसके हृदयको पिघलानेके लिए अभी और सावधानी से काम लेना पड़ेगा। उसने आधे क्षण तक विचार किया और फिर एक भयंकर ब्रह्मास्त्र छोड़ा।

'रेवा भाई ! तुम्हारे जीवनसर्वस्व को पाटण भिजवा दिया उसीका यह प्रतिकार दे रहे हो क्या ?'

रेवापाल बचपन से लीलादेवी के चरण पूजता था। वह स्वामी-भक्ति थी या और कुछ यह कोई न जान पाया। जब से ब्याह कर लीला-देवी पाटण चली गई तब से उसके हृदय में स्वदेश की आग को छोड़ और कोई लगन बची भी थी या नहीं यह भी कोई न जानता था। किन्तु काक से कुछ भी छिपा हुआ न था। वर्षों से छिपाए हुए व्रण पर उसने ऐसा तीव्र आघात किया कि वह फिर हरा हो उठा।

'क्या ?' चमककर रेवापाल गरज उठा। उसकी आंखों में अग्नि प्रज्वलित हो उठी। आवेश में आकर उसने तलवार निकाल ली। 'मौत आई है क्या ?'

'तुम्हारे हाथों मौत—इससे बढ़कर अच्छी वस्तु और क्या हो सकती है ?' मुस्कराते हुए शांत और प्रसन्नचित्त से काक बोला। 'लीलादेवी का पाणिग्रहण सोलंकीके साथ कराया उसीका वैर निकाल रहे हो क्या?'

'चुप—हरा'—रेवापाल धीरे किन्तु इस प्रकार बोला मानो रक्त पी जायगा।

'क्यों, मेरी बात असत्य है ? मृणालकुंवर यदि यहां होती भी तो तुम्हारा मनोरथ पूरा न होता।' कृत्रिम तिरस्कार से काक बोला।

'बामण ! चांडाल !' काँपते हुए स्वर में रेवापाल बोला, 'तेरा समय आ गया है, अब या तो तू नहीं या मैं नहीं। निकाल अपनी तलवार। बिना युद्ध किए तुझे नहीं मारूंगा। तेरी पापी जीभ को अब एक शब्द भी न बोलने दूंगा। चल, निकाल।' रेवापाल के मुँह में झाग आ गए।

शान्त रहकर मुसकराते हुए काक ने गर्दन हिलाकर ना कर दी।

'रेवाभाई ! तुम्हारे सामने मैं शस्त्र नहीं उठाऊँगा ?'

'क्यों ?'

'मैं कायर नहीं, किन्तु यदि हम लड़ेंगे तो तुम्हारी मृत्यु निश्चित है। मैं तुमसे दुगुना बलवान् हूं और अपने बालमित्र को मैं मारना नहीं चाहता।'

रेवापाल के क्रोध की सीमा न रही। वह होश-हवास खो बैठा। काक उसका एकमात्र शत्रु था, वही उसकी आकांक्षाओं में सबसे बड़ा रोड़ा था। अतः उसे मौत के घाट उतार देने में ही उसे अपनी और लाट की मुक्ति दिखाई दी।

'पापी ! खड़ा रह। अभी तेरे दो टुकड़े करता हूं।' कहकर वह तलवार उठाकर आगे बढ़ा। काक कठोर होकर तिरस्कार से देखता रहा।

'देखना है किस प्रकार याचक ब्राह्मण को मारकर रेवापाल अपनी टेक पर पानी फेरता है ?' गर्व से काक ने कहा।

'रेवापाल की टेक !' इन शब्दों के कानों में पड़ते ही रेवापाल रुक गया। उसकी तलवार निकली-की-निकली रह गई।

'रेवापाल कभी अपनी टेक नहीं त्यागता।' निकट ही से एक मधुर

स्वर आया।

दोनों घूमे। निकट ही तारों के क्षीण प्रकाश में तेजस्वी और गौरव-शाली ब्रह्मानन्द सरस्वती खड़े हुए थे। काक ने साष्टांग प्रणाम किया। रेवापालका उठा हुआ हाथ नीचे झुक गया और उससे तलवार छूट पड़ी। वह धरती पर बैठ गया और दोनों हाथों में माथा रखकर सिसकने लगा।

: १६ :

काक की राजनीति

'रेवापाल, यह क्या ? काक, दो घनिष्ठ मित्रों को यह शोभा देता है ?'

रेवापाल ने हाथों में से सिर नहीं उठाया। काक मुस्कराते हुए देखता रहा।

'गुरुदेव ! घनिष्ठ मित्र ही इस प्रकार लड़कर फिर एक हो जाते हैं। कल मैं सोरठ जाने वाला हूँ, इसलिए भाई को कुछ सौंपने आया था।'

'क्या ?'

'मेरी स्त्री ! उस बेचारी का क्या होगा इसकी मुझे अत्यन्त चिंता है।' काक ने कहा।

'बेटा !' ब्रह्मानन्द बोले, 'उसको क्या हो सकता है ?'

'गुरुदेव ! रेवाभाई को तो मैं तनिक खिझा रहा था, आपसे सच-सच कहता हूं। रेवाभाई तो अवसर की ताक में बैठे हैं, और भृगुकच्छ के नए दुर्गपाल में रत्ती-भर बुद्धि नहीं है। अतः लाट में उपद्रव होगा, यह निश्चित है। आप ना न कहिएगा क्योंकि मैं मानने का नहीं। मैं आपको और रेवाभाई को पहचानता हूं।'

'तो अपने साथ लेता जा।'

'ऐसा भी नहीं हो सकता। जयसिंहदेव महाराज के पास मेरा एक कट्टर विरोधी बैठा हुआ है। और महाराज या लीलादेवी मेरी स्त्री को आश्रय देंगे नहीं। कल मुझे कहीं कुछ हो जाय तो फिर उसका क्या होगा ?'

'काक !' ब्रह्मानन्द ने कहा, 'तू तो धोबी का कुत्ता हो गया है, न घर का न घाट का।'

'बात है तो ऐसी ही।'

'तो घर का क्यों नहीं हो जाता ? पाटण में तेरा कौन है ? अपने रेवाभाई के साथ क्यों नहीं रहता ? तुम दोनों बचपन के साथी हो, इस तरह एक-दूसरे में कट-मरने में क्या लाभ है ?'

'हाँ काक !' रेवापाल एकदम खड़ा होकर बोला, 'हमारे साथ आ, हम पाटण को भी जीत लेंगे।'

'भाई ! गुरुदेव !' खिन्न स्वर में काक बोला, 'यही निमंत्रण आज ही नहीं, वर्षों पहले भी दिया था। किन्तु मुझे आपकी योजना में श्रद्धा नहीं है। अकेला लाट पाटण के सामने कर ही क्या सकता है ? एक और बात जो मुझे स्पष्ट दिखाई देती है वह आपको नहीं दिखाई देती।'

'कौनसी ?'

'गुरुदेव ! लाट, गुजरात अथवा सोरठ अब अकेले टिक सकें ऐसा सम्भव नहीं। मालवा और सपादलक्ष* भी अकेले रहकर नहीं टिक सकेंगे। यदि ये सब एक न हो सके तो हम सब-के-सब नष्ट हो जायेंगे। युग-पर-युग व्यतीत होगए—लाट और गुजरात, गुजरात और मालवा, गुजरात और सपादलक्ष आपस में लड़ते चले आए हैं। इसी प्रकार चलता रहा तो हम निर्वीर्य और निराधार हो जायंगे। और फिर गुरुदेव ! लाट में बैठे-बैठे आपको कुछ पता भी तो नहीं है।'

---

*अजमेर के आस-पास का प्रदेश।

'क्या ?'

'जिन विधर्मी यवनों ने भीमदेव महाराज के समय में सोमनाथ लूटा था वे आगे बढ़ते ही चले आ रहे हैं। प्रति वर्ष उनके विषयमें अधिक-से-अधिक बातें कानमें आती हैं। यदि हम अन्दर-ही-अन्दर लड़ मरेंगे तो हमारी क्या दशा होगी ? पाटण में एक पागल यती आया था वर्षों पहले। उसके विषय में यह कहा जाता है कि वह सदा अलग-अलग धर्मों को त्यागकर एक धर्म स्वीकार करने की बात करता था। उसका कहना था, ऐसा न करोगे तो यवन तुम्हारे प्राण ले लेंगे। मुझे भी लगता है कि यदि कोई राजा भारत को एक न कर सका तो हमारा सत्यानाश अवश्य होगा।'

'इसीलिए अपने जयसिंहदेव को चक्रवर्ती बनाने तू सोरठ जा रहा है न ?' रेवापाल ने तिरस्कार से कहा।

'यदि उन्होंने मेरी मानी होती तो आज वह हो भी जाते। किन्तु हमारे ग्रह ही नहीं मिलते।' काक बोला।

'तो तू लाट को स्वतन्त्र नहीं होने देगा ?' ब्रह्मानन्द ने पूछा।

'मेरी चले तो नहीं।'

'तो जान-बूझकर लाट को हाथ से खोया क्यों ?' रेवापाल बड़-बड़ा उठा।

'रेवाभाई ! तुम अभी बात पूरी समझे नहीं हो। तुम जितना सोचते हो उतना बलवान् मैं नहीं हूं। यदि आज मैं न भी हुआ तो क्या ? लाट पराधीनता से मुक्त हो जायगा ? यहीं भूलते हो। गुरुदेव ! एकछत्र राज्य करने के लिए तो पाटण ही का सृजन हुआ है—'

'कैसे जाना ?' ब्रह्मानन्द ने पूछा।

'क्योंकि विधि ने उसे शूरवीरों का भी शूरवीर दिया है।'

'कौन जयदेव ?' ब्रह्मानन्द ने प्रश्न किया।

'नहीं। जयदेव चाहे जितनी 'फूं फाँ करें, हैं वह नगण्य। उनकी

फुंकारों के पीछे, सेना की घोषणाओं के पीछे, पाटण के कुक्कुट-ध्वज के पीछे—मुंजाल महेता है। मेरे जैसे भले ही मर जायं किन्तु जब तक वह रहेगा तब तक पाटण की कीर्ति का सितारा चमकत रहेगा।'

'तो फिर आज तक उसने कुछ किया क्यों नहीं ?'

'वर्णदेव दिवंगत हुए तब पाटण भी सोलंकियों का न था। आज कावेरा से श्रीमाल तक सोलंकियों का डंका बज रहा है वह क्या इन जयदेव महाराज के प्रताप से ? मुंजाल को आवश्यकतानुकूल साधन नहीं मिल पा रहे हैं। पहले मंडलेश्वरों ने झगड़ा किया; फिर पाटण के धनाढ्य प्रतिकूल हुए। इस समय श्रावक बिगड़े हुए हैं, नागर मन्त्री क्रुद्ध हैं, और ऊपर से राजा बेढंगा है। नहीं तो आज तक न जाने क्या हो जाता, यह कौन जानता है ?'

'तो, तू किस काम जा रहा है ?'

'मुंजाल महेता का क्या दाँव है यह मैं स्पष्ट समझ नहीं पाया हूं। किन्तु यदि मैं जीवित रहा और मेरी चली तो जूनागढ़ पराजित होगा और सोरठ भी लाट ही के समान हो जायगा।'

'शाबाश !' कठोर हास्य करते हुए रेवापाल बोला, 'ऐसा गुमाश्ता न हो तो सेठ उछल-कूद मचाए कैसे ?'

'रेवाभाई अब भी नरम नहीं पड़े। गुरुदेव ! मेरी स्त्री को आश्रय मिल जाय ऐसा प्रबंध कर दीजिए।'

'काक ! तेरे उद्देश्यों को देखते हुए तो तुझे जीते-जी रेवा माँ में फेंक देना चाहिए।'

'गुरुदेव ! रेवा मां भी मुझे अभयदान प्रदान करेगी।' गर्व से काक ने कहा। 'जब पाटण का स्वामी रेवामाँ के चरणों में आएगा, जब लाट की जननी जगत्-जननी बन जायगी, तभी मेरा उद्देश्य पूर्ण होगा। तब आपके कहे बिना ही इस सनातन अंबा की गोद में मरने के लिए सो जाऊँगा।'

'जीते-जी तो लाट को चुल्लू-भर पानी भी नहीं देता और मरते समय श्मशान में गाय लाने की बात करता है।'

'आप चाहे ऐसा ही समझें; किन्तु गुरुदेव! भाई से इतना-सा वरदान दिलाकर मुझे चिन्ता से तो मुक्त कर दीजिए।'

'रेवा! काक की स्त्री तेरी भाभी है। उसकी रक्षा करने का वचन दे दे।'

'मैं वैसे दूं? इस पापी को तो मेरे हाथों मरना है।'

'तो मैं कहां ना कहता हूं। किन्तु बाद में मेरी स्त्री सेर-भर धान के लिए भूखों न मर जाय भाई! निराधार होकर न रोए, मेरा पुत्र निराश्रय होकर कुम्हला न जाय—बस इतना ही वचन दे दे।'

'दे दे रेवा! इसमें कुछ भी अनुचित नहीं है।'

'अच्छा, काक! अपना सोचा तूने किया ही। तेरी पत्नी और पुत्र को निराधार कभी न होने दूँगा। अब तो ठीक? अब जा आज तो तुझसे थक गया हूँ। इस जन्म में अब अपना मुंह न दिखाना।'

'भाई! विधि ने क्या-क्या लिख रखा है कौन जाने?' कहकर काक ने दोनों को नमस्कार किया।

'काक! जहाँ कहीं रहे, काम तेरे गुरु को शोभा दे वैसा ही करना।'

'निश्चिन्त रहिए, गुरुदेव! अच्छा, अब आज्ञा?'

'हाँ, बेटा!'

काक पुनः नमस्कार करके चला गया।

'रेवा! यह लड़का है विलक्षण!' ब्रह्मानन्द ने कहा।

'स्वार्थ साधने में एक ही है।' रेवापाल ने उत्तर दिया।

: २० :

मित्रवधुएं

काक ने जल्दी से बन्दर पर जाकर इच्छानुकूल पोत का प्रबन्ध हुआ कि नहीं इसकी छानबीन की। वहां से लौटकर अन्य काम पूरे करके वह मंजरी के पास गया।

मंजरी ने सांसारिक जीवन स्वीकार किया था फिर भी शरीर और बुद्धि में वह जैसी थी वैसी ही मोहक बनी रही। वह पहले के ही समान गर्विष्ठा थी, पहले से भी अधिक विद्वान। जिन-जिन लोगों से उसका परिचय हुआ उन सभी पर उसकी मोहिनी प्रभाव कर गई थी।

उसका पांडित्य विद्वानों में उसके प्रति मान पैदा करता था, परदेशी विद्वान भृगुकच्छ में आते तो इससे भेंट करने अवश्य जाते और प्रशंसा से आर्द्र हुए हृदय से पराजय स्वीकार कर उसकी तुलना सरस्वती से करते हुए श्लोक लिखते। चारों ओर से जो योद्धा आते और दुर्गपाल का आतिथ्य स्वीकार करते वे उसके मुक्तसदीपन को भूलकर उसकी स्त्री के पुजारी हो जाते थे। भृगुकच्छ के साधारण लोग उससे परिचय होने पर उसे देवी मानते, वृद्ध उसे रेवा मां का अवतार मानकर उसके दर्शन कर कृतार्थ होते थे, अधेड़ वय वाले अपने घर के झंझटों को भूलने के लिए इसके निकट बात करने बैठ जाते थे, और एक अमृत-भरी दृष्टि की याचना करने वाले युवक उसकी एक अर्थहीन दृष्टि से प्रोत्साहन पाकर उसको प्रसन्न करने के लिए भवसागर पार करने लिए तत्पर हो जाते थे।

इस गर्विष्ठा, स्वरूप और सुन्दर रमणी के प्रति एक अस्पष्ट तिरस्कार की भावना वे ही पुरुष और नारियाँ रखते थे जो इसके सम्पर्कमें न आ पाते थे। मंजरी यह बात जानती थी, किंतु ऐसों को वह भी स्पष्ट तिरस्कार से देखती थी।

अपने पति और स्वयं की शक्ति में उसे इतनी श्रद्धा थी कि जब काक ने उसे रेवापाल द्वारा दिये हुए वचन की बात कही तो उसकी आँखों से चिनगारियाँ निकल पड़ीं।

'क्यों उसके पास भीख मांगने गए ?' उसने होठ-पर-होठ दबाकर पूछा, 'तुम्हें—महारथियों के शिरोमणि को—ऐसी याचना करते लज्जा न आई ? इतने अधिक अधीर क्यों होगए हो ?'

काक स्नेह में पली सुन्दरी का क्रोध देखकर मधुर हास्य कर उठा।

'मैं न होऊँ और कुछ उपद्रव हो जाय तो ?'

'तो मुझे क्या हो सकता था ? किसकी मजाल कि मेरा कुछ कर सके ?'

काक पुनः हँस दिया, 'हाँ, यह तो मुझे मालूम है। भृगुकच्छ का प्रत्येक नवयुवक तेरे लिए प्राण तक देने को तैयार हो जायगा।'

'नहीं। जैसे सब लोग तुम्हीं पर मोहित हो पड़ते हों!' मंजरी ने भी हंसकर उत्तर दिया। 'किन्तु रेवापाल के गर्व की तो कोई सीमा ही नहीं है। उसकी शरण माँगने से पहले मैं मर जाना अच्छा समझूंगी।'

'पगली! रही न वैसी-की-वैसी। मेरे कानों में उपद्रवों की भनक पड़ रही है! और इस सम्पूर्ण लाट में वचन का पक्का कोई है तो रेवापाल! ओबड़ को सौंपना तो निरर्थक है।'

'ओंबड़! जैसा बाप वैसा बेटा। मुझे तो उसका नाम ही अच्छा नहीं लगता। तुम व्यर्थ की चिन्ता कर रहे हो। सोमेश्वर है, मणिभद्र है, और क्या चाहिए ? तुम अपनी चिन्ता करो। और जिस प्रकार पंद्रह वर्ष पहले पाटण विजय करके लौटे थे इस बार भी वैसे ही विजय पाकर लौटना।'

'साथ में किसी को लेता आऊं ?'

'मंजरी से अधिक सरस मिल जाय तो—अवश्य! मेरी सौगन्ध है,' मंजरी ने हंसकर कहा। तेजस्वी, सुकुमार, स्फटिक-सी श्वेत इस मोहिनीके शब्द सुनकर वह सब कुछ भूल गया। वह पल-भर तक उसके

मुख की अपूर्व रेखाओं और उसके हास्य की विद्युत्प्रभा की ओर हर्ष से देखता रहा। फिर उचित उत्तर दे दिया; उसने मंजरी का चुम्बन कर लिया।

गर्विष्ठा मंजरी मान छोड़कर काक की बाहुओं में लिपट गई।

'भटराज!' उसने धीरे-से अंतर की अभिलाषा प्रकट की, 'शीघ्र लौटोगे न?'

'तुरंत। घबराओ नहीं। मुझे कुछ न होगा।'

दोनों आत्मश्रद्धा के आनन्द में चिन्ता भूल गए।

दूसरे दिन दुर्गपाल विदा हुआ। बंदर तक आम्रभट, नगरसेठ, माधव और मणिभद्र पहुंचाने गये। एक मन्दिर की छत पर से मंजरी क्षितिज में अंतर्धान होते हुए पोत पर खड़े हुए काक को देखती रही। पोत के अदृष्ट हो जाने पर आँचल से आँसू पोंछे और वौसरि को छाती से चिपका लिया।

उसकी दो-तीन सखियाँ साथ में थीं। वे चुपचाप इस स्नेही हृदय की व्यथा को देखती रहीं; मंजरी से एक शब्द भी कहने का किसी को साहस न हुआ।

उसने वौसरि को एक सखी को दिया और दर्शन करने के लिए मन्दिरकी ओर घूमी। एक विद्यार्थीने आकर दीपक जलाया। वृद्ध पुजारी लँगड़ाता-लँगड़ाता आया और हंस-हंसकर समाचार पूछने लगा। हास्य की किरणें प्रकीर्ण करती हुई मंजरी अपने तेज से अंधेरे मन्दिर को भी प्रकाशमान कर रही थी।

वह मन्दिर से बाहर निकली ही थी कि बेनां के साथ नगरसेठ के यहाँकी अन्य स्त्रियाँ आईं। रेवापाल उसको तिरस्कारकी दृष्टि से देखता था यह मंजरी को मालूम था। बेनां को भी उसका संसर्ग पसंद न था। अतः उसकी ग्रीवा की भंगिमा में गर्व बढ़ गया, उसके हास्य में तनिक अभिमान प्रकट हुआ।

'मंजरी भाभी, कैसी हो?' बेनां ने कहा।

'अच्छी हूं। तुम कैसी हो ?'

'मेरे देवर गए न ?'

'हाँ'

'मंजरी, इधर आओ, एक बात कहूं ?'

'क्या ?' कहकर मंजरी कुछ दूर बेनां की ओर गई।

मंजरी तनकर सीधी खड़ी हो गई। उसकी आँखें अधिक बड़ी हो गईं। वह एक शब्द भी न बोली।

'कहलाया है,' पतिपरायण बेनां मंजरी के गर्व को देख उत्पन्न हुए अपने क्रोध को दबाकर बोली, 'कि कुछ काम हो तो उन्हें कहला भेजना।'

क्षण-भर के लिए मंजरी के होंठ कांप उठे। उसने उत्तर दिया, 'बेनां देवी! उनसे कहना कि भटराज की स्त्री को किसी के संरक्षण की आवश्यकता नहीं।'

मंजरी की आखों में तलवार की धार जैसी तीक्ष्णता थी; उसके संस्कृत स्वर में अपमान के सरगम के सभी सुर थे।

बेनां को इन शब्दों से गहरी चोट लगी। पतिभक्ति करते-करते सीखी नम्रता भूल गई; और अपमानित स्त्री के हृदयमें निवास करते—विषैली नागिन के विष से भी भयंकर विष उसके अन्तःकरण में घुस गया।

'हाँ, मैं भूली। तुम्हारे यहां कभी ही किस बात की है कि उनके संरक्षण की आवश्यकता पड़े,' कह बेनां वहाँ से चली। शब्द निर्दोष थे; किन्तु उनमें छिपा विष मंजरी ने देख लिया। एक भयंकर दृष्टि बेनां पर डाली और गर्व से सिर ऊंचा करके वहां से चली गई। उसकी आंखों से क्रोध के आँसू निकल आए।

उसकी सखियां कुछ जान न पाईं। वे भी मन्दिरसे बाहर निकलीं। साम्बा बृहस्पति के बाड़े में प्रवेश करने से पहले उन्हें एक स्थान पर मुख्य पथ पार करना पड़ता था। वे जैसे ही मुख्य पथ पर गईं वैसे ही

उन्होंने पथ के दूसरी ओर से कुछ गुरुओं सहित एक नवयुवक साधु को आते हुए देखा। मंजरी अपनी सखियों को लेकर त्वरित गति से गलीमें चली गई, किन्तु उसने उस साधुका तेजस्वी मुख देख लिया था। एक सखी से बोली, 'यह जो नया साधु आया है न, बड़ा विद्वान् माना जाता है।'

'हां! मैंने भी सुना है। बड़े-बड़े पंडितों की इसके सामने नहीं चलती।'-

हेमसूरि की चंचल दृष्टि मंजरी पर पड़ गई थी। काक द्वारा दिया हुआ परिचय उसे याद आया—बचपन में खंभात में जिस युवती के पड़ोस में रहा था और जिसे काक उठा ले गया था वही।

उसकी विस्मृत तेजस्विता का उसे स्मरण हो आया।

दुर्गपाल को कैसे यह स्त्री मिली और उसके पांडित्य के विषय में लोकोक्ति क्या थी यह तो उसे ज्ञात था। उसने निकट ही चल रहे एक श्रावक से पूछा, 'दुर्गपाल की यह भार्या बड़ी शास्त्र-विशारद मानी जाती है न?

'जी हाँ।' युवक साधु की सर्वज्ञता पर मोहित होकर श्रावक ने कहा।

: २१ :

अपरिचित की खोज

आंबड़, तेजपाल, माधव और सोमेश्वर काक को विदा करके लौटे। आंबड़ में अब कुछ-कुछ साहस आया। काक से उसे भय लगता था अतः उसकी उपस्थिति में वह निःसहाय बना रहता था। अब तो जहाँ तक जूनागढ़ न हार जाय और कोई दूसरा दण्डनायक या दुर्गपाल न

आ जाय तब तक वह लाट का एकछत्र स्वामी था। उसके आनन्द का पार न रहा। सोमेश्वर काक के घर गया, अन्य भटराज माधव के यहां भोजन करनेके लिए जाने वाले थे इसलिए अपनी-अपनी पालकीकी ओर बढ़े। आम्रभट की पालकीके आस-पास कतिपय चाटुकार और कुछ लोग नये दुर्गपाल को देखनेकी उत्सुकतासे खड़े हुए थे। एक सैनिक ने धक्के मारकर इन सबको दूर खदेड़ा और आम्रभट अपनी पालकीमें बैठा। कहारों के पालकी उठाने से पहले आस-पास की भीड़ को चीरता हुआ एक मोटा मनुष्य पालकी तक आया और झुक-झुककर अभिवादन करने लगा।

आम्रभट ने नेरा तोतला को पहचान लिया। उसे काक द्वारा दी गई चेतावनी का स्मरण हो आया। नेरा लहजे में बोल रहा था, 'घ-घ घणीखमां महाराज! दु-दुर्गपाल म-महाराज की ज-ज-जजय। ब--बापू को नमस्कार!' झाड़ के धड़ जैसा उसका मोटा शरीर नीचे झुकते समय कुछ-कुछ आनन्द में झूमते हुए हाथी के बच्चे का स्मरण करवा रहा था। आस-पास खड़े हुए लोग हंसने लगे।

आम्रभट को तुरन्त वही अपरिचित सुन्दरी याद आई। हमीर मृत्युशैया पर लेटा था और वीरा उतना बुद्धिमान न था। नेरा के बिना उसे और कौन खोज सकेगा?

आम्रभट ने काक की चेतावनी की चिन्ता न की। वह नेरा के सामने देखकर मुस्करा दिया, 'क्यों नेरा?'

'घ'''घणीखमां बापू! आपकी कृपा से आनन्द है।'

आम्रभट को लगा कि नेरा कुछ कहना चाहता है। उस अपरिचिता का समाचार तो नहीं लाया है?

'मेरे साथ चल।'

'ब—बापू की आज्ञा। चि....चिरंजीव हो, सौ....सौ वर्ष तक। घ....घणीखमां अन्नदाता।' कहता हुआ वह पालकी के एक ओर चलने लगा।

पालकी थोड़ी दूर ही गई होगी कि नेरा ने आँबड़ के कान में कहा, 'म''''महाराज ! प....प....प....पता मिल गया ।'

'अच्छा !' हर्षित होकर आंबड़ बोला । उसका हृदय उछल पड़ा ।

नेरा ने आंख-ही-आंख में उसे सावधान रहने के लिए कहा ।

'लम्बी है ?'

आंबड़ ने गर्दन हिलाई ।

'दू...दूध जैसा श्वेत रंग ?'

आंबड़ ने ज़ोर से गर्दन हिलाई ।

'औ....और म....मन हर ले ऐसी जादू भ —भरी आंखें—'

नेरा अपनी वाक्पटुता की परीक्षा करने लगा ।

आंबड़ को बुरा लगा किन्तु चुप रहा । उसकी प्रियतमा के विषय में इस नौकर का इस प्रकार बातें करना उसे खटका ।

'औ....और ब....बाएं हाथ में रुद्राक्ष का क....कड़ा है ।'

आंबड़ ने आँखें मींच लीं, और अपनी प्रियतमा की प्रतिमा मस्तिष्क के सामने लाया ।

'क....क्यों ठी... ठीक है न ?' नेरा ने चिंतित होकर पूछा ।

'नहीं । अच्छा फिर ?'

'भू...भूल गया ब....बापू ! एक रुद्राक्ष और एक स्फटिक ।'

आँबड़ पालकी में उछल पड़ा, 'हां ।'

'त...तो मिल गई ।'

'कहां है ?'

'ब....बापू, मैं ग-ग-गरीब मारा जाऊंगा । म''''मेरे छ....छ शत्रु हैं।'

आंबड़ अधीर हो गया ।

'हरामखोर, बोल !'

'अन्नदाता ! स—सरस्वती के समान विद्वान् है ।'

'सचमुच ?'

'ब...बापू ! मैं तो अब त....तक भ....भ...भट भी नहीं बना ।'

'तू भट बनना चाहता है ?'

'हाँ, ब....बापू ! आपकी सेवा करते-करते ही मरना चाहता हूं ।'

'अच्छी बात है ।'

'अन्नदाता, व....वचन दीजिए, मैं कहीं ब....बीच में ही न मारा जाऊं ।'

'बोल, कायर ! घबराता क्यों है ?'

'ब....बापू ! मुझे भट बनाएंगे न ?'

'हाँ, हाँ, हाँ ।'

'तो कहता हूं । कि....किन्तु ब....बापू ! हाथ लग सके, ऐसी नहीं है ।'

'इससे तुझे क्या 'पंचात' ?' आँबड़ ने कहा ।

'तो आप जानें ! म...महाराज ! वह तो भटराज की विवाहिता है ।

'हैं ? किसकी, माधव की ?'

'श...शी....शी ब....बापू ! उस द....दूसरे की ।'

आम्रभट का हृदय मानो रुक गया, 'वह गया उसकी ?'

नेरा ने ज़ोर से गर्दन हिलाई ।

आँबड़ मौन रहा । वह ठगा-सा हो गया । उसके कानों में धमधम आवाज़ होने लगी ।

अन्नदाताओं के अंतर को पहचानने का नेरा ने विशेष अध्ययन किया था । वह मन-ही-मन मुस्कराया । उसके बिना इस नए दुर्गपाल का चल ही नहीं सकता ।

'म....महाराज ! ब....बात ब....बनने जैसी नहीं है ।' उसने धीरे से कहा ।

'नेरा ! कुछ भूल हुई है ।' मणिभद्र का रूप और रंग याद आते ही आम्रभट के हृदय में शङ्का उत्पन्न हुई ।

'स''''स्वयं चलकर द''''देख लीजिए ।'

आम्रभट को कुछ सूझ न पड़ा । नेरा के पास युक्ति थी ।

'म....महाराज ! अ....आप अब दुर्गपाल हो गए हैं। भ....भट-राज के घर के भीतरी हाल-चाल जान लेना चाहिए।'

आम्रभट ने अनुग्रह-भरी दृष्टि से नेरा की ओर देखा, 'तू मुझसे संध्या को मिलना।'

'ज'''ज'''जैसी आज्ञा।'

आम्रभट के मस्तिष्क में दो बातें तैर गईं। एक तो अपरिचित रमणी का पता मिलने का हर्ष—और दूसरी उसे सिंह के पंजे से छीनना होगा इस बात से उत्पन्न भय। भृगुकच्छ आने से पहले उसने नए नगर के स्त्री-पुरुषों के विषय में छान-बीन की नहीं थी; जितनी कुछ जानकारी थी वह उसके पिता उदा द्वारा प्राप्त हुई थी; और वह जिह्वा मंजरी के विषय में जानकारी देने के लिए हिल भी सके ऐसा तो था नहीं, मणिभद्र भी विशेष कुछ बता सकें ऐसी स्थिति में नहीं थे। इन्हीं कारणों से आँबड़ महेता ने मंजरी को एक सामान्य स्त्री समझ लिया था। अतः नेरा की बात ऐसी अविश्वसनीय लग रही थी कि इसे मानने को जी न किया।

इस अपरिचित मोहिनी का वह ऐसा दास हो गया था कि इस अनिश्चित दशा से छुटकारा पाने के लिए वह छटपटा उठा। जैसे ही माधव का घर आया वैसे ही आम्रभट ने माधव और तेजपाल से कहा—'यदि समय हो तो मैं एक काम पूरा कर आऊँ।'

'क्या ?'

क्षण-भर के लिए आँबड़ हिचकिचाया, 'काकभट चले गए अतः मुझे तनिक उनके घर हो आना चाहिए। उनके घर वालों को सभी को प्रसन्नता होगी।'

'भोजन करके चले जाना।' माधव ने कहा।

'फिर तो सेठ के यहाँ हेमचन्द्रसूरि आने वाले हैं। और फिर बहुत संध्या हो जाने पर जाना भला नहीं लगता।'

तेजपाल सेठ अपनी कानी आँख से शिष्टाचार के इस समर्थक की

ओर देखने लगे। फिर कुछ गम्भीर और कुछ विनोद-भरी वाणी में कहा, 'बात सच है। काक की स्त्री भी अपने आपको एकदम निराधार न समझेगी। तुम्हारे जैसे भले पुरुष यदि परिपाटी की रक्षा न करेंगे तो करेगा कौन ? निस्सन्देह जाओ।'

आम्रभट वृद्ध की ओर देखने लगा। क्या यह रहस्य पा गया ? नगरसेठ के मुख पर से कुछ भी प्रकट न हो रहा था।

'अच्छी बात है। मैं यह आया।' कहकर आम्रभट पुनः पालकी में जा बैठा। 'जल्दी चलो—साम्बा बृहस्पति के बाड़े में, मेरे साथ किसी को आने की आवश्यकता नहीं।' उसने अपने अश्वारोहियों को आज्ञा दी।

: २२ :

मंजरी को धोखा

आँबड़ महेता को यदि प्रतिष्ठा को धक्का पहुंचने का भय न होता तो वह कहारों को दौड़ने के लिए कहता, यदि वह समझता कि लोग उसे पागल न कहेंगे तो वह स्वयं दौड़ता, यदि उसके पर होते तो वह उड़ जाता। माधव के घर से साम्बा बृहस्पति के बाड़े तक का पथ उसे योजनों लंबा लगा।

इतने थोड़े समय में ही मदांध प्रणयी का मोह उसके मस्तिष्क में व्याप्त हो गया था। उस पर से, काक का घर उसका ही तो है, कुछ-कुछ ऐसा विचार भी उसे हुआ। जिस घर के सामने सैनिकों और चाटुकारों की भीड़ रहा करती थी वहाँ आज निर्जनता देखकर मनुष्य जीवन की असार्थकता पर दो-चार बहुत ही सुन्दर विचार उसके मन में उठ आए, और इस निस्तेज, सूने घर में निवास करती

सुंदरी पर दया आई। उस बेचारी के हृदय पर क्या बीत रही होगी ?

वह घर के सामने के चौक में गया जहाँ कोठरी में इक्के-दुक्के मनुष्य निश्चिन्त होकर लेटे पड़े थे।

एक कोने में गेरुई ध्वजा पर स्वर्ण-खचित कुक्कुट-पाटण की पताका भूमि पर रखी हुई थी, दूसरी ओर धौंसे की साँढ़नी धीरे-धीरे पागुर कर रही थी। आमभट को अपनी नई सत्ता का भान हुआ। कल से जहाँ वह रहेगा वहाँ यह पताका फहरायगी और ये नगाड़े बजेंगे।

वह चौक में होकर अंदर के कमरों के बन्द द्वार तक आया और हिचककर खड़ा रह गया। उसका हृदय धड़कने लगा। विदेश में, अन्य नगर में, लोकप्रिय, और प्रतापी वीरश्रेष्ठ के घर में, ठीक दुपहर को, अकारण ही उसकी स्त्री से भेंट करने के लिए वह खड़ा हुआ था। काक की स्त्री को उसकी सहायता या उसके आश्वासन की आवश्यकता ? कितना हास्यास्पद कारण। माधव और तेजपाल मन में क्या समझे होंगे ? उसका मन वहाँ से लौट जाने को हुआ।

किन्तु लौटे कैसे ? कहार क्या सोचेंगे—माधव और तेजपाल क्या धारणा बनाएँगे ? नागरिक क्या समझेंगे ? ऐसी डूबती-उतराती स्थिति में वह खड़ा रहा।

अंदर कोई बोल रहा था। उसकी आवाज़ एक जाली में से आ रही थी। लकड़ी की नन्हीं जाली में से उसने देखने का प्रयत्न किया, किन्तु स्पष्ट कुछ दिखाई न पड़ा। चार-पाँच मनुष्य-भर बैठे हुए दिखाई दिए।

किन्तु आमभट के हृदय में उस स्वर ने विचित्र झंकार उठा दी—अविमुक्तेश्वर के मंदिर वाली सुंदरी का स्वर !

'भगवान् पार्श्वनाथ !' उसने धीरे-से निःश्वास लिया। उस मँजी हुई वाणी की मिठास, उसके भाव कुछ निराले ही थे।

'पुराणी काका! वह गूहक की प्रशंसा याद है न? सोमेश्वर कभी से मेरा सिर खा रहा है। उसे सुनाओगे? मैं भूल गई हूँ।'

एक वृद्ध वाणी हास्य कर उठी।

'किसलिए सिर खा रहा है?' उस स्वर ने प्रश्न किया।

'यह कहता है कि आपका भतीजा लाट की सत्ता भोगना छोड़कर पाटण की सेवा कर रहा है।' उस सुन्दरी का स्वर सुनाई पड़ा।

'इसीलिए जयदेव महाराज जब चाहें एक घड़ीमें उन्हें बुला सकते हैं। क्यों? वे कोई साधारण पुरुष नहीं हैं। सोमेश्वर का स्वर सुनाई पड़ा। 'इनके हाथ में राजदंड तो शोभा देता है—लकड़ी नहीं।'

'तू समझता क्या है?' पुनः उस स्त्री का स्वर सुनाई पड़ा। 'ऐसा होता तो भीष्मपितामह धृतराष्ट्र को सिंहासन क्यों सौंपते? श्री कृष्ण उग्रसेन को यादवाधीश क्यों बनने देते?'

'तभी तो धृतराष्ट्र ने राज्य किया और अठारह अक्षौहिणी सेना का निकंदन हो गया और उग्रसेन के लिए यादवास्थली बनी।' सोमेश्वर कहता सुनाई पड़ा।

वह स्त्री हँसी। कैसा मधुर हास्य! आमूभट के मुंह में पानी आ गया।

'काका! इस बालक को आदि कवि वाल्मीकि के वचन सुनाओ तो!'

थोड़ी देर तक पुराणी गला खखारता रहा और फिर अपनी कर्कश आवाज़ में बोला:

धन्यस्त्वं न त्वया तुल्यं पश्यामि जगती तले।
अयत्नादागतं राज्यं यतस्त्वं त्यक्तुमिच्छसि॥*

'समझा?' उस स्त्री की आवाज़ आई। 'भरत ने बिना प्रयत्न

---

*धन्य है तुझे, तेरा जैसा दूसरा संसार में नहीं देखा क्योंकि बिना माँगे मिले हुए राज्य को भी तू छोड़ना चाहता है—रामायण।

किये हुए हाथ आया राज्य त्याग दिया इसीलिए वह महान् बन गया। उन्हीं जैसे व्यक्ति धन्य हैं, रे रे जैसे लोभी नहीं। वह हंसी। पुनः उस मधुर हास्य को सुनकर आम्रभट अधीर हो गया।

'अच्छी बात है।' हसकर सोमेश्वर ने कहा, 'हम लोभी हैं तो लोभी ही सही। हमारे भाग्य में न भरत होना लिखा है न रामचंद्र।'

'कैसे जाना?' उस स्त्री ने पूछा।

आम्रभट का अधीर मन अब और अधिक न रुक सका उसने आगे बढ़कर कड़ा खटखटा दिया। उसके मस्तिष्क में उस सुंदरी के शब्द घूम रहे थे।

इतने में उसकी दृष्टि उस सांढ़नी के हाँकनेवाले पर पड़ी। वह सांढ़नी को खड़ा करने का प्रयत्न कर रहा था। संभव है वह धौंसा निशान यहाँ से ले जा रहा हो। जिस प्रकार आदि कवि को काव्य की प्रेरणा हुई थी उसी प्रकार उसका श्लोक सुनकर आँबड़ महेता को एक प्रेरणा हुई, यहाँ आने का कारण सूझ गया। 'बिना प्रयत्न किये हुए हाथ आया राज्य त्याग दे वही महान् होता है।' वह गुनगुनाया।

'हो—हो—कौन आँबड़ भाई! तुम किधर से?' कहकर मणिभद्र ने द्वार खोलकर उसका स्वागत किया।

कल जिस कमरे में काक से भेंट की थी उसी कमरे में आँबड़ बैठा। हिंडोले पर पुराणी काका और सोमेश्वर बैठे हुए थे। अन्दर के कमरे की देहली पर शाक काटती हुई वह सुंदरी बैठी हुई थी।

आम्रभट ठगा-सा देखने लगा। वही मुख, वे ही आंखें, वही भंगिमा, वही रेखाएँ! संपूर्ण प्रकोष्ठ में अनंत यौवन के अधिकारी देवों के नृत्य में विभोर स्वर्गलोक का-सा उल्लासजनक, मादक वातावरण था। दो विशाल, तेजस्वी नयन उस पर टिके हुए थे। मंजरी का संगमरमर-सा श्वेत भाल दुविधा से आकुंचित हो गया।

दो दिन से जिसके लिए प्रतिक्षण प्राण व्याकुल थे उसी रमणी को यहाँ देखकर उसे रोमांच होआया। वह अपने आप पर वश न रख सका;

और आगे भी न बढ़ सका। वह अपनी सुध-बुध खो बैठा।

सोमेश्वर लाट का युवक, रूपवान योद्धा था। वह काक को शंकर और मंजरी को पार्वती समझता था। इन दोनों के बीच उसकी भक्ति, उसका हृदय, उसकी सेवा बंटे हुए थे, और शंकर की अनुपस्थिति में अरक्षित पार्वती का अपमान करने के लिए आने वाले की ओर जिस प्रकार नंदी देखता है उसी प्रकार वह आँबड़ की ओर देखने लगा। वह काक का शिष्य था; गुरु की कृपा से वह समय और रुचि परख सकता था। उसने मंजरी के भाल पर पड़ी सिकुड़न देखी। वह हिंडोले पर से उठा, द्वार तक आया और आँबड़ और मंजरी के मध्य में खड़ा हो गया।

'कहिए भटजी! इस समय यहाँ?'

डूबता हुआ तारा जैसे प्रबलता से चमक उठता है वैसे ही आँबड़ में साहस आया।

'सोमेश्वर! मुझे देवी से बात करनी है।' वह देहली के अन्दर आगया! जैसे-जैसे वह बोलने लगा वैसे-वैसे उसमें साहस बढता गया। 'देवी! क्षमा करना कोई बाहर था नहीं इसलिए पहले से सूचना न भिजवा सका।'

संस्कारी स्त्री की स्वाभाविक सभ्यता से मंजरी बोली, 'आओ भाई, बैठो। इस समय कैसे?'

आँबड़ जाकर हिंडोले पर बैठ गया। उसने अपनी प्रेरणा का उपयोग किया, 'देवी! मैं एक याचना करने आया हूं।'

'क्या?' गर्व से ऊपर देखते हुए मंजरी ने पूछा। आम्रभट उसकी आँखों की चमक को ध्यान से देखने लगा।

'भटराज कुछ ही दिनों में लौट आयंगे और मैं तो उनका दास मात्र हूं। ये धौंसानिशान यहीं रहने दें तो कैसा? मैं नगरसेठ के यहाँ भी तो मात्र अतिथि हूँ। आपकी आज्ञा हो तो मैं और माधव प्रतिदिन प्रातःकाल यहाँ आ जाया करें और थोड़े-बहुत लोगों से मिल-

मिला लिया करें। सारी शोभा तो काक भटराज के यहां भली लगती है। मैं तो उनके पुत्र के समान हूँ।'

मंजरी और सोमेश्वर ने एक-दूसरे के सामने देखा। दोनों में से एक भी इस सौजन्य का अर्थ न समझ पाया। वास्तविक अर्थ तो दोनों में से एक भी नहीं समझ सकता था।

'भाई!' मंजरी बोली, 'जहां तुम निवास करते हो वहीं यह सब ठाठ शोभा देगा।'

'मैं यहां से यह ठाठ ले जाऊंगा तो लोग कहेंगे कि इस विदेशी ने आकर लाट का गौरव छीन लिया। मेरा काम लाट को प्रसन्न करना है—उसके हृदय को कष्ट पहुंचाना नहीं।' आम्रभट की जिह्वा में अप्रत्याशित चतुरता आ गई। जैसे-जैसे वह बात कर रहा था वैसे-वैसे उसके मुंह पर निर्मलता और सच्ची लाग के भाव निखरते जा रहे थे।

'बाहर जहां काक भट जी बैठते थे वहीं कुछ समय तक हम बैठेंगे। आपको तनिक भी असुविधा न होने देंगे।' आंबड़ ने पुनः याचना की।

'सम्भव है देवी को अच्छा न लगे।'

'नहीं! मुझे कोई असुविधा न होगी। मैं तो सामने का चौक काम में लाती ही नहीं।'

'तो फिर मेरी प्रार्थना स्वीकार कर कृतार्थ कीजिए।'

'अच्छी बात है, अभी जैसा चलता है वैसा ही चलने दो।' आम्रभट की बौंछें खिल गईं। वह अपने उद्देश्य में सफल हो गया।

'तो, सोमेश्वर, निशानदार को कह दो कि धौंसानिशान यहीं रहने दें। मैं दूसरा आज्ञापत्र लिख दूंगा। देवी! अब आज्ञा लूँगा। क्षमा कीजिएगा।'

'आँबड़ भाई, पान तो लेते जाओ।' मणिभद्र ने कहा।

'लाइए। माधव बाट जोहता होगा। मुझे उसके यहां भोजन करना

है।' कहकर वह मंजरी के सामने देखकर मुस्करा दिया।

मंजरी नीचे देखती शाक काटती रही।

आँबड़ ने पान लिया और नमस्कार करके विदा ली।

'जो कुछ भी हो, आँबड़ भाई है आदमी लाख रुपए का।' मणिभद्र ने प्रमाण-पत्र दिया।

'लड़का लगता भला है।' मंजरी ने कहा।

'जो यह कहता है यदि वह सब सच है तो बुरा नहीं है,' सोमेश्वर बोला। 'एक और बात अच्छी होगी। महाराज समझते थे कि हेमचन्द्र और यह मिले हुए हैं। यहाँ बैठक होगी तो मेरी भी दृष्टि रहेगी।'

: २३ :

हेमचन्द्र चकित हो जाता है

आँबड़ के मस्तिष्क में प्रथम बार गाड़ी में जुते हुए नए घोड़े का-सा ताव आया। उसे लगा कि वह महान् पुरुष है, लाट का सत्ताधीश है, ये सब लोग उसकी आज्ञा के आधीन हैं। मंजरी जैसी मोहक स्त्री के लिए उत्पन्न मोह का उत्साह उसकी रग-रग में समा रहा था, और आज प्रथम प्रयास ही में विजय पाई थी। उसके प्राण मदोन्मत्त थे। प्रथम बार ही उसे अपनी शक्ति में पूरा-पूरा विश्वास हुआ।

वह बिलकुल ही कच्चा न था। माधव और तेजपाल को सारी योजना बता देना उसे जँचा नहीं। किन्तु आनन्द उसके मुख पर से टपका पड़ता था। तेजपाल और माधव ने उसे नई सत्ता के मद का परिणाम समझा।

अन्त में माधव के यहाँ भोजन समाप्त हुआ, और तीनों व्यक्ति तेजपाल सेठ के यहाँ आए।

वे तीनो सेठ के घर पहुंचे उससे कुछ ही समय पहले हेमचन्द्र सूरि आगए थे। रेवापाल घर में था। उसीने इस युवक साधु का स्वागत-सत्कार करके उसे चौकी पर बिठाया। सूरि के साथ आने वाले आस-पास बैठ गए।

रेवापाल इस नए साधु से पिछले दिन भेंट कर आया था, और वह भृगुकच्छ किसलिए आये थे इसका रहस्य जानने का भी उसने प्रयत्न किया था। किन्तु इस बालक दिखाई पड़ने वाले साधु का व्यक्तित्व विचित्र था। वाक्य वह ऐसे बोलता था कि उनका अर्थ स्पष्ट समझ में नहीं आता था। उसकी बातचीत में कुछ इस प्रकार की अस्पष्ट विद्वत्ता होती थी कि सुनने वाले को उसके ज्ञान की अगाधता का तुरन्त भान हो आता था। उसके बात करने के शांत और अपरोक्ष ढंग में सत्ता और गर्व दिखाई तो नहीं पड़ते थे किन्तु थे अवश्य—यह सुननेवाला तुरन्त समझ जाता था।

'रेवापालजी! आपकी ख्याति सुनकर मैं प्रसन्न हुआ हूं। आपके कुल और आपके पिता की कीर्ति को आपने उज्वल किया है। असंतोष इतना ही है कि जितने आप रणवीर हैं उतने धर्मवीर नहीं।'

'मुझसे जितना बन सकता है मैं करता हूं।' रेवापाल ने कहा। उसे साधुओं के साथ बात करने से चिढ़ थी।

'किन्तु शिवमन्दिर की ओर तनिक पक्षपात अवश्य है न?' हेमचंद्र सूरि ने प्रश्न किया। इस बात से उन्होंने जैन और शैव संप्रदाय के बीच विरोध है इस वाद-विवाद को बड़ी चतुरता से छेड़ दिया।

'आप जैसे योद्धा में वैराग्यात्मक शुद्ध वृत्ति आते समय लगेगा, राज्य-धर्म की ओर भी झुकाव होगा। किन्तु आप तो लाट के श्रावक-श्रेष्ठ हैं, आपको तो पहले अपने धर्म का पोषण करना चाहिए।'

रेवापाल इस समझदार युवक की बातें अधीर होकर सुनने लगा, उसने उत्तर नहीं दिया। सूरि आगे बढ़े, 'अच्छा तो आप शस्त्र किसलिए धारण करते हैं? आप तो अहिंसा-धर्म सहज में ही ग्रहण कर सकते हैं।'

'मुझे अहिंसा धर्म रुचता नहीं।'

'अरेरे!' मृदुलता से हँसकर साधु ने कहा।

'आप एक बार खंभात पधारिए, आपके संकल्प में परिवर्तन हो जायगा।'

'लाट न छोड़ने का मैं प्रण कर चुका हूं।'

'अच्छा! किसलिए?'

'लाट का सौभाग्य लुट चुका है। उसकी दुर्दशा में कैसे इसे छोड़ दूँ? यदि लाट की विजय-सेना खंभात आती तो मैं भी अवश्य आता।' निराशा-भरी वाणी में रेवापाल ने कहा।

'जयदेव महाराज के राज्य में कोई कमी हो सकती है यह मेरी समझ में नहीं आता।'

'स्वाभाविक ही है।' तनिक कठोरता से रेवापाल ने कहा। दूसरे ही क्षण उसे ध्यान आया कि सूरि बात करना नहीं चाहते थे वरन् उससे घात निकलवाना चाहते थे। उसने तुरन्त बात फेर दी, 'आप कब तक ठहरेंगे?....लीजिए यह पिताजी और आँबड़ महेता आगए।' कहकर वह चुप हो गया और ऊंचा खिसककर बैठ गया।

'अरे, प्रभू! क्षमा कीजियेगा! माधव भट ने तो ऐसा भोजन कराय' कि समय का भान ही न रहा। मुझ रंक का घर पवित्र हो गया।' तेजपाल सेठ ने दण्डवत् प्रणाम किया। माधव ने नमस्कार किया। सूरि जी ने सभी को 'धर्म-लाभ' कहा। पाटण की राज्य-सत्ता के प्रतिनिधि इस त्रिगुट की ओर एक तिरस्कार-भरी दृष्टि डालकर रेवापाल वहाँ से चला गया।

'सूरिजी महाराज! आप ऊपर पधारिएगा? मुझे कुछ पूछना है।'

तेजपाल ने वहाँ बैठे हुए अपरिचितों को हटाने के उद्देश्य से कहा।

'नहीं। और क्यों ? हम लोग अब जायंगे।' कहकर सब उठ खड़े हुए और सूरिजी के चरण-स्पर्श करके चले गए।

'आँबड़ !' हेमचन्द्र बोला, 'अब बोल ! क्या करना है ?'

'करना क्या है ? जैसा चलता है चलेगा।'

हेमचन्द्र ने तनिक चकित होकर आम्रभट की ओर देखा।

'अर्थात् ?'

'सेना तो इन भटराज के आधीन है। शेष कार्य सेठ और मैं करेंगे।'

'किन्तु तुम्हें किस कारण यहाँ भेजा है यह तुम्हें मालूम है ?'

'हाँ।'

'तो अब लाट की सत्ता काक के हाथ से अपने हाथ में लो। देखो न—' हेमचन्द्र ने तेजपाल और माधव की ओर घूमकर कहा, 'त्रिभुवन ने काक की सत्ता यहाँ ऐसी जमने दी कि लगता है लाट वास्तव में काक का है महाराज का नहीं। इसीलिए महाराज ने काक को बुला लिया और आम्रभट को नियुक्त किया। अब आप तीनों पाटण की सत्ता के प्रतिनिधि हैं। अब आपको ऐसी युक्ति करनी चाहिए जिससे काक के हाथ में केन्द्रित सत्ता फिरसे महाराज के हाथ में आ जाय।'

किन्तु अब वह है ही कहाँ ?' माधव बोला।

'वह चला गया, महाराज तो समझते थे कि उनकी आज्ञा का अनादर कर यहाँ से निकलेगा ही नहीं।'

'हाँ। इसीलिए मुझे भी आज्ञा-पत्र मिला था कि बल से या छल से काक को यहाँ से रवाना करना है।' माधव ने कहा।

'आँबड़ महेता मेरे नाम भी ऐसा ही आज्ञा-पत्र लाए थे।' तेजपाल ने कहा।

'काक तो गया,' आँबड़ बोला, 'अब और क्या रह गया है ?'

'उसकी अनुपस्थिति-मात्र से क्या होने का है? उसकी सत्ता जड़ से उखाड़ फेंकना है। मान लो वह कल फिर आजाय तो?' सूरि ने पूछा।

वृद्ध तेजपाल की कानी आँख हेमचन्द्र से आँबड़ और आँबड़ से हेमचन्द्र पर डोलती रही। ऐसे समय पर एक अक्षर भी बोलकर अपना अभिप्राय प्रकट करे ऐसा कच्चा बनिया वह न था।

'किन्तु अब करना क्या रह गया है?' तनिक अधीर होकर आँबड़ ने पूछा।

'पहले तो उसके आदमियों को हटाकर उसके हाथ की सत्ता अपने हाथ में करो।'

'किन्तु अब सत्ता है किसके हाथ में?'

'सोमेश्वर नए गढ़ का गढ़रक्षक है। उसका मित्र भाभासेठ कोठारी है। उसके घर का आदमी रुद्रमल्ल लाट सेना का नायक है। इन तीनों को हटाना होगा।' हेमचन्द्र ने कहा।

तेजपाल इस बालक-से सूरिकी जानकारी और शक्ति देखकर धक् रह गए। केवल आँबड़ के मस्तिष्क में सोमेश्वर का नाम सुनकर मंजरी की बात आई। उसे लगा मंजरी उसीकी है, उसकी मान-प्रतिष्ठा बढ़ाने का उसने निश्चय किया था। और ये तो उसके आदमियों को हटाने की, उसके ठाठ को नष्ट करने की, उसके पति की प्रतिष्ठा भंग करने की बात कर रहे थे। उसे लगा मानो उसीकी प्रतिष्ठा लूटने की बात हो रही हो, कोई उसीका अपमान कर रहा हो, ऐसा उसे लगा।

'और धौंसानिशान' शांत सूरि की बात आगे चली, 'काक के यहां है उसे भी मंगवा लो।'

आँबड़ के सिर पर मानो चोट लगी। धौंसानिशान तो काक के यहां रहेगा ऐसा वचन वह मंजरी को दे आया था। वहां से वह कैसे मंगाले? मंजरी के घर को क्यों शोभाहीन बनाया जाय? लाट की सामाज्ञी जैसी सुन्दरी को कैसे एक साधारण घर की गृहिणी बना दिया जाय? आंबड़ के मस्तिष्क में उसके घर के कमरे का मादक वातावरण रमा हुआ था।

उसी वातावरण में दो विशाल, तेजस्वी और जादू-भरे नयनों ने उसकी ओर निःसहाय होकर किन्तु गर्व से देखा था। वे नयन उससे स्पष्ट पूछ रहे थे—'आँबड़ महेता! मुझे वचन देने के बाद मेरे घर को निस्तेज कर दोगे? लाट में प्राप्त मेरा स्थान छीन लोगे?' अधीर प्रणयी का, उसका उत्साही हृदय इस प्रार्थना को अस्वीकार न कर सका। जब तक वह है तब तक किसकी मजाल कि उसकी-हाँ-उसकी मंजरी के ठाठ के सामने उंगली तक उठा सके।

'आँबड़! किस विचार में पड़ गए?' सूरि का शान्त स्वर सुनाई पड़ा। आँबड़ कल्पनासृष्टि से लौटा, किन्तु उस सृष्टि में किया हुआ निश्चय साथ लेता आया।

'अभी-अभी आपने क्या कहा था?' उसने तनिक ताव में पूछा।

'काक के यहां से धौंसानिशान मंगवा लो। हेमचन्द्र के स्वर में तनिक कठोरता का पुट था।

'किसलिए?' आँबड़ ने क्रोध से कांपते हुए स्वर में पूछा।

'महाराज की आज्ञा है इसीलिए।'

'महाराज ने मुझे ऐसी आज्ञा नहीं दी।'तेजपाल और माधव दोनों की ओर देखने लगे। इन दोनों ने हेमचन्द्र और आँबड़ को एक ही समझ रखा था।

'अर्थात्? धौंसानिशान तुम काक ही के यहां रहने दोगे?'

'निश्चय ही।'

'क्या कहते हो तुम? तो लोग यही मानेंगे कि काक ही सत्ताधीश है।'

'इससे बिगड़ेगा क्या?' आँबड़ ने पूछा। 'महाराज को भ्रम है कि काक विश्वासघाती है। उसीने महाराज को लाट दिलवाया और अब पाटण उपकार न मानकर उलटी उसकी सत्ता ही ले ले?'

'किन्तु उदा महेता ने यही करने को कहा है।' दुःखित स्वर में हेमचन्द्र ने कहा।

'भृगुकच्छ का दुर्गपाल मैं हूँ, उदा महेता नहीं।' आँबड़ ने कहा।

हेमचन्द्र का मुख फीका पड़ गया। तेजपाल काक का शत्रु न था अतः आँबड़ का अभिप्राय समझकर वह भी बोला, 'आँबड़ महेता की बात तो सच है। ऐसा न होगा तो लाट में लोग तहलका मचा देंगे।'

'आँबड़!' सूरि कहने लगे।किन्तु फिर कुछ सोचकर वे नगरसेठ और माधव की ओर मुड़े, 'आप थोड़ा हमें एकान्त में छोड़ सकेंगे? आँबड़ समझ नहीं रहे हैं कि वे क्या कर रहे हैं।'

आँबड़ का इस ओर ध्यान न था। वह तो किसी सुन्दरी के युगल नयन में से झरते हुए आभार को स्वीकार कर रहा था। सेठ और माधव दोनों उठकर दूर चले गए।

'पागल! तू क्या बक रहा है इसका भी भान है?'

'सूरिजी! दुर्गपाल मैं हूं, आप नहीं। आप मेरे बीच में न पड़िए।'

'किन्तु इसी के लिए तो मैं खंभात से यहां आया।'

'बुलाया मैंने नहीं था,' आँबड़ ने उत्तर दिया; 'पिताजी ने भेजा है। उन्हीं से पूछ आइये।'

'ध्यान है, तू राज-द्रोह कर रहा है?' कठोरता से सूरिजी ने कहा।

'मैं तो केवल एक पुराने राज-सेवक की प्रतिष्ठा लुटने नहीं दे रहा हूँ।'

'तो उसके आदमियों को भी रहने देगा?'

'जैसा चलता आया है वैसा ही चलने दूँगा।' आँबड़ ने आश्वासन दिया।

'तो मैं अब यहाँ से चला जाऊंगा।' सूरि ने अन्तिम धमकी दी।

'जैसी इच्छा हो।'

'अच्छा!' तनिक तिरस्कार से हेमसूरि ने कहा। उनके मधुर स्वर में तुरन्त परिवर्तन हो गया। जैसे कुछ हुआ ही न हो इस तरह शांत होकर स्वर को ऊंचा करके कहा, 'भाई, तुम जानो। जैसा तुम्हारे ध्यान में आए वैसा करो। मुझे जो ठीक लगा मैंने तुम्हें कहा।'

नगरसेठ और माधव यह सुनकर निकट आए। आबड़ को लगा मानो उसने बड़ी विजय पा ली हो। उसने कहा, 'महाराज! कल प्रातः-काल हमारी भेंट होगी किन्तु साम्बा बृहस्पति के बाड़े ही में।'

सूरि हँसा। 'हाँ, लोगों को यदि वहीं जाने की टेव हो तो वहीं मिलना। अच्छा, अब मैं चला। तेजपाल सेठ! कुछ दिन पश्चात् मैं यहां से प्रस्थान करूंगा।'

'यह क्यों? एकाएक?'

'हां। तनिक इधर आओ तो!' सूरि ने उठकर तेजपाल सेठ को बुलाया। सेठ गये।

'ये यति यदि बीच-बीच में माथा न मारे तो अधिक अच्छा!' माधव नागर ने उद्गार प्रकट किए।

'इससे क्या?' आँबड़ ने उत्तर दिया। उसकी कल्पना में दो ललित, मनोहर अधर उसे साधुवाद देते दिखाई पड़े।

'प्रातःकाल के पश्चात् आँबड़ ने किसी से भेंट की थी?' सूरि ने प्रश्न किया।

'यह काक की स्त्री मंजरीसे भेंट कर आया है।' सेठ ने उत्तर दिया।

दोनों मौन रहे। सूरि ने उस स्त्री से भेंट करने का निश्चय किया।

: २४ :

भृगुकच्छ का नवीन गढ़

आँबड़ महेता के कोमल मुख पर संतोष छाया हुआ था। अन्ततः भृगुकच्छ आना असफल नहीं हुआ। वह सचमुच में दुर्गपाल बन गया था, मंजरी के समान अपूर्व सुन्दरी भी मिल गई थी। वह एकांत

में लेटे-लेटे हँस दिया। विधि को जो करना होता है वह क्या नहीं कर सकती ?

कैसा उसका रूप था ! कितनी मोहक उसकी वाणी थी ? उसने उस से बात की थी, उसके निकट बैठा था। वह कुछ-कुछ हँसी भी थी ! कल प्रातःकाल ही वह उसके यहाँ जाकर अपनी नई सत्ता की चमक भी दिखा सकेगा।

ऐसा लग रहा था मानो चारों ओर स्वप्नमय वातावरण छाया हुआ हो। उसकी रग-रग में जादू-भरी झंकार हो रही थी। सूर्य और व्योम के वर्ण में सृष्टि की रचना में कुछ विचित्र आकर्षण लग रहा था। पूर्ण विलासी की रसिकता से वह इस सबका अनुभव कर रहा था। एकाएक उसकी आँखों के सम्मुख मंजरी की लम्बी सुन्दर देह आकर खड़ी हो गई। उसके अंग-अंग से झरते हुए आकर्षण ने उसे चका-चौंध कर दिया। वह उसकी खुली हुई आँखों की ओर इस प्रकार देखने लगा मानो धीरे-धीरे संज्ञा खो रहा हो।

उसकी कल्पना सृष्टि में प्रातःकाल की मंजरी आ गई—गर्विष्ठा, प्रतापी, विद्वान्, किन्तु यह उसके समान न चकित हुई, न लजाई और न संकोच में ही मरी। उसके लिए प्रशंसा करने वाले अनेक युवकों में से वह भी एक था।

उसके मोहाच्छन्न हृदय पर पानी पड़ा। उदा महेता के पुत्र के पद का इस सुन्दरी के लिए कोई मूल्य नहीं था। श्रावक-श्रेष्ठ के सम्मान की उसे चिन्ता न थी। खम्भात की तरुणियों के हृदय का हार बनने की उसे चिन्ता न थी। पाटण की सेना के महारथी उसकी सेवा करते थे, भृगुकच्छ के पंडित शिरोमणि उसकी पूजा करते थे। इसके और उसके मध्य में एक अभेद्य व्यवधान था और इस पारदर्शी व्यवधान में से देख-देखकर—दूर रखी हुई शक्कर की एक अद्भुत मूर्ति देखकर किसी मूर्ख लड़के के मुँह में जैसे पानी आ जाता है, वैसी ही दशा आम्रभट की हो रही थी।

उसका आत्म-संतोष जाता रहा, उसका हर्ष नष्ट हो गया, उसके आशा के महल ढह गए। उसकी एक मीठी दृष्टि के लिए अनेक युवतियाँ प्राण देने के लिए तत्पर थीं, किंतु यह युवती यदि वह स्वयं भी उसके चरणों पर जाकर गिर जाय तो भी एक पलक न हिलायगी ऐसी थी। आँबड़ पसीने से लथपथ हो गया।

थोड़ी देर के लिए उसका अभिमान जाग पड़ा। उसे इस बात का भान हुआ कि प्रणयी की कला प्रतापी को नहीं आती। किन्तु रसीली सुंदरियां महत्ता के पीछे ही प्राण नहीं देतीं इस सिद्धांत ने उसे आश्वासन दिया। हृदय रिझाने की कठिन कला तो उसके जैसे किसी अद्भुत कलाकार ही के भाग्य में लिखी होती है। उस कला की इस समय सचमुच कसौटी आ गई है, ऐसा उसे लगा।

ऐसे ही तर्क-वितर्क में आम्रभट ने दुपहर व्यतीत कर दी। वह मंजरी के पुनः दर्शन करने के उपाय सोच रहा था। इतने में एक पार्श्वग ने सूचना दी कि सोमेश्वर भट भेंट करने के लिए आए हैं। अलसी आम्रभट तत्काल उठ बैठा। उसकी मंजरी का आदमी! विधि की अनुकूलता! क्या मंजरी ने नए दुर्गपाल को बुलाने भेजा है? उसने सोमेश्वर भट के हाथ क्या संदेशा भेजा होगा?

जहां वह बैठा हुआ था वहां सोमेश्वर आया और नमस्कार करके विनय से बैठ गया। आम्रभट ने नमस्कार का उत्तर दिया। थोड़ी देर तक दोनों एक-दूसरे की ओर देखते रहे।

'कहिए भटजी!' आम्रभट ने पूछा।

'महाराज!' शांति और विनय से सोमेश्वर ने कहा, 'आपको नया गढ़ दिखाने के लिए लेने आया हूं।'

'अच्छा।' हँसकर आम्रभट बोला। 'गढ़ की कुञ्जियां आपके पास हैं यह मैंने सुना है। चलिए।' कहकर आंबड़ वस्त्र धारण करके तैयार हो गया। जो सोमेश्वर मंजरी के निकट रहता था उसके साथ फिरना भी उसे सुखदायक लगा।

'सोमेश्वर जी !' जब वे पालकी में बैठकर गढ़ की ओर चले तब आँबड़ ने बात छेड़ी, 'आप भटराज काक के सम्बन्धी हैं ?'

'बहुत दूर का, वे मेरे गुरु हैं।'

'बहुत प्रभावशाली व्यक्ति हैं न ?' काकवे मंजरी की बात पर किस प्रकार आया जाय इसका विचार करते हुए आम्रभट ने पूछा।

'आप सब उन्हें सामान्य व्यवहार ही से जानते हैं। अतः उनकी वास्तविक महत्ता की आप कल्पना भी न कर सकेंगे।'

'नहीं, नहीं, ऐसी क्या बात है ?'

'महेता जी ! उनका सचमुच का मूल्य जानने मे लिए तो मेरी तरह आपको भी उनके चरणों की सेवा करनी चाहिए। उनकी युद्ध-कला और बुद्धि, उनके आचार और विचार तभी समझ में आ सकेंगे। यह तो कलयुग है, और भृगुकच्छ पराधीन है इसलिए काकभट दुर्ग-पाल बने सड़ रहे हैं।'

'तो पाटण क्यों नहीं आ जाते ?'

सोमेश्वर ने एक तीक्ष्ण दृष्टि आंबड़ पर डालकर कहा, 'आपके राजा और मंत्रियों में साहस कहां है कि उन्हें वहां आने दें। उन बिचारों का भागना कठिन हो जायगा।'

आम्रभट खड़खड़ हंस पड़ा। इस लड़के में कितना अभिमान और अज्ञान ! सोमेश्वर तनिक दया से हंसकर देखता रहा।

'सोमेश्वर ! तुमने पाटण देखा है ?'

'नहीं।'

'महाराज को, मेरे पिताजी को, और मुंजाल महेता को देखा है ?'

'नहीं, देखा तो नहीं, किन्तु उनके विषय में सुना बहुत है।'

'तो तुम समझते हो तुम्हारे गुरु इन सबसे बढ़कर हैं ?'

'मैं तो इतना जानता हूं कि इतने वर्ष होगए आपसे न जूनागढ़ जीता गया,न लिया गया। और जिसने लाट लिया,अकेले नवघण रा'को पकड़ा, और शेषनाग के पास से मुंजाल महेता के पुत्र को ले आए उस महा-

रथी को पाटण में रखने का आपके महाराज और मंत्रियों में साहस नहीं है, और उनका अपमान करने की योग्यता भी नहीं हैं।'

'तुम भी अपने गुरु के ही समान सरस बोलते हो', आँबड़ ने हंसकर कहा, 'या अपनी गुरुपत्नी से यह सब सीखकर आए हो ?'

एक क्षण के लिए सोमेश्वर की आँखों में शंका झलकी।

'कभी देवी की विद्वत्ता देखी भी है ?' तिरस्कार से सोमेश्वर ने पूछा।

'नहीं, सुना बहुत है।'

'किसी पण्डित को पूछ लीजिएगा।'

आम्रभट के मुंह में पानी आया।

'तुम तो गुरु और गुरुपत्नी दोनों के बड़े भक्त हो ?'

सोमेश्वर के अंतर में का पूज्य भाव प्रकट हुआ 'भटजी ! इन दोनों के चरणों की सेवा करने के सिवा मेरा और कोई इच्छा नहीं है।'

'तो, इन दो में से बढ़कर कौन है ? तनिक मुस्कराकर आम्रभट ने पूछा।

'इस प्रश्न का उत्तर आज बारह वर्ष होने पर भी मुझे नहीं सूझा। आम्रभटजी! भटराज निर्जीव को भी महारथी बना देते हैं और देवी पत्थर को भी पण्डित बना देती हैं। इनमें बड़ा कौन, यह किस प्रकार कहा जाय ?'

आम्रभट को हेमचन्द्रसूरि का स्मरण हो आया। उन्होंने उस पर अपनी सत्ता जमाने का प्रयत्न किया था यह आम्रभट को खल रहा था, और हो सके तो उनकी तनिक हँसी उड़ाने का उदांत विचार उसके मस्तिष्क में उपजा।

'तुम्हारी देवी पंडितों से विवाद करती हैं ?'

'हाँ, यदि उनकी रुचि हो जाय तो।'

'हमारे खंभात के एक शास्त्र-विशारद यहाँ आये हुए हैं। वे देवी से भेंट करने के लिए कह रहे थे।' आँबड़ ने गप मारी।

'देवी यों किसीसे भेंट नहीं करतीं।' सोमेश्वर ने उत्तर दिया।

'हमें यहाँ उतर पड़ना है क्या ?' पालकी के गढ़ और प्राचीन नगर के मध्य की खाई के सामने आ जाने पर आम्रभट ने कहा।

'हाँ'

इतने में प्राचीन और नूतन नगर के मध्य की खाई के सामने के घाट पर वे आ पहुँचे। पालकी खड़ी हो गई, और ये दोनों आस-पास खड़े लोगों के नमस्कार को स्वीकार करते हुए खाई के सामने खड़ी नौका में जा बैठे। थोड़ी देर में वे नए गढ़ की ओर उतर पड़े, और और गढ़ में जाने के लिए टीलों पर चढ़ने लगे।

सोमेश्वर पथ जानता था इसलिए वेग से चढ़ने लगा। पीछे हांपता-हांपता आँबड़ आया।

'सोमेश्वर ! यह नया नगर तो अभी बसा है न ?'

'जी, हाँ। पहले छोटा गढ़ था उसे गिराकर भटजी ने यह नया नगर बसाया।'

'मज़बूत दिखाई देता है।'

'महाराज ! यह गढ़ चालीस वर्ष तक घेरा सहन कर सकता है।'

'हैं !' चकित होकर आम्रभट ने पूछा।

'हाँ।' थोड़ी देर तक दोनों मौन होकर चढ़ते रहे। अन्त में वे द्वार तक पहुँचे—'यह द्वार अभी बन्द क्यों है ? प्रातःकाल तो खुला हुआ था।'

'भटराज गये तब केवल उस ओर का द्वार खोलने के लिए कह गए हैं।'

'उनको भृगुकच्छ की बड़ी चिन्ता है।' तनिक कटकर आँबड़ ने कहा।

'उनको न हो तो किसे हो ?' तिरस्कार-भरी दृष्टि से सोमेश्वर ने पूछा।

'ठीक है। किन्तु दुर्गपाल तो मैं हूं अब !' हँसकर आम्रभट बोला।

'आप नए जो हैं।' शांति से सोमेश्वर बोला।

सोमेश्वर के द्वार की खिड़की खोलने पर एक सैनिक दौड़ता हुआ आया।

'देवा ! यह तो मैं सोमेश्वर,' सोमेश्वर ने कहा, 'और ये हैं नए दुर्गपाल। पधारिए आम्रभट जी।'

वे अन्दर गए, सोमेश्वर उसे कोट पर होकर ले गया।

आँबड़ नए भृगुकच्छ की इस कोट को देखकर आश्चर्य में आ गया। नया भृगुकच्छ नदी के ढाल की ओर के एक विशाल और ऊँचे टीले पर बसाया गया था। और टीले पर से बांधी गई कोट नदी की धारा से इतनी ऊंची थी, कि इस गढ़ को जीतने की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

'इस गढ़ को इतना बड़ा क्यों बनवाया ?'

'चारों ओर चक्कर काटती हुई रेवा माँ ने ऐसा किया है।' सोमेश्वर ने कहा, 'आवश्यकता पड़ने पर आधा ग्राम इसमें आ सकता है। इस समय इसमें तीन हज़ार सैनिक निश्चिंत होकर रह सकते हैं।'

'किन्तु कोई घेरा डाले तो इतने बड़े गढ़ में लोग भूखों मर जायँगे !'

'नहीं। इसकी बनावट ही ऐसी है कि तीन ओर से कोई भय ही नहीं है। आवश्यकता पड़ने पर पांच-सात मनुष्य ही इसकी महीनों तक रक्षा कर सकते हैं।'

'वह क्या है ?' एक घर की ओर हाथ करके आम्रभट ने पूछा।

'वह कोठार है।'

'इतना बड़ा ?'

'हाँ ! और इसे सदा भरा हुआ रखा जाता है।'

'अभी कोई घेरा डालने वाला था ?'

'जागता आदमी सदा सुखी।' कहकर दोनों आदमी गढ़ का चक्कर लगाने के लिए निकले।

: २५ :

देवा नायक

सोमेश्वर और आम्रभट गढ़ देख रहे थे। देवा नायक मौन होकर पीछे-पीछे चल रहा था। उसकी सफेद दाढ़ी पवन में लहरा रही थी। उसकी आंखें सम्मान से नीचे की ओर झुकी हुई थीं, किन्तु उसने अपने वृद्ध किन्तु सशक्त हाथ में अपना भाला अस्वाभाविक कठोरता से पकड़ रखा था। उसके आकुंचित कपाल पर इस समय बहुत सिकुड़नें थीं। कुछ देर पश्चात् उसने छिपकर आम्रभट की ओर देखा।

वह ध्रुवसेन का पुराना सैनिक था और काक के अनुचर के रूप में पाटण की सेना में आया था। ध्रुवसेन हारा, लाट की स्वतन्त्रता गई, पाटण की प्रभुता फैली इसकी उसे कुछ भी चिन्ता न थी। प्रतिदिन संध्या को वह अपनी झोंपड़ी में से निकलता और काक के चबूतरे पर जा बैठता और जैसे ही काक घर में आता वैसे ही वह पूछता—'भाई! कैसे हो ?' काक मुसकराकर उत्तर देता, 'क्यों, देवा! प्रसन्न तो है ?' तब वह उत्तर देता, 'हां, भाई !' और चुपचाप वापस चला जाता। सम्पूर्ण सृष्टि में केवल इतनी-सी वस्तु में उसे रस था।

इस एकांतवासी प्राणी को संसार के साथ जोड़ने का एक-मात्र सूत्र काक था और वह उस सूत्र को पकड़कर भवसागर पार करने के लिए भी तत्पर था। उसके 'एकलक्ष्यी' मस्तिष्क में काक का स्थान

ऐसा बन गया था कि उसकी स्थिति में कुछ भी हेर-फेर उसे रुचता नहीं था। काक दुर्गपाल हुआ, ब्याह किया, भटराज बना, यह सब कुछ उसे अच्छा न लगा। प्रति परिवर्तन के साथ काक उसका न रहकर दूसरों का होता जा रहा था, ऐसा उसे लगता था।

काक ने उसे गढ़ के कोठार का नायक नियुक्त किया यह भी उसे अच्छा न लगा। किन्तु अपने भाई की आज्ञा का अनादर भी न कर सका।

कल वह सदा के समान साम्बा बृहस्पति के बाड़े में गया था। काक से भेंट हुई।

'देवा! मैं वंथली जा रहा हूँ।'

देवा ने ऊपर देखा। उसकी आंखों में व्याकुलता थी।

'मैं आऊं, भाई?'

काक स्नेह से हंस दिया।

'अरे देवा! फिर यहां कौन रहेगा?'

'जी।'

'देवी को देखते रहना।'

'जी।' देवा ने कहा और बैठ गया। उसके वृद्ध हृदय में एक अस्पष्ट वेदना जाग पड़ी। काक थोड़ी देर तक उसकी ओर देखता रहा। वह वृद्ध हृदय की व्यथा समझ गया।

'देवा! मैं शीघ्र आजाऊंगा, तू गढ़ को संभालना।'

'भाई! मैं जाता हूं।'

'अच्छा! देखते रहना।'

देवा मौन होकर बैठा रहा और घर में जाते काक की ओर देखने लगा। थोड़ी देर पश्चात् वह निःश्वास लेकर सिर हिलाता वापस गढ़ में चला आया। तब से उसका बोलना बन्द हो गया और उसका सिर सदा झुका ही रहने लगा। उसे लगा कि उसके 'भाई' से पुनः भेंट नहीं होगी। अतः नए दुर्गपाल को देख कर उसकी आंखों में विष

उतर आया। उसके 'भाई' के सिवा और कोई दुर्गपाल हो जाय यह वह नहीं देख सकता था।

वह मौन ही चलता रहा। कोठार के सामने आकर आमूभट और सोमेश्वर दोनों नदी की ओर देखने लगे। धीमे-से देवा सोमेश्वर के पास गया।

'सोमेश्वर!' देवा ने पूछा, 'आपको देर लगेगी?'

सोमेश्वर मुस्कराकर घूमा। काक के सभी आदमियों का देवा के प्रति स्नेह था।

'देवा, क्या बात है? आज भी 'भाई' के बाड़े जाना है?'

'हां, समय हो गया है।'

'किन्तु आज तेरे 'भाई' तो नहीं हैं।'

'इससे क्या?'

'तो जा।' सोमेश्वर ने कहा।

'सोमेश्वर! कोठार देखना हो तो देख लो।'

'आपको कोठार देखना है?' सोमेश्वर ने आँबड़ को पूछा। आँबड़ को इस नायक की असभ्यता और सोमेश्वर से बात करने का ढंग पसंद नहीं आए।

'यह कौन है?' आँबड़ ने तिरस्कार से पूछा।

'यह भटराज का विश्वासपात्र नायक है और यहाँ के कोठार का रखवाला है।'

'कहां जाने के लिए इस प्रकार अधीर हो उठा है?' तनिक रोब में नए दुर्गपाल ने पूछा।

देवा की नीचे झुकी हुई आंखें तनिक उठीं।

'भटराज के बाड़े जाना चाहता है। प्रतिदिन जाता है।'

तुम्हारे आदमी बहुत मुंह लगे हुए हैं।' आमूभट ने कहा। देवा ने ऊपर देखा।

सोमेश्वर के भाल पर सिकुड़न पड़ी।

'महाराज ! देवा साधारण सैनिक नहीं, घर के आदमी जैसा है। जा देवा !' सोमेश्वर ने कहा।

देवा बिना कुछ बोले चला गया।

'प्रत्येक सैनिक यदि घर का आदमी होने लगेगा तो इस गांव का क्या होगा ?'

'भटजी !' सोमेश्वर ने कहा 'इसके जैसा विश्वासपात्र दूसरा नहीं। इसका अपमान करने से लाभ ?'

'लगता है यहाँ दुर्गपाल के मान के सिवा संपूर्ण गाँव का मान भस्म हो चुका है।'

'देखिए न, आज पन्द्रह वर्ष से प्रतिदिन यह भटराज के यहाँ जाता है। वह जायगा, थोड़ी देर तक चबूतरे पर बैठेगा और लौट आयगा। गए बिना यह रह नहीं सकता।'

'मुझे ऐसे नौकर अच्छे नहीं लगते।'

'ऐसे नौकर आपको मिलेंगे भी नहीं।' तनिक मुस्कराकर सोमेश्वर ने कहा। वे आगे बढ़े।

देवा नायक चुपचाप गढ़ से उतरकर पुराने नगर में होकर साम्बा बृहस्पति के बाड़े में आया और काक के चबूतरे पर इस तरह मौन होकर बैठ गया मानो किसी के आने की बाट देख रहा हो। अँधेरा होने लगा। उसने ऊपर देखा और यह सोचकर कि काक की बाट जोहना निरर्थक है वहां से चला।

'कौन है ?' द्वार खोलते हुए मणिभद्र ने पूछा।

'मैं देवा नायक।'

'क्या बात है ?'

'कुछ नहीं, यों ही।'

'कौन, नायक ?' अंदर से मंजरी की आवाज़ आई। वह बाहर आई। 'आओ, देवा ! बाहर क्यों बैठ गया ?'

'कुछ नहीं, यों ही।' कहकर उसने निःश्वास ली।

'देवा ! तेरे भाई थोड़े दिनों में आ जाएंगे ।'

वृद्ध ने गर्दन हिलाई; 'नहीं देवी ! अब भेंट न कर सकूंगा ।'

'क्यों ?' फीकी हँसी हंसकर मंजरी ने कहा ।

'कल मेरी झोंपड़ी पर उल्लू बोल रहा था ।'

'अरे तो इससे क्या हो गया ?' मंजरी ने साहस से कहा । 'तेरे भाई तो बस आए समझ ।'

'भाई तो आएंगे, किन्तु मुझसे भेंट न होगी । देवी ! 'कीकाभाई' को दिखाओगी ?'

इस वृद्ध का स्नेह देखकर मंजरी की आंखों में पानी आगया; 'आ, अंदर आ जा ।'

देवा अंदर गया और वौसरि को देखकर पुनः बाहर आया । जिस समय वह धीमी गति और भारी हृदय से गढ़ की ओर मुड़ा उस समय रात गहरी हो चुकी थी । वह नीची दृष्टि किये गढ़ की ओर चला ।

खाई के निकट आते-आते उसे गढ़ की ओर देखते हुए दो पुरुष दिखाई दिए । उसने ऊपर देखकर खाँसा ।

'कौन है ?' उसने पूछा ।

एक आदमी के सिर और कंधों पर दुशाला पड़ा हुआ था । वह आगे आया ।

'क्या है ?'

'यहां क्या कर रहे हो ?'

'ओहो ! कौन देवा ?'

देवा ने ध्यान से देखा, 'तुम कौन ?'

'रेवापाल, मुझे नहीं पहचाना ?' रेवापाल ने तनिक दुशाला हटाकर कहा ।

'भाई. आप यहाँ कैसे ?'

'थोड़ा घूमने आए हैं। अभी कहाँ काक के घर हो आया ? तेरा 'भाई' तो गया न ?' रेवापाल ने तिरस्कार से कहा।

'इससे क्या ? थोड़े दिनों में वापस आ जायँगे।'

'क्या पागल हो गया है ?'

'क्यों ?'

'वह तो अब आने का ही नहीं।'

'कैसे ?' फटी आंखों से देवा ने पूछा।

'जयदेव महाराज उसे भृगुकच्छ नहीं आने देंगे।'

'कैसे जाना ?'

'उसने स्वयं मुझसे कहा था।'

'और यह नया दुर्गपाल यहीं रहेगा ?'

'हाँ, देवा। तेरे-मेरे दुर्भाग्य ! काक समझ बैठा था कि उसे कोई कुछ नहीं कह सकता। अब वह पछताएगा। देवा ! तुझे भी गढ़ छोड़ना पड़ेगा।'

'क्यों ?'

'नया दुर्गपाल इसमें पट्टणियों को बसाएगा।'

'अरे, कैसी बात करते हो ?'

'देखना ! तुम मेरी नहीं मानते लेकिन तुम्हारा बनाया गढ़ ही तुम्हारा सत्यानाश करेगा, देखना।'

देवा मौन रहा।

'दो हज़ार पट्टणी इसमें आजायंगे तो तुम्हारा सम्पूर्ण देश त्राहि-त्राहि कर उठेगा।'

'ऐसी किसकी मजाल है कि सम्पूर्ण देश को दुःख दे सके।'

'तुम्हारे महान् दुर्गपाल को तो घड़ी के छटे भाग में देश से हटा दिया, अब तुम्हारा कौन है ? आँबड़ खंभाती और माधव नागर ?' रेवापाल तिरस्कार से हंस पड़ा, 'हाँ, एक को तो भूल ही गया '

'कौन ?'

'नेरा तोतला।'

देवानायक स्तब्ध हो गया, 'क्या कहते हो ?'

'देवा !' रेवापाल ने नरम पड़ते हुए कहा, 'मैं कभी असत्य कहता हूँ ? तेरे भाई में और मुझमें वैर है। किन्तु वह, जैसा भी था, लाट का हितेच्छु था। वह भी गया—और देखना, वह लौटकर आने का नहीं।'

देवा को कंपकंपी छूट गई।

'ग्रॉबड़ केवल अवसर की बाट देख रहा था, आज मेरे सुनते नेरा को भट बनाया और कल से गढ़ में रहने की आज्ञा दी। बोल, आगए लाट के दिन कि नहीं ?'

देवा बोला नहीं। उसका रोम-रोम खड़ा हो गया। कल उत्पल बोला था, किसी उद्देश्य से ही !

'देवा ! एक ही मार्ग है,' रेवापाल ने कहा।

'कौनसा ?'

'एक वर्ष तक चल सके इतना अनाज तो गढ़ में है !'

'आपने कहाँ से जाना ?'

'इच्छा हो जहाँ से। तुझे पट्टणियों को निराश करने का एक ही मार्ग है।'

'कौनसा ?'

'यहाँ से अनाज हटा देना होगा।'

'कहाँ ?' चकित होकर देवा ने पूछा।

'जहाँ इच्छा हो।'

'और भाई आगए तो ?' देवा ने पूछा।

'देवा ! मेरा दूसरा कोई अभिप्राय नहीं है। मैं गंगानाथ भगवान् की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि मेरा अभिप्राय यही है कि यह पट्टणी सेना गढ़ में आनन्द से न रह सके। एक काम करेगा ? अभी अनाज

निकाल दे। यदि तेरे भाई आगए तो दूसरे दिन मैं कोठार फिर-से भरवा दूंगा।'

'कोई जान जायगा तो ?'

'जानेगा कौन ?'

'किन्तु निकाला किस प्रकार जाय ?'

'देख, प्रतिदिन रात को नवदेवो के घाट के सामने मेरे आदमी नौका लेकर आयेंगे। तू ऊपर से थैले गिरा देना।'

'मेरे भाई डाँटेंगे तो ?'

'पागल ! तेरे भाई आने के नहीं।' रेवापाल ने कठोरता से कहा। देवा कांप उठा। उसे कल का उल्लू बोलता सुनाई दिया।

'हाँ !'

'तुम्हारी सात पीढ़ी की सौगन्ध ?' देवा ने पूछा।

'हां। मेरी सात पीढ़ी की सौगन्ध।'

देवा थोड़ी देर चुप रहा। उसने एकाएक ऊपर देखकर कहा, 'महाराज ! कल रात को नाव भेजना। यदि मेरा तोतला की बात ठीक हुई तो थैले गिराऊँगा।' कहकर वह जल्दी से चला गया।

रेवापाल हँसा। 'लाट का भाग्य चमक रहा है,' वह बोला, और साथी को लेकर चला गया।

: २६ :

सूरि का आत्मनिरीक्षण

तेजपाल उपाश्रय में हेमचन्द्रसूरि मौन धारण किये हुए थे। वे कुछ ही दूर पर रखे हुए अपने 'प्रोंछन' की ओर देख रहे थे। इस युवक सूरि को ध्यान करने के सिवाय इस प्रकार बैठने की आदत न थी। आज की यह स्थिति उन्हें तनिक असाधारण लग रही थी।

जिस समय और लड़के झूले में खेलते हैं उस समय इन्होंने वीतराग होने की इच्छा प्रकट की थी; जिस समय युवक जीवन में फूटते नूतन आह्लादों का अनुभव करने को छटपटाते रहते हैं उस समय इन्होंने सूरिपद पाया, जब और साधु अभ्यास करना प्रारम्भ करते हैं उस समय ये शास्त्र-विशारद होने आए थे। प्रत्येक मनुष्य इनके अपूर्व चरित्र, निःसीम ज्ञान और अगाध चतुरता को देखकर चकित हो जाता था। इतने थोड़े समय में ही जैनविद्या और यश के व्योम में एक अद्भुत अरुणोदय का भास लोगों को होने लग गया था।

बहुत वर्षों पश्चात्—यौवन आगमन के बाद—जीवन में प्रथम बार उन्हें सावधानी से आत्मनिरीक्षण करने की आवश्यकता पड़ी। उन्हें विश्वास था कि उनका मस्तिष्क अन्य लोगों से निराले ही प्रकार का था। उन्हें संयम रखने के लिए प्रयत्न करने की आवश्यकता न पड़ी थी; विकार क्या वस्तु है इसका अनुभव किया न था। उनकी यह निश्चल श्रद्धा थी कि वे आजन्म अधिकारी हैं।

कई लोगों के मस्तिष्क कीचड़-भरे पोखर के समान होते हैं, कई के नन्हीं, नाम मात्र लहरियों से अलंकृत, स्थिर, बधे हुए, जल से भरे तालाब जैसे होते हैं। कई-एक प्रवहमान नदी के समान होते हैं। जिसमें उछलती लहरियां भी होती हैं और शांत सरलता भी। कुछ के मस्तिष्क समुद्र के समान होते हैं—शांत सरोवर की अगाधता, उठती-गिरती लहरों का आनन्द, दुर्जय और उछलता हुआ उत्साह, प्रलय तरंगों का तांडवनृत्य।

इस युवक का मस्तिष्क इनमें से किसी प्रकार का न था। उसमें आरसी की स्वच्छता, शांति, उदासीनता और सर्वग्राह्यता थी।

औरों को वीतराग या निर्द्वन्द्व होते कठिनाई होती है; जितेन्द्रिय होने के लिए व्रतोंकी परंपराका पालन करना पड़ता है, किन्तु इस शांत, स्थिर, भावनाविहीन हृदय को जितेन्द्रिय अथवा निर्विकार बनने के लिए प्रयत्न करना ही न पड़ा। कारण कि इसमें विकार अनुभव करनेकी शक्ति ही

थी। जिनशासन के स्तंभ विकार ग्रहण करने की इस शक्तिहीनता को देखकर स्तब्ध रह जाते और पूर्वजन्म के सुसंस्कार और क्षयोपशमन का ही परिणाम समझकर स्पर्द्धा करना छोड़ देते।

यह निर्मल आरसी-सा मस्तिष्क जिधर सूरि की इच्छा होती उसी दिशा में घूम जाता था, और इच्छित विषय का प्रतिबिम्ब उसमें पड़ने लगता था। इस प्रकार वह बिना प्रयत्न किए ही अपूर्व था, इसका हेमचन्द्र को पूरा-पूरा भान था।

इस उम्र में प्रथम बार उसके मस्तिष्क में संशय उत्पन्न हुआ। क्या इसके मस्तिष्क पर विकार की छाया पड़ी है? अन्य लोगों में तो ऐसा संशय उत्पन्न ही न होता; किन्तु यह अद्‌भुत नवयुवक इतना-सा संशय होते ही उसके अनुसंधान में लग गया।

कल उसने वर्षों पहले देखी एक स्त्री का मुख देखा, एक मूर्ख द्वारा उसकी सोची हुई बाजी को उलटते देखा, और यह बाजी यह मूर्ख उस स्त्री की सलाह से ही उलट रहा था ऐसी उसे शंका हुई। उसने कई स्त्रियाँ देखी थीं, कई मूर्खों को बाजी उलटते हुए देखा था, कई स्त्रियां बाजी उलटने में समर्थ होती हैं इसका भी अनुभव किया था। तो यह विकार तो नहीं ही था, किन्तु विकार का संशय ही अशुभ होता है। विकार का संशय उत्पन्न हुआ है ऐसा भ्रम ही मस्तिष्क में क्योंकर हुआ? अडिग नैयायिक की तीक्ष्णता से सूरि ने प्रश्न किया।

जिस समय उसने दीक्षा ली थी उस समय इस स्त्री को देखा था ऐसा कुछ-कुछ स्मरण था, तत्पश्चात् इसे काक ले गया और उससे ब्याह कर लिया यह भी उसकी जानकारी के बाहर न था, और इस विद्वान् और सजग स्त्री ने आँबड़ जैसे को मात दी थी इसमें ऐसा कुछ न था जिससे उसके स्थिर चित्त को किंचित् मात्र भी अस्थिर होने का कारण मिले। 'तो यह संशय उत्पन्न हुआ कैसे?' हठी बनकर हेमचन्द्र सूरि ने अपने आरसी जैसे निर्मल मस्तिष्क से प्रश्न किया।

'महाराज ! प्रणाम ।' आम्रभट को तनिक उपहास करता-सा स्वर सुनाई पड़ा । उसने आकर प्रणाम किया ।

'कौन आँबड़ ! आओ, धर्मलाभ ।' सूरि ने कहा ।

आम्रभट और हेमचन्द्र बचपन के मित्र थे, एक घर में बड़े हुए थे, और उदा महेता के सर्वव्यापी खेल के खिलौने थे । फिर भी, इस प्रतापी बालसूरि को सर्वोपरि बनाने के उदा महेता के प्रयत्न के कारण खंभात में हेमचन्द्र सूरि ने ऐसा आडम्बर रच रखा था मानो वह कोई तीर्थंकर हो । इसलिए साधारणतया आम्रभट को उसे इस प्रकार संबोधित करने का साहस न होता । किन्तु कोंचे हुए नाग से कोंचा हुआ प्रणयी बुरा होता है। उसके सम्मान को धक्का पहुंचाया होता तो आँबड़ सहन कर लेता, किन्तु अब सूरि ने उसकी हृदयेश्वरी के मान को ही तोड़ने का काम आरम्भ किया तो उससे कैसे सहन हो सकता था !

उसके मस्तिष्क में एक बहुत ही विनोद-भरी योजना आई । मंजरी पंडित शिरोमणि है इसमें तो कोई संशय था ही नहीं । यदि यह सूरि उससे हार जाय तो इसे शिक्षा मिले । उदा महेता का पुत्र ऐसा विचार करे यह आकाश-पाताल को एक करने जैसा था, किन्तु इस समय आँबड़ के मोह का पार न था । क्षणिक संतोष, एक क्षण-भर के लिए उसकी हृदयेश्वरी की विजय का विचार उसके लिए अतिशय प्यारा हो उठा था ।

यहाँ आने में उसका एक स्वार्थ था । वह प्रातःकाल माधव के पास मंत्रणा करने काक के यहाँ गया था । बाहरके बाड़े के दालान में वह बैठा, भृगुकच्छ के अग्रगण्य लोगों से भेंट की और उनसे वार्तालाप किया, कुछ थोड़ा-बहुत सूझा वैसा प्रबंध किया । किन्तु प्रतिपल उसका मस्तिष्क अंदर जाने का बहाना ढूंढ रहा था । अंत में जब जाने का समय हुआ तो उसने बड़े साहस से सोमेश्वर से कहा—'देवी हैं ?'

'हाँ !' सोमेश्वर की आंखों में तनिक शंका झलकी ।

'हेमचन्द्रसूरि का संदेशा कहना है । पूछो, पल-भर केलिए भेंट कर

सकेंगी ?' आंबड़ ने धड़कते हुए दिल से पूछा। या तो दुर्गपाल की सत्ता या फिर मंजरी के सान्निध्य के कारण उसका साहस बढ़ता जा रहा था।

सोमेश्वर ना न कह सका। वह मंजरी से पूछ आया और आंबड़ को अंदर ले गया। मोह से चकराए हुए मस्तिष्क से आम्रभट ने नमस्कार किया, और संकेत से दिखाए हुए आसन पर बैठकर बोला—'देवी, हमारे खंभात के हेमचन्द्रसूरि यहां पधारे हुए हैं और शीघ्र ही जाने वाले हैं। बड़े समर्थ विद्वान् और तपस्वी हैं।'

'मैं जानती हूँ।' कहकर मंजरी मुस्करा दी। आम्रभट दंतावलि के सौंदर्य को देखने में क्षण-भर के लिए बात करना चूक गया। फिर कहा, 'जाने से पहले दुर्गपाल महाराज के यहां 'गोचरी' के लिए बुला लें तो उन्हें भी अच्छा लगेगा और भृगुकच्छ की भी शोभा रह जायगी।'

एकाएक मंजरी और सोमेश्वर की आँखें एक हुईं।

'भटजी ! किन्तु हम तो निपट मिथ्यादृष्टि हैं।' मंजरी ने मुस्कराकर कहा।

'आप भूलती हैं। हमारे यहां हम ऐसे अवांछित भेद नहीं रखते। और सूरिजी की उदारता के तो क्या कहने !' सम्भव है योजना सफल न हो इसलिए आम्रभट आगे बोला, 'और आपकी विद्वत्ता के विषय में सुनकर आपसे भेंट करने की उनकी बड़ी इच्छा है।'

पल-भर मंजरी मौन रही।

'अच्छी बात है तो उन्हें आप दुपहर को बुलाइए। उन्होंने जबसे दीक्षा ली तबसे उनसे भेंट हो नहीं हुई। सोमेश्वर ! तू कह आयगा ?'

'व्यर्थ में' आम्रभट ने कहा, मैं वहीं जा रहा हूं। मैं कह दूंगा।' उसने विदा ली और मंजरी तैयारी करने के लिए उठी। सोमेश्वर के अंतर में संशय की ज्वाला प्रकट हुई—यह छोकरा यहां आया क्यों था ?

और वहाँ से सीधे आम्रभट जी तेजपाल उपाश्रय में चले आया और हेमचन्द्र से भेंट की।

'महाराज ! आज दुर्गपाल के यहाँ 'गोचरी' का न्योता है।'

स्वस्थ सूरि चमका; उसके तेजस्वी नेत्र स्थिर हो गए। ऐसा लगा मानो विकार-ग्रसित हृदय प्रतिध्वनि कर उठा हो।

'काक के यहाँ ?'

'उसकी स्त्री आपके दर्शन करना चाहती है। मेरे हाथ संदेशा भेजा है।'

हेमचन्द्रको विश्वास हो गया कि यह लड़का दुर्गपाल की स्त्री के पीछे पागल हो गया है। उसे आम्भट को उपदेश देने का जी हुआ कि वह शीघ्रातिशीघ्र जाकर चौथा अणुव्रत करने बैठ जाय। किन्तु उसकी जिह्वा न खुली। स्वयं उसकी क्या दशा है ? वह स्वयं अभी क्यों चमक उठा। इस तीव्र बुद्धि वाले युवक ने अपने मस्तिष्क से हिसाब मांगा।

पहले उसे विचार आया कि नहीं जाना चाहिये। हेमचन्द्रने आंखें मींच लीं। क्या सचमुच विकार आ गया है ? या इस डर से कि कहीं विकार बढ़ न जाय इस स्त्री को न देखने की यह उचित प्रेरणा हो रही है ? क्या उसे भी और साधुओं के समान, साधारण श्रावकों के समान ऐसे प्रसङ्गों में मनोनिग्रह करने की आवश्यकता पड़ेगी ? क्या वह ऐसी अधोगति को पहुँच गया है कि जिसे इन्द्रियों के जीतने की कभी आवश्यकता न पड़ी, जो अपने पूर्व जन्म के प्रताप से अपने को वीतराग मानता था उसे आज इन्द्रिय जीतने का प्रयत्न करना पड़ेगा ? नहीं—उसके अन्तर ने उत्तर दिया। संशय करने के लिए कोई कारण ही न था। उसने स्थिर होकर आम्भट की ओर देखा।

'आँबड़ ! तुझे कल से कुछ व्रत करना पड़ेगा। तेरा मस्तिष्क ठिकाने नहीं है।'

आम्भट हंस पड़ा, 'आप तनिक भी चिन्ता न कीजिए। आप आयेंगे न ?'

'हां !' शांति से हेमचन्द्र बोला, 'मैं सोचूंगा।'

'अच्छी बात है। आप दोनों विद्वान हैं अतएव आपको भी लाभ

होगा !' अन्तिम बार दागकर आँबड़ उठा और प्रणाम करके विदा हुआ।

'धर्मलाभ।' सूरि ने कहा और आत्मनिरीक्षण में रत हो गया।

: २७ :

वागीश्वरी के दर्शन

काक के यहां खंभात के सुविख्यात सूरि 'गोचरी' के लिए जा रहे हैं यह सुनकर लोग कुछ विस्मित हुए।

जिस समय हेमचन्द्र सूरि अपने छः शिष्यों सहित साम्बा बृहस्पति के बाड़े में आए उस समय आम्रभट भी साथ था। सोमेश्वर, मणिभद्र और पुराणी काका साधुओं का अभिवादन करने के लिए आये और स्वागत करके उन्हें अन्दर ले गए।

हेमचन्द्र आवश्यकता से अधिक नहीं बोलते थे। उनका सिर कुछ झुका हुआ था। वे अपने क्षीण और भावनाविहीन मस्तिष्क को कठोरता से अपनी अविकारी स्वस्थता की रक्षा करने का आदेश दे रहे थे। उनके लिए उनके जीवन की परम कसौटी आ रही थी। अब तक निर्विकार होने को वह बहुत तुच्छ मानते थे क्योंकि स्वयं अविकारी होकर अविकारीपन को श्रेष्ठ मानते थे। विकार को निर्मूल करने के लिए किसी तप की आवश्यकता पड़े यह उनके लिए निर्बलता का चिन्ह था। वासना जीतने के स्थान पर एक ऐसी स्थिति प्राप्त करना उसके जीवन का महान् लक्ष्य था जहाँ पहुँचकर वासना का अनुभव ही न हो सके। और ऐसी स्थिति प्राप्त करने में उन्हें अब तक कोई प्रयत्न करने की आवश्यकता न पड़ी थी।

जिनशासन की रक्षा करना और उसके उत्कर्ष के लिए प्रयत्न करना, उसके अहिंसा-मंत्र का प्रचार करना और उसके लिए किसी-न-किसी प्रकार से राज्यसत्ता हस्तगत करना ये तो जिस सृष्टि में वे बड़े हुए थे उसका परम ध्येय ही था। जीवन के साथ उनका संसर्ग मात्र इस आकांक्षा को सिद्ध करने के प्रयासों तक ही सीमित था। मानव-हृदय के उत्साह, आनन्द या व्यथा की ओर अनुकम्पा या स्नेह-भीनी दृष्टि से देखने में वे असमर्थ थे। उनके विचार में यह सब तुच्छ जंतुओं की विकारी लीला थी; उनकी ओर वह किसी महामोह की ठंडी पीड़ाओं का हनन करने वाले शस्त्रोपचारी वैद्य के समान देखते थे।

'पधारिए, महाराज!' मंजरी का सुसंस्कृत स्वर सुनाई पड़ा, 'विराजिए।'

नीची दृष्टि करके खड़े हुए सूरि ने ऊपर देखने से पहले धीरे-से रजोहरण से धूल बुहारकर 'धर्मलाभ' का उच्चारण किया। जब उन्होंने ऊपर देखा तो द्वार में श्वेत वस्त्र मे अप्सरा के समान कांतिवान्, लम्बी और चित्ताकर्षक सुन्दरी खड़ी हुई दिखाई दी। उसके मधुर होठों पर स्वागत की मुस्कराहट थी; उसकी तेजस्वी आंखों में स्नेही हृदय के उल्लास का प्रतिबिम्ब था। सूरि का जैसा मस्तिष्क था वैसी ही उनकी निरीक्षण-शक्ति भी थी। अलंकार शास्त्र और काव्य से याद किया शब्द-समुच्चय धीरे-धीरे खुलने लगा। 'मदालसा', 'चन्द्रानना', 'शरीरयष्टि', 'जघन गौरव'.....इस सम्पूर्ण योजना में शब्द और वस्तु को रचने वाले का निष्पक्ष अविकार था। उसमें था न सौन्दर्य भक्त का उत्साह और न कवि की भावना। भक्ति के भार से सोमेश्वर की दृष्टि झुक गई, मोह की अधीरता से आम्रभट की आंखें फट गईं। दूसरे साधुओं पर इस दर्शन की जो प्रतिक्रिया हुई उसे वे केवल मुंह फाड़कर ही बता सके।

मंजरी ने वंदना की, 'सूरिजी! आप और साधु-मण्डल को मेरी वंदना।'

मंजरी वस्त्र सिकोड़कर पुरानी काका और मणिभद्र के मध्य में बैठ गई और गर्व-भरी दृष्टि से दिग्दिगंत में जिसकी ख्याति फैली हुई थी उस बालसूरि की ओर देखने लगी।

'देवी !' आँबड़ ने कहा, 'सूरिजी हमारे खंभात के माथे के मुकुट हैं।'

'मैंने इन्हें बहुत वर्ष हुए देखा था।' मंजरी ने मुस्कराते हुए कहा, 'कहिए महाराज ! याद है ? आपने दीक्षा ली उससे पहले हम एक ही उपाश्रय में थे। आपने मुझे भी दीक्षा लेने के लिए कहा था, याद है ? आप उस समय आठ वर्ष के थे।'

'मुझे याद है।' अविकत्थन भिक्षु के ढंग से हेमचन्द्र ने कहा।

'ऐसा ? यह तो मुझे मालूम ही नहीं।' आँबड़ बोला।

आँबड़ को देखकर उदा की याद आते ही मंजरी के मुख पर रेखाएं खिंचकर मिट गईं। उसने आँबड़ के सामने देखकर कहा, 'तुम्हें कैसे मालूम हो ? सूरिजी के साथ मुझे भी दीक्षा देने वाले थे।'

'फिर ?' आँबड़ के कानों उड़ती बात आई अवश्य थी किन्तु मंजरी के मुंह से सुनने के लिए उसने पूछा।

'फिर ?' मंजरी नीचे देखकर हँस पड़ी। उसके हास्य की तरंगें कमरे में प्रसरित हो गईं। सूरि के अविकारी कान को यह स्वच्छन्दता खटकी। उसके मस्तिष्क ने केवल इतनी-सी टीका की—'इस हास्य को विद्युल्लेखा कहा जा सकता है।'

'फिर क्या ?' मंजरी ने बात आगे बढ़ाई, 'मैं भाग गई। महाराज ! दीक्षा लेने के पश्चात् जिस शांति की खोज में आप थे वह मिली ?'

'मेरे मन में अशांति थी ही नहीं।' हेमचन्द्र ने कहा। 'किन्तु जिन-शासन का श्रेयस्कर पथ छोड़ देने के पश्चात् तुम अपना ब्राह्मणत्व तो रख सकीं न ?'

मंजरी के कानों को इन शब्दों में कर्कशता लगी। इस प्रश्न में उसे ताना लगा। उसने सावधान होकर ऊपर देखा।

'मेरे ब्राह्मणत्व को—आपकी बोली में मेरी मिथ्यादृष्टि को—हरने की किसी में शक्ति थी ही नहीं।'

सूरि मुस्करा दिए, 'तुमने दीक्षा ली होती तो जिनशासन की आभूषणरूप साध्वी बनतीं।' मंजरी का सुडौल सिर गर्व से ऊंचा उठा। उसकी आंखों की चमक बढ़ गई। उसने आंखें तनिक खोलीं, उनमें चमक लाने की उसकी दक्षता सभी देखने लगे।

'मैं भाग गई तो आपका सम्पूर्ण शासन भी जो मुझे न दे सकता था वह मुझे मिला।'

'क्या?' आँबड़ के मुंह से निकल गया।

मंजरी यह प्रश्न सुनकर हँस पड़ी। उसकी आंख में दया और वाणी में मृदुलता आ गई, 'तुम्हारे दुर्गपाल।'

'काक भटराज।' सूरिजी इस प्रकार बोले मानो आम्रभट को उत्तर दे रहे हों। मंजरी ने इसमें छिपा हुआ कटाक्ष भांप लिया।

'हाँ।' उसकी वाणी में दुर्जय गर्व की झंकार थी। उसकी सुन्दर ग्रीवा की नसें कुछ फूलकर उठ आईं, 'गुरु द्रोणाचार्य और कौटिल्य दोनों का दर्प भंग करे ऐसा भटराज!' वह हँस दी। उस हंसी में विजय-दुन्दुभी की प्रतिध्वनि थी।

हेमचन्द्र सूरि को लगा कि उसके जैसे साधु के सामने मंजरी आडम्बर दिखाए यह उचित नहीं था। उसे भास हुआ मानो उसे प्रशंसा करने के लिए ही बुलाया गया था।

'भगवती! लगता है काव्य-पुराणों में बहुत रुचि है तुम्हारी!' हंसकर सूरि ने कहा।

उसकी हंसी में पिता का वात्सल्य था। यह देखकर मंजरी क्रोधित हो गई। आम्रभट के कथनानुसार हेमचन्द्र उससे भेंट करना चाहता था तो क्या उसका अपमान करने के लिए!'

'रुचि!' सोमेश्वर को भी तनिक खटक गया था इसलिए वह

बीच ही में बोला, 'सूरिजी ! आप देवी की शास्त्रज्ञता से परिचित नहीं हैं।'

आँबड़ को सहारा मिला। मंजरी की प्रशंसा करके हेमचन्द्र को नीचा दिखाने का यही अवसर दिखाई दिया, 'सोमेश्वर ! हमारे सूरिजी अन्य शास्त्रज्ञों के समान नहीं हैं। ये हमारे गुजरात के अद्वितीय विद्वान् हैं। और देवी, ये आपके साथ विवाद करेंगे।'

मंजरी ने चमककर ऊपर देखा। क्या इस विदेशी सूरि और उसके मित्र आंबड़ ने उसकी परीक्षा लेने, उसकी विद्वत्ता की हँसी उड़ाने के लिए यह प्रपंच रचा है ? उसने कई सभाएं देखी थीं, कई-एक में विजय भी पाई थी, जैसे-जैसे उसका जीवन काक के जीवन में समाता गया त्यों-त्यों हर-किसी पण्डित के साथ विवाद न करने का उसने दृढ़ सङ्कल्प कर लिया था। क्या उसके गौरव का अपमान करने के लिए ये आये थे ? क्या उसके वीर पति के शत्रु उसकी पत्नी की हँसी उड़ाकर उसका अपमान करने का प्रयत्न कर रहे थे ? उसे उदा महेता—आंबड़ का पिता, हेमचन्द्र का सहायक और उसका और उसके पति का शत्रु—याद आया। काश्मीर के कवि-कुल-शिरोमणि की कन्या, नवघण विजेता काक की अर्द्धाङ्गिनी का रक्त खौल उठा। उसके मोहक रक्तिम अधर काँपे और बन्द होकर कठोर हो गए। कामदेव के धनुष-सी उसकी भवें तनिक निकट आईं, उसकी नाक गर्व से तनिक तिरछी हो गई। वह हँसी—इस प्रकार कि नरपति भी क्षुब्ध लगने लगें—और बोली, 'गुजराती विद्वान् !' और रण के लिए तत्पर वीर की भांति सुधि खोकर, मानो पण्डितों की सभा में हो इस प्रकार गर्व-वचन बोली—

या पाणिनीयमुपजीवति शब्दशास्त्रम्
या मम्मटोदितमलंकरणं प्रयुङक्ते।

तस्या नु गुर्जरगिरः परिचारकस्य
कस्ते मया सह विवादकथावकाशः ॥*

हेमचन्द्र में जितनी साधु की निर्लिप्तता थी; उतनी ही चतुर व्यक्ति की दृष्टि भी थी। वह तुरन्त समझ गया कि कुछ भ्रम होने के कारण ही मंजरी ऐसे शब्द कह रही है। उसने एकदम आँबड़ के सामने देखा और उसके मुस्कराते हुए मुख का रहस्य जाना। इसी मोहांध ने यह सब किया है यह वह समझ गया। और मंजरी को देख उसके भावहीन मस्तिष्क में अपरिचित के समान प्रशंसा करने का विचार उठा। उसने नम्रता से हाथ जोड़े और अत्यन्त आदरपूर्ण मुखमुद्रा में सम्मान से उत्तर दिया—

शब्दानु शासन मधः कृत पाणिनीयम्
निधूंत माम्मटमलंकृति तन्त्र मन्यद्।
निर्माय गुर्जरगिरां गुरुतां दधानः
धन्योऽचिरात्तत्र हरिष्यति कोऽपिगर्वम् ॥†

पल-भर तक मंजरी देखती रही। उसे लगा कि इस बाल-सूरि का अभिप्राय उसका अपमान करने का न था। वह युवक सूरि को भूल गई, उसकी दृष्टि के सामने वर्षों पहले देखा वीतराग होने के लिए व्याकुल बालक आ गया। उसका क्रोध उतर गया। अपना

---

* जो पाणिनी द्वारा रची हुई व्याकरण की शरण लेता है, और जो मम्मट की बताई अलङ्कार-योजना अपनाता है, ऐसे गुर्जर-भाषा के परिचारक को मेरे साथ विवाद करने का अवकाश हो सकता है?

† पाणिनी के शास्त्र को भी तुच्छ बना देने वाला व्याकरण-शास्त्र और मम्मट के अलंकार-शास्त्र को भी उलटने वाला अलङ्कार-शास्त्र रचकर गुर्जर-भाषा के गौरव को बढ़ानेवाला कोई धन्य-पुरुष निकट भविष्य में तेरा गर्व-हरण करेगा।

गर्व उसने समेट लिया। वह हँस पड़ी—नन्हीं बालिका के समान, 'महाराज! मुझे क्षमा कीजिए। एक बार दीक्षा लेने से पहले मैंने आशीर्वाद दिया था। आज मैं स्त्री हूँ—फिर भी, आशीर्वाद देती हूं। मम्मट और पाणिनी दोनों का पद आप ही का प्राप्त हो। मेरा गर्व घटेगा नहीं—बढ़ेगा।' मंजरी के स्वर में उत्साहप्रेरक सङ्गीत था। उसके मुख पर अन्तर की आशाओं से उत्पन्न अनोखी तेजस्विता छा रही थी। उसने आवेश में आकर हाथ लम्बा कर दिया—अपूर्व और अवर्णनीय छटा से।

हाथ लम्बा करते समय मंजरी का पल्ला सिर से खिसक गया, और एक क्षण के लिए उसका सम्पूर्ण सिर दिखाई दे गया। उसके ज्वलंत सौंदर्य से भभक-पड़े मुख की मोहकता दुर्जय हो उठी।

सूरि ने आशीर्वाद सुना, स्वर का संगीत सुना, सौंदर्य का दर्शन किया। संस्कृतमें इसके लिए क्या शब्द है यह स्मरण नहीं आया, उसकी आत्मा को अपरिचित की सनसन् सुनाई दी। इस स्त्री को संतोष देने के लिए पाणिनी बनने का उत्साह हुआ। इस स्त्री को देखने—वह आगे विचार न कर सका। उसकी आँखों में अँधेरा छा गया, उसके मस्तिष्क में कड़कड़ाहट हुई—उसके स्थिर और भावनाविहीन मस्तिष्क के चौरस धरातल पर उत्साह से उछलती मानवता की गगनचुंबी लहरें मानो पुनः लौट रही हों ऐसा उसे भान हुआ। उस भयंकर क्षण में सूरिपद, वीतरागपद, अविकार दृष्टि के सामने से लुप्त होते दीख पड़े। शुष्क और स्नेहहीन जीवन में युद्ध की भयानक निर्जनता चारों ओर फैलती हुई दिखाई दी।

यह सब एक निमिषमात्र में हो गया। उस निमिष में उसे विश्वास हो गया कि अविकार का गर्व मिथ्या है। उसे लगा कि एक प्रतापी महाप्रयत्न के बिना उसकी रक्षा न हो सकेगी। उसने महाप्रयत्न किया, अपनी प्रबल इच्छाशक्ति को एकाग्र करके मास्तिष्क में स्थिरता लाया; और एक चतुर खिलाड़ी जिस प्रकार एक लौह शलाका को टेढ़ी

कर देता है उसी प्रकार उसने अपने चंचल मस्तिष्क को घुमा दिया। उसने मनुष्य-शरीर की अपवित्रता का ध्यान किया, स्त्री के सौंदर्य में पाप की जड़ का स्मरण किया। वह अनित्यादि वैराग्य की भावनाओं पर विचारने लगा, तीर्थंकर भी दुष्कर्म को नष्ट करने के लिए घोर तपस्या करते हैं, इसका विचार किया।

दूसरे ही क्षण उसने कामदेव को नष्ट करने वाले परमतीर्थंकर वीर परमात्मा का ध्यान किया।

उसे लगा उसका मस्तिष्क फट जायगा—किन्तु उसकी इच्छाशक्ति ने अपना दबाव न छोड़ा। उसने धीरे-से मंजरी की ओर देखा और उसके मुख को ध्येय मानकर शुकल ध्यान में मग्न हो गया।

भावनाओं से अपरिचित उसके मस्तिष्क में उठी नाम की आँधी को लुप्त होते देर न लगी। आजन्म अविकारी के मस्तिष्क के पल-भर के विकार को वश में करते देर न लगी।

सूरि स्थिर नयनों से मंजरी को देखने लगा। उसकी एकाग्रदृष्टि के कारण उसका मानुषी सौंदर्य और उसकी मोहकता पलट गए। उसने मंजरी के नयनों में दिव्य तेज देखा, उसके स्फटिक भाल पर अगाध ज्ञान की रेखाएँ देखीं; उसके सौंदर्य में से विशुद्ध ज्ञान की शांत रश्मियां फूटती देखीं। सूरि की एकाग्रता व्यापक हुई। उसने मंजरी की गोद में वीणा पड़ी देखी। उसके चरणों के सामने मयूर बैठा देखा। उत्साह प्रेरित करने के लिए उसके आगे बढ़ाए हुए हाथमें उसने कमल देखा। रूप मंजरी का ही रहा, किन्तु उसने दर्शन किये सरस्वती के।

हेमचन्द्र ने साष्टांग दंडवत् किया, 'माता! तुम्हारा वरदान अवश्य फलीभूत होगा।'

एक क्षण उसने दृष्टि ठहराई। उतने समय में सूरि ने योगबल से निर्विकारता साध ली थी। उसने प्रणाम किया, आँखें मींचीं और खोलीं। सभी उसकी ओर देख रहे थे। भाग्य से ही कोई नम्रता का अर्थ समझा हो। सूरि ने शांत वाणी में कहा—

काश्मीरान् गन्तुकामस्य शारदाराधनेच्छया ।
यात्राभूत् पुनरुक्ता मे वीक्ष्य त्वां शारदामहि ॥*

मंजरी की आँखें हँस रही थीं। सूरि के अन्तर में जितना संभव है उतना उत्साह आया ।

'सूरिजी ! आप यहाँ कब तक ठहरेंगे ?'

'मैं कल जाऊँगा ।'

'माँ !' कहता हुआ लुढ़कता-फिसलता बौसरि अन्दर आया। वह आकर मंजरी के गले से लिपट गया। सभी उसकी ओर देखने लगे। मंजरी की आँखों में स्नेह उभर आया ।

'माता ! यह तुम्हारा पुत्र है ?'

'हाँ, महाराज !'

हेमचन्द्र लड़के की ओर एकटक देखता रहा और फिर गम्भीर मुख से कहा—'माता ! इस पुत्र की माता को मैं पुनः प्रणाम करता हूं ।'

'क्यों ?'

'जिनशासन का संरक्षण इसीके प्रताप से होगा ।'

सभी चकित होकर सूरि की ओर देखने लगे। केवल हेमचन्द्रसूरि बालक की मुखमुद्रा को ध्यान से देखता रहा। उसकी वाणी में शांति थी।

'महाराज ! क्या कहते हैं ?' अनजाने ही मंजरी को कंपकंपी छूट गई ।

'हाँ ! मुझे स्पष्ट दिखाई दे रहा है ।'

'तो महाराज ! एक बात पूछूं ?' आतुरता से मंजरी ने कहा ।

---

* शारदा की आराधना करने की इच्छा से मैं काश्मीर जाना चाहता था। किन्तु आप स्वयं शारदा हैं। आपको यहाँ देखने के पश्चात् मेरी यात्रा का कोई प्रयोजन नहीं रह जाता ।

'क्या ?'

'भटराज कब लौटेंगे ?'

सूरि ने शंकित होकर मंजरी की ओर देखा ।

'मेरी विद्या इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकती । माता ! अब हमारे जाने का समय हो गया ।'

'हाँ, ठहरिए । भिक्षा दे दूं ।' मंजरी उठी । उसके हृदय में खिन्नता व्याप्त हो गई । समुद्र की यात्रा करते हुए पोत का वियोग दुःसह हो उठा ।

दूसरे दिन जब हेमचन्द्रसूरि ने भृगुकच्छ से प्रस्थान किया उस समय उनके मुख पर सरस्वती से वरदान पाने का गर्व था ।

दूसरा खण्ड

: १ :

सोरठ का किनारा

सूर्यास्त होने आया था। अस्ताचल पर अंशुमाली का अन्तर्धान होता हुआ स्वर्णिमय बिम्ब पल-भरके लिए विश्राम करने क्षितिज पर ठहर गया। ऊपर आकाश और नीचे जलधि स्वर्ण में मढ़ गए। लहरें चारों ओर से उठकर अन्त में क्षितिज की ओर जाकर अदृष्ट हो जाती थीं।

पवन चलने लगा था। भरी हुई सरिता में एक पुराना और छोटा पोत झूल रहा था।

सभी कुछ अस्थिर था। केवल पोत में बैठे हुए दुर्गपाल का मुख निश्चल था। वह उत्तर की ओर स्पष्ट और श्याम क्षितिज की ओर देख रहा था।

वह तनिक मुस्करा दिया। 'सामंत!' उसने पुकारा।

'बापू!' एक सैनिक ने उत्तर दिया।

'यह उस ओर पाटण ही है न?'

'जी हाँ।'

'और चोरवाड़ उससे आगे?'

'हाँ।'

'और ये सामने क्या आया?'

'लाटी।'

'ठीक!' काक ने कहा और वहाँ से उठकर पोत के चालक के निकट गया।

'बाबा!'

'बापू!'

'देख! पतवार लाटी की ओर घुमा दे।'

'क्यों?'

'सुन,' सत्ता-भरे स्वर में काक बोला, 'मैं जो कहता हूँ वह सब याद रखना।'

'जी।'

'वहां मैं, सामंत, और दामा नायक उतर जायंगे। तेरे खलासी भी वहां हमारे साथ ही उतरेंगे। फिर तू और खेमाभट पोत को पाटण तक ले जा सकोगे?'

'जी हां। वह तो बहुत दूर नहीं है।'

'ठीक। कल प्रातःकाल जब पाटण का किनारा दीख पड़े तो पोत डुबो देना। और तू, मानो बहाव में बह रहा हो इस प्रकार तैरकर लाटी लौटकर आना और दामा नायक से मिलना। खेमाभट फिर अपना काम करेगा।'

'और कोई पूछे तो कहना कि चट्टान से टकराकर पोत डूब गया। मनुष्यों का क्या हुआ यह मालूम नहीं। समझा? तनिक भी भूल न हो।' काक बोला, 'बहारा ॐ के नाविक के नाम को बट्टा न लगे।'

'बापू! ऐसा कभी हो सकता है?'

'और आधीरात को मैं लौटकर आऊं तो भृगुकच्छ की ओर चलने की तैयारी कर रखना। खलासी सब विश्वासपात्र है न?'

'यह भी बापू कोई पूछने की बात है?'

'देख, मेरे प्राण तेरे हाथ में हैं,' काक बोला।

'बापू! आपका वचन और मेरा सिर। क्या समझे?'

काक हंस दिया। इन सबके भक्ति-भाव में उसे श्रद्धा थी।

काक ने पतवार किनारे की ओर घुमा दिए और पोत वेग से उस ओर बढ़ चला।

काक वहाँ से चला गया और दामा नायक को बुलाया। 'दामा! तुझे मेरे साथ यहां से तैरकर किनारे जाना है। ये सब खलासी तेरे साथ रहेंगे। किसी का पोत ढूंढ़ रखना। मैं किसी भी क्षण आऊं,

---

ॐनर्मदा के उद्गम के आस-पास का स्थान बहारा कहलाता है।

यहां से निकलने के लिए तैयार रहना।'

दामा दुर्गपाल की गति-विधि जानता था। समय पर एक से दूसरी बार कहने की प्रतीक्षा वह नहीं करता था। वह खलासियों को आदेश देने के लिए चला गया।

'खेमा!' काक ने खेमा को बुलाया। 'देख, मैं, सामंत, दामा और खलासी नौका में से उतर जायंगे। खेमा! मैं अपने प्राण और प्रतिष्ठा तेरे हाथों सौंपता हूं। तेरी चतुराई पर सम्पूर्ण लाट निर्भर है। देख तू मेरे वस्त्र पहन ले और अपने वस्त्र मुझे दे दे।'

'जो आज्ञा।'

'फिर तू और कावा नाविक दोनों पोत लेकर पाटण की ओर जाना। पाटण के दीखते ही पोत डुबो देना। कावा मानो बह रहा हो इस प्रकार आकर यहां दामा से मिलेगा और तू तैरकर पाटण के बंदर में जाना।'

'जी!'

'देख, ध्यान रखना। मुझसे परिचित कोई मिले तो कहना कि पोत डूब गया और मेरा क्या हुआ यह मालूम नहीं। किन्तु जहां तक मेरा अनुमान है कोई नया आदमी ही आएगा। नए पट्टणी योद्धाओं ने मुझे नहीं देखा है। तेरा और मेरा शरीर समान है; अतः अगर कोई तुझे काक समझ ले तो ना मत करना।'

खेमा तनिक चकित होकर देखने लगा।

'खेमा! हमारा एक-दूसरे से दस वर्ष का सम्बन्ध है, और तेरी चतुराई में मुझे विश्वास है। देख, यदि वे तुझे काक समझ लें तो भ्रम-भंग मत करना। संभव है तुझ पर असहनीय दुख टूट पड़े, वैसी दशा में एक बात याद रखना। यदि उदा महेता के आदमी तुझे कष्ट पहुँचायें तो कहना कि तुझे भाभी संबंधी बात करनी है। वे तुरन्त तुझे उसके पास ले जायंगे। और तू काक नहीं है यह उदा महेता देखते ही समझ जायगा। यदि महाराज के आदमी पकड़ें तो कहना मुंजाल

महेता से शेषनाग के श्राप की बात करनी है। समझा? आवश्यकता पड़ने पर दो में से कोई एक तुझे पहचान लेगा और तेरा बाल भी बांका न होगा। मैं जीवित रहा तो पाँच-सात दिन में आ पहुंचूंगा।'

'जी।'

'खेमा! तू सब बात जानता है अतः कुछ ऐसा करना कि इतने दिनों तक यह भ्रम बना रहे।'

'इसकी चिन्ता न कीजिए।'

'और खेमा!' काक की शांत वाणी तनिक कांप उठी, 'मुझे कुछ हो जाय तो—' काक ने गला साफ किया, तू और सोमेश्वर अपनी भाभी और बच्चों को देखना।'

'अरे, बापू!' आंखों से जल पोंछते हुए खेमा बोला, 'किसकी मजाल कि कोई आपका बाल भी बांका कर सके। अधिक 'पंचात' करेंगे तो इन पट्टणियों को उखेड़ फेंकूंगा।'

काक मुस्करा दिया।' बात इतनी सहज नहीं है।'

'बापू आप बुद्धिमानों को ऐसा ही लगता है। हम तो तुरन्त दान महाकल्याण में विश्वास करते हैं।'

'अच्छा' कहकर काक ने खेमा का आलिंगन किया।

पोत के किनारे के निकट पहुँचने पर काक, दामा नायक, सामंत और खलासी लकड़ी के पाट डालकर पानी में कूद पड़े और किनारे की ओर चले गए। खेमाभट और कावा ने धीरे-धीरे पोत को पुनः नदी के मध्यप की ओर बढ़ाया।

: २ :

प्रभात

उदा का स्वच्छ प्रकाश बढ़ने लगा था। प्रकाश में सोमनाथ पाटण समुद्र से निकली रंभा के समान शोभित हो रहा था। सुन्दर वस्त्र के घेर के समान नगर की कोट समुद्र तक आती थी और जहां वह जलधि को स्पर्श करती थी वहां बंदर में पड़ी नौकाओं की झालर मन्द-मन्द पवन में झूल उठती थी। इस घेर के ऊपर अप्सरा की अमर देह के समान सोमनाथ का भव्य मन्दिर दिखाई दे रहा था। और मन्दिर का स्वर्ण-कलश और उसके चारों ओर फहराती हुई ध्वजा ऐसी लग रही थी मानो उज्वल, दिव्य सुन्दरी अपने मुख को ओढनी में छिपाने का निरर्थक प्रयत्न कर रही हो। प्रभास मे आज जिस मन्दिर के भग्नावशेष दीख पड़ते हैं वही कभी पृथ्वी से प्रदक्षिणा करवाते मेरु के समान, सम्पूर्ण छटा में स्थित था। आज भी उसकी प्रत्येक शिलाकी अपूर्व कारीगरी, उसके स्तंभों का गौरव और उसके गुम्बजों के अवशेष—इन सबसे यह मन्दिर कैसा रहा होगा इसका अनुमान किया जा सकता है। किन्तु इस कथा के काल में तो वह नया था और नवयौवन की मोहकता में चढ़ा हुआ था।

महमूद गज़नवी ने पाटण लूटकर और सोमनाथ के प्राचीन मन्दिर को तोड़कर यह मान लिया कि उसने गुजरात की शक्ति और समृद्धि को सदा के लिए लूट लिया। किन्तु वह धर्म-विनाशक विदेशी गुजरात से परिचित नहीं था। उसके पीठ फेरते ही शूरवीर भीम ने पुनः पाटण ले लिया, और जहां प्राचीन मन्दिर के जले हुए पत्थर पड़े हुए थे वहां नए मन्दिर की रचना प्रारम्भ हो गई। देश-देश के कारीगरों ने वर्षों तक एकाग्र होकर साधना की। देश-देश के नरपतियों ने अतुल धन का उपहार दिया। और जिस मन्दिर का निर्माण शूरवीर भीम ने आरम्भ किया, निर्माणादि में रुचि रखने वाले कर्णदेव ने जिसे अलंकृत किया,

तीन पीढ़ी पश्चात् उसी पर जयदेव ने अनमोल स्वर्ण-कलश चढ़ाकर महमूद ग़ज़नवी की विनाशक वृत्ति का उपहास किया।

यह मन्दिर नहीं वरन् पत्थर में तराशा हुआ महाकाव्य था और उसकी प्रेरणा-शक्ति उससे भी अधिक थी। चारों दिशाओं से आये हुए यात्री कैलाश के समान गगनचुंबी और अमरावती के समान अपूर्व शंकर के इस सदन को देखकर ऐसा समझते मानो उन्हें सदेह मुक्ति-लाभ हो गया हो और भवभव के ताप मिट गए हों।

यह मन्दिर पृथ्वी पर खड़ी की हुई अनहिलवाड़ के प्रभाव की अमरमूर्ति की रक्षा करता था। खंभात, भड़ौंच और प्रभास; गुजरात के इन तीन विशाल द्वारों में से प्रभास सबसे छोटा था। फिर भी विदेशी पोत यहां की पवित्रता और मन्दिर की भव्यता से आकर्षित होकर यहां लंगर डालना न चूकते थे। बन्दर के निकट आते हुए यात्रियों की प्रशंसा-भरी दृष्टि क्षितिज पर सोमनाथ भगवान् के गगन-भेदी गुम्बज पर पड़ती थी। जितनी ही उनकी भक्ति-भावना बढ़ती थी उतना ही पाटण का मान बढ़ता था।

पाटण के नरेशों की दृष्टि में भी यह मन्दिर उनके प्रताप की जीवित प्रतिमा था। मूलराज सोलंकी की गम्भीर चतुराई ने प्रभास-धाम को अनहिलवाड़ का पुण्यक्षेत्र बना दिया था। इसीसे सोरठ में गुजरात का प्रभाव फैला और सम्पूर्ण हिन्द के पुण्यधाम के रक्षक कहलाने का गौरव सोलंकियों को प्राप्त हुआ। भीम ने गुजरात के रुधिर से इस भूमि को सींचा, इसकी पवित्रता को उज्वलता प्रदान की और समग्र संसार पर विजय प्राप्त करने को व्याकुल जयसिंहदेव भी यही मानते थे कि इष्टदेव के वैभव में ही उनका वैभव समाया हुआ है।

शिवालय घण्टानाद से पहले घोड़ों की टाप से जाग उठा। तीन अश्वारोही अश्वों को दौड़ाते हुए मन्दिर के सामने आए। उनमें से आ ं का अश्वारोही अश्व से धरती पर कूद पड़ा और पीछे देखे बिना ही अधीर गति से मन्दिर में घुस गया।

यह आगन्तुक पट्टणी सैनिक था। उसके वस्त्र और आभूषणों से लगता था कि वह बहुत सम्पन्न है और उसके मुख से लगता था कि वह बुद्धिशाली है। वह त्वरित् गति से मन्दिर में गया। ध्यान दिये बिना ही घण्टा बजाया और महादेव की ओर देखे बिना ही नमस्कार किया। मन्दिर की एक खिड़की के सामने एक व्यक्ति खड़ा हुआ था। नवागन्तुक ने उसे देखा और देवता को अवकाश के अनुकूल मान देकर उसकी ओर गया। खिड़की के सामने खड़ा हुआ आदमी खलासी जैसा लग रहा था।

'नायक!' उस नवागन्तुक युवक ने कहा।

'बापू!' उस व्यक्ति ने बड़े सम्मान से नमस्कार करते हुए कहा।

'क्या हाल है?'

'बापू! खलासी अभी-अभी चारों ओर होकर आए हैं। ऐसा लगता है केवल एक पोत आ रहा है।'

'यहाँ से दिखाई देता है?' उस युवक ने पूछा।

'वह है?' खलासी ने कहा।

थोड़ी देर तक कोई कुछ न बोला। क्षितिज पर एक बिन्दु आकार में बड़ा होता जा रहा था।

'चल बाहर चलें' युवक ने कहा, और बाहर निकल गया। खलासी पीछे-पीछे आया और दोनों मन्दिर की कोट पर चढ़कर खड़े हो गए।

युवक चौबीस-पच्चीस वर्ष का था फिर भी उसके मुख पर गांभीर्य की छाप थी। वह स्वाभाविक गर्व से चलता था और रह-रहकर अधीरता से क्षितिज की ओर देखता था। थोड़ी देर में सूर्योदय हुआ और सूर्य का स्वर्णिम बिम्ब ऊपर आया। दृश्य प्रतिदिन के समान होते हुए भी अपूर्व था। सुन्दर लगते हुए इस बिम्ब की ओर क्षण-भर तक वह युवक देखता रहा। फिर धीरे-से उसने मन्दिर के शिखर की ओर देखा और पोत पर मस्ती से उड़ती हुई ध्वजा की ओर प्रसन्न होकर

देखने लगा। उसने पुनः अपनी दृष्टि सरिता की ओर की और मानो उछलती तरङ्गों से कोई संदेशा सुना हो, वह बड़बड़ाया—

'तरङ्ग भ्रू भंग'—

'बापू!' उस खलासी ने इस कविताप्रेमी युवक की विचार-माला को क्रूरता से भङ्ग कर दिया।

'क्यों?'

'वह गया—' खलासी ने हाथ लम्बा करके आवाज़ दी।

'क्या?'

'वह पोत चट्टान पर चढ़ गया है। देखिए डोल रहा है।'

'हां। अब क्या होगा?'

'टूटा.....अरेरे—वह डूबेगा।' खलासी ने टूटे हुए शब्दों में कहा।

'यह भड़ौंच से आ रहा था वही पोत है क्या?' युवक ने पूछा।

'हाँ, बापू!'

'हाय, हाय!' उस युवक का कपाल संकुचित हो गया, 'नायक! इसमें के सभी व्यक्तियों की रक्षा करनी होगी।'

'जो भोलानाथ करे वही ठीक!'

'अरे भोलानाथ तो करेगा ही।' अधीरता से पग पटककर युवक बोला।

'तू दूसरे खलासी लेकर पहुंच और उसमें जितने योद्धा हों उन्हें किसी-न-किसी प्रकार मेरे पास ला। देखता क्या है?' युवक ने क्रोधित होकर पूछा। 'जा एकदम, और बन्दर पर आज्ञा दे दे—कोई भी तैरकर आए तो उसे पकड़कर मेरे पास लाया जाय।'

'और न आए तो?'

'तुम लोगों के पास बांधने के लिए रस्सियां हैं या नहीं?' कटाक्ष से युवक ने कहा, 'जा शीघ्र जा।'

दूसरे ही क्षण वह खलासी अंदर की ओर भागा और अन्य खला-

सियों को एकत्रित कर नौकाएं खोलने में लग गया। वह युवक थोड़ी देर तक नायक की गति-विधि देखता रहा, फिर डूबते हुए पोत की ओर देखा। अन्त में हतोत्साह होकर धीमी गति से वह मन्दिर की ओर मुड़ा। उसके मुख पर निराशा स्पष्ट प्रकट हो रही थी।

वह थोड़ी दूर जाकर पुनः लौटा और मन्दिर में प्रवेश किया। उसने पुनः घण्टा बजाया और मध्यद्वार तक जाकर साष्टांग प्रणाम किया। 'भोलानाथ! अवज्ञा की हो तो क्षमा करना।' उसने गद्गद् कण्ठ से प्रार्थना की।

चिंतातुर मुख से वह उठा, मन्दिर से बाहर गया, और अश्व पर बैठकर अपने निवास-स्थान की ओर मुड़ गया।

: ३ :

वाग्भट

युवक धीमे-धीमे अपने स्थान पर गया और पगड़ी उतारकर इधर-उधर फिरने लगा। उसके मुख पर ग्लानि थी और वह जब-तब कान लगाकर आते-जाते लोगों की पग-ध्वनि सुन रहा था।

जैसे-जैसे समय व्यतीत होता गया वैसे-वैसे उसकी अधीरता बढ़ती गई। अन्त में उसने एक आदमी को बुलाकर बन्दर की ओर भेजा।

बहुत समय व्यतीत हो गया। युवक का मुख निस्तेज और निरुत्साह होने लगा। होठों को दबाकर वह अधीरता को दबा रहा था। उसने एक निःश्वास ली। उसे ऐसा लग रहा था कि उसके जीवन की आशा नष्ट होती जा रही है।

इतने में बाहर अश्व की टाप सुनाई दी। युवक एकदम आगे बढ़ आया। अश्व पर से नायक और एक अधेड़ वय के योद्धा को उतरते

हुए देखकर उसके मुख पर मुस्कराहट छा गई। नायक के साथ आने वाले योद्धा का मुख उसे तेजस्वी लगा। आंखों में चमक भी थी—अस्पष्ट—क्योंकि वह थका हुआ था। उसके चलने की छटा में गर्व था। नाक तीखी कही जा सकती है, स्नायु भी दृढ़ थे। युवक को संतोष हुआ। 'समरथ ! मैं जीता। तू हारी, अब तू मेरी—'

किन्तु युवक का यह असम्बद्ध प्रलाप अधिक न चल पाया। वह योद्धा भीगे वस्त्रों सहित आया।

'कौन, भटजी ?' उस युवक ने आगे बढ़कर पूछा।

उस योद्धा ने कपाल को आकुंचित कर सिर ऊपर उठाया। 'मुझे ये लोग यहाँ क्यों लाए ?' तनिक गर्व से उसने पूछा।

'क्षमा करो भटराज !' युवक ने कहा, 'जयसिंहदेव महाराज ने आपका सत्कार करने के लिए मुझे भेजा है। आपके पोत को विकट परिस्थिति में देखकर मैंने इस नायक को भेजा था।'

'तुम कौन हो ?' गर्व से उस योद्धा ने पूछा।

'आपने मुझे नहीं पहचाना ?'

'कभी देखा हो ऐसा स्मरण नहीं आता।'

'मैं उदा महेता का वाहड़ हूं।' उस युवक ने कहा।

'उदा महेता का पुत्र वाग्भट, भटराज और पण्डित।' धीरे-से वह योद्धा बोला। वाग्भट को बोलने की इस आडम्बर-भरी रीति के प्रति तिरस्कार हो आया।

'जी हाँ ! आप दूसरे वस्त्र धारण कर लीजिए। अब हम वंथली चलेंगे।'

'मैं तुम्हारे साथ नहीं आऊंगा।'

'क्यों ?'

'मेरी इच्छा।'

वाग्भट की आशा भंग हो गई। उसने काकभट की इतनी प्रशंसा

सुनी थी कि उसने उसके विषय में वास्तविक काकभट से भी हज़ार गुणा अधिक ऊँची कल्पना कर रखी थी।

'आपको आना ही पड़ेगा।'

'क्यों?'

'महाराज की आज्ञा है।'

'और यदि न आऊँ तो?' तनिक विचित्र ढङ्ग से हँसकर वह योद्धा बोला।

'आपको ले जाना पड़ेगा। यहाँ से वंथली जाने का रास्ता नहीं है। और मुझे विशेष आज्ञा दी गई है।'

'तो ठीक है।' काकभट को एकदम स्वीकार करते देखकर वह और आश्चर्य में पड़ गया।

'अभी प्रस्थान कर दें?' वाग्भट ने पूछा।

'जब तुम कहो।'

'आप विश्राम कर लीजिए, तब चलेंगे।' विनयी वाग्भट बोला। उसका मन वंथली जाने के लिए कूद रहा था।

: ४ :

गिरनार

जिस समय काक को पकड़कर अपने आपको भाग्यशाली मानता हुआ वाग्भट फूला न समा रहा था उस समय काक सरपट भागते हुए घोड़े पर जूनागढ़ की ओर बढ़ रहा था। लौटी जाकर उसने खलासियों और दामा को वहीं छोड़ दिया और स्वयं तुरन्त चोरवाड़ गया। थोड़ी ही देर में चोरवाड़ का मोतिया अहीर और काक दोनों ने जूनागढ़ का

मार्ग लिया। रात होते हुए भी वे जूनागढ़ जाने को मुख्य सड़क से न जा सके। इस मुख्य सड़क की रक्षा पाटण की सेना करती थी अतः उधर होकर जाना विपत्तियों से भरा हुआ था। इसी कारण उन्हें लंबा, टेढ़ा-मेढ़ा मार्ग पकड़ने की आवश्यकता पड़ी।

सोरठ के निर्मल व्योम में चमकते हुए तारागण के प्रकाश में वे मार्ग काट रहे थे। किन्तु सोरठ के हवा से बात करते हुए घोड़ों के लिए अंधकार या पथ की कठिनाइयाँ कुछ भी न थीं। योजन-पर-योजन पार होते चले जा रहे थे, फिर भी मांतिया और काक अधीरता से एड़ी का उपयोग करते ही चले जा रहे थे।

काठियावाड़ी घोड़े में जब साहस आता है तो उसके पंख लग जाते हैं, उसके पांव थकते नहीं, उसकी श्वास भरती नहीं और उसको एड़ियों की आवश्यकता नहीं होती। वह पशु न रहकर वेग की मूर्ति बन जाता है। उसका स्थूल देह समीर की सूक्ष्मता प्राप्त कर लेता है। इन वेगवती घोड़ियों को उसकी इच्छा-शक्ति को तन्मयता से साधते देखकर काक को भी उत्साह हुआ। उषःकाल के समय जब उसने घोड़ियों को रोका उस समय क्षितिज पर गिरनार शोभित हो रहा था। पर्वतों से परिचित यात्री को गिरनार खिलौना मालूम होता है, और यह शंका होने लगती है कि इसे पर्वत क्यों कहा जाता है! किंतु चौरस भूमि में रहने वाले गुजराती के लिए तो गिरनार गिरिराज था।

छोटे जंतुओं के बीच खड़े मनुष्य-वीर की भांति वह सोरठ की चौरस भूमि पर शोभित हो रहा था और शताब्दियों से जनसमूह की भक्ति का आकर्षण-केन्द्र बना हुआ था। आदर्श चक्रवर्ती मांधात के पुत्र ने इसकी छाया में शांति प्राप्त की तथा यादवपति कंसहारी कृष्ण ने कालयवन के भय से भागते हुए इसी की शरण ली थी। अवनी पर बुद्धधर्म का प्रसार करने के लिए उत्सुक देवप्रिय अशोक, आर्यावर्त में हिन्दू संस्कृति स्थापित करने के लिए तत्पर हुआ कुलभूषण

समुद्रगुप्त, और विदेशी होते हुए भी आर्य-धर्म के गर्व से मत्त बना रूद्रामन—इन तीनों ने इसे अपनी सत्ता का सीमादर्शक विजय-स्तंभ माना था। चूड़ासमा की सत्ता के स्थापक ने भी इसकी अभेद्यता की सहायता से सोरठ का साम्राज्य स्थापित करने का प्रयत्न किया था, और इसकी प्रेरणा से प्रबल बनकर खेंगार पाटण की सर्व-विजयी सत्ता को वर्षों से छका रहा था।

निर्वाण की खोज में लगे हुए बौद्धभिक्षु-की शांति और स्थिरता प्रकट करती हुई पदरेखा, संस्कार के विजय की निरन्तर साधना में रत और आर्यधर्म की धुरि को सीधी रखने वाले ब्राह्मणों की निडर निश्चयात्मकता की साक्षी देने वाले पदचिह्न, हिंसा के मोह में फंसी हुई मनुष्य-जाति को अहिंसा धर्म की शिक्षा देने के लिए व्याकुल जैन साधुओं की सहनशीलता को छाया से शोभित पदचिह्न, पावित्रता के ये सभी पादस्पर्श वहीं पत्थर-पत्थर में दिखाई पड़ते हैं। तनिक अधिक ध्यान से देखने पर दो और रेखाएँ दिखाई देंगी।

एक नन्हीं और सुघड़—नर केसरियों की विस्मृत होती हुई वीरता को सुकुमार हाथों से टिकाए रखनेवाली, सतियों में श्रेष्ठ राणक की, और दूसरी विशाल और कठोर—जिसके शिशुहृदय में उपजी संत-जीवन की पवित्रता, भक्ति-योग की महत्ता और साहित्य-प्रेम की रसिकता—त्रिवेणी-संगम के प्रताप से गुजरात की रसाल भूमि पुनः रसमय हो गई थी उस कृष्ण-विट्ठल नागर की!

किन्तु इस सब पर विचार करने के लिए काक के पास न समय था और न शक्ति। उसके लिए गिरनार उसके मित्र खेंगार—केसरी की गुहा थी और इसीलिए था उसकी यात्रा का लक्ष्य।

सूर्योदय होने लगा। गिरनार के शिखरों पर भूरापन हटकर तनिक स्वर्ण के तेज की चमक छा गई थी। और निकट ही पर्वत के शृंगों से ही विश्वकर्मा ने मानो गढ़ बना लिया हो ऐसा जूनागढ़ भी दिखाई दिया।

'बापू !'

'हम जूनागढ़ कब पहुँचेंगे ?'

'बापू ! अभी पहुंच जाते, किन्तु इधर पट्टणियों का प्रबन्ध कुछ विशेष है इसलिए शीघ्रता नहीं की जा सकती। संध्या को पहुंच जायंगे।'

दोनों थोड़ी देर तक चलते रहे और फर घोड़ियों को छोड़कर एक वृक्ष के नीचे विश्राम करने बैठ गए। किन्तु उनके भाग्य में अधिक विश्राम करना न लिखा था।

'बापू ! उठो, घोड़ी संभालो।'

'क्यों ?'

'वहाँ धूल उड़ती दिखाई दे रही है। कोई आया है।'

काक ने देखा। कुछ दूर पर धूल उड़ती दिखाई दी। वे लपक कर घोड़ियों पर चढ़ गए और वेग से टेढ़े-मेढ़े मार्ग से भागने लगे। दिन-भर वे इसी प्रकार गाँवों और मुख्य सड़क से दूर चलते रहे। संध्या होते-होते वे गिरनार आ पहुंचे।

'बापू ! अब निश्चन्त हो जाइए। इस पथ पर अब कोई न मिलेगा।'

'क्यों ?'

'यह पथ केवल मुझी को मालूम है।'

काक ने चारों ओर देखा। 'मोतिया ! अब मेरी आँखों पर पट्टी बाँध दे।'

'क्यों ?' चकित होकर अहीर ने पूछा।

'मैं शत्रु-पक्ष का आदमी हूं। मैं इस पथ से परिचित न होऊं तो अच्छा।'

मोतिया ने गर्व से काक की ओर देखा और वस्त्र लेकर उसकी आँखों पर पट्टी बाँध दी।

काक ने नाम-मात्र को लगाम पकड़ रखी थी। उसकी चतुर घोड़ी वेग से अहीर की घोड़ी के पीछे-पीछे चली जा रही थी। पथ में स्थान-

स्थान पर उतार और चढ़ाव आते, कई बार घोड़ी एकदम खड़ी हो जाती। एक बार वह चमक भी गई।

काक को पट्टीमें से लगा कि चारों ओर अँधकार होगया है। थोड़ी देर पश्चात् मोतिया बोला।

'बापू! उतरिए, गढ़ आ गया।'

'ऊपर जाने से पहले पट्टी मत खोलना।'

'जैसी बापू की इच्छा।'

मोतिया थोड़ी दूर तक काक का हाथ पकड़कर ले गया। वहाँ कोई खड़ा हुआ था। मोतिया ने उससे बात की, और पुनः काक का हाथ पकड़कर पत्थर की एक संकरी पगडण्डी से चढ़ने लगा। पग-पग पर मोतिया काक को सावधान रहने की सूचना देता रहता था। बहुत देर पश्चात् वे गढ़ पर आगए। मोतिया ने पट्टी खोल दी।

चारों ओर अंधकार था। कभी-कभी मशाल का क्षीण प्रकाश दिखाई देकर अदृष्ट हो जाता था। इस अँधकार में भी मोतिया काक को बहुत शीघ्रता से ले चला।

थोड़ी दूर चलकर महल के पिछले द्वारसे उन्होंने अन्दर प्रवेश किया जहाँ मोतिया ने किसी मनुष्य के कान में कुछ कहा। वह तुरन्त ऊपर जाकर लौट आया और काक को ले गया। महल की छत के एक किनारे काक को खड़ा करके वह चला गया।

रात अँधेरी थी। काक तारों के क्षीण प्रकाश में भी चारों दिशाओं में अच्छी प्रकार देख सकता था। थोड़ी दूर पर सैनिकों की हुंकार और वेदना की चीत्कार स्पष्ट सुनाई पड़ रही थी। कोट की खाई से दूर अश्वों की हिनहिनाहट या कभी-कभी उत्साह-भरी गर्जना से पट्टणी और सोरठी सैनिकों के लड़ने के स्थानका ज्ञान करवा देते थे। चारों ओर के अंधकार में दीपक के प्रकाश के कारण विजय-सेना की छावनी बंधली स्पष्ट दिखाई पड़ती थी। स्थान-स्थान पर दिखाई पड़ने वाली आग की लपटें या धुंआ विदेशियों द्वारा किये हुए व्यवहार की साक्षी दे रहे थे। सबसे

तटस्थ, अंधकार में भी काला लगता हुआ गिरनार सभी पर अपना भयंकर प्रभाव डाल रहा था। और इस सबसे अलग दूर किसी गुहा में पड़े केसरी की गर्जना का गम्भीर नाद उस त्रासमय वातावरण को और भी त्रासदायी बना रहा था। काक विचार-मग्न होकर देखता रहा, और मौन ही उसने जूनागढ़ के दुर्जय खेंगार की अडिग वीरता को अर्घ्य अर्पण किया।

पीछे से कोई दौड़ता हुआ आया। 'कौन काक ?' आगन्तुक का स्वर सुनाई पड़ा।

काक को स्वर परिचित लगा। आगन्तुक को वह देख सके उससे पहले तो आगन्तुक ने उसे अपनी बाहुओं में भर लिया।

काक चमका, किन्तु पहचानते ही बोला, 'कौन रा' ?'

: ५ :
सशक्त भी निर्बल हो जाता है

राणकदेवी के स्थान पर रा' क्यों आए, उसे किस काम बुलाया, रा' क्या काम सौंपेंगे, इस प्रकार के अनेक विचार काक के मन में उठे। रा' के आलिंगन समाप्त कर लेने पर उसने उसे ध्यान से देखा। उसे देखकर उसके मस्तिष्क के आगे पन्द्रह वर्ष पहले का खेंगार खड़ा हो गया। उसके सबल और छटा-भरे अंग जैसे-के-तैसे थे। मात्र सोम-सुन्दरी के प्रणयी के सुन्दर अंगों पर इस समय कवच और पट्टियां थे। उसके सिंह-से भव्य मुख पर सुन्दर दाढ़ी शोभित हो रही थी, और दो घावों की रेखाएं इस भव्यता को अनुपम शोभा प्रदान कर रही थीं। उसकी चमकती हुई आँखों में निश्चल किन्तु अस्वाभाविक तेजस्विता दिखाई पड़ रही थी। उसका हास्य पहले जैसा ही मोहक था।

'काक ! तू आ ही गया ।' खेंगार ने भाव-भरे स्वर में कहा ।'

'महाराज !' काक ने विशेष मान से कहा । 'मुझे आपने बुलाया था ?'

'धीरे,' खेंगार ने कहा, 'हां, मैंने बुलाया था ।'

'मुझे तो देवी का संदेशा मिला था ।'

'नहीं, मैंने भेजा था ।'

'किन्तु मणिभद्र तो कहता था कि वह देवी से मिला था ।'

'वह तनिक पागल है । मैंने दूसरी रानी के द्वारा कहलवाया था । किन्तु वह भंगेड़ी भ्रम में यह समझ बैठा कि वह राणक से मिला था ।'

'ऐसा क्यों किया ?' काक ने पूछा ।

'वरना तू आता जो नहीं ।'

'आपने कहलाया होता तो भी मैं आजाता ।'

'क्यों, पाटण की चाकरी छोड़ दी ?' तनिक तिरस्कार से खेंगार ने पूछा ।

'नहीं । अब तक तो हूँ । कल की बात शम्भू जाने ।'

'क्यों ? फिर तेरे स्वामी क्रुद्ध होगए हैं क्या ?' कृष्णदेव ने हँसकर पूछा । उसकी हँसी में पहले जैसा ही विनोद झलकता था ।

'बापू ! अपनी पीड़ा मैं स्वयं सँभाल लूँगा । कहिए मुझे क्यों बुलाया ?'

खेंगार ने सावधानी से चारों ओर देखा और फिर धीमे-से कहा—

'काक ! मुझे तेरी सहायता की आवश्यकता है ।'

'मैं प्रस्तुत हूँ ।'

'मुझे पाटण के साथ संधि करनी है ।'

'सं...धि !' काक आश्चर्यचकित होगया ।

'धीरे बोल । कोई सुन लेगा । काक ! आश्चर्य की इसमें नई बात क्या है ?' शांत और विनोद-भरे स्वर में खेंगार ने कहा, 'खेंगार ने जयसिंहदेव को पंद्रह वर्ष तक छकाया और अब भी जूनागढ़ के कँगूरे

अखंड हैं। फिर भी सोरठ का रा' संधि की याचना क्यों करता है ?'

'मैं भी यही पूछना चाहता हूँ।' काक ने कहा।

'काक! कोई रा' कभी नतमस्तक नहीं हुआ और जूनागढ़ ने विजेता का स्वागत नहीं किया। इसलिए संधि की बात करते हुए मेरे प्राण काँप रहे हैं। गत वर्ष मुझे मुंजाल ने संधि की सलाह भेजी थी तो मैंने सलाह लाने वाले को गधे पर बिठाकर घुमाया था।'

'तो अब क्या होगया ?'

खेंगार ने एक गहरी साँस ली—'भाई! मुझे मालूम न था कि जयदेव स्वयं रण में भाग लेंगे।'

काक आंखें फाड़कर देखने लगा। खेंगार जैसे अडिग वीर के हृदय में कायरता ?

'तो उससे क्या ?'

'उससे क्या ? काक! मैं वीर राजपूत हूं, और वीर राजपूत का सामना करने से मैं कभी डरा नहीं। किन्तु तुम्हारा जयदेव न टेक का ही दृढ़ है और न राजपूत ही।' खेंगार ने कटुतापूर्वक कहा।

'बापू! मैं यह नहीं समझ पाया।'

'काक! जयदेव युद्ध के लिए निकला है किन्तु जूनागढ़ लेने नहीं।' कटाक्ष-भरे स्वर में खेंगार ने कहा।

'तो ?'

'वह राणक को पुनः लेना चाहता है।'

काक पीछे हटा, 'क्या पागल हुए हो ?'

'नहीं, उसकी दृष्टि तो वहां है। उसे राजपूत की टेक की क्या चिंता ? वह कोई मनुष्य है ? राक्षस और पिशाच के बल पर जो राजपूत लड़ता है वह कोई आदमी है ?'

'बाबराभूत की बात कर रहे हो ?'

'तुम्हारे महाराज की प्रत्येक विशेषता निराली है। बाबराभूत उनका सेवक है सो तो ठीक। किन्तु जब से वह वंथली आया है तब से

स्वयं बाबराभूत हो गया है। गाँवों में आग लगा दी जाती है, चारों ओर लोग त्राहि-त्राहि कर रहे हैं। बापदादा यवनों की कथा कहा करते थे वैसी ही दशा हो रही है। मुझसे अपनी असहाय प्रजा की विपत्ति नहीं देखी जाती। इससे तो संधि करके नाक कटाना अधिक अच्छा।'

'महाराज! आप सम्पूर्ण कुल के कलंक बन जायँगे।'

'हाँ। किन्तु अपनी निःसहाय प्रजा और अपनी राणक की रक्षा कर लूँगा।'

'महाराज! संधि करना मुझे तो अच्छा ही लगता है। लाट का विग्रह भी मैंने ऐसे ही समाप्त किया। किन्तु प्रश्न तो यह है कि जयदेव महाराज मानेंगे या नहीं।' काक ने कहा।

'उससे भी बड़ी कठिनाई एक और है।'

'कौनसी?'

'राणक की।'

'राणक देवी की?' काक ने पूछा।

'हाँ, काक! तुझे बुलाने का मुख्य हेतु इसे समझाने का ही है। भाई! राणक स्त्री नहीं, जगदंबा का अवतार है। लोग मुझे यश देते हैं किन्तु जूनागढ़ यदि टिका रह सका है तो उसीके प्रताप से। उसीके उत्साह से हम जीवित हैं। उससे संधि की बात कौन कर सकता है?'

'आपने उनसे बात नहीं की?'

'नहीं, साहस नहीं होता। काक! यह न होती तो मैं युद्ध में कभी का हार जाता--और जूनागढ़ भी भूमिसात् हो गया होता। किन्तु मेरी राणक दे—'खेंगार ने स्नेहभीनी वाणी में कहा, 'के साहस ने हमें खड़ा रहने दिया। अब उसके दृढ़ संकल्प के विरुद्ध कौन जाय? संभव है तू उसे समझा सके।'

'किन्तु मेरी बात मानेंगी?'

'सम्भव है मान ले। वह तेरा अत्यंत मान करती है और मुझे तुझ में बहुत श्रद्धा है।'

काक मुस्कराया, 'जो सती आपकी नहीं मानती वह मेरी मानेगी ?'

'काक ! प्रयत्न करके तो देख । मुझे मृत्यु का डर नहीं—और न राणक ही को है । किन्तु मैं खेत रहूँ और वह महाराज के हाथों में पड़े—'खेंगार के शरीर में कंपकँपी छूटी यह काक ने देख लिया ।

'बापू ! आप मुझे बहुत कठिन काम सौंप रहे हैं '

'क्यों ?'

'राणकदेवी से कुल का नाम डुबोने के लिए कहना और जयदेव महाराज के क्रोध को रोकना—ये दो काम त्रिपुरारी से भी नहीं हो सकते तो मुझसे कैसे होंगे ?'

'मुझे विश्वास है कि बनेगा तो तुझ ही से बनेगा ।'

'किन्तु महाराज ! देवी को यहाँ आने का कारण क्या बताऊंगा ?'

'कहना, मैंने मंत्रणा करने बुलाया है ।'

'अच्छा ! किधर हैं ?'

'अभी आती है । तू स्नान करके भोजन तो कर । चल, हाँ, अपने मुख पर वस्त्र बाँध ले ।'

'जो आज्ञा' कहकर काक वस्त्र बांधकर रा' के पीछे हो लिया ।

: ६ :

राणक देवड़ी

काक के भोजन कर चुकने पर खेंगार उसे रनिवास में ले गया । कमरा छोटा और अँधेरा था । एक बड़े दीपक का प्रकाश फैला हुआ था । वहाँ पांच-सात स्त्रियाँ बैठकर हथियार साफ कर रही थीं । एक

दूर की ताक में भवानी की मूर्ति के सामने घी का दिया जल रहा था। सभी स्त्रियां काले वस्त्र पहने हुए थीं। एक छोटी स्त्री दीपक के पास बैठी-बैठी एक ढाल पर से रक्त के धब्बे साफ कर रही थी। वह धीमे-धीमे कुछ गा रही थी, और शेष स्त्रियां धीरे-धीरे उसे दोहरा रही थीं। गीत भी असामान्य था। गानेवालियाँ यमराज से कह रही थीं कि कल आना क्योंकि आज तो उनका पति शत्रु का हनन करने गया हुआ है।

ऐसा लग रहा था मानो जोगमाया खप्पर निकालने से पहले तैयारी में लगी हों। कमरे में अपार्थिव गांभीर्य छाया हुआ था। रा' और काक धीमे-धीमे आए। काक के अंतर में अजाने ही पूज्य भावना उदित हो रही थी। उसे लगा कि एक प्रकार का दैवी और क्षुब्ध वातावरण चारों ओर फैला हुआ है।

'दे !' खेंगार ने धीमे और सम्मान से कहा।

रा' का स्वर सुनकर आस-पास बैठी स्त्रियाँ चमकीं और रा' को पहचानकर शीघ्रता से घूँघट निकालती हुई वहाँ से चली गईं। दीपक के सामने बैठी हुई छोटी स्त्री ने हाथ रोककर ऊपर देखा। दीपक के प्रकाश में उस मुख को देखकर ही काक को विश्वास हो गया कि इस स्त्री को डिगाना असंभव है।

काली ओढ़नी की किनारी में अद्‌भुत रीति से मढ़ा हुआ मुख छोटा और क्षीण था—कभी सुन्दर रहा होगा! उसके अधरों में निश्चलता थी, उसकी आँखों में तेजस्विता; किन्तु यह सब होने पर भी उस मुख पर एक ऐसी गहनता थी जो न समझी जा सकती थी और न सहन ही की जा सकती थी।

उसके चारों ओर फैला तेज दुःसह था। ऐसा लग रहा था मानो यमराज को हराने वाली सावित्री या वेणीसंहार करने के लिए उत्सुक द्रौपदी के मुख का तेज सदा के लिए इस मुख पर आकर बस गया हो। जिस प्रकार उस कमरे का वातावरण अपार्थिव था वैसा ही यह

तेज भी अपार्थिव था। काका का हृदय अपनी स्वाभाविक स्थिरता न रख सका। उसने इस स्त्री को साष्टांग प्रणाम किया।

राणकदेवी ने काक को नहीं पहचाना; किन्तु रा' को देखकर वह उठी उसका छोटा, क्षीण शरीर धनुष के दण्ड के समान झुका; उसके मुख पर अवर्णनीय भक्ति की मुस्कराहट छाई हुई थी।

'पधारिए महाराज!' उसने आदर से कहा। उसकी वाणी में दबाई हुई भावना का कंपन था। खेंगार भक्ति से बैठ गया।

'ये कौन हैं?'

'देवी! मुझे नहीं पहचाना?' कहकर काक ने वस्त्र हटा दिया।

'कौन भाई काक?' आँखें फाड़कर राणक बोली।

'हाँ।'

राणकदेवी की गहन आँखों की गहराई से भी किरणें फूट पड़ीं। 'तुम यहाँ?' उसके स्वर में कुछ-कुछ शंका थी।

'देवी!' काक ने कहा, 'मैं जयदेव महाराज का भेजा नहीं आया हूँ। मुझे तो बापू ने बुलाया था।'

'क्यों?' उसने अपने पति की ओर घूमकर प्रश्न किया।

'मुझे इससे सलाह लेनी थी।'

'किस विषय में?' उसने पूछा।

'बापू को मैंने सलाह दी कि पाटण के साथ सन्धि कर डालो, नहीं तो जूनागढ़ मटियामेट हो जायगा।' काक ने राणकदेवी की ओर देखकर कहा।

राणक के मुख पर विचित्र परिवर्तन हुए। उसका फीका, श्वेत मुख लाल होगया मानो किसीने अपमान किया हो, तमाचा मारा हो, और उसके मुख पर भग्न गौरव की लिपि स्पष्ट हो गई। खेद से वह कुछ पीछे हटी और फिर रा' के सामने देखने लगी—फिर धीमी और काँपती हुई वाणी में प्रश्न किया 'मेरा रा' जयदेव से सन्धि किसलिए करे?' और सपनीली आँखों से वह काक की ओर देखने लगी।

उसकी वाणी में 'तिरस्कार न था, डाँट न थी, फिर भी काक को तिरस्कार और डाँट दोनों मिले। एक वाक्य ही में इस अपार्थिव स्त्री की अतुल मृदुता, उसकी पतिभक्ति और उसके अपने पति के चारों ओर रचे हुए स्वप्न दिखाई दे गए। इस स्त्री के लिए खेंगार मनुष्य नहीं, दुर्जय देवता था। उस देवता की वह पूजा करती थी। खेंगार और काक दोनों ने एक-दूसरे की ओर देखा। उस दृष्टि में काक ने अपने प्रयत्न की निष्फलता स्वीकार की। फिर भी, काक ने एक बार पुनः प्रयत्न करने का निश्चय किया।

'देवी! प्रजा पीड़ित हो रही है—और सम्पूर्ण सोरठ उजाड़ होता जा रहा है। किसी प्रकार जूनागढ़ की रक्षा हो—'

'काक!' एक गहरी सांस लेकर देवड़ी बोली, 'मेरा रा'है तो पीड़ित प्रजा कल पुनः सुखी होगी और उजाड़ सोरठ में रंग-रास होंगे।'

'किंतु, न करे नारायण, कहीं जूनागढ़ पराजित हो जाय तो—'

'तो महाराज का क्या होगा, यही न?' देवड़ी ने धीमे-से प्रश्न किया, 'काक! मेरा रा' कभी झुका नहीं और न कभी झुकेगा। जैसा यह गिरनार वैसा ही यह खेंगार। दोनों में से एक भ' न डिगने का, न झुकने का।'

'देवी! भोलानाथ आपके मनोरथ सम्पूर्ण करें।' आंखों में तैरते पानी को पोंछकर काक ने कहा, 'किन्तु बापू संधि का विचार करे तो—' उसने रा' की ओर देखा।

देवड़ी चमकी और पुनः पीछे हटी। उसने पीछे दीवाल पर हाथ टेका और एक दृष्टि रा' पर डाली। उस दृष्टि में घोर वेदना थी। स्नेह-भरी वधू पति का प्रथम दर्शन करने जाय और शैया में शव देखकर जैसा क्रन्दन कर उठे वैसा क्रन्दन उस दृष्टि में था। उसी दृष्टि में यह भय भी प्रकट हो रहा था कि उसकी स्वप्न-सृष्टि का प्रलयकाल आ गया है।

'महाराज !' फीके अधरों से वह खेंगार की ओर मुड़ी, किन्तु उससे बोला नहीं गया।

खेंगार ने पन्द्रह वर्ष इस देवी के चरणों में व्यतीत कर दिए थे और उसकी भक्ति, उसकी श्रद्धा और उसके स्वप्नों से वह पूर्णतः परिचित था। देवड़ी की उसमें श्रद्धा न रहे, उसके स्वप्नों में पति को अर्पित की हुई मानवता से वह गिर पड़े, इससे तो सम्पूर्ण संसार जल कर भस्म हो जाय उसीसे वह प्रसन्न होता।

वह काक की ओर देखकर मुस्करा उठा और उसकी सिंह के समान भव्य मुख-मुद्रा पर आत्म-श्रद्धा पुनः प्रकट हो गई।

'काक ! देवड़ी सत्य कहती है। जीता रहूँ या मर जाऊं खेंगार तो यहीं खड़ा रहेगा—गिरनार के समान निश्चल और दुर्जय।'

राणक के मुख पर प्रशंसा की छाया फैल गई; उसकी प्रेम-भीनी आँखें पति पर जाकर टिक गईं।

'काक ! तेरा परिश्रम व्यर्थ है,' वह बोली, 'मेरे रा' की तो सदा विजय ही है।'

यह बच्चों जैसी अडिग श्रद्धा देखकर काक के खेद की सीमा न रही। 'किन्तु—किन्तु—फिर आपका—'

'मेरा !' राणकदेवी इस प्रकार बोली मानो निस्सार है, 'मेरा क्या होने को है ? इस भव में या—' उसके गले में तनिक खखार आई, 'जहां ये वहां मैं। मेरे बिना इन्हें विजय-माला कौन पहनाएगा ?' उसने हंसकर पूछा।

काक की आंखों से आंसुओं की झड़ी लग गई।

'देवी ! तुम साक्षात् जोगमाया हो।'

'भाई ! मैं तो अपने रा' के चरणों की रज हूँ।' देवड़ी ने बड़ी सरलता से कहा।

'काक !' खेंगार ने हँसकर बात फेरी, 'तूने जो कुछ किया उसके

'क्यों ?'

'तू न होता तो मेरी देवड़ी मुझे नहीं मिलती।'

'और महाराज मैं कलयुग में भी देवता का देवी के साथ ब्याह करवा सकूंगा यह स्वप्न में भी मैंने आशा न की थी। मैं तो साधारण सैनिक हूँ—आपके समान दृढ़ता मैंने कभी नहीं रखी। किंतु इस जोगमाया के सामने मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि जिन्हें मैंने एक किया है उन्हें मेरे जीते-जी तो ब्रह्मा को भी अलग न करने दूंगा। बस, महाराज ! निश्चिन्त रहें और विजय करें।' वह और खेंगार पुनः आलिङ्गन में गुथ गए।

'काक ! तू कब आया ? भोजन किया ?' देवड़ी ने पूछा।

'हां, देवी !'

'और तेरी पत्नी कैसी है ?' उसने स्नेह से पूछा।

'देवी ! मैंने और आपके रा' ने एक ही समय में शंकर-पार्वती की पूजा की थी।'

'अच्छा। मंजरी भी तो हमारे जूनागढ़ की ही कहाती है।'

'ऐसा तो है ही। देवी, अब आप बैठिए। महाराज, अब आप मुझे आज्ञा दें तो मैं जाऊं।'

'रात यहीं रहकर जाना। तू थक गया है। प्रातःकाल जूनागढ़ देखकर जाना।'

'बापू मुझे रात-रातों वंथली जाना है, और जूनागढ़ मुझे देखना नहीं। जूनागढ़ पर चढ़ाई करने का काम मुझे ही सौंपा जाय तो ?'

'काक ! तेरे जैसा और नहीं देखा।' खेंगार ने कहा, 'तूने वर्षों पहले मेरी मानी होती और जूनागढ़ आकर बस गया होता तो हम दोनों क्या न कर डालते ?'

'महाराज ! आपका शौर्य और आपकी टेक देखकर मुझे भी ऐसा ही लगता था। किन्तु जैसी सोरठ की टेक आपको प्यारी है वैसी लाट की मुझे। अच्छा देवी, आज्ञा ?'

'भाई ! मेरे आशीर्वाद।' राणकदेवी ने कहा।

जाते-जाते काली ओढ़नी में मढ़े हुए उस अप्रतिम स्त्री के क्षीण मुख की ओर उसने एक बार और देखा, और मन-ही-मन प्रणाम करके खेंगार के साथ बाहर निकल गया।

बाहर निकलते समय उसने मुख पर वस्त्र बाँध लिया। 'महाराज ! कोई चिन्ता न कीजिएगा, जूनागढ़ का अभी तक कङ्कड़ भी नहीं हिला है, और जयदेव महाराज मनस्वी पुरुष हैं अतः कुछ होने का नहीं।'

'तुझे जूनागढ़ लेने को कहेंगे तो ?' खेंगार ने शांत और विनोद-भरे स्वर में कहा।

'मुझे जूनागढ़ लेने को कोई न कहेगा, और आपके कथनानुसार कोई कहे भी तो मैं लूंगा नहीं।'

'नहीं, लेना। तेरे हाथ मृत्यु पाकर मैं निश्चिंत हो जाऊंगा। मुझे मरने से तनिक भी डर नहीं है।'

'तो बापू ! मरने के पश्चात् क्या होगा इसका भी तनिक डर न रखिए। मुझे एक ही डर है—कल मेरा क्या होगा यह समझ में नहीं आ रहा है।'

'काक ! तेरा कोई कुछ करने का नहीं। मैं भी पाटण से कुछ-कुछ परिचित हूं। तेरा बाल भी बांका करने का साहस किसी में नहीं है।'

'देखा जायगा।'

'ले ये मोतिया रहा। मोतिया, इन्हें वंथली के मार्ग पर छोड़ आ।'

'बापू की जो आज्ञा।' कहकर मोतिया काक को ले गया।

: ७ :

काक का सन्देह

जाने से पहले काक ने रा' से बहुत बातें कीं और अन्त में भारी हृदय से मित्र से विदा ली। राणकदेवी के व्यक्तित्व का काक पर बहुत प्रभाव पड़ा था। इस प्रतापी स्त्री ने अपने वीर पति और सम्पूर्ण जूनागढ़ पर अपने स्वप्नों का ऐसा जादू कर दिया था कि उसे कोई भंग नहीं कर सकता था। राणक और खेंगार के स्वप्न और गौरव बने रहें और पाटण की विजय भी हो जाय—इन दो वस्तुओं पर गहरा विचार करता हुआ वह जूनागढ़ से बाहर आया।

मोतिया उसे एक लम्बे पथ से गिरनार की दूसरी ओर ले गया जहाँ उसने उसकी आँखों की पट्टी खोल दी और इसके बाद दोनों बड़े वेग से वंथली की ओर चले। मेंदरड़ा की ओर कई दिनों से सोरठी और पट्टणी सैनिकों में झड़प हो रही थी इसलिए उन्होंने उससे अलग मार्ग पकड़ा। इस ओर थोड़े-थोड़े अन्तर पर जूनागढ़ की चौकी या थाना मिलते, किन्तु मालूम होता है मोतिया सब चौकीदारों को पहचानता था क्योंकि उसे देखकर कोई काक के विषय में पूछताछ नहीं करता था। यात्रा कुछ कठिन थी। पथ ऊँचा-नीचा था, खाइयां भी बीच में पड़ती थीं, इसलिए वे जल्दी-जल्दी न चल सकते थे। मार्ग में पड़े हुए शवों को देखकर घोड़ियां चमक उठती थीं।

थोड़ी देर में वे एक टेकरी पर पहुँच गए जहाँ वे विश्राम करने के लिए ठहर गए। टेकरी के नीचे एक चौकी थी जहाँ कुछ सैनिक अलाव के चारों ओर बैठे हुए थे। एकाएक टेकरी के दूसरी ओर से घोड़े की टाप सुनाई दी। अहीर और काक दोनों ने ध्यान से चारों ओर देखा। एक काला धब्बा वेग से चौकी की ओर चला आ रहा था और दूसरा वंथली की ओर वाले जङ्गल में घुसा जा रहा था। अहीर ने शंकित होकर चारों ओर देखा और शिकारी कुत्ते के समान

सूँघने लगा। काक वेग से आते हुए अश्वारोही की ओर एकाग्रता से देख रहा था।

'मालूम होता है तुम्हारे चौकीदार, चौकीदारी नहीं करते।'

'बापू! कोई परिचित व्यक्ति ही होगा, नहीं तो जूनागढ़ की चौकियों से निकल आना कठिन है।'

'चलो देखें।' कहकर काक टेकरी से उतरकर चौकी की ओर गया। वह अश्वारोही चौकी के निकट पहुँच चुका था और चौकीदार उठकर उसके निकट पहुंच गए थे। अश्वारोही ने अपने मुँह पर वस्त्र बाँध रखा था। मोतिया चतुर था। उसने तुरन्त अश्वारोही को पहचान लिया और आगे बढ़कर प्रणाम किया, 'देशलदेव बापू को घणीखम्मा।'

चौकीदार और अश्वारोही दोनों चमके। इधर काक भी चमका। वर्षों पहले उसने देशलदेव को देखा था और उसने यह भी सुन रखा था कि इस समय देशल और उसका भाई विशाल दोनों खेंगार के पक्ष में हैं। इसलिए इस समय उसका मिलना काक को भला न लगा।

'कौन मोतिया!' चकित होकर देशलदेव ने पूछा। देशलदेव और मोतिया को पहचानकर चौकीदार दूर खिसक गए। काक भी दूर खड़ा रहा।

'हाँ बापू! किन्तु आप इस समय यहाँ कैसे?'

'मैं चौकियाँ देखने निकला हूँ।'

'ऐसा?' मोतिया ने नम्रता से कहा।

'एक आदमी को अपनी चौकी के बाहर भेजना है।'

देशलदेव ने शंका से काक की ओर देखा, 'कौन हैं?'

'बापू का आदमी है।'

'किन्तु है कौन?' अपनी घोड़ी मोतिया की घोड़ी के निकट लाकर देशल ने धीमे-से पूछा।

'मुझे नहीं मालूम।'

'ऐसा कभी हो सकता है ?' देशल ने हँसकर पूछा।'

'हो सकता है। नहीं तो आपसे कहने में क्या बाधा ?'

'अच्छा ठहर, पूछता हूँ।'

'नहीं बापू ! महाराज क्रोधित हो जायँगे।' मोतिया ने कहा।

'अरे ए ! इधर आ।' देशलने काकको निकट बुलाया। काक घोड़ी थोड़ी आगे ले आया और खड़ा हो गया।

'तेरा क्या नाम है ?'

काक ने मौन रहकर मोतिया की ओर संकेत किया।

'आप इससे कुछ न पूछिए।' मोतिया ने अधीरता से कहा, 'हम जायंगे। हमें देर हो रही है।'

'यह कैसे हो सकता है ? मुझे जानना पड़ेगा।' देशल ने तनिक क्रोध में कहा, 'नहीं तो चलो पुनः महाराज के पास।'

'बापू ! मोतिया अहीर पर भी विश्वास नहीं ?'

'आजकल किसी पर विश्वास करना व्यर्थ है।' देशल ने कहा।

मोतिया का मुख क्रोध से तमतमा उठा। काक ने देखा कि यदि बात बढ़ जायगी तो गड़बड़ हुए बिना न रहेगी। उसने घोड़ी को एड़ मारी और आगे आया।

'महाराज !' बनावटी स्वर में काक बोला। देशल और अहीर ने ऊपर देखा। काक अपनी घोड़ी देशल की घोड़ी के निकट ले गया और नीचे झुककर देशल के कान में कहा—'बापू, जिससे आपने अभी-अभी भेंट की है मैं उसीका आदमी हूं।'

देशल चमका; फीका पड़ गया, और उसकी अस्वस्थता का अनुभव करके उसका घोड़ा भी उछल पड़ा।

'चल मोतिया !' काक ने कहा, और उसने और अहीर ने अपनी-अपनी घोड़ियों को एड़ लगाई। देशल अपनी पगड़ी संभालता रह गया।

'बापू ! आपने बात भारी की।' मोतिया ने कहा।

'यह तो मेरा पुराना मित्र है ।' काक बोला ।

'मोतिया, अब तू जा । वंथली वह रही । मैं अपने आप उड़ा जाऊंगा ।'

'भटक जायंगे तो ?'

'कैसी बात करता है ? हाँ, देख महाराज से कहना कि मुझे संदेशा कहलवाना है अतः अगले बुधवार को तुझे यहाँ भेज दें । यदि कुछ कहना होगा तो मैं उस दिन मध्यरात्रि को इसी स्थान पर आऊँगा । बापू और देवी को मेरा जय सोमनाथ कहना ।'

'जो आज्ञा ।' कहकर मोतिया ने अपनी घोड़ी घुमा दी । 'हो सके तो इस 'बापुड़ी' को वापस भेज दीजिएगा । बड़ी समझदार घोड़ी है । बेटी आना ।' अहीर ने घोड़ी से कहा ।

काक कुछ देर तक खड़ा रहा । वंथली जाने का मार्ग सीधा जान पड़ता था । वह तुरन्त घोड़ा पर से उतरा और धरती पर कान लगाकर लेट गया । धीरे चलते हुए घोड़े की टाप-सी कुछ सुनाई दी । वह तुरन्त घोड़ी पर चढ़ बैठा और घोड़ी को दौड़ा दिया ।

थोड़ी देर में आगे जाते हुए किसी घोड़े की टाप स्पष्ट सुनाई पड़ी । पाटण के मंडलेश्वर का पुत्र और खेंगार का भाणेज विश्वासघाती देशल इस समय वंथली के किसी व्यक्ति के साथ गुप्त मंत्रणा करे और यह कहते ही कि वह उस व्यक्ति का गण है देशलदेव फीका पड़ जाय— काक के लिए इतना बहुत था । वह वंथली जानेसे पहले वहाँकी परिस्थिति की जानकारी प्राप्त करने के लिए व्याकुल था । वंथली जाने वाला यह व्यक्ति कौन था, यह जान लेने की भी उसने आवश्यकता समझी ।

जैसे-जैसे उसकी घोड़ी आगे बढ़ती गई वैसे-वैसे आगे का घोड़ा और वेग से भागने लगा । फिर एकाएक उसकी चाल धीमी हो गई । जब काक उस घोड़े के पास पहुचा तो घोड़ा अकेला चल रहा था । काक मन-ही-मन हंसा । अश्वारोही चतुर लगता था किंतु काक की बराबरी कर सके

ऐसा न था। काक अपनी घोड़ी पर से उतर पड़ा और उस घोड़े पर बैठकर चला गया।

जब उसने देखा कि वंथली तनिक निकट आगई है तो वह मार्ग के निकट एक खेत में घोड़ी की लगाम हाथ में लेकर लेट गया। थोड़ी देर में काक ने जो सोचा था वही हुआ। उसकी घोड़ी पर बैठकर एक व्यक्ति आया और उसे सोया हुआ समझकर घोड़ी रोककर देखने लगा। फिर कुछ देर विचार करके वह अश्वारोही वंथली की ओर चल दिया।

काक ने विश्राम करने के लिए आँखें मींच लीं।

: ८ :

बर्बरक

काक कितनी देर इस प्रकार सोता रहा इसका उसे भान न रहा। घोड़े की हिनहिनाहट सुनकर वह उठ बैठा। चारों ओर उषा का प्रकाश फैला हुआ था; फिर भी काक को ऐसा लगा मानो उसने कोई भयानक स्वप्न देखा हो। दो प्रचंड काली भुजाओं ने उसे धरती पर दबा रखा था और उसे एक भयानक मुख दिखाई पड़ रहा था।

मुख विशाल और घोर काला था। दो विशाल, लाल, विकराल पुतलियां आँखों से निकली पड़ती थीं। उस मुख पर नाक के नाम के दो बड़े नथने थे और नीचे लटकते हुए होंठ तक एक तीक्ष्ण दाँत था। सर और छाती पर झंखाड़ के समान झबरे और लंबे बाल थे। मुखाकृति जितनी भयंकर थी उतनी ही अस्वाभाविक थी। क्षण-भर के लिए काक चकरा गया। उसे लगा उसका थका हुआ मस्तिष्क

ऐसा अमानुषिक चित्र खड़ा करके उसकी हँसी उड़ाना चाहता है; किंतु उसके कंधों पर का दबाव तो सत्य था। तुरंत उसे जयदेव महाराज को वश में करने वाले बाबरा भूत की याद आई। उसने इस भूत की बात असत्य ही मानी थी; किन्तु इस समय इस बात का मानो प्रमाण मिल रहा था कि बात सत्य थी।

पिशाच के साथ पाला पड़ा है यह विचार आते ही उसके होश-हवास जाने को थे कि उसके मस्तिष्क के सामने विशुद्धि की अवतार के समान उससे दूर पड़ी मंजरी की छवि आ गई और उसे देखकर उसमें सनातन ब्रह्मतेज का गर्व जाग पड़ा। आधे क्षण में उसने गायत्री पढ़ी और अनपेक्षित चपलता के साथ अपना सिर ऊपर उठाया और उलटा फेरकर वेग से राक्षस की नाक से भिड़ा दिया।

काक को चक्कर आगया, किन्तु वह राक्षस वेदना-भरी चीत्कार करके काक के कंधे पर रखे हुए दोनों हाथ हटाकर पीछे हटा।

काक का भय बिलकुल जाता रहा। राक्षस को बड़ी वेदना हो रही थी क्योंकि वेदना के मारे वह अपनी नाक दबा रहा था। उसकी आँखों से ऐसा लग रहा था कि वह यह सोच ही न सकता था कि यह मनुष्य इतनी दृढ़ता और तत्परतासे उस पर आक्रमण कर बैठेगा। काक का सिर चक्कर खा रहा था किन्तु उसकी दृष्टि की तीक्ष्णता कम न हुई थी। वह राक्षस उससे एक हाथ लंबा था, उसके स्नायु लोहे के समान थे और उसकी घोर क्रूरता उसके मुख से स्पष्ट टपक रही थी। यदि वह हाथ-लगे अवसर को खो देगा तो रक्षा करना कठिन हो जायगा। यह काक ने स्पष्ट देख लिया, किन्तु दूसरे ही क्षण ऐसे राक्षस को जीतने की कीर्ति का भी उसे लोभ होने लगा।

उसने देखा कि उसकी लकड़ी उस राक्षस के पाँव के पास पड़ी हुई थी। वह यदि हाथ लग जाय तो इस राक्षस पर विजय पाना काक को सरल लगा। एकाएक वह नाक सहलाते हुए राक्षस के सामने कूदा और उसके मुख पर मुष्टिका-प्रहार करने का स्वाँग रचा।

लगे हुए स्थान पर पुनः चोट लगने के डर से राक्षस पीछे हटा और काक को मारने के लिए हाथ की मुट्ठी भींच ली। किन्तु काक आगे नहीं आया। वह लकड़ी के पास ठहर गया और पाँव से उठाकर लकड़ी हाथ में ले ली। जैसे ही उस राक्षस का पंजा उसे पकड़ने को आगे बढ़ा वैसे ही काक ने पीछे हटकर सामने के हाथ पर ज़ोर से लकड़ी से प्रहार किया।

वेदना से राक्षस चीख़ पड़ा। वह कूदा, कुछ दूर गया, और सामने की हुई लकड़ी की सीमा को पारकर काक पर टूटा। काक तनिक घबराया किन्तु सहजबुद्धि की सहायता से उसने लकड़ी अपने और राक्षस के मध्य में करली। जिस समय राक्षस उसे धरती पर पटक देने में मग्न था उस समय वह अपनी लकड़ी राक्षस की दोनों टांगों के बीच में डाल रहा था। काक भूमि पर गिरा अवश्य, किन्तु उसी समय उसने लकड़ी पर ऐसा जोर दिया कि राक्षस की टाँगें एक-दूसरे में फंसकर मुड़ने लगीं। जैसे-जैसे वह काक को दबाता वैसे-वैसे काक बड़ी चतुराई से पकड़ी हुई लकड़ी के एक सिरे को दबाता, दूसरे सिरे पर उसकी टांगे फटी पड़ रही थीं। क्रोध से वह दहाड़ पड़ा और अपनी टांगे छुड़ाने का प्रयत्न करने लगा। छाती पर जैसे दबाव कम हुआ काक ने साधारण प्रयत्न से ही पलटा खाया—साथ ही लकड़ी के दबाव में भी परिवर्तन हो गया। एक पर दूसरी टांग आजाने के कारण राक्षस लुढ़ककर चित्त हो गया। काक लपक कर उसकी छाती पर चढ़ बैठा। पांव में से लकड़ी निकालकर काक ने उसे उसकी गर्दन पर रखकर दबाया।

'पिशाच! कौन है तू?' हांपते-हांपते काक ने पूछा। राक्षस की पुतलियाँ फट रही थीं और दांत पीसकर वह काक को उठा फेंकने का प्रयत्न कर रहा था। काक ने गर्दन पर की लकड़ी दबाई; 'पापी! थोड़ी-सी भी गड़बड़ की तो गला दबा दूँगा।'

लकड़ी के दबाव से राक्षस का दम घुटने लगा, और उसकी पुत-

लियां इधर-से-उधर, उधर-से-इधर होने लगीं। काक ने गले पर का दबाव कम कर दिया।

'तू कौन है ?'काक ने पूछा और हाथ से गला दबाने की धमकी दी।

'थोड़ी देर में राक्षस ने कहा—'भूत।'

'बाबरा ! मैं पहले ही समझ गया था। अच्छी बात है। तू सबको दुःख देता है। अब मैं तेरे प्राण ही लूँगा।' कहकर काक लकड़ी दबाने लगा।

'ना, ना।'कहकर बाबराने सिर हिलाया। उसके मुखपर दया-याचना का भाव छा गया। उसकी आँखों में आग्रह था। उसकी वाणी में भी दया की याचना थी। काक हंसा।

'ना, ना क्या ? नहीं, तो तुझे बांधकर महाराज के निकट ले जाऊंगा।'

'महाराज ! ना,ना,मुझे मार डालेंगे।'तनिक घबराकर बाबरने कहा।

'तुझे किसलिए मारेंगे ?'

'तुमने मुझे पकड़ा इसी से।'

'ओ !' काक हँसा 'तेरे कारण महाराज दुर्जय समझे जाते हैं।' इसीलिए न ? देख बाबरा तुझे जीता छोड़ दूंगा और यह बात किसीसे न कहूँगा। किन्तु मैं जो कहूँ वह करनेका वचन दे,नहीं तो तेरा समय आगया।'

'बापरे ! अपने बाप की सौगंध—वचन देता हूं। तुम्हारा काम न करूं तो माँ हिंगलाज चाचर मुझे लगे। बस ?'

'हां, अब मैं पूछूं उसका उत्तर दे।'

'पूछो।'

'आजकल राजा का विश्वासपात्र कौन है ?'

'जगदेव !'

'जगदेव कौन है ?' चकित होकर काक ने पूछा।

'परमार।'

'मुंजाल महेता और बड़ी देवी यहीं हैं।'

'हाँ।'

'छोटी देवी कैसी हैं?' काक ने लीलादेवी का समाचार पूछा।

'मालूम नहीं।'

'उदा महेता क्या करते हैं?'

बाबरा ने गर्दन हिलाई।

'अब तू कौन है, बोल?'

'मैं? भूत।'

'भूत! तेरा मुंह नहीं बताता। बोल।' कहकर काक ने लकड़ी तनिक जोर से पकड़ी।

'भील।'

'तो मुझे चौकी पार कराकर वंथली में ले चल।'

गर्दन हिलाकर बाबरा ने हाँ कहा।

'काक बाबरा पर से उठ गया और लकड़ी ज़ोरसे पकड़ ली। बाबरा विश्वासघात करता है या क्या, यह देखता हुआ काक खड़ा रहा, किन्तु बाबरा इतना अधिक घबरा गया था कि काक के सामने न देख सका।

काक घोड़े पर बैठा और बाबरा लगाम पकड़कर दौड़ने लगा। घोड़े से भी अधिक वेग से वह दौड़ रहा था। थोड़ी ही देर में वह चौकी के सामने जा पहुंचा। बाबरा ने दूर ही से प्राण सुखा देने वाली चीत्कार की। उसे सुनकर चौकीदार काँप उठे, और सिर के बल गिर पड़े। काक ने चौकी पर की।

'तुझे जाना हो तो जा। किन्तु तू कहां मिलेगा?'

'संध्या को श्मशान में और दिन को राजगढ़ के नीचे वाले चौक में। आप कौन हैं?'

'मैं? तू क्यों जानना चाहता है? किन्तु सुन, तुझे एक बात बताता हूँ।'

'कौनसी?'

'भड़ौंच का दुर्गपाल काक प्रभास से इस ओर आ रहा है। सम्भव है, दिन निकले आ पहुँचे। उसे पकड़कर महाराज के निकट ले जायगा तो महाराज प्रसन्न होंगे।'

बाबरा बोला, 'का—क ?' और हँसकर गर्दन हिलाने लगा।

'उसे तू पहचानता है क्या ?' काक ने तनिक सावधान होकर पूछा।

'नहीं। महाराज ने उसे पकड़ने की आज्ञा दी है।'

'उसे कौन लेने गया है।'

'वाहड़।'

'उदा का पुत्र ?'

'हाँ।'

'अच्छा ?' काक ने कहा, 'तो जा आनन्द कर।' कहकर काक ने घोड़ा बढ़ा दिया। बाबरा चला गया।

बाबरा के अदृष्ट होते ही काक का ध्यान अपने घोड़े और उसके स्वामी की ओर गया। यह पुरुष कौन था, इसका निश्चय करने के लिए उसने घोड़े की लगाम छोड़ दी ताकि अपना स्थान स्वयं ढूंढने के लिए वह स्वतंत्र होजाय। काक अपने चारों ओर ध्यान से देखने लगा। जूनागढ़ राणक के प्रताप से अडिग था; जयसिंहदेव राणक को हथियाने का निश्चय कर चुका था, इस घोड़ेका स्वामी और देशलदेव कुछ षड़यन्त्र कर रहे थे, और खेंगार की चले तो वह संधि कर ले ! किन्तु इन सबमें मुंजाल महेता कहां है ? क्या वह वृद्ध होगया है ? क्या जयदेव ने गुरु को भी मात दे दी ? क्या मीनलदेवी भी पुत्र की राजनीति के आधार पर चलने लगीं ? और यदि ऐसा होता तो मुंजाल महेता यहाँ किस-लिए आए ? और उदा महेता क्या कर रहा है ? यह ग्रंथि किसी प्रकार खुलती न थी।

ऐसा विचार करते-करते उसकी आंखों के सामने पुनः हथियार साफ़ करती हुई और यम का आह्वाहन करती हुई देवड़ी आई। काक ने मन-ही-मन संकल्प किया कि जयदेव का, रा' का या जूनागढ़ का जो

हो सो हो किन्तु देवड़ी का गौरव अखंड रखने के लिए यदि प्राण भी देने पड़ें तो मुंह न मोड़ूंगा।

दूसरा विचार स्वयं का आया। जयदेव महाराज उसे पकड़ मंगवाने के लिए आतुर थे, उदा महेता की भी यही इच्छा थी, लोलादेवी उसकी सहायता की प्रतीक्षा कर रही थी। यह सभी एक साथ उसके लिए एकाएक कैसे पागल हो गए? इन सभी को क्या विभिन्न प्रेरणायें हुईं? या किसी एक ही स्वार्थ से, या एक ही के कहने से सबको प्रेरणा हुई? ऐसी प्रेरणा कौन दे सकता है?

जयदेव महाराज का प्रताप वह स्पष्ट देख पा रहा था। उसे लगा मुंजाल का सूर्य अस्त हो रहा है। महाराज उदा का उपयोग कर रहे थे। भूत समझा जाने वाला बाबरा उसके प्रताप को अस्वाभाविक और दुःसह बना रहा था और जयदेव परमार जैसे विदेशी योद्धा को गुर्जर वीरों पर अपना क्रोध निकालने का अवसर मिल रहा था। काक मन-ही-मन विस्मित होगया। निःसत्व, किन्तु महत्वाकांक्षा दिखाई पड़ने वाले लड़के का कैसा विकास हो गया?

उसका घोड़ा खड़ा रह गया। प्रकाश फैल गया था। राजगढ़ के अस्तबल के सामने घोड़ा खड़ा हुआ। पास ही में एक बड़ी हवेली थी। वंथली की सुरक्षित स्थिति देखकर पट्टणी दण्डनायक परशुराम के प्रति उसे भान हुआ। एक योजन की दूरी पर ही युद्ध चल रहा था किन्तु यहाँ पाटण जैसी ही निर्भयता और शांति थी।

अस्तबल के बाहर ही एक व्यक्ति रगड़-रगड़कर जिह्वा साफ़ कर रहा था। काक उसके निकट जाकर घोड़े पर से उतर गया।

'यह आपका घोड़ा है?'

'यह तो जेवरा है। तू कहां से लाया?'

'मैं? जिसका यह घोड़ा है मैं उसीका आदमी हूं। बापू से कहाँ भेंट होगी?'

'हवेली में; अभी उठे नहीं होंगे।' कहकर घोड़ेवाले ने हवेली की ओर संकेत किया।

'तो यह घोड़ा बाँध दूं ?' काक ने पूछा।

'बांध दे न भाई। इतना परिश्रम ही कम हुआ। अब तक आलसी कोई उठे भी नहीं हैं।' कहकर घोड़ेवाले ने हाथ मरोड़कर उबासी ली।

'घोड़े का तबेला कहाँ है ?'

'उधर पास की दीवाल के निकट।'

काक घोड़े को अन्दर ले गया। उसने अन्दर दृष्टि डाली तो एक भी स्थान खाली न था। काक अन्तिम तबेले की ओर गया और जिस ढङ्ग से मोतिया हुचकारी मारता है उसी प्रकार काक भी धीरे-धीरे करने लगा—'बापुड़ी ! बापुड़ी !'

अन्तिम तबेले में बंधी हुई घोड़ी हिनहिना उठी। काक मुस्करा दिया। घोड़ा का चोर पकड़ा गया। वह बाहर आया।

'भाई ! एक भी तबेला खाली नहीं है।'

'तो नया घोड़ा कहां से आया ? अच्छा, तो इसे कहीं बाँध दे ना।'

बापू के घोड़े बड़े अच्छे हैं किन्तु यहाँ के नहीं लगते। तुम कहाँ के हो ?'

'मैं ? मैं तो खंभात का हूं।'

काक के मस्तिष्क में प्रकाश फूटा। उसका हृदय उछल पड़ा। 'बापू के साथ ही खंभात से आए होंगे ?'

'हां !'

'अच्छा, जय सोमनाथ !' कहकर काक वहाँ से विदा हुआ, और मन-ही-मन-बड़बड़ाया—'धत्तेरे उदामहेता की ! भाग्य से तू यहाँ भी पहले ही मिला !'

: ६ :

काक का राजगढ़ में प्रवेश

दिन निकलने लगा था अतः छिपकर राजगढ़ में प्रवेश करना काक को बहुत कठिन लगा। वह राजगढ़ की प्रदक्षिणा करने लगा। सभी द्वारों पर कड़ा पहरा था। सामने के द्वार से तो प्रवेश किया ही नहीं जा सकता था और फिर सुबह भी हो गई थी। समय अधिक व्यतीत हो जाय तो जाने क्या-क्या हो जाय। काक ने चारों ओर देखा। एक गली में से एक ब्राह्मण हाथ में पूजापात्र लेकर राजगढ़ के पिछले द्वार की ओर चला आ रहा था। काक को एक प्रेरणा हुई। वह शीघ्रता से उसकी ओर गया।

'काका! तनिक इधर आना।' कहकर वह ब्राह्मण को गली में ले गया।

'क्यों भाई!'

'मुझे पूजापात्र देना तो?'

'अरे छू जायगा,' वृद्ध ने कहा, 'तू कौन है? क्या काम है?'

'मुझे राजगढ़ में पूजा करने जाना है,' काक ने कहा। वह ब्राह्मण काक के धूल से भरे हुए विचित्र मुख और शस्त्रों को देखकर गर्दन हिलाने लगा, 'तू—'

'काका! अभी वहाँ न गया तो जयदेव महाराज मेरे प्राण ले लेंगे।'

'जयसिं—'

'हां। काम से मुझे रात बाहर चला जाना पड़ा। लौटने में देर हो गई। काका! तुम अपने लिए दूसरा पात्र ले आओ।' कहकर काक ने पूजा-पात्र पकड़ लिया। वह वृद्ध ब्राह्मण घबरा गया।

'अरे, छू दिया, मुझे स्नान करना पड़ेगा।'

'जाओ, जाकर स्नान कर आओ और यह लो पैसे—'

'किन्तु यह बलात्कार—' ब्राह्मण तनिक जोर से बोला।

काक ने उसकी ओर देखकर आँखें निकालीं।

'महाराज! चाहिए तो मेरी ओर से यह स्वर्ण-खंड दान कर देना। किन्तु बिना गड़बड़ किए चले जाओ। नहीं तो—' कहकर काक ने अपनी लकड़ी संभाली। बेचारे वृद्ध ब्राह्मण के होश जाते रहे। उसकी आँखें हथेली पर पड़े हुए स्वर्ण-खंड पर आजन्म सूम की-सी लालसा से टिकी हुई थीं। थोड़ी देर में काक ने पूजा-पात्र के पानी से मुँह धोया, वस्त्र और शस्त्र उतारे और चंदन-पात्र से त्रिपुंड धारण किया।

'महाराज! आपका नाम?'

'दयानाथ चतुर्वेदी।'

'अब जाओ।' काक बोला।

वह वृद्ध डरता-डरता चला गया और काक पूजा-पात्र लेकर राजगढ़ के एक छोटे द्वार के सामने गया। प्रहरी ऊंघ रहा था, किन्तु जैसे ही काक द्वार में घुसकर वेग से सीढ़ियाँ चढ़ने लगा वैसे ही उसकी नींद उड़ गई।

'ए महाराज! कौन हो?'

'मैं दयानाथ चतुर्वेदी का भतीजा हूं।' और आँख टेढ़ी करके वह सैनिक की शक्ति का अनुमान लगाने लगा।

'बुड्ढे को क्या हो गया है?'

'गाय ने मार दिया है।' कहकर काक जल्दी-जल्दी चढ़ने लगा।

'अरे खड़ा तो रह। दया काका के नए भतीजे का मुख तो देखूं।' कहकर सैनिक उसके पीछे दौड़कर पकड़ने आया। उसके निकट आने के पहले काक ने पूजा-पात्र ऊपर की सीढ़ी पर रख दिए और जैसे ही सैनिक एक सीढ़ी चढ़ा वैसे ही वह एक सीढ़ी उतर गया। सैनिक चिल्लाना चाहता था लेकिन उसके एक शब्द भी बोलने से पहले

काक ने उसका गला पकड़ लिया । उसके शब्द अनबोले ही रह गए ।

काक ने एक हाथ से कमर परका वस्त्र उतारा और सैनिक के मुँह में ठूंस दिया । निश्चेत-से हो गए सैनिक को उठाकर वह चढ़ गया और थोड़ी दूर पर एक खुली कोठरी में उसे डालकर द्वार बंद कर दिया । दूसरे ही क्षण पूजा-पात्र हाथ में लेकर पुजारी ने महल में प्रवेश किया ।

काक ने चारों ओर देखा किंतु कोई न दीखा । कुछ दूर पर कोई स्त्री प्रभाती गा रही थी । वह उस ओर गया । एक दासी चक्की का 'गाला' साफ कर रही थी ।

'बहन !'

'कौन ?'

' मुझे छोटी देवी के पास ले जा तो । देवी का पूजा का समय हो गया है और मुझे मार्ग नहीं मालूम ।'

'पागल ! इस समय कहीं छोटी देवी पूजा करती होंगी ?'

'आज तो उनकी 'आखड़ी' है । उठ, मैं उनके गाँव का ब्राह्मण हूं । तुझे खबर नहीं । मुझे विशेष रूप से बुलाने भेजा है ।'

'अच्छा ! किन्तु मैं उधर कैसे जा सकती हूं । मैं ठहरी दासी ।'

'तू मुझे मार्ग तो दिखा । देख, तू मुझे वहाँ ले जायगी तो देवी तेरा उपकार माने बिना न रहेंगी ।'

उस स्त्री को कुछ रहस्य-सा दिखाई दिया । और लगा कि इस भेद से भव के संकट दूर हो सकते हैं । उसने तुरन्त उठकर हाथ साफ कर लिए ।

'मुख्य मार्ग से ले जाऊं या चोर-मार्ग से ?'

'चोर-मार्ग से ।'

थोड़ी देर में वे रनिवास की पिछली सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर आए । एक दासी खड़ी-खड़ी दातुन कर रही थी । वह नौकरानी उसके निकट गई ।

'देवी जाग गई ?'

'नहीं, क्यों ?'

'देवी का बुलाया हुआ ब्राह्मण आ गया है

'पागल हुई है ? इस समय देवी को ब्राह्मण की क्या आवश्यकता पड़ी ?' कहकर दासी तिरस्कार से देखने लगी।

'किन्तु महाराज—'

'मंगी,' काक ने धीरे-से कहा।

दासी भृगुकच्छ की और रानी की विश्वासपात्र थी। उसने काक की ओर देखा और उसे पुजारी के वेष में देखकर स्तब्ध होगई।

'का—'

'चुप रह। देवी को उठा। मुझे भेंट करनी है। और इस नौकरानी को पहचान ले। इसे देवी से पुरस्कार दिलवा देना।'

'तेरा नाम क्या है ?'

'देवी ? वह अपने पवीता के बारहठ जो हैं न, मैं उनकी नई 'जेली' हूँ।' नौकरानी ने अपना सविस्तार परिचय दिया।

'ठीक, दुपहर को आना। महाराज ! आप इधर प्रतीक्षा कीजिए, देवी को उठाती हूं।'

काक तनिक खिसककर द्वार के पीछे खड़ा हो गया मंगी शीघ्र ही दौड़ती हुई आई—'पधारिए, देवी बुलाती हैं।' काक के मुख पर विचित्र मुस्कराहट दौड़ गई, वह भृगुकच्छ की जिस कुंअरी को जयसिंहदेव से ब्याहा था उसके पास गया।

: १० :

लीलादेवी की विपत्ति

एक स्वर्ण-खचित पलंग पर जयसिंहदेव महाराज की पटरानी लीलादेवी अंगड़ाई लेती हुई बैठी थी।

जम्बूसर के घेरे के समय जिस मृणाल कुँअरी से उसने भेंट की थी वह आज पहचानी न जा सकती थी। तब की तुलना में आज उसका शरीर भरा हुआ था और उसके मुखका आकर्षण भी बढ़ गया था। सोने और हीरों से उसका अंग-अंग चमक रहा था। चारों ओर पाटण की महारानी के अनुकूल वैभव दिखाई दे रहा था। उसके अंग के आभूषणों में अपना एक विशेष ही वैभव दिखाई पड़ता था।

इस समय उसके बाल बिखरे हुए थे, और जल्दी में ओढ़ी ओढ़नी उसकी शोभा को छिपाने का व्यर्थ प्रयत्न कर रही थी। आकस्मिकता से उसके होंठ खुले रह गए, उसके बारीक दाँतों का अपूर्व हार दिखाई पड़ रहा था। उसके मुख और शरीर पर आलस दिखाई दे रहा था—मद का या नींद का यह समझ नहीं पड़ता था। ऊंघ के भार से आधी झुकी पलकें उसकी आँखों के तेज को छिपा रही थीं।

जैसे ही काक ने प्रवेश किया उसने आंखें तनिक खोलीं। काक ने एक दृष्टि डाली। लीलादेवी की आँखों में पहले जैसी ही स्थिरता और निश्चयात्मकता थी। काक सम्मान से द्वार के सामने खड़ा हो गया। उसे देखकर रानी की स्थिर आँखों में अस्थिरता आई और चली गई। उपेक्षा से ओढ़े गए वस्त्र के नीचे से दिखाई पड़ते पाँवों की उंगलियों की ओर उसने देखा—'काक! तू आगया?'

'हाँ?' मुस्कराकर काक ने कहा, 'जीवित आ गया। दो-चार बार मेरे प्राण लेने का प्रयत्न हुआ अवश्य, किन्तु आप तो जानती ही हैं, मुझ जैसे को यमराज तक नहीं ले जाना चाहते। आज्ञा? मुझे कैसे बुलाया?'

'मंगी !' शांत और स्थिर स्वर में लीलादेवी ने कहा, 'तू बाहर प्रतीक्षा कर। किसी को आने मत देना।'

जैसे ही मंगी बाहर गई वैसे ही रानी घूमकर काक की ओर देखने लगी।

'तू ऐसे वेष में क्यों आया है ?'

'निश्चिंत होकर बता दूंगा। आपसे पहले भेंट करने के लिए कई को चकमा दिया है। उनमें से एक भी यदि अपने स्वामी के पास पहुँच जायगा तो हमें बात करने का समय नहीं मिलने का। सम्भव है मेरा शिरच्छेद कर दिया जाय।'

'तेरा शिरच्छेद ?' रानी ने भौंहों को तनिक टेढ़ी करके कहा।

'हाँ। मुझ पर महाराज और महाराज के मंत्री कुपित हैं।'

'यह होते हुए भी तू उनकी सेवा करता है ?' तिरस्कार से रानी ने कहा। उसकी आँखों में अधिक स्थिरता आगई।

'हां।' काक ने दृष्टि हटाकर नीचे देखा।

'क्यों ?'

'मुझे अपने ही ढंग से काम करना रुचता है। अब आपकी क्या आज्ञा है ?'

'आज्ञा !' लीलादेवी तिरस्कार से बोली, 'तू मेरी आज्ञा मानता कब है ? अब तेरी क्या आज्ञा है यही पूछने के लिए मैंने तुझे बुलाया है।' तिरस्कार-भरी वाणी में रानी ने कहा।

'मेरी आज्ञा ?' धीमे-से काकने कहा। आँधी के लक्षण स्पष्ट दिखाई पड़ने लगे।

'हाँ!' लीलावती ने इस प्रकार कहना आरम्भ किया मानो हिसाब लगा रही हो, 'तूने लाट छिनवाय', और पाटण मेरे सिर पर पटक दिया।'

'फिर भी सृष्टि के सर्वश्रेष्ठ सिंहासन पर विराजी हुई हैं।' काक ने बात पूरी की।

रानी ने काक की बात का कोई उत्तर नहीं दिया।

'मैं तो थक गई हूँ।'

'किससे ?'

'सबसे।' रानी पुनः ऐसी शांति से बोली मानो हिसाब लगा रही हो, 'तूने कहा था मैं यहाँ स्वामिनी बनूँगी; किन्तु यहाँ तो प्रत्येक व्यक्ति स्वामी है।'

काक को लगा कि रानी वास्तविक व्यथा प्रकट नहीं कर रही है, अतः उसने उसे जानने का निश्चय किया, 'पृथ्वी के स्वामी जयदेव महाराज आपके चरणों में हैं।'

'चुप रह,' रानी ने ऐसी निश्चयात्मक वाणी में कहा मानो तलवार से प्रहार कर रही हो, 'तेरा पृथ्वी का स्वामी मनुष्य नहीं है।'

'तो—'

रानी ने उंगली के पोर गिनने प्रारम्भ किए, 'वे देवता हैं—मनुष्य हैं—और पशु हैं। उन्हें मैं कैसे वश में कर सकती हूं ?'

काक ने व्यथा समझी। 'देवी !' वह कृत्रिम नम्रता से बोला, 'इतनी क्यों निराश हो रही हो ? आप क्या नहीं कर सकतीं ?'

'मैंने सब कुछ किया। एक भी कला नहीं छोड़ी। किन्तु अब वे वश के बाहर होते जा रहे हैं।' युवती, फिर भी स्थिर चित्र की महत्वाकांक्षी, सुन्दरी ने अपनी व्यथा का वर्णन किया।

'आपको जो कहना हो शीघ्र कहिए क्योंकि समय निकला जा रहा है।' अधीर होकर काक बोला।

'तुझे उन्हें वश में करना होगा।' रानी ने कहा।

'किन्तु वे कैसे और क्यों वश में नहीं है यह तो कुछ बताइए।'

'ये राणकदेवी के पीछे पागल होगए हैं।'

'और इस पागलपन से इनकी रक्षा करनी है।'

'हाँ।'

'किस प्रकार ?' काक ने पूछा।

'चाहे जूनागढ़ जा, चाहे देवड़ो को वश में कर, चाहे महाराज को

सीधा कर। तूने मुझे यहां ब्याहा। अब युक्ति सोच निकालना भी तेरा ही काम है।'

इस स्त्री की भयंकर और पैनी दृष्टि देखकर काक को कँपकँपी छूट गई।

'देखता हूँ।'

'देखता हूं क्या ? मुझ पर कोईऔर पटरानी आई तो कुछ-न-कुछ हो जायगा।' अडिग शांति और निश्चय से लीलादेवी ने कहा, 'या तो तू नहीं रहेगा, या मैं न रहूँगी....या पाटण न रहेगा।' उसने अपना हाथ अपने पांव पर मारा मानो पाटण को तोड़ रही हो।

'देवी! आपकी आज्ञा सिर-आंखों पर। जिस क्षण मेरे जीते-जी आपके सिर पर दूसरी पटरानी आएगी उसी क्षण प्राण दे दूंगा। और कुछ ?'

'किन्तु तू यह करेगा कैसे ?'

'इसकी चिन्ता आप न कीजिए, मैंने आपसे भेंट की है यह बात किसीसे न कहिएगा। मेरे वस्त्र और हथियार राजगढ़ की पिछली खिड़की वाली गली में पड़े हैं उन्हें मंगवा दीजिए।'

रानी ने मंगी को बुलाकर आज्ञा दी। रानी या काक दोनों में से कोई कुछ न बोला!

'काक! मंजरी कैसे है ?' तनिक तिरस्कार से रानी ने पूछा।

'प्रसन्न है।'

'और बच्चे ?'

'आनन्द में हैं।'

'लाट के क्या हाल-चाल हैं ?'

'अभी यहां से एक मूर्ख को दुर्गपाल नियुक्त करके भेजा है, और रेवापाल प्रतीक्षा ही कर रहा है।'

'तब क्या होगा ?'

'जैसी भोलानाथ की इच्छा । किन्तु देवी, मुंजाल महेता क्या कर रहे हैं ?'

'तांबूल चबाते हैं ।'

'और उदा ?'

'महाराज के लिए राणकदेवी लाने के लिए व्याकुल हैं । तेरा शत्रु है न ?'

काक मुस्कराया--'मुझे उकसाने की आवश्यकता नहीं ।'

रानी ने हँसकर काक की ओर अस्थिर दृष्टि से देखा ।

'और यह जगदेव कौन है ?'

'नया परमार योद्धा है । बहुत चतुर है । तुम सब पर धाक जमाने के लिए महाराज उसे लाए हैं ।'

'अच्छा ! और बाबरा भूत—'

रानी के मुख का रंग तनिक फीका पड़ गया, 'वह—'

'क्यों ?'

'उसका नाम लेते ही तो मेरे अंग ठंडे हो जाते हैं । मंगी ! क्या है ?' रानी ने घूमकर पूछा ।

'भट्टराज को खोजते हुए परमार यहाँ आए हैं ।'

'कैसे जाना ?'

'भट्टराज ने जिस प्रहरी को बन्द किया था उसीने परमार को कहा लगता है ।'

'अच्छा ,' शांति से रानी बोली, 'जाकर बाहर खड़ी रह । आए तो खड़ा रखना ।' मंगी गई और रानी काक की ओर घूमी।

'घबराना मत । तू उस कमरे में जाकर वस्त्र पहन ।'

'मेरी चिन्ता न कीजिए । मुझे इस परमार से परिचय भी करना है ।'

'देवी !' मंगी ने द्वार खुला रखकर रानी से कहा, 'जगदेव परमार आपसे भेंट करना चाहते हैं ।'

'आने दे ।' कहकर रानी ने हाथ के संकेत से काक को अंदर भेजा

और पलंग से उतर कर लंहगा-कँचुकी ठीक किए, ओढ़नी सिर पर ठीक से रखी और पुनः गर्व से बैठ गई।

वह बैठी ही थी कि जगदेव परमार अंदर आया।

: ११ :

काक लुप्त हो गया

जगदेव अन्दर आया। लीलादेवी ने उस पर उपेक्षा-भरी दृष्टि डाल कर मुँह फेर लिया।

जगदेव शक्ति की मूर्ति लग रहा था। वह विशाल कद का था, उसकी छाती चौड़ी थी, उसके हाथ साधारण मनुष्य की जंघा के समान थे, उसका मुख बड़ा और भरा हुआ था। उसे तेजस्वी नहीं सुन्दर कहा जा सकता था। काली, सावधानी से संवारी हुई दाढ़ी उसके मुख की शोभा बढ़ा रही थी। उसकी कमर से खड्ग लटक रहा था, और कमरबन्ध में दो कटारें शोभा दे रही थीं।

उसे देखकर अडिग शौर्य का स्मरण हो आता था किन्तु उसकी आँख में कुछ अगम्य-सा था—वे तेजस्वी न थीं फिर भी लोग उनसे घबराते थे। उनमें सज्जनता न थी किन्तु हरामख़ोरी भी न थी। उनमें खलता न होते हुए भी कोई उनको देखकर विश्वास नहीं करता था। जयसिंहदेव महाराज के दरबार में उसे कोई समझ न पाता था, घबराते सभी थे। पट्टणी योद्धा उससे सम्बन्ध रखना नहीं चाहते थे। और महाराज और उसकी शक्ति के भय से कोई उससे शत्रुता भी नहीं करना चाहता था। जगदेव समझता था कि पट्टणियों को दबा रखने की शक्ति केवल उसीमें है। गर्वीले पट्टणी उसको तिरस्कार से देखते

और मात्र उतना ही मान देते जितने से महाराज को क्रोध न हो। गर्विष्ठ, मुमुक्षु और विदेशी के बीच जितना भाईचारा हो सकता है उससे अधिक पट्टणियों और जगदेव के बीच में न था।

किन्तु महाराज के महामन्त्री और अत्यन्त निकट के सम्बन्धी तो अपना तिरस्कार छिपाने का प्रयत्न तक नहीं करते थे। जगदेव भी जहां तक बनता उनके संसर्ग में न आता था। उदा के साथ बहुत नम्रता से और परशुराम के साथ सम्मान से व्यवहार करता था। रानियों के साथ वह कोई सम्बन्ध न रखता था और जहाँ तक बनता रानियां भी उससे कोई सम्बन्ध न रखती थीं। एक लीलादेवी अवश्य उससे शांत तिरस्कार से व्यवहार करती थी। जगदेव के मुख पर से इतना तो स्पष्ट हो रहा था कि इस समय यहां आना उसे अच्छा न लग रहा था। उसके स्थूल मुख पर थोड़े-बहुत क्षोभ के चिह्न थे, और गले में से शब्द निकालने में भी उसे कष्ट हो रहा था। किन्तु यह दशा उसने दाढ़ी में हाथ फेरकर छिपा ली।

'देवी! सेवक का दण्डवत् प्रणाम।' विदेशी उच्चारण में जगदेव ने रोम-रोम से नम्रता टपकाते हुए कहा।

रानी ने गर्दन हिलाई, और शांत, निश्चित वाणी में पूछा—'क्यों जगदेव?'

'देवी! महाराजाधिराज की आज्ञा है कि किसी अपरिचित व्यक्ति को महल के अन्दर न घुसने दिया जाय।' जगदेव ने खंखारकर कहा।

'तो?' तिरस्कार से लीलादेवी ने कहा।

'आज कोई एक व्यक्ति घुसकर आपके प्रकोष्ठ की ओर आया है ऐसी मुझे सूचना मिली है।'

रानी ने अपना मुँह जगदेव की ओर किया। उसकी आंखों में हृदय-भेदी निर्दय तीक्ष्णता थी। पल-भर तक वह देखती रही, उसने अन्दर-ही-अन्दर घबराते हुए भी बाहर से साहस बनाए रखने वाले योद्धा को अपने तिरस्कार का पूरा-पूरा अनुभव करवा दिया।

'इससे मुझे क्या ?'

'वह कौन है और कैसे आया यह सब जानकारी मुझे महाराज को देनी है। देवी ! क्षमा कीजिएगा, मुझे महाराज की आज्ञा का पालन करना ही चाहिए। नहीं तो आप तो जानती हैं मेरी क्या गति होगी।'

रानी ने तिरस्कार से मुंह फेर लिया।

'वह कौन है ?' जगदेव ने धीमे-से पूछा।

'परमार !' रानी ने बिना क्रोधित हुए ही कटाक्ष किया, 'तुम महारानियों की तलाशी लेने की ही नौकरी करते हो ?' रानी ने प्रश्न इस प्रकार पूछा मानो वह नितान्त स्वाभाविक और सामान्य हो। किंतु जगदेव को अपमान का गहरा घाव लगा। उसके होंठ कुछ कांपे, किंतु तुरन्त उसने स्थिर होकर हाथ जोड़े।

'महारानी ! मैं तो आज्ञापालन करने वाला दास हूँ।'

'मैं जानती हूं।' कहकर लीलादेवी ने तिरस्कार से अंगड़ाई ली, 'कैसा आदमी था वह ?'

'देवी ! ब्राह्मण के वेष में इधर घुसा था।'

'हूं—और किस वेष में वापस निकला ?'

जगदेव को लगा कि रानी उसकी हँसी उड़ा रही है।

'देवी ! अभी तो वह व्यक्ति यहीं है।'

'क्या ?' लीलादेवी ने चमककर पूछा। उसने जगदेव की ओर देखा और उस योद्धा के मुख पर मुस्कराहट देखकर वह घबराई।

'अभी उसके पूजा-पात्र यहीं पड़े हैं।' कहकर जगदेव ने मुस्कराकर भूमि पर रखे हुए पात्रों की ओर संकेत किया।

'जगदेव !' शांति से लीलादेवी बोली। उसकी वाणी में भयंकर तिरस्कार था, 'पाटण की महारानी के साथ किस प्रकार के विवेक से काम लेना चाहिए यह तुझे नहीं मालूम, यह सच है, मुझे तुझे विवेक सिखाना पड़ेगा। जा ! बाहर जाकर मंगी को भेज। मुझे केश सँवारने हैं।'

'किन्तु देवी—'

'परमार ! जो मैंने कहा वह नहीं सुना ?' रानी ने गर्व से पूछा। जगदेव को यह प्रश्न पदाघात-सा लगा।

'हाँ।'

रानी ने गर्दन हिलाकर उसे बाहर जाने की आज्ञा दी। जगदेव को और कुछ सूझा नहीं। वह नमस्कार करके बाहर चला गया। बाहर निकलते ही उसके मुख पर क्रोध छा गया किन्तु मंगी को आता हुआ देखकर उसका मुख जैसा था वैसा ही शांत हो गया।

'मंगी ! इन पात्रों को छिपा दे।'

'जैसी देवी की इच्छा।'

रानी मंगी की ओर देखे बिना शीघ्रता से अन्दर गई और द्वार बन्द कर लिए। दूसरे ही क्षण उसकी चीत्कार सुनाई पड़ी। मंगी के प्राण सूख गए। लीलादेवी जैसी शांत और भावहीन स्त्री का इस प्रकार चीत्कार कर उठना इतना अस्वाभाविक था कि वह घबरा गई। वह दौड़कर अंदर गई। रानी कुछ अस्थिर थी और उसकी आंखों में घबराहट थी। प्रकोष्ठ निर्जन था।

'भटजी—'

'कौन जाने कहाँ गया।' रानी ने कहा।

'इस द्वार से तो बाहर नहीं गए ?' कहकर मंगी एक दूसरे द्वार के सामने जाकर उसे ध्यान से देखने लगी। उसका ताला उस ओर था, किंतु द्वार बन्द दिखाई पड़ा।

'पागल ! यह द्वार तो कभी खुलता नहीं। इसकी कुंजी ही कहां है ?'

'तो फिर ?'

'देवी—देवी ! ओ, देवी !' मंगी चीखी।

'क्या है ?' कठोर होकर लीलादेवी ने पूछा।

'अरे रे—भटजी—गंगानाथ भगवान् भला करें।' कहकर मंगी ने

आंखों पर हाथ रख लिया।

रानी नहीं समझी। उसने मंगी का कान पकड़कर खींचा—'क्या है ?'

'देवी—वह तो—बाबरा है।'

पल-भर रानी मौन रही। उसे मंगी की बात सच्ची लगी, उसके सुन्दर होंठ फड़कते रहे; उसकी आंखें स्थिर और गहन हो गईं; मोहक फीकापन उसके मुख पर छा गया। रानी के कुछ बोलने के पहले ही बाहर के प्रकोष्ठ में किसी के दौड़ने की आवाज़ आई। रानी द्वार की ओर मुड़ी।

द्वार खोलकर एक सोलह-सत्रह वर्ष की कन्या ने नाचते-कूदते प्रवेश किया। उसकी ओढ़नी का ठिकाना न था। उसके मुख पर हास्य उमड़ा पड़ता था। उस हास्य के कारण उसके मुख पर मोहक लालिमा छा रही थी। उसकी चंचल आंखों में आंसू थे। उसके हास्य की प्रतिध्वनि सारे प्रकोष्ठ में हो रही थी। वह रानी की ओर आई और एक उंगली ऊँची करके कुछ कहा। उसके हंसने के कारण एक अक्षर भी समझ में नहीं आया।

'समरथ !' रानी ने कठोरता से कहा।

'मां !' बड़ी कठिनाई से वह कन्या बोली, किन्तु हंसी आ जाने पर वह पांव लम्बे कर भूमि पर बैठ गई, और एक हाथ भूमि पर रखकर दूसरे हाथ से पेट पकड़ लिया।

'समरथ देवी ! क्या है ?' मंगी ने पूछा।

उत्तर में समर्थ ने पुनः रानी की ओर संकेत किया, किन्तु पुनः हंसी आ जाने के कारण वह न बोल सकी।

'समरथ ! पागल हुई है ?' लीलादेवी के प्राण अधीर हो गए थे। उसने मंगी की ओर देखा और कहा, 'मंगी, चल, मुझे महेताजी से भेंट करने जाना है।'

लीलादेवी और मंगी वहाँ से चले गए। समर्थ अकेली हंसती

रही। थोड़ी देर में उसकी हंसी रुकी और वह खड़ी हो गई।

'कैसी घबरा गईं ? माँ अब पकड़ में आईं।' वह पुनः हंसने और चारों ओर कूदने लगी—'माँ कैसी पकड़ाईं ? और अब महेता आने वाले हैं।'

समर्थ ने हंसकर धरती पर पांव पटका, पुनः थोड़ी हंसी, और नीचे झुककर ताली दे-देकर कुछ गाने लगी। वह थोड़ी-सी कूदी और कमर से तीनेक कुंजियों का झुमका निकाला।

'मां समझीं उनका ब्राह्मण लुप्त हो गया है।' फिर उसने ही-ही हंसकर मंगी ने जिसे न खुलने योग्य मान लिया था उस द्वार को धक्का देकर खोल दिया। उस ओर न साँकल चढ़ी हुई थी न ताला ही लगा हुआ था। समर्थ उस ओर गई और सांकल चढ़ाकर द्वार पर ताला लगा दिया।

: १२ :

समर्थ

काक अन्दर जाकर अपनी भूल पर पश्चात्ताप करने लगा। लीला अपने पद से हटा दी जाने वाली थी; जयसिंहदेव उस पर कुपित थे; और महल में घुसने की कड़ी मनाही थी। ऐसे समय और इस प्रकार महल में घुसकर वह लीलादेवी से मिला इससे अवश्य उसे हानि पहुंचेगी—ऐसा उसे लगा। इस भूल को सुधारने का विचार करके वह उस कमरे से बाहर निकलने के लिए द्वार खोजने के हेतु दूसरे द्वार की ओर गया। द्वार को धकेलकर देखा तो खुला लगा अतः उसने

उसे खोल दिया । वह एक निर्जन कोठरी में आया । द्वार का ताला खोलकर किसीने वहीं रख दिया था ।

काक ने सावधानी से द्वार बंद किया, एकाएक एक कन्या सामने आकर खड़ी हो गई । वह सुन्दर थी और उसे देखकर हँसने लगी ।

'चोर पकड़ाया ।' वह हँसने लगी ।

'धीरे ।' काक ने नाक पर उंगली रखी ।

'तू कौन है ?' उस लड़की ने आँखें नचाकर पूछा ।

'अरे, पर धीरे तो बोल । रानी सुन लेगी ।'

'हा, हा, हा !' कन्या हँसी, 'तू छिपकर भाग आया । अच्छा हुआ कि मैंने द्वार खुला छोड़ दिया । मालूम है, इसकी कुंजी केवल मेरे पास है ? तू कौन है ?'

'मैं लाट का ब्राह्मण हूं । और देवी का आश्रित हूँ ।'

'हा, हा, हा ! और छिपकर भागा जा रहा है ?' कन्या हँसी, और फिर एकदम गंभीर हो गई, 'तू लाट का है ?'

'हाँ ।'

'काक भटराज को जानता है ?'

'भलीभाँति । क्यों ?'

'वह सोमनाथ पाटण आया है !'

काक सावधान हो गया । 'हाँ, आया होगा । तुम्हें क्या काम है ?'

'वह पकड़ाया कि नहीं कुछ मालूम है ?' लड़की ने पूछा ।

'जब वाहड़ महेता गए हैं तो बिना पकड़े कहीं रह सकते हैं ?' काक ने कहा ।

कन्या गद्‌गद् हो गई और उसके गाल लज्जा से लाल हो गए । अनजाने ही हर्ष से उसके दोनों हाथ मिल गए ।

'तुझे विश्वास है ?' लड़की ने पूछा ।

'हाँ बहन । तेरी इच्छा सफल होगी । अब मुझे जाने दे । जयदेव महाराज कहाँ मिलेंगे ?'

'बाहर निकलकर दाएं हाथ जाना, वहाँ जगदेव परमार मिलेंगे। उनसे कहना वे ले जायंगे।'

'बहन ! तू कौन है ?'

'मैं दंडनायक परशुराम की पुत्री समर्थ हूं।'

'सज्जन महेता की पौत्री।'

'बापरे ! तू तो सभी से परिचित है।'

'हाँ।' कहकर जल्दी-जल्दी काक वहाँ से निकला। कन्या ने द्वार पर ताला लगाया और कुंजी कमर में छिपा ली। 'ठीक है, अब देवी मुझे चिढ़ायंगी तो मैं भी उन्हें चिढ़ा दूंगी।' कहकर वह तनिक उछली। कुछ देर के लिए वह विचार में पड़ी और फिर एकदम हँस-हँसकर गाने लगी।

काक उस कमरे से निकलकर एक कोठरी में आया और वहाँ से जल्दी-जल्दी दाएं हाथ की ओर गया। दो कोठरियाँ पार करने के पश्चात् उसे दो सशस्त्र योद्धा दिखाई पड़े। वह उनके निकट गया।

'महाराज अंदर हैं ?'

दोनों योद्धा गुजराती नहीं लग रहे थे। एक सामान्य ब्राह्मण को इस प्रकार आते देख वे तनिक क्रोधित हो गए।

'हाँ, क्यों ?'

'कुछ नहीं, मुझे भेंट करनी है।' कहकर काक अन्दर जाने लगा। यह धृष्टता देखकर वे सैनिक चकित हो गए और द्वार के सामने भाले अड़ा दिए, 'परमार को आने दे।'

काक को लगा कि अन्दर कोई बैठा है अतः वह जोर से बोला—'मुझे क्यों रोकते हो ?' काक की वाणी में गर्व और सत्ता दोनों थे। 'मुझे, लाट के दुर्गपाल भटराज काक को क्या समझते हो ?' काक का नाम सुनकर वे सैनिक तनिक दूर खिसक गए।

'अन्नदाता ! यह तो मैं काक !' कहकर काक इस प्रकार अन्दर चला गया मानो महाराज ने उसे बुलाया हो और वह उसका उत्तर दे रहा

हो। किन्तु अन्दर जाना इतना सहज न था। एक दूसरे सशस्त्र पुरुष ने उसका हाथ पकड़ा और घरघराती वाणी में पूछा, 'कौन है ? क्यों गड़बड़ करता है ?'

काकने ऊपर देखा। सामने खड़ा पुरुष धूलसे लथपथ था और उसके एक हाथ पर पट्टी बंधी हुई थी। उसकी आँखें लाल हो रही थीं। काक ने वह छोटा किन्तु सशक्त शरीर, झुकी हुई किन्तु प्रतापी नासिका,श्रांत किन्तु हठी मुख तुरन्त पहचान लिया।

'दंडनायक महाराज को घणीखम्मा।' काक ने विनोद से कहा। 'विजय की धुन में लोग पुराने मित्रों को भी भूल जाते हैं। कैसा संसार है ?'

'कौन ?' तनिक चकित होकर सज्जन मंत्री के महारथी पुत्र परशुराम ने कहा।

'काक।'

'कौन भृगुकच्छ का दुर्गपाल ? ओ हो हो ! कैसे हो ?' कहता हुआ परशुराम काक से लिपट गया।

'अच्छा हूं। जीता-जागता यहाँ तक आ गया हूं। महाराज मिलेंगे।

'तुम्ह पर तनिक क्रोधित हैं।'

'उसकी चिन्ता नहीं। अन्दर हैं न ?'

'हाँ। अभी-अभी मेंदरड़ा के निकट सोरठियों को हमने पीछे धकेल दिया है, यही सूचना देने के लिए आया था।'

'परशुराम जी ! आप न होते तो पाटण का जाने क्या होता ?'

परशुराम खड़खड़ हँस दिया, 'काक ! मैं दरबारी नहीं अतः चापलूसी पचती नहीं। लेकिन तू न होता तो पाटण ने लाट कभी को खो दी होती।'

'अरे हाँ, भूला। मैं फिर मिलूंगा। मुझे आवश्यक काम है।'

'जा ! विजय कर। इस समय महाराजका मन भी कुछ प्रसन्न है।'

काक नमस्कार करके अंदर गया। उसका पगरव सुनकर अंदर

के प्रकोष्ठ से एक सत्ता-भरा स्वर सुनाई पड़ा, 'कौन, जगदेव ?'

काक ने स्वर पहचान लिया और दौड़कर अंदर गया 'नहीं अन्नदाता ! ये तो मैं हूँ—काक।'

गद्दी पर एक व्यक्ति आरसी में देखकर मूँछें मरोड़ता हुआ बैठा था। एक-दो गण कंघी लेकर खड़े थे।

काक ने साष्टांग प्रणाम किया।

: १३ :

राजाधिराज

एक साधारण-सा युवक गद्दी पर लेटा हुआ था। उसका कद बड़ा और छटादार था, उसका शरीर भरा हुआ और सशक्त था, उसके चौड़े कंधे और स्नायुशील भुजाएँ उसके शारीरिक बल की साक्षी दे रही थीं।

उसने श्वेत धोती पहन रखी थी और कंधों पर सुनहरी दुपट्टा डाल रखा था। झीने दुपट्टे में से उसके गले में पड़े हुए आभूषण और हाथ के बाजूबंध चमक रहे थे, उसका रंग गेहुँआ था। मात्र कलाई के आस-पास उसके हाथ साँवले थे। उसका मुख गोल और भरा हुआ था, और छोटी और सुन्दर दाढ़ी के मोहक केश सिर पर के लंबे और घुँघराले केशों में मिलकर उसके मुख को भव्य बना रहे थे। उसकी नासिका लंबी और पतली थी—महत्वाकांक्षा प्रकट कर रही थी। होंठ सुघड़ और पतले थे—विलास में रुचि की सूचना दे रहे थे। आँखें विशाल, लंबी और तेजस्वी थीं, उनसे आवेश टपक रहा था। और उसके मुख पर सुषुप्त सिंह के समान प्रताप सुषुप्त

पड़ा हुआ था—ऐसा कि उसकी स्थिरता ही सामने वाले को कंपा ती थी।

जयसिंहदेव महाराज ने आँखें तनिक अधिक खोलकर देखा। इस प्रकार किसी का आना उन्हें अच्छा नहीं लगता था, यह उनकी दृष्टि से स्पष्ट लग रहा था।

'कौन ?' कुछ कठोर होकर उन्होंने पूछा।

'देव ! आपने जिसे बुलाया था वही काक।' काक उठा, घुटने के बल झुका और हाथ जोड़कर बोला।

'काक ! तू ?'

'हाँ देव ! आपका आज्ञा-पत्र मिलते ही तुरत चला आया, अन्न-दाता ! प्रसन्न तो हैं ?' काक ने पूछा।

महाराज को यह मित्रता अच्छी नहीं लगी यह काक ने स्पष्ट देख लिया। वह मुस्करा दिया।

'तू सीधा चला आया ?' आश्चर्यचकित होकर जयदेव ने कहा।

'आपकी आज्ञा हो तो कैसे रुका जा सकता है ?'

'तुझे कोई मिला ?'

'नहीं देव ! शत्रु का देश था अतः मैं बहुत सावधान था। किन्तु कृपानाथ ! आप प्रसन्न तो हैं ?' दंडनायक ने मुझसे मेंदरड़ा के विषय में अभी-अभी कहा था।'

'हाँ, यह अच्छा हुआ।' जयदेव महाराज ने गर्व से कहा।

'और लीलादेवी प्रसन्न हैं न ?' और बड़ी देवी ? मुंजाल महेता तो आनन्द में ही होंगे ?'

जयदेव की आँखों में थोड़ी-सी चमक आई। उसे यह प्रश्नावलि अच्छी न लगी।

'काक ! सब प्रसन्न हैं। लाट की क्या दशा है ?'

'मैं आया तब तक तो सब शांत था। अब तो आम्रभट महेता क्या करते हैं उसी पर निर्भर करता है।'

'क्यों ?'

'बहुत कच्चा है। इस समय लाट को शांत रखना छोटे बच्चों का खेल नहीं।'

'हँ हँ !' तिरस्कार से महाराज ने कहा,'किन्तु तू इस वेष में क्यों ?'

'देव !' काक मुस्कराया,'आपका आज्ञा-पत्र मिला तो मुझे लगा कि आपको सचमुच मेरी आवश्यकता है। आपके और मेरे शत्रु कुछ कम हैं ? अतः इस वेषके सिवा और कोई चारा न था। अन्नदाता ! लीलादेवी का विवाह कराने आया था उसके पश्चात् आज आपके दर्शन कर रहा हूँ। किन्तु महाराज, आपकी कीर्ति और आपका प्रताप देखकर तो मैं दंग रह गया। पन्द्रह वर्ष पूर्व मैंने जो कहा था वही हुआ न ?'

'क्या ?'

'आपका जन्म विक्रम राजा की कीर्ति को भी मंद करने के लिए हुआ है।'

जयदेव ने प्रसन्न होकर दाढ़ी पर हाथ फेरा। वे तकिए पर लेट गए और काक पर एक अमृत-भरी दृष्टि डाली।

'काक ! तू पाटण आकर क्यों नहीं रहता ?'

'देव ! आप क्या नहीं जानते ? आपके दरबारियों में खलबली मच जायगी। स्मरण नहीं, पन्द्रह वर्ष पहले मुझे चला जाना पड़ा था ?'

'काक ! तुझसे मुझे काम है।' जयदेव ने कहा।

'आपकी आज्ञा हुई और मैं आ खड़ा हुआ।'

'मैं इन सबसे थक गया हूं।' सीधे होकर कुछ तिरस्कार से राजा ने कहा, 'मुरार ! बाहर जा।' कंघी लेकर खड़े हुए व्यक्ति से जयदेव ने कहा। मुरार बाहर चला गया। 'काक ! मैं इस जूनागढ़ के घेरे से थक गया हूं।' राजा ने काक पर तीक्ष्ण दृष्टि टिकाकर कहा।

काक का मुख भावहीन था। 'देव ! तो, दो मार्ग हैं।'

'कौनसे ?'

'या तो जूनागढ़ पर विजय प्राप्त कीजिए या छोड़ दीजिए।'

'मैं—जयसिंहदेव जूनागढ़ का घेरा हटा लूं ?'

'तो उस पर विजय प्राप्त करिए।' काक ने शांति से कहा।

जयसिंहदेव ने अधीर होकर हाथ पटका, 'किन्तु वह जीता नहीं जा रहा है, और मेरी कीर्ति को कलंक लग रहा है।'

'आपकी आज्ञा की देर है।'

'क्या ?' कुछ हर्षित होकर जयदेव बोला।

'आपको कितने दिनों में जूनागढ़ लेना है ?'

'कितने में लिया जा सकेगा ?'

'जितने आप कहें।'

'और यदि नहीं लिया तो ?'

'उसके पहले या तो जूनागढ़ नहीं या काक नहीं।'

जयदेव महाराज प्रसन्न होगए। काक दृष्टि नीचे किये यह सब परिवर्तन देखता रहा।

'धन्य हो ! तेरे समान एक भी नहीं है।'

'यह तो आप कभी से जानते हैं।'

जयदेव का मन प्रसन्न था। वे हँसे। 'काक ! तेरी बोली तो वैसी-की-वैसी ही है।'

'देव ! मुझमें जब परिवर्त्तन नहीं होता तो मेरी बोली में कैसे हो सकता है ?'

जयदेव हँसा। चाटुकारिता से भरे दरबारी वातावरण में इस समय यह साहस उसे आकर्षक लगा। इतने में मुरार आया।

'अन्नदाता ! बाहर परमार और उदामहेता आये हैं।'

राजा ने काक की ओर देखा। काक मुस्कराया, 'तू परमार को पहचानता है ?'

'वही आपका विदेशी दास ?'

जयदेव हँसा—'फिर तेरी जिह्वा सीधी नहीं रहती ! यह तो मेरा विश्वासपात्र है।'

'उससे क्या सम्मानित हो गया ? देव ! आपको हंसी अच्छी लगती हो तो मुझे वस्त्र परिवर्त्तन कर लेने दीजिए।'

'हां ! यह ठीक है। मुरार, जा इसे वस्त्र दे।'

'जो आज्ञा।'

काक उठा और मुरार के साथ एक द्वार से बाहर चला गया।

जयदेव मन-ही-मन हँसे । वर्षों से परशुराम सोरठियों के गढ़ को घेरे हुए पड़ा था; और सोरठ का अधिकांश भाग पाटण के आधीन था, किन्तु जूनागढ़ के गढ़ को तोड़ना कोई खेल न था। तीन बार जयसिंहदेव महाराज स्वयं ने धावा बोला था; किन्तु वे जूनागढ़ का एक कंकड़ भी न हिला सके। इस समय परशुराम, त्रिभुवनपाल सोलंकी और मुरारपाल मंडलेश्वर, राज्य के इन अग्रगण्य महारथियों ने रा' को चारों ओर से घेर रखा था; फिर भी गिरनार का रा' अपनी स्वतन्त्रता का झण्डा उठाये हुए उनका उपहास कर रहा था।

अब जयसिंहदेव का धैर्य टूट गया था। और ऊपर से न जाने कैसे देवड़ी के प्रति उनका प्रेम पुनः जाग पड़ा था। वर्षों पहले खेंगार द्वारा किया हुआ अपमान उन्हें चुभ रहा था । और जब तक रा' न झुकेगा तब तक उनकी कीर्ति में कलङ्क बना रहेगा यही विचार उन्हें रात-दिन जलाया करता था।

स्वयं युद्ध में पीछे हट जायं, ऐसी बात न थी। किन्तु युद्ध में जाकर पीछे हट जायं तो बड़ी कठिनाई से अर्जित की हुई कीर्त्ति और महत्ता नष्ट हो जाते हैं—यह बात भी वे न भूले थे। वे बड़ी तैयारी के साथ एक ऐसा धावा बोलना चाहते थे कि जूनागढ़ का एक पत्थर भी न बच सके। इसीके लिए खंभात से सेना लेकर उदा महेता को, थोड़ी-बहुत सेना लेकर मालवे से दादाक को और भृगुकच्छ से काक को बुलाया था। त्रिभुवनपाल, परशुराम, मुरारपाल, उदा, दादाक और काक इन छः, सहस्त्र युद्धों के प्रचण्ड खिलाड़ियों के नेतृत्व में धावा बोलने का उन्होंने निश्चय किया था। यम के सैनिकों के समान ये

दुर्जय योद्धा खेंगार तो क्या गिरनार को भी झुका सकते थे ऐसा उनका विचार था।

दादाक अभी आया न था। जयदेव की चलती तो काक को न बुलाता। दूर पड़ा हुआ काक इन योद्धाओं के साथ शोभा नहीं देता ऐसा कुछ विचार उनके मन में था। किन्तु त्रिभुवनपाल और मुरारपाल दोनों ने काक को बुला भेजने की बात कही थी। और जब जयदेव ने मुंजाल महेता को भी शस्त्र से सज्जित होने के लिए कहा तो महा आमात्य हँस पड़े।

'जयदेव! मैं आऊंगा किन्तु वह आपको शोभा नहीं देगा। आपने बहुत कीर्ति अर्जित की है; किन्तु इसके बिना और सब व्यर्थ है। मूलराजदेव ने रा' को झुकाया, आपके लिए अभी यह करना शेष है। आवश्यकता होगी तो रण चढ़ूंगा। निश्चिन्त रहिएगा। वृद्ध तो हो गया हूँ, फिर भी अभी चलेगा।' कहकर मन्त्री ने अपने वृद्ध किन्तु सशक्त बाहुओं पर दृष्टि डाली।

जयदेव बड़ा गर्वीला था किन्तु मुंजाल महेता के सामने बच्चा बन जाता था। राजा अपने को छोटा न समझ ले इससे विचक्षण मन्त्री सब ओर ध्यान रखते हुए भी एकांतवासी थे। जयदेव यह उदारता समझता था। उसने जाने की आज्ञा चाही।

'महाराज!' मन्त्री ने निरपेक्षभाव से कहा, 'एक काम करिएगा तो मेरी आवश्यकता नहीं पड़ेगी।'

'क्या?'

'भृगुकच्छ के दुर्गपाल को बुलाकर साथ ले लीजिएगा।'

'किसे, काक को?'

'हां।'

दूसरे ही दिन आम्रभट आज्ञा-पत्र लेकर भृगुकच्छ के लिए निकला।

जयदेव दूर पड़े हुए काक को अपने तेज से चकाचौंध कर देना चाहते थे, अपने प्रताप से उसे डराए रखना चाहते थे। यह उद्देश्य पूरा

नहीं हुआ यह राजा को अच्छा नहीं लगा। किन्तु काक के साहस, शौर्य और चतुराई की उन्हें आवश्यकता थी, और उनका सम्मान करने जितनी शक्ति भी उनमें थी।

: १४ :

वाग्भट का कैदी

गर्व-भरी उपेक्षा से जयदेव पुनः गद्दी पर लेट गए। सिर के केशों को हाथ से सँवारते हुए वे कुछ विचार करने लगे।

विचार करते-करते वर्षों पहले देखी कलाड़ा की देवड़ी का मुख याद आया। जयदेव के मुख पर से उदासी जाती रही और रसिकता छा गई। उनकी विशाल आँखों में आतुरता दिखाई पड़ने लगी। काक के साथ वार्तालाप से उठे विचारों ने दूसरी ही दिशा पकड़ी। वे मन-ही-मन बड़बड़ाए।

'जूनागढ़ लूँ, रा'को मारूँ यह सब ठीक है,किन्तु उदा ठीक कहता है—रा' के मरने पर कहीं देवड़ी मिल सकती है? राज्य-विहीन हुई देवड़ी मुझे शत्रु तो समझेगी ही किन्तु देवड़ी को प्राप्त करना ही होगा।' जयदेव की भवें तन गईं। उनकी आँखों में रोष प्रकट हुआ। 'क्यों नहीं प्राप्त होगी? क्या बात है? उदा इतना कच्चा नहीं। वह जानता है कि मेरी इच्छा सफल हो जाय तो उसका बेड़ा पार हो जाय। और वह चतुर भी है। यदि समझौते से ही देवड़ी प्राप्त हो जाय तो भले रा' कर देकर जूनागढ़ रखे। किन्तु इस विषय में मुझे इन खड्गधारियों का विश्वास नहीं। देखूँ, उदा क्या समाचार लाया है।'

'अन्नदाता, घणीखम्मा !' जगदेव का स्वर सुनाई पड़ा।

'जगदेव !' रोब से जयदेव महाराज बोले।

'दूसरा कौन है ? उदा मेहता ! आओ !' जगदेव और उदा महेता आए।

स्वच्छ और सुन्दर वस्त्रों में, सादे किन्तु बहुमूल्य अलंकारों से उदा महेता सुसज्जित थे। उनकी लाल पगड़ी का रंग वैसा ही था जैसा वे यौवन-काल में पहनते थे। सब उनकी ओर आकर्षित होजाते थे। वे पहले के समान ही हँसमुख थे। उनकी मूछों में काले केश बहुत कम रह गए थे किन्तु फिर भी उनके मुख पर बुढ़ापे की रेखाएँ अधिक न थीं। उनकी दृष्टि का पैनापन कुछ अधिक तीखा हो गया लगता था। कभी-कभी तो उनमें भलमनसाहत भी दिखाई पड़ती थी। यह बढ़ती हुई उम्र के सौजन्य से था या अभ्यास द्वारा प्राप्त की गई सरलता के कारण, यह निश्चय करना कठिन था।

यह अनुभवी दरबारी गर्व से चलता था। इसके संपूर्ण व्यक्तित्व पर उसके स्वभाव और जीवनचर्या की छाप थी। शांत और स्थिर बुद्धि—न डिगे न छूटे ऐसा धैर्य—न चूके न विपत्ति में मुँह मोड़े ऐसा शौर्य—न कभी समाप्त हो और न कभी अम्ल हो ऐसी मिठास—लगन से प्राप्त किये हुए इन गुणों का प्रतिबिंब क्षण-क्षण पर उसकी चाल में, बोली में और विचारों में पड़ता था। उसके शृंगार में, उसकी बोली में और उसके व्यवहार में कुछ ऐसी विशेषता थी कि एक क्षण के लिए भी कोई यह न भूल सकता था कि वह जैनधर्म का महास्तंभ, श्रावक-शिरोमणि अतुल धन का धनी, और अपार सत्ता का अधिकारी है।

'हाँ देव, आ ही गया।' मंत्री का शांत और मधुर स्वर सुनाई पड़। इस स्वर में मोहकता थी, किंतु कहीं कुछ कमी अवश्य है ऐसा सुननेवाला तुरंत समझ जाता था।

'जगदेव, तू कहाँ गया था ?' जयदेव ने पूछा।

'अन्नदाता ! मैं महल में—'

'परमार !' सिर ऊँचा करके राजा ने कहा, 'मैं कोई बहाना नहीं सुनना चाहता। यहाँ दो व्यक्ति बिना आज्ञा के घुस आए, इसमें दोष तेरा है।'

जगदेव हाथ-में-हाथ कर, सिर नीचा किये खड़ा रहा।

'बाहर जा।'

'जो आज्ञा।' कहकर जगदेव बाहर चला गया।

'कहो महेताजी ! बैठो।' राजा ने उपेक्षा से उदा को बैठने के लिए कहा। उदा महेता ने पीठ पर दुपट्टे को सँवारा और गद्दी के नीचे पालथी मारकर बैठ गया।

'क्या कर आए ?'

'मैं देशल से भेंट कर आया हूं।'

'तो ?'

'परसों वह मुझसे भेंट करने वाला है। हो सका तो रा' और देवड़ी से मैं ही भेंट कर आऊंगा।'

'महेता ! मुझे इस प्रकार बातचीत चलाने में विश्वास नहीं।'

'महाराज ! आप परिणाम देखेंगे तभी समझेंगे।'

'किन्तु रा' बहुत हठी है।'

'हम क्या कम हठी हैं ? अन्नदाता ! जो शौर्य से नहीं होता वह चतुराई से हो जाता है।'

'ठीक ! किन्तु ध्यान रहे, मुझ पर कलंक न लगने पाए।'

'देव। आपको देवड़ी वर ले और रा' झुक जाय—इससे अधिक और क्या चाहिए ?'

'अधिक तो कुछ नहीं—किन्तु—' जयदेव ने कुछ रुककर पूछा—'किन्तु महेता, वाहड़ क्यों नहीं आया ?'

'महाराज ! वह काक है, उसे लाना कोई सहज बात है ?'

'किन्तु वाहड़ उसे ले तो अवश्य आएगा न ?'न समझ पड़े ऐसे ठट्ठा-भरे स्वर में राजा ने पूछा।

'देव ! अगर कोई यह काम कर सकता है तो वाहड़—'

'यह काक हमारी सहायता करेगा न ?'

'उदा महेता सर खुजलाने लगे, 'हाँ, करेगा। किन्तु उसके मत से चलेंगे तो !'

'महेता ! गुजरात में एक ही व्यक्ति का मत चलता है।'

'और वह अन्नदाता का !' उदा ने वाक्य पूरा किया। बाहर किसी की पगध्वनि सुनाई दी। दोनों सुनने लगे।

'जगदेव ! यह कौन है ?' जयदेव ने पूछा।

'कृपानाथ! वाहड़ महेता आए हैं।' जगदेव ने द्वार पर आकर कहा

'आने दे।'

जगदेव और वाहड़ ने प्रवेश किया। वाग्भट यात्रा से सीधा चला आ रहा था; उसके मुख पर थकावट और हर्ष दोनों के चिह्न स्पष्ट दीख रहे थे।

'अन्नदाता, घणीखम्मा !' वाग्भट ने प्रणाम किया। 'पिताजी, प्रणाम।'

'काक को लाया ?' उदा ने पूछा।

जयदेव केवल उसकी ओर देखता रहा।

'अन्नदाता ! आपकी आज्ञानुसार मैं काक भट को पकड़ लाया हूं।' वाग्भट ने झुककर, हर्षातिरेक से कहा।

'किसे ?' जयदेव ने पूछा।

'भटराज काक को।' वाग्भट्ट ने कहा।

'किसीको उसके साथ बात तो नहीं करने दी न ?' उदा ने पूछा।

जयसिंहदेव की एक दृष्टि ही से पिता-पुत्र स्तब्ध हो गए, 'काक' बाहर है ?'

'जी हां, महाराज !'

'अंदर ला, देखूं।' राजा ने कहा। उनकी आंखों में क्रोध प्रकट हुआ।

'हां, महाराज !' कहकर वाग्भट बाहर गया। महाराज की मुखमुद्रा देखकर उदा चिंतित हुआ।

'देव ! उसके साथ तनिक सावधानी से काम लीजिएगा।'

जयसिंहदेव प्रायः सबसे विरक्त और पहुँच के बाहर हो जाते थे। उस समय उनकी आंखों का तेज उनके निकट सम्बन्धियों तक को दूर ले जा पटकता था और उनके चारों ओर गौरव का अभेद्य वातावरण छा जाता था। इस समय राजा की वैसी ही दशा हो गई।

'मैंने तेरी सलाह नहीं पूछी थी।' उन्होंने पग पटककर उदा से कहा। उदा मौन रहा। वाग्भट खेमा को साथ लेकर अंदर आया।

'कहां है काक ?' राजा ने कठोर होकर पूछा। वाग्भट ने आश्चर्य-चकित होकर चारों ओर देखा। उदा फीका पड़ गया, जयदेव खड़खड़ हँस पड़े।

'यह है काक ?' जयदेव ने तिरस्कार से कहा, 'उदा महेता ! वह काम कोई यदि कर सकता है तो वाहह—हा ! हा ! हा ! यह और काक ?'

खेमा हाथ जोड़कर खड़ा रहा।

'क्यों रे, तू कौन है ?'

'अन्नदाता ! मैं तो भटराज का सेवक हूँ।'

'किसका ? काक का ?' राजा ने पूछा।

'हाँ, देव !' खेमा ने कहा।

'तू यहाँ कैसे आया ?'

'मैं क्या करूं देव ! ये भाई कुछ पूछने लगे थे। पोत डूबने लगा तो मैं तैरता-तैरता आया और इन्होंने मुझे पकड़ लिया। मैं निःसहाय था, कर ही क्या सकता था ?'

'उदा महेता, तुम काक को पकड़ने वाले थे न ?'

'देव !—'

'तुम्हारा लड़का लाट गया है। तुम भी वहां जाकर कुछ सीख आओ।' कटाक्ष से राजा ने कहा।

'अन्नदाता! किन्तु यह काक गया कहाँ?' उदा ने बात फेरने का प्रयत्न किया।

'यहीं है। यह रहा।' कहते हुए महल में से सुन्दर वस्त्र, और चमकते हुए शस्त्रों से सुसज्जित होकर काक अंदर आया। उसका लंबा शरीर भव्य लग रहा था, उसके तेजस्वी मुख से प्रताप की किरणें फूट रही थीं और उसकी तीक्ष्ण और गहरी आंखों से हंसी टपक रही थी।

जयदेव पुनः खड़खड़ हंस पड़े, 'वाग्भट। इस व्यक्ति का नाम है काक। पहचान ले, कहीं पुनः भूल न हो जाय। इससे काम बनाना कविता करने जितना सरल नहीं है। महेता! यह तुम्हारा पुराना मित्र है। पहचानते हो?'

'उदा महेता और मुझे न पहचानें?' काक ने हंसकर कहा, 'क्यों खेमा! अच्छा हुआ तू बच गया। और कोई डूबा?'

'नहीं महाराज!' खेमा ने कहा।

'खेमा, गुजरात में एक ही महाराज हैं। परमभट्टारक जयसिंहदेव महाराज। तेरा सौभाग्य है कि आज तुझे उनके दर्शन हो गए। देव! आज्ञा हो तो जाय—ये थक गया होगा।'

'और तू भी तो थक गया होगा।'

'आप जानते हैं कि आपकी सेवा से मैं कभी थकता नहीं।'

'भटराज!' उदा महेता चहके, 'मेरा आँबड़ तो प्रसन्न है न?'

'हाँ!'

'महेता!' जयसिंहदेव ने कहा, 'तुम्हारा आंबड़, लगता है, वहां सब गड़बड़ कर देगा।'

उदा ने तीक्ष्णता से काक की ओर देखा, पुराने वैरी के द्वेष का अनुमान लगाने लगा। काक मुस्करा रहा था।

'वाहड़ !' राजा ने हंसकर तिरस्कार से कहा, 'अब तू भी विश्राम कर। बहुत थक गया होगा।' वाहड़ आंख ऊँची न कर सका, 'फिर परशुराम के साथ मेंदरड़े जा।'

'जो आज्ञा ।' कहकर वाग्भट नमस्कार करके म्लान-मुख से वहां से चला गया। काक के संकेत करने पर खेमा भी वहां से चला गया।

: १५ :

राज्यकर्ता की राजनीति

राजा ने बारी-बारी से उदा और काक दोनों की ओर देखा।

'तुम दोनों पुराने शत्रु हो। किन्तु अब मित्र बनना पड़ेगा।' उन्होंने कहा।

'देव ! मैं तो काकभट का मित्र ही हूं।'

'और मैं—जो आपका सच्चा सेवक हो उसके साथ वैर नहीं रखता।'

'अच्छा, तो दोनों बैठ जाओ। देखो, अब इस जूनागढ़ का क्या करना है ?' काक और उदा दोनों बैठ गए।

'महाराज !' उदा ने मिठास से कहा, 'आप मेरे विचार तो जानते हैं।' यदि मैं निरंतर दबाव डालता रहूंगा तो रा'के लिए समझौता स्वीकार करने के सिवा और कोई चारा न होगा।'

'काक ! तू सारी बात जानता है ?'

'नहीं।'

'रा' अब हाथ आया ही समझो, किन्तु गढ़ इतना दृढ़ है कि उसे

गिराते वर्षों लग जायँगे। मैं अब यह युद्ध शीघ्र समाप्त करना चाहता हूं।' जयदेव ने कहा।

'क्या रा' किसी भी प्रकार का समझौता स्वीकार करेगा?'

'अन्य मार्ग ही नहीं है।' उदा ने कहा।

'कितने ही व्यक्तियों को समझौता करने से श्मशान अधिक रुचिकर लगता है।'

'तो रा' समझौता स्वीकार नहीं करेगा, ऐसा तू मानता है?'

'मुझे विश्वास है।'

'कैसे?' राजा ने कहा।

'मैं उसे वर्षों से पहचानता हूं।'

'और यदि मैं करवा लूं तो?' उदा ने मुस्कराकर कहा।

'मैं शस्त्र उठाना छोड़ दूंगा।' काक ने मुस्कराकर कहा।

'भटराज! देखना!'

'किन्तु वह समझौता स्वीकार न करें तो?' काक ने पूछा।

राजा की आँखों में गहन तेज चमक उठा। वह सीधा होकर बैठ गया और दोनों की ओर देखा।

'और कर ले तो? काक! मैं स्वयं युद्ध में जाऊंगा। और रा' को चुटकी से मसल दूंगा। जो मूलराजदेव ने किया वह मैं नहीं कर सकता? सोलंकियों को शिक्षा देनी नहीं पड़ती।'

'महाराज! यह मैं जानता हूं,' काक बोला, 'और इसीलिए मुझे आश्चर्य होता है कि आप समझौते की बात कर रहे हैं। समझौते की बात निर्बल करते हैं, शक्तिवान नहीं.... गढ़ और रा' दोनों को पराजित करना पड़ेगा।'

'अन्नदाता को यह मार्ग अच्छा नहीं लगता।' उदा ने धीमे-से कहा।

जयदेव ने उत्तर नहीं दिया। काक समझ गया—राजा देवड़ी का विचार कर रहे थे।

'तो अन्य कोई मार्ग नहीं है। किन्तु देव! समझौता करना हो तो शीघ्र कीजिए जिससे हम जैसे लोग कुछ समझ सकें।'

'अरे हाँ!' राजा ने कहा, 'उदा महेता तीन-चार दिन में उत्तर लाने के लिए कहता है।'

'हाँ! तुम भी चलो तो अच्छा है।' प्रयत्न निष्फल होने पर अपयश का कोई भागी हो तो अच्छा, यही सोचकर उदा महेता ने उदारता दिखाई।

'नहीं,' काक गर्दन हिलाकर बोला, 'जो नहीं हो सकता उसे मैं हाथ में नहीं लेता।'

'देव! मैंने सब प्रबन्ध कर लिया है। रा' आधा तो मान गया है। देवड़ी पर से विश्वास हट जाय इसका भी प्रयत्न किया जा रहा है, और देवड़ी के माँ-बाप भी उसे समझाने के लिए तैयार हैं। देशलदेव योद्धाओं को भी समझा रहा है। दो-चार दिनमें सब कुछ ढीला हो जायगा तब मैं जा मिलूंगा। जितना बन सका उतना मैंने कर रखा है, आगे आदीश्वर भगवान् के हाथ में है।'

प्रपञ्च की प्राण रूंध देनेवाली परिस्थिति में किस प्रकार जूनागढ़ अपनी स्वतंत्रता खोएगा—यह योजना बताते-बताते खंभात के बुद्धिमान् मंत्री की आँखें चमकने लगी, जयसिंहदेव को बात में रस आ रहा था। काक स्थिर नयनों से देखता रहा।

'आप स्वयं जायंगे?' काक ने पूछा।

'हाँ तो।'

'महेता! वहाँ जाकर जो बात अब तक आप नहीं समझ पाए हैं वह समझ जायंगे।'

'कौनसी?'

'वीर की अडिगता और सती की श्रद्धा।'

'रा' और—देवड़ी?' जयदेव ने पूछा।

'महाराज! आप उन्हें नहीं पहचानते। जब से ये दो ज्वालाएँ

एक-दूसरे से मिलीं तब से मैं दोनों को जानता हूँ। आप उन पर चाहे जितना पानी डालिए,उनकी आँच कम नहीं होने की। और अन्नदाता! यह भी याद रखिएगा कि अब ये दो ज्वालाएँ दो न रहकर एक होगई हैं। त्रिपुरारि स्वयं आपकी सहायता को आएं तो भी आप उन्हें अलग न कर सकेंगे। इन्हें बुझा दीजिएगा तो भी उनके अँगारों की राख अलग होने की नहीं।'

'भटराज!' उदा ने तिरस्कार से कहा, 'तुम्हें उनका गुणगान करना क्या बहुत अच्छा लगता है?'

'अकारण ही गुणगान करने की मेरी टेव नहीं।'

किन्तु जयदेव का मुख लाल हो उठा। उसकी आँखों से अग्नि निकलने लगी। उनके नथुने फूल उठे। भावावेश से काँपते हुए किंतु स्पष्ट स्वर में वे बोले।

'और काक! तू जानता है? मैं—परमभट्टारक—जयसिंहने सोलंकियों की कीर्ति की सौगंध खाई है कि इन दोनों को साथ नहीं रहने दूंगा। यह देवड़ी उसकी नहीं—मेरी है। और देखता हूँ वह उसे कहाँ तक रख सकता है!'

काक मौन रहा।

'उदा महेता! जब तुम संदेश ले जाओगे तो मैं भी साथ आऊँगा।'

'देव! आप?' काक बोला।

'मुझे तेरे स' और मेरी देवड़ी को देखना है।'

'किन्तु आपको कुछ हो गया तो?'

'काक!' गर्व से जयसिंहदेव ने कहा, 'मुझे—भुवनत्रय को कंपा देने वाले को—मेरा कोई क्या कर सकता है?' जिसने बाबरा पर विजय प्राप्त की वह मनुष्य से कब डरेगा? मैं जाऊंगा।'

'किन्तु अन्नदाता!' तनिक मुस्कराकर उदा बोला, 'एक शर्त पर। आप न राजवेश धारण करेंगे और न कुछ बोलेंगे।'

'हाँ, स्वीकार है।'

'और देव ! मैं एक शर्त रखूं ?' काक एकाएक कुछ निश्चय करके बोला।

'कौनसी ?'

'अपना अनुचर बनकर मुझे आने दीजिए।'

जयसिंहदेव हंसे। 'अच्छा ! काक तू भी देखेगा कि तेरे महाराज जैसा तू सोचता है वैसे नहीं हैं।'

'देव ! मैंने जितना सोचा था उससे बढ़कर प्रतापी तो आप हैं ही, किन्तु मेरा मन नहीं मानता।'

'अच्छा किन्तु जो शर्त महाराज ने स्वीकार की है वह तुझे भी स्वीकार करनी पड़ेगी।'

'अवश्य ! मुझे इस संदेशे का दायित्व लेना भी नहीं।'

'देव !' मुरार अन्दर आया।

'क्या ?'

'बड़ी देवी का गण आया है, काक भट हों तो वे बुलाती हैं।'

जयसिंहदेव मुस्करा दिए, 'काक ! सभी तेरी प्रतीक्षा कर रहे मालूम होते हैं।'

'देव ! यह भी भाग्य की बात है।'

'महेता ! तो तुम भी जाओ। देखना आज की बात का एक अक्षर भी किसी के कानों न पहुंचे। मुरार, मेरी कन्धी तो ला।'

राजा और राज्यमाता के विश्वासपात्र काक की ओर शांत, किन्तु द्वेष-भरी, छिपी दृष्टि डाल कर उदा उठ खड़ा हुआ। वह और काक दोनों बाहर गये।

'भटराज ! हमें बीती बातें सब भूल जानी चाहिएं, ठीक है न !' तनिक हँसकर उदा ने कहा।

'मैं आपका स्मरण करता ही नहीं, महेता !' काक ने नमस्कार करके कहा और मीनलदेवी के दूत के साथ हो लिया।

: २२ :

राज्यरक्षक की राजनीति

लीलादेवी की स्थिरता कुछ कम हो गई थी। वह अपने पति के स्वभाव से पूर्ण रूप से परिचित थीं; क्रोध में वे क्या कर बैठें यह नहीं कहा जा सकता था। जयसिंहदेव को काक के प्रति कोई विशेष प्रीति तो थी ही नहीं। इतना ही नहीं, कुछ अंशों में उसके प्रति क्रोध और अविश्वास दोनों थे। काक को एकाएक क्यों बुलाया गया इसका भी कारण वह जान न पाई थी।

असाधारण शीघ्रता से वह मुंजाल महेता के निवास-स्थान की ओर चली।

मुंजाल नाम के महाअामात्य थे; उनका सचमुच का स्थान तो भीष्मपितामह के समान राज्य के अधिष्ठातृ देवता के समान था। वे बाहर बहुत कम निकलते थे, कभी-कभी मन्त्रियों के मन्त्रणा करते समय वे भी उपस्थित रहते थे। फिर भी, उनकी दृष्टि चारों ओर रहती थी; और उनकी दृष्टि चारों ओर है यह भी सभी जानते थे। पहले के समान ये सबको दूर नहीं रखते थे; सभी निडर होकर उनके पास जाते थे। बड़े, छोटे सबकी कठिनाइयों को दूर करने में ये अपना समय व्यतीत करते थे; और अवकाश मिलने पर राज्य के सभी अमलदारों को बुलाकर उन्हें सलाह और शिक्षा देते थे। कभी-कभी किसी ब्राह्मण या साधु के साथ बैठकर धर्म की चर्चा करते या सुनते। दिन से तीन-चार बार जयदेव उनसे भेंट करने के लिए जाते, और उनके साथ गुप्त मंत्रणा करते थे। राज्यकार भार से परे रहते हुए भी राज्यतंत्र का सहज ही संरक्षण करते थे और उसे निष्कंटक मार्ग पर चलाते थे। इस महापुरुष के व्यक्तित्व और प्रताप की उपेक्षा करने का कोई स्वप्न में भी विचार न कर सकता था, और सबको इनकी सहायता लेने की ऐसी

टेव पड़ गई थी कि उनके बिना कोई काम हो भी सकता है यह कोई विचार भी नहीं कर सकता था।

जिस समय मंगी मंत्री को कहने के लिए गई उस समय पाँवों पर दुपट्टा डालकर मुंजाल शोभ महेता को आज्ञा-पत्र लिखने के लिए कह रहे थे। आयु बहुत अधिक होने पर भी मंत्री का शरीर सशक्त और तेजस्वी था। उनके सिर पर चँदलाई थी, निर्मूछ मुख के कारण सन्यासी के समान लगते थे। बुढ़ापे के कारण मुंह कुछ क्षीण था, नाक की हड्डी तनिक टेढ़ी हो गई थी और कपाल पर रेखाओं ने त्रिपुंड रच दिया था। किन्तु सागर के समान गहन आँखों में प्रभाव वैसा-का-वैसा ही था।

'महेता जी! देवी आई हैं।'

'कौन लीजादेवी?' मुंजाल ने तनिक मुस्कराकर पूछा। उस मुस्कराहट में गौरवशाली वृद्धावस्था की समभावी मृदुलता थी।

'हाँ।'

'शोभ! जाओ, फिर बुला लूँगा।'

सोलंकियों का पीढ़ियों का नागर मंत्री शोभ सुन्दर दृढ़ और चतुर था। उसकी छोटी-सी पगड़ी और चमकता हुआ तुर्रा उसके रसिक स्वभाव की साक्षी दे रहे थे। उसकी सोने में मढ़ी लेखनी और कमर में बाँधी हुई रत्न-जटित दावात उसके आज्ञा-पत्र लिखने का अधिकार और ठाट-बाट की लालसा दोनों को बता रहे थे।

'और शोभ! कल प्रेमकुँअर को बड़ी देवी ने डाँटा था?'

शोभ ने नीचे देखा।

'घबरा मत,' महाआमात्य ने हँसकर कहा, 'मैं मीनलदेवी को समझा दूंगा। किन्तु तुम दोनों मेरे पास आना। मुझे कुछ बातें करनी हैं।'

'जो आज्ञा।' कहकर शोभ महेता विदा हुआ।

रानी ने कुछ अधीर होकर प्रवेश किया, 'महेताजी ! मुझे तनिक काम है।'

'आओ न बहन !' मुंजाल ने मुस्कराकर कहा, 'मैंने तो आपको तीन दिन पश्चात् देखा है। वृद्ध मनुष्य की चिन्ता ही नहीं करती ?' रानी मुस्कराई। उसे पाटण के आडम्बर-भरे दरबारी वातावरण में यह वृद्ध, विचारशील और सर्वग्राही दृष्टिवाला महाग्रामात्य भला लगता था।

'महेताजी ! आपको मालूम तो होगा ही कि महाराज ने भृगुकच्छ से काक को बुला भेजा है।'

'हाँ, क्यों ?' मुंजाल के मुख पर रहस्य-भरी मुस्कराहट दौड़ गई।

'वह यहाँ आ गया है।'

'अच्छा !'

'हाँ, किन्तु यह अच्छा नहीं हुआ।'

'क्यों ?'

'महाराज उस पर कुपित हैं उदा उसका कट्टर शत्रु है, महराज का सलाहकार है, और इस दरबार में उस जैसे सत्यवादी का मूल्य न होगा यह तो स्पष्ट है।' तिरस्कार-भरी शांति से लीलादेवी ने कहा।

मुंजाल के मुख पर गहन मुस्कराहट थी।

'एक दो बातों से मुझे लगा कि यहाँ उसके प्राण संकट में हैं।'

मुंजाल पुनः गंभीर हो गया—'बहन ! आप व्यर्थ में घबरा रही हैं।'

'नहीं।' निश्चयात्मक वाणी में लीलादेवी ने कहा। उनकी सुन्दर भवें स्थिर हो गईं; उनकी तीक्ष्ण दृष्टि निश्चल हो गई। उनके भाव-हीन स्वर में आज कुछ अधिक शांति थी। ऐसे क्षणों में यह कोमल लगती रमणी भयंकर दृढ़ता की मूर्ति बन जाती थी और चारों ओर भय का प्रसार कर देती थी।

'महेता जी !' रानी बोली, 'आप इस राज्य के स्तंभ हैं इसलिए

मैं यहाँ आई हूँ। मैं आपके राज्य के प्रपंच में नहीं पड़ती, किन्तु यदि काक को कहीं कुछ हो गया तो आपके राज्य का क्या होगा यह भोलानाथ भी नहीं कह सकते।'

अपार्थिव शांति और निश्चल दृढ़ता से भरे हुए स्वर में बोले गए ये लाग-भरे शब्द मुंजाल स्नेही पिता की सद्भावना से सुनता रहा।

'बहन!' मीठे स्वर में मुंजाल बोला, 'मैंने जो पहले कहा वही पुनः कहता हूं—आप व्यर्थ में घबरा रही हैं।'

'क्यों?'

'आप काक को नहीं पहचानतीं।'

'महेताजी! आप अपने शिष्य और उनके जगदेव और बाबरा को नहीं पहचानते।'

'मैं पहचानता हूं—भली भाँति! बहन! आप अधीर न होइए। बैठिए।'कहकर मुंजाल हँसा और रानी गद्दी पर बैठी। 'काक संपूर्ण नगर को छका दे ऐसा है। और एक बात कहूँ?' एक रहस्यभरी दृष्टि लीलादेवी पर डालकर मुंजाल बोला।

'क्या?'

'आपका काक मेरे लिए पुत्र के समान है।'

'आप लगता है पुत्र की पूरी-पूरी सँभाल नहीं करते।' तनिक हंस कर लीलादेवी ने कहा।

'यह तो मेरे भाग्य में नहीं लिखा था। बहन! मेरी चले तो उसे मैं अपना स्थान दूं; अतः आप निश्चिन्त रहिए। यदि उसके प्राण संकट में होंगे तो मुंजाल पुनः शस्त्र हाथ में लेगा। बस?'

'महेताजी! तो वह इस समय कहाँ है इसका पता लगवाओ।'

'अच्छा, मैं अभी मीनलदेवी के पास जाकर पता लगाता हूं।'

'महेताजी! अब मैं निश्चिन्त हुई। वह हमारे लाट का रत्न है।'

'आप जैसी महारानी और काक जैसा योद्धा—फिर लाट को

बहन, रंक आप ही कह सकती हैं। जाने से पहले एक बात और कह दूं।'

'क्या ?'

'आप राज्य के प्रपंच में हाथ क्यों नहीं डालतीं ?'

'मुझे रुचता नहीं।'

'झूठ बात।' स्नेह से हँसकर मुंजाल ने कहा, 'विधि ने राज्यतंत्र चलाने के लिए आपका सृजन किया है और संयोग सभी अनुकूल है। महाराज जैसे प्रतापी राजा को आप जैसी प्रतापी रानी ही की आवश्यकता है। व्यर्थ ही आप दूर-दूर रहती हैं।' मुंजाल के स्नेह भरे स्वर से रानी के अन्तर में अनेक तार झनझना उठे। 'आपको अपना पटरानी का पद निभाना चाहिए।'

कुछ देर के लिए रानी की आँखों में निष्फलता झलक गई।

'यह पद रखने के लिए ही तो काक को यहाँ बुलाया है ?' रानी का मुख फीका पड़ गया। उसको लगा उसका चोटी पकड़ी गई है।

'आपने कहाँ से जाना ?'

'बेटी !' मुंजाल ने मुस्कराकर स्नेह से धीमे स्वर में कहा, 'आपका पटरानीपद बना रहे और जूनागढ़ पराजित हो इसीमें पाटण का श्रेय है। विधि इसीके लिए व्यग्र है।'

'और महेताजी ! उसी विधि ने काक को यहाँ बुलाया है।' बुद्धिमान मंत्री की ओर गर्व भरी दृष्टि से देखते हुए लीलादेवी ने कहा।

मुंजाल खड़खड़ हँस पड़ा, प्रभु जाने, किन्तु काक को विधि का साधन बनने की बड़ी टेव है अतः अब निश्चिन्त रहिएगा।'

लीलादेवी उठीं, साथ ही मुंजाल भी उठा—'बहन !' मुंजाल ने कहा, 'आज मुझे बहुत प्रसन्नता हुई कि हम इतनी बात कर सके। इसी प्रसंग में एक दूसरी बात कहूँ तो सुनोगी ?'

'कहिए।'

'देखिए, हम वृद्धों की कई बातें काम की होती हैं, कई बार हम माथा-पच्ची भी करते हैं, किन्तु प्रत्येक बात में कुछ-न-कुछ सीखने को होता ही है।'

'आज आप इतने नम्र क्यों हो गए हैं ?'

'क्योंकि मैं पाटण की महारानी के साथ बातें कर रहा हूं। बहन, सुनो! काक के यहाँ रहने से ही आपका, महाराज का और पाटण का भला होगा। किन्तु वह यहाँ रहेगा या नहीं इसका आधार आप पर है।'

'यह किस प्रकार ?' कुछ चमककर रानी ने पूछा।

'बैठिए, मैं कहता हूं। हम एक-दूसरे को समझ लें तो सदा के लिए निश्चिन्त हो जायं।'

'किन्तु काक का पता—'

'हाँ, लगवाता हूँ। वस्ता! जा, महाराज के पास भृगकच्छ के दुर्गपाल काकभट हों तो कहना मीनलदेवी बुलाती हैं। हों, तो लेकर आना। नहीं हों, तो दौड़कर वापस आ।' वस्ता चला गया।

'देख बेटी!' मुंजाल लीलादेवी से कहने लगा। उसकी आँखों में मधुरता आई, उसके मुख पर गांभीर्य छा गया। 'द्वापर युग में एक नर और एक नारी थे। दोनों तरुण थे। दोनों का स्वभाव कल्पना-शील था, दोनों ने मेरु पार करने को दृढ़ संकल्प किया था। नर की रगों में वनराज की सर्वभक्षी लगन थी और नारी की रगों में सिंहनी की सत्ता-प्रियता थी।'

मुंजाल ने कुछ रुककर गला ठीक किया। उसकी दृष्टि प्रकोष्ठ के दूर के कोने पर जाकर रुक गई। 'दोनों दूर थे, किन्तु विधि ने उन्हें एक किया। नर और नारी की प्रौढ़ आत्माओं का एक-दूसरे से मिलन हुआ। दोनों के मन में एक को छोड़ दूसरी सृष्टि न थी—दूसरी आशा न थी।'

लीलादेवी समझने लगी। उसकी आँखें इस वृद्ध आमात्य के

तेजस्वी मुख पर होते हुए परिवर्तन देख रही थीं। मुंजाल का मुख कठोर होगया। वह रुका।

'एक मंत्री था— दूसरी महारानी थी। विधाता ने उनका एक होने के लिए सृजन किया था। उसीने उनके बीच में असंख्य और उचित व्यवधान खड़े कर दिए। दोनों ने विधि की आज्ञा को सिर-आँखों चढ़ाया।' मंत्री की आँखों का तेज तनिक मंद होता-सा लगा। दूसरे ही क्षण उसने बात प्रारंभ की, 'अटल बंधनों से बँधी हुई लता ने कठोर वैधव्य की पवित्रता स्वीकार की। उनकी त्यागवृत्ति ने उन्हें जीते-जी मृत्यु का आस्वादन करवाया।' मुंजाल रुका।

'किन्तु महेताजी!' प्रथम बार रानी का स्वर भाव-भरा हुआ, 'इस त्याग से उद्भूत सुवास ने संपूर्ण सृष्टि को सजीव भी तो किया?'

'कौन कह सकता है?' मुंजाल आगे चला, 'किन्तु इस सुवास में लिपटी हुई उनकी पवित्रता पर वे जीवित रहीं—' मंत्री ने सीधे होकर चारों ओर देखा। 'और जैसी वे जीवित रहीं वैसी ही मरीं भी— बिलकुल अकेली।' कुछ देर तक मंत्री मौन रहा, उसकी आँखें सजल हो उठीं। 'बहन!' गला ठीक करके मंत्री ने कहा, 'बात का सारांश इतना ही है कि बहुत-सी वस्तुएँ देखने में स्वाभाविक लगती हैं— किन्तु सचमुच में यदि वे अस्वाभाविक निकल आएँ तो दुःख की सीमा नहीं रहती। यह नहीं जानता कैसे—किन्तु इन दो के पाप के कारण राज्य जड़मूल से उखड़ जाता। अतः बेटी! ध्यान रखना।' मुंजाल ने स्नेह-से लीलादेवी के कंधे पर हाथ रखा। 'समझीं न?'

कुछ देर तक कोई न बोला। मुंजाल की वाणी पुनः जैसी थी वैसी ही स्वस्थ हो गई, 'रानी! सोलंकी की कीर्ति का आधार आप पर है।' रानी उठी, नीचे देखती रही, फिर एकाएक कुछ निश्चय किया हो ऐसे अपना सिर ऊंचा किया। उसकी आँखों में तेज चमका, उसकी छाती तनिक फूली, उसके अधर ज़ोर से बंद हो गए।

'महेताजी!' उसकी वाणी तलवार की धार-सी थी, 'आज आपने

मेरे पिता का स्थान लिया तो आपको मैं पुत्री के स्नेह-से अपनी बात कहूं ?'

'बेटी, निडर होकर कहो। मैं देख सकता हूं, समझ सकता हूं, और विवेक से विचार भी कर सकता हूं। मेरी सलाह से अब तक किसी को हानि नहीं हुई।'

'महेताजी ! सलाह के लिए तो स्थान ही नहीं।' रानी तिरस्कार से कहने लगी। 'एक नर था—एक नारी थी। नारी ने याचना करके मुकुट धारण किया। महेताजी ! संसार में कइयों के भाग फूटे होते हैं। वह नर उसका मूल्य नहीं जानता था—या फिर आपने कही वैसी बातसे वह डरता होगा। उन्होंने अपने मार्ग जाना पसंद किया। दोनोंको एक-दूसरे में विश्वास है—इसके सिवा और कुछ नहीं है—और न होने का रानीकी वाणी भावहीन थी। वह हंस पड़ी—हास्य शुष्क और तिरस्कार भरा था। 'महेता जी ! सोलंकियों की कीर्ति के कलंकित होने का तनिक भी भय नहीं।'

मुंजाल उठा, रानी के निकट गया, उसके कंधे पर हाथ रखा और स्नेह-भीनी वाणी में कहा, 'बेटी ! तू तो महारानी होने के लिए बनी है।'

रानी पुनः हँस पड़ी—पहले के समान नीरस रीति से !

'नहीं बनी होती तो कोई बहुत कष्ट न होता।'कहकर उसने मुंजाल की ओर एक कठोर दृष्टि डाली। 'किन्तु बन चुकी हूं—अब आप और क्या चाहते हैं ?'

गर्व से सिर ऊँचा किये लीलादेवी कमरे से बाहर चली गई। मुंजाल देखता रहा और फिर थोड़ी देर बाद बड़बड़ाया, 'अब मैं निश्चिंत हुआ।'

: १७ :

काक को किसने बुलाया ?

बड़े वेग से, इतनी उम्र के व्यक्ति में आश्चर्यजनक लगने वाली आतुरता से, मुंजाल घूमा और अन्दर के द्वार में से होकर एक कोठरी में गया। कोठरी के निकट एक कमरेमें एक दासी बैठी कुछ सी रही थी। मुंजाल ने उससे पूछा, 'बड़ी देवी कहाँ हैं?' दासी एक दम खड़ी हो गई।

'पूजाघर में।'

मुंजाल ने हाथ से उसे बैठ जाने का संकेत किया और स्वयं अन्दर गया। इस कमरे के कोने में एक छोटी अँधेरी कोठरी बनी हुई थी, और उसमें से धूप की सुगंध आ रही थी। मुंजाल इस कोठरी के आधे खुले हुए द्वार के सामने गया और धीरे-से कहा। 'देवी!' उसके स्वर में मृदुता थी और दबाई हुई भावना का कंपन था।

'कौन मुंजाल! बैठ।' अन्दर से आवाज़ आई और अन्दर बैठी मीनलदेवी ने द्वार खोले। मीनलदेवी के मुख पर बुढ़ापा स्पष्ट दिखाई दे रहा था। उनकी आँखों और मुख के सामने रेखाएँ खिंच आई थीं और उनके बहुत-से दाँत गिर गए थे, फिर भी उनके मुख पर गौरव और सत्ता स्पष्ट दिखाई पड़ रहे थे। उनकी वाणी भी तनिक भाव-भरी थी।

मुंजाल ने शिखा खोलकर पुनः बाँधी। इतनी देर तक दोनों ने एक दूसरे के सामने देखा। दृष्टि मात्र मिली ही नहीं वरन् आलिंगन कर रही थी। अतृप्त अन्तर की इच्छाओं को संतुष्ट करने के लिए एक-दूसरे से लाड कर रही थी।

'देवी! काक आ गया।' थोड़ी देर पश्चात् मुंजाल ने कहा।

'चलो अच्छा हुआ। भेंट हुई?' मीनलदेवी ने पूछा।

'मैंने उसे बुलाया है। अभी आने वाला है।'

'तुम्हें उसमें विचित्र श्रद्धा है।'

'हाँ। उसकी शक्ति का आज एक अद्भुत उदाहरण मिला।'

'कौनसा ?'

'लीलादेवी मेरे पास आई थी।'

'क्यों ?'

'काक के प्राण संकट में हैं ऐसा समझकर रक्षा करने के लिए कहने आई थी।'

'फिर ?'

'मैंने दूसरी बात निकलवा ली। लीलादेवी को पटरानीपद पर बनाए रखने से पहले मैं उसका मन जानना चाहता था।'

'क्या निकला ?'

'वह चतुर है, सत्ता की लालसा रखती है, महत्वाकांक्षी है। मुझे काक के सम्बन्ध में कुछ भय था वह आज दूर हो गया।'

'कैसा भय ?'

'देवी ! चालीस वर्षों मे समय अवश्य परिवर्तित हो गया। किन्तु क्या मनुष्य के हृदय में भी परिवर्तन हो गया ? अब हम हो गए हैं वृद्ध। छोटे बच्चों को तो जैसा हम कहें वैसा करना चाहिए।' कहकर मुंजाल ने स्नेह-भीनी दृष्टि से राजमाता को अर्घ्य अर्पित किया।

मीनलदेवी मुस्कराई। उमंगों और स्नेह ने जिसमें विशुद्ध परिपक्वता प्राप्त की वैसे हृदय से वह मुस्कराहट उद्भूत हुई थी।

'फिर ?' उसने पूछा।

'उसके मन में पुरुष वास अवश्य करता था किन्तु अब खेल समाप्त हो चुका है। या तो स्त्री आकर्षक न थी या पुरुष रसिक न था।' मंत्री ने कहा, 'पुरुष ने मुकुट और याचना दोनों को अस्वीकार कर दिया अब मैं निश्चिंत हुआ।'

मीनलदेवी ने भी निश्चिंतता का निःश्वास लिया।

'नहीं तो क्या करते ?' उन्होंने विनोद में पूछा।

'लीलादेवी को पटरानी-पद से हटाना पड़ता और काक को लाट में सड़ने देना पड़ता।' तनिक गम्भीर होकर मुंजाल ने कहा।

मीनलदेवी थोड़ी देर तक गम्भीर रही। फिर उनके मस्तिष्क में कुछ विचार आया। वह मुस्कराईं, 'हे भगवान्! चालीस वर्ष पहले मैं पाटण का महाअामात्य होती तो ऐसे पुरुषोंको ऐसी शिक्षा अवश्य देती।'

'वह पुरुष वैसी शिक्षा की चिन्ता भी करता?' मुंजाल ने हँसकर उत्तर दिया। उसका मुख भूतकाल के रंगों का स्मरण कर कुछ दीप्त हो उठा। फिर गम्भीर मुखसे उसने कहा, 'देवी! सभीमें हमारी शक्ति और हमारी पवित्रता नहीं। अब तो हमें सोलंकी कुल की कीर्त्ति की रक्षा करनी है—अतः किसी प्रकार की जोखिम नहीं उठा सकते।'

'हाँ,' गंभीर होकर मीनलदेवी ने कहा, 'अब यह काक यदि तुम्हारा सोचा हुआ करे—'

'करेगा ही। लीलादेवी को विश्वासपात्र पटरानी बनाए रखने के लिए तो वह जान लड़ा देगा, अतः देवड़ा की बात नहीं बनेगी।'

'किन्तु जयदेव तो उसके पीछे पागल हो गया है।'

'पागलपन तो अपने आप दूर हो जायगा। काक है अतः हमें बोलना नहीं पड़ेगा। अब लीलादेवी यदि जयदेव को रिझा सकें तो फिर कोई कठिनाई न हो। आपने प्रेमकुँअर से कहा था? मैंने भी शोभ से कहा है कि दोनों आकर भेंट कर जायं।'

'यह लड़की ऐसी आई है कि लीलादेवी को प्रसन्न रखने के लिए आकाश-पाताल एक कर देगी।'

'लीलादेवी के मन को प्रसन्न करना सरल काम नहीं।' मुंजाल ने कहा, और किसी का पगरव सुनकर पूछा—'कौन है?'

'यह तो बापू मैं वस्ता, भटराज आगए हैं।'

मुंजाल और मीनलदेवी की दृष्टि मिली। 'आने दे,' मुंजाल ने कहा। काक ने प्रवेश किया, राजमाता और महामंत्री को नम्रतापूर्वक नमस्कार किया और हाथ जोड़कर खड़ा रहा।

'कहो काक! कैसे हो? बैठो न!' मीनलदेवी ने कहा, 'मंजरी कैसी है?'

'आनंद में है।'

'और कोई बाल-बच्चे हैं ?'

'हाँ देवी, एक पुत्र और एक पुत्री है।'

'वे भी आनंद में हैं ?'

'हाँ, आपके आशीर्वाद से।'

'बहुत दिनों पश्चात् हमसे मिला।' मीनलदेवी ने कहा।

'आपके प्रताप से मैं लाट में निश्चिंत हूं।' काक ने उत्तर दिया।

'तू भी ऐसे ही बोलना सीख गया है क्या ?' मुंजाल ने हँसकर काक से पूछा, 'तुझे अधिक निश्चिन्तता प्राप्त भी होती है ?'

'महाराज की सेवा में मैं निश्चिंत ही हूं।'

'लाट की स्थिति कैसी है ?' मुंजाल ने पूछा।

'सब कुछ ठीक है। आँबड़ आया है यही डर है।'

'क्यों ?'

'भूल करने का उसका स्वभाव-सा मालूम होता है।' मुंजाल और मीनलदेवी हंस पड़े।

'उदा महेता मंजरी को साध्वी बनाना चाहते थे यह तू भूलता नहीं मालूम होता।'

'महेताजी !' मैं उसे नहीं भूला और वे भी भूलने के नहीं।'

'क्यों उनसे भेंट हुई ?'

'हाँ। हम दोनों महाराज के पास थे। वाहड़ मुझे पकड़ने के लिए सोमनाथ आया था। मेरे स्थान पर उसने मेरे सैनिक को पकड़कर यहाँ ला खड़ा किया। काक को पकड़ लाने का आनंद लेते बाप-बेटे के सामने अंदर के कमरे में से मैं निकला। दोनों के मुख देखने जैसे हो गए थे।'

'और महाराज ?' मीनलदेवी ने हँसते-हँसते पूछा।

'महाराज मुझ पर प्रसन्न हैं।'

'तेरी प्रकृति तो मैं जानता हूँ,' मुंजाल ने कहा, 'अब यह तो बता महाराज ने तुझे क्यों बुलाया ?'

काक मुस्कराया, 'महेताजी! देवी न होती तभी कुछ पूछता। अभी नहीं पूछूंगा।'

'पूछ ही ले न!' मीनलदेवी ने हंसकर कहा, 'मैं तो राज्य के काम में हाथ ही नहीं डालती।'

'और मैंने वानप्रस्थ ले लिया है। जो कुछ कहेगा सुन लूंगा। मुझे सहनशीलता सीखनी चाहिए, क्यों?' मुंजाल ने भी हँस कर कहा।

'मंत्रीवर, तो सुनिए! कितने ही दिनों से मेरे मन में संशय था।'

'कैसा?'

'कि इस पाटण का क्या होने वाला है! रा' को कोई पराजित नहीं कर सकता। दा महेता राजा के दाहिने हाथ बन बैठे हैं। छोटी देवी का सम्मान मिटता जा रहा है। विदेशियों और पिशाचों के बल पर पाटण का राजा कूदता है। पट्टणी योद्धाओं का अपमान हो रहा है। इतने ही से संतोष न हुआ। अशांत लाटमें मेरे स्थान पर आँबड़ महेता को भेजा और मेरे जैसे निर्दोष व्यक्ति को पकड़ने या मारने के लिए पग-पग पर आदमी बिठा दिए। मुझे विचार हुआ कि मुंजाल महेता गए कहाँ?'

मुंजाल महेता खड़खड़ हँस पड़े, 'स्वर्ग सिधारे या क्या?'

'मुझे ऐसा ही लगने लगा था,' काक ने हँसकर उत्तर दिया। 'किंतु आज्ञा-पत्र देखकर कुछ-कुछ विचार पलटा।'

'क्यों?' मीनलदेवी ने पूछा।

'पन्द्रह वर्ष पश्चात् एकाएक मेरा भाव बढ़ गया।'

'कितना अभिमान! लाट में स्वच्छंद होकर राज्य करने वाले दुर्गपाल को राजा बुलाए नहीं तो क्या करे?'

'या फिर होली में नारियल फोड़ने के लिए महाआमात्य को आवश्यकता पड़ गई हो तो और क्या करे?'

मुंजाल की आँखों मे प्रशंसा चमक उठी, 'महाआमात्य वृद्ध हो गया है।'

'आपके साथ मल्ल-युद्ध करने का मुझमें साहस नहीं है ।' काक ने मुंजाल के रनायु की ओर दृष्टि करके कहा, 'देवी ! आपको क्या लगता है ?'

'तेरा बल और तेरी बुद्धि वैसी-की-वैसी बनी हुई है यह स्पष्ट दिखाई देता है।'

'तो अब मुझे कब होम देना है, कहिए ?' काक बोला।

'काक, बेटा !' मुंजाल ने कहा, 'देवी सच ही कहती हैं। तेरे जैसा दूसरा कोई नहीं।'

'अब करना क्या है ?' काक ने पूछा।

'जो मुझे समझ पड़े। काक ! राज्य के जीवन में कई बार विचित्र प्रसंग आते हैं। यदि उन प्रसंगों पर विजय पाई तो राज्य की कीर्ति बढ़ती है—नहीं तो विनाश प्रारंभ हो जाता है। तुमने पूछा कि 'पाटण का क्या होने वाला है ?' कुछ नहीं होने वाला है, हाँ, एक विचित्र प्रसंग आगया है।'

'तो आप कुछ करते क्यों नहीं ?' काक ने सीधा प्रश्न किया।

'मैंने हल निकाला है।' रहस्य-भरे ढंग से हंसकर महाआमात्य बोले।

'कैसा ?'

'जो व्यक्ति कर सकता है उसे खोज निकाला है।' मुंजाल मुस्कराया।

काक हाथ जोड़कर झुका, 'महेताजी ! जितना आपका विश्वास है उतनी शक्ति भोलानाथ दें तो फिर बस !' उसने नम्रतापूर्वक कहा।

'काक ! मीनलदेवी ने कहा,'तू थक गया होगा, अब तनिक आराम कर। किन्तु अभीकी बात किसी के कानों न पहुंचने पाए।'

'देवी !' मुंजाल बोला, 'आप इसे नहीं जानतीं। काक ! जा, विजय कर !'

काक ने पुनः प्रणाम कर विदा ली।

: १८ :

वाहड़ महेता की कसौटी

राजगढ़ के सरोवर के किनारे पारिजात के वृक्ष के नीचे समर्थ खड़ी हुई थी। इस समय उसकी प्रसन्नता का ठिकाना न था; उसके पाँव धरती पर नहीं पड़ रहे थे; उसकी आँखों की पुतलियाँ स्थिर न थीं; उसके होंठ क्षण-मात्र भी शांत न रह रहे थे, उसके सिर के केश भी चैन से नहीं बैठ रहे थे।

रह-रहकर उसके पाँव थिरक उठते थे और वह झुक-झुककर ताली बजा रही थी। वह कुछ-कुछ गुनगुना रही थी। अभी उसके मन में से वाहड़ के बारे में अपनी बनाई हुई वह पंक्ति गई न थी।

थोड़ी देर में वह थक गई। उसने होंठ पर उँगली रखी, 'आने दे।' वह बड़बड़ाई, 'मुझे प्रतीक्षा करवा-करवाकर थका डाला है। अच्छी बात है—मैं भी परशुराम की पुत्री नहीं यदि उन्हें थका-थकाकर न छका दूं तो ! अपने मन में समझते क्या हैं ? हम जैसे यों ही हैं।' उसने होंठ-पर-होंठ चढ़ाया और पुतलियाँ ऊँची कीं। 'ऐसा करोगे तो हम नहीं बोलने के—बस नहीं—नहीं—बस नहीं—'

'समर्थ !' वाग्भटने पीछे से आकर कहा। उसके मुख पर असाधारण ग्लानि छाई हुई थी। उसकी आँखें उदास थीं। उसके सुन्दर मुख के तेज पर निराशा छा रही थी।

समर्थ ने घूमकर वाग्भट को देखा तो क्रोध भूल गई और एक-दो पग हवा में कूदी और ताली देकर वही पंक्ति गाने लगी। उसका संपूर्ण गात हंस रहा था। वाग्भट ने एक गहरा निःश्वास लिया।

'समर्थ !' अश्रुपूर्ण स्वर में वाग्भट बोला।

'काक आया ?' समर्थ ने ऊँचा देखकर, कपाल से केशों को उठाते हुए पूछा।

'हाँ।' वाग्भट ने कहा, 'किन्तु—'

समर्थ सुनने के लिए नहीं रुकी। वह उछलते-कूदते वाहड़ की प्रदक्षिणा करने लगी और एक के स्थान पर दो तालियाँ बजाने लगी।

'समर्थ !' खेद से समर्थ का हाथ पकड़कर वाहड़ बोला, 'सुन !'

'तुम तो रोया ही करते हो,' कहकर समर्थ पुनः प्रदक्षिणा करने लगी।

'समर्थ !' अधीरता से वाहड़ बोला, 'तू सुनेगी भी ?'

'बोलो !' कहकर समर्थ खड़ी हो गई। वह अधीरता का कारण नहीं समझ पाई।

'समर्थ !' वाहड़ ने दुःखी हृदय से कहा, 'मुझसे वचन का पालन नहीं हुआ।'

'क्या ?' एकदम आँखें फाड़कर समर्थ ने पूछा।

'काक को नहीं पकड़ पाया।'

कुछ देर तक समर्थ देखती रही—फिर एकदम ताली मारकर हंसने लगी, 'झूठे, झूठे, झूठे !'

'नहीं, सच्ची बात है।' वाहड़ ने हास्यास्पद गंभीरता से कहा।

'झूठ ! मेरी दासी कहती थी।'

'समर्थ !' फटते हृदय से वाग्भट ने कहा, 'जिसे मैंने पकड़ा वह काक नहीं, कोई और था।'

समर्थ की आँखें धीरे-धीरे बड़ी हुईं। वह अर्थ समझी, उसका मुख गंभीर हो गया, रुआसा हो गया।

'तुम काक को पकड़कर नहीं लाए ?' कहते हुए वह रो पड़ी....'ऊँ....ऊँ....ऊँ—तुमने नहीं पकड़ा ?'

'वह चुपचाप यहाँ पहले से ही आ गया था।' वाहड़ ने धीरे-से कहा।

'अब क्या होगा ? हं—हं—तुमने वचन नहीं रखा—हं—हं मैंने अपनी माँ के साथ शर्त की थी....हं....हं...मैं हार गई। तुमने यह क्या किया ? हं....हं....हं !' कहकर हाथों में मुंह रखकर समर्थ रोने लगी। उसका सुन्दर सिर सिसकियों से ऊँचा-नीचा हो रहा था।

'हं....हं....अब कोई तुम्हारे साथ मेरा ब्याह नहीं करेगा।'

वाहड़ की छाती में एक धक्का लगा—'मैं जानता हूँ।' उसने बड़ी कठिनाई से कहा। 'काक को पकड़कर महाराज से वरदान माँगने का विचार किया था। यहाँ तो उलटा अपमानित होना पड़ा। मुझे तेरे पिताजी के आधीन युद्ध में जाना है।' कपाल पर से स्वेद पोंछते हुए वाग्भटने कहा।

'पिताजी कहते थे कि तुमको कविता करना आता है—लड़ना नहीं।'

वाहड़ ने नीचे देखा, 'यह कैसे जाना ?'

'एक दिन रात को पिताजी और माँ बातें कर रहे थे; मैंने छिपकर सुन ली। 'वाहड़—वाहड़—ओ वाहड़ !' उसने निराशा-भरे स्वरमें कहा।

'क्यों ?'

'अब भी काक नहीं पकड़ सकते ?'

'समर्थ ! वह तो महाराज का विश्वासपात्र है—क्या पागल हुई है ?'

'वाहड़ ! तो तेरे दादा मेरे दादा के समान दंडनायक क्यों नहीं बने ?'

वाहड़ ने खेद से ऊपर देखा । उसे मालूम था कि उसके मारवाड़ी दादा का मरभुखा जीवन ही उसके और बनराज के महामंत्री चांपा की वंशज समर्थ के बीच में आता था । किन्तु उन दादा की स्थिति के लिए वह उत्तरदायी बिलकुल न था यह इस नादान छोकरी को कैसे समझाए यह उसे नहीं सूझा ।

'मेरे जले भाग्य के कारण ।'

'तो तुम कवि कैसे हो गए ?' समर्थ ने पूछा ।

'अपना सिर फोड़ने ।'

'तुम ऐसे कैसे बोलते हो ?' समर्थने क्रोधमें कहा । वाहड़ सम्मानसे झुक गया ।

'समर्थ ! मैं जानता हूँ मैं तेरे योग्य नहीं हूं। मैं अब युद्ध में जाऊंगा, मर जाऊंगा तो छुट्टी मिलेगी—और विजयी होऊँगा तो भी उससे पहले तेरा ब्याह दूसरे स्थान पर कर दिया जायगा ।'

समर्थ ने ऊपर देखा । वह आँखें फाड़कर देखने लगी, 'तुम मर जाओगे ? नहीं, नहीं । फिर तुम्हें जज्जा देंगे ? नहीं । ऐसा क्या बोलते हो ?'

'मुझसे तेरे बिना जिया नहीं जाता,' कवि ने कहा ।

'भाई ! ऐसा क्यों बोलते हो ? तुम इस प्रकार बोलते हो तो मेरा जी घबराता है ।'

'समर्थ ! बच्ची है—इसलिए मुझे कैसे समझेगी ? तू तो मुझे कल भूल जायगी किन्तु तेरे बिना मेरा जीवन चलने का नहीं ।'

समर्थ का कपाल आकुंचित हो गया । वह नादान, विचारहीन, और तरंगी थी । उसे वाग्भट बहुत अच्छा लगता था और उससे ब्याह करने को उसका मन बहुत करता था—किन्तु वह इस प्रकार क्यों बोल रहा है यह वह स्पष्ट न समझ सकी । वह थोड़ी देर तक सोचती रही ।

'वाहड़ ! तुमने मेरा गीत भी बिगाड़ दिया । ऐसा मैंने पहले कभी नहीं बनाया था ।'

वाग्भट तनिक तिरस्कार से हँस पड़ा—'समर्थ! तेरा तो गीत बिगड़ा—मेरा तो साथी गया।'

'क्यों?'

'मेरा सिर,' कहकर वाग्भट जाने के लिए घूमा।

'वाहड़!' एकाएक समर्थ बोली।

'क्या?'

'तुम अभी नहीं मरोगे।'

'मेरे हाथ में नहीं है।'

'पूरा सुनते भी नहीं। मुझे एक मार्ग सूझा है। मैं ऐसा मार्ग बताऊं कि काक को तुम ही पकड़ सको।'

वाग्भट ने निःश्वास लिया, सिर हिलाया और भारी हृदय से पुनः जाने के लिए मुड़ा। उसके अंतर के दीप मन्द पड़ गए थे।

विद्वान् और वीर वाहड़ ने विद्वानों की स्वभावजन्य सरलता से इस पतंगे को अपने प्राण अर्पण कर दिए थे, किन्तु यह पतंगा उसके भाग्य में न था इसका उसे पूर्ण विश्वास हो गया था।

समर्थ को एक सरस विचार आया था; और जब तक उसे करके न देखा जाता, तब तक उसे चैन पड़ने की न थी।

उसे इस न पकड़ाये गए काकके प्रति द्वेष हो आया। उसने अपने पिता को इस काक की प्रशंसा करते हुए सुना था, और यह भी सुना था कि इसको जो भी पकड़ेगा उस पर राजा बहुत प्रसन्न होंगे। इसीसे उसने और वाहड़ ने यह युक्ति रची थी और वाहड़ने उदा महेतासे काक को लेने जाने की आज्ञा माँग ली थी। यदि वाहड़ काक को पकड़े तो राजा प्रसन्न हों, परशुराम की वाग्भट पंडित के शौर्य के विषय में अच्छी भावना होजाय तो समर्थ को वाहड़ से ब्याहने की कुछ बात की जा सके। पहले शम्भु महेता के पौत्र के साथ उसका ब्याह होने वाला था; किन्तु गतवर्ष वह युद्ध में मारा गया था। तब से परशुराम जैसा गर्विष्ठ योद्धा अपने कुल की महत्ता के योग्य वर की खोज में था, किन्तु पाटण के बहुत ही कम

कुलों में यह योग्यता होने और कुटुम्बों में उचित उम्र के अविवाहित युवकों का अभाव होने के कारण यह खोज अब तक सफल न हो पाई थी। समर्थ यह सब जानती थी, किन्तु वाहड़ जैसे अच्छे आदमी को उसके पिता अपनी पुत्री को क्यों नहीं दे रहे थे यह उसकी समझ में नहीं आया।

: १६ :

जगदेव परमार की कर्तव्यपरायणता

जगदेव परमार दुर्जन या नीच मनुष्य न था। वह वीर योद्धा था और स्वामि-भक्ति निभाने के लिए तत्पर रहता था। उसकी वीरता से प्रसन्न होकर जयसिंहदेव उसे मालवे से साथ ले आए थे और पाटण में उसे धन, मान, उपाधि, और चावड़ा जैसे ऊंचे कुल की स्त्री—ये सभी दिये थे। उसे पसंद करने और अपना दाहिना हाथ बनाने में जयसिंहदेव का गहरा स्वार्थ था—इसे जगदेव नहीं जानता था।

गर्विष्ठ पट्टणी योद्धाओं और मंत्रियों पर सत्ता जमाने के लिए उनसे नितान्त स्वतंत्र होने का सिद्धांत जयसिंहदेव के मस्तिष्क में घर कर गया था। बाबरा को जीत लेने से और भूत समझे जाने वाले बाबरा की सहायता से साधारण लोग उन्हें अपार्थिव और अजित सत्ता का धनी समझते थे। किन्तु योद्धाओं, सामंतों और मंत्रियों के प्रभाव को दबाना सहज नहीं था। कई महामंत्री और महारथी एक दूसरे के संबंधी थे और एक-दूसरे से जी भरकर ईर्षा करते थे, किन्तु राजा के कहने पर एक-दूसरे से लड़ने के लिए तत्पर न होते थे। राजा को यह अच्छा नहीं लगा और उन्होंने जगदेव परमार को अपना अंग-रक्षक नियुक्त किया और तीन-सौ सशक्त मालवियों को उसके

आधीन कर दिया। जिसे महल में प्रवेश करना हो, राजा से भेंट करनी हो, कुछ प्रार्थना करनी हो, तो उसके लिए जगदेव से भेंट किए बिना कोई और चारा न था। किसी को 'सीख' देनी होती या किसी को डराना होता तो राजा की आज्ञा यह स्वामि-भक्त सिर-आँखों चढ़ाता था। उसे राजा की कृपा छोड़कर और किसी की चिन्ता न थी। पाटण या उसके राजतंत्र में या उसके ठाठ-बाठ में राजा की सेवा के सिवाय उसे और किसी में आनन्द न आता था। अतः राजा और परमार के बीच, किसी व्यक्ति और उसके विश्वासपात्र निर्जीव शस्त्र के बीच जैसी प्रीति हो जाती है वैसी ही प्रीति थी।

उसके और राजा के मध्य में यह धारवाली बाढ़ खड़ी देखकर पाटण के महापुरुष पहले तो कुढ़े किन्तु राजा के हठी और महत्वाकांक्षी स्वभाव से वे परिचित थे। अतः साये सिंह को न छेड़ने के उद्देश्य से सभी ने परमार से भाईचारे का व्यवहार स्थापित कर लिया। यदि कभी-कभी राजा की इच्छानुसार जगदेव अपनी सत्ता चलाता था तो वे उधर से आँखें मीच लेते थे। इतना ही नहीं कभी-कभी तो वे इस प्रकार व्यवहार करते थे मानो डरते हों कि कहीं जगदेव बिगड़ न खड़ा हो। परिणामतः उसका गर्व और उसकी प्रतिष्ठा बढ़े।

राजा ने परमार को जब भटराज बनाया तब तो कोई न बोला, किन्तु जब सेनापति का पद लेने की बात उठी तो सभी में खलबली मच गई। परिणामतः मीनलदेवी बीच में पड़ीं और यह आशय पूरा न होने दिया। किन्तु राजा जब मंत्रियों के साथ सलाह करता था तब परमार अधिकतर वहीं उपस्थित रहता था। जगदेव के कारण मालवी योद्धाओं ने पाटण में घर करना आरम्भ किया और छोटे-बड़े पदों का उपभोग करने लगे, और इस प्रकार राजा की पट्टणियों का गर्व कम करने की लालसा बढ़ती गई।

बलवान्, महत्वाकांक्षी, हठी और प्रतापी राजा के इस मान्य और विश्वासपात्र योद्धा को सभी विदेशी, किराए का प्रत्येक प्रकार का काम

करने वाला दास समझकर मन-ही-मन तिरस्कार के शब्द कहते थे; किन्तु किसकी मजाल जो उसके सामने एक शब्द भी बोल सके, एक पग भी बढ़ सके।

राजाने समझा मेरी सत्ता पूर्ण हो गई; जगदेवने समझा कि उसका स्थान निर्विघ्न हो गया, दरबारियों को लगा कि उनके और राजाके बीच का निर्दोष व्यवहार समाप्त हो गया। यह नूतन क्रम सदा का है और सदा रहेगा ऐसा सबने मान लिया—और बर्बरक पर विजय पाने वाले परमभट्टारक श्री आनिग। देवी और दुर्धर्ष सत्ता के अधिकारी हैं यह भी सब मानने लगे।

जगदेव परमार की भी वही मान्यता थी अतः आज उसे चैन न पड़ा। वह राजा के कमरे के बाहर अपनी चौकी पर लेटकर भवें तान रहा था। आज उसे बहुत बातें अच्छी न लगीं। महल में कोई ब्राह्मण के वेश में उसके बिना जाने घुस गया, उसने उसके सैनिक को बाँधा, वह उसके जाने बिना रानी से भेंट कर आया, रानी ने उसे अपमान करके निकाल दिया। उसके बिना जाने दो व्यक्ति महाराज से भेंट कर आए। उसके बिना जाने ही काक राजा के कमरे में जा घुसा और राजा का मान्य हो गया और उसे बुलाए बिना ही राजा ने उदा और काक के साथ मंत्रणा की। उसे ये सब असाधारण और अस्वाभाविक बातें अच्छी न लगीं।

उसे इस नवागन्तुक काक के प्रति अरुचि हो गई। उसने इस व्यक्ति के विषय में बहुत परिचय प्राप्त कर लिया था और लोककथाएं भी बहुत सुनी थीं। किन्तु ऐसी कथाओं में उसे श्रद्धा न थी। पाटण के बहुत-से दण्डनायकों, मंत्रियों और सेनापतियों के विषय में ऐसा ही सुना था, किन्तु कोई उसके सामने खरा न उतरा और इस समय इस नए व्यक्ति को उसका स्थान बताने के लिए उसके हाथ अकुला रहे थे।

सामने खड़े हुए एक सैनिक को उसने बुलाया—'नेमा!'

'बापू !'

'शम्भू को बुला तो !'

'जी' कहकर नेमा शम्भू को बुला लाया। शम्भू परमार का काम करता था और उसकी ओर से देख-रेख करता था।

'तो काकभट को उसका निवास-स्थान दिखा आया ?'

'हाँ, किन्तु उन्होंने ना कर दिया।'

'क्यों ?' जगदेव ने चकित होकर पूछा।

'उनके लिए वस्ता ने कमरा खोल दिया है।'

'कौनसा ?'

'शोभ महेता जिसमें लिखते हैं उसके निकट वाला कमरा।'

'किन्तु मैंने खुलवा दिए थे उनका क्या ?'

'वे कहते हैं कि मुझे अकेले को अधिक की क्या आवश्यकता !'

'कहना चाहिए था न कि महल का प्रबन्ध मेरे हाथ में है।'

'मैंने कहा तो हंसकर बोले कि मैं तो ऐसे कमरे में पड़ा हूँ कि किसी को आपत्ति न होगी।'

'शंभू ! वस्ता को बुला ला।' शंभू गया।

जगदेव को लगा कि आज का सूर्य उदय होने के साथ-साथ झंझट भी लेता आया है। राजमहलका संपूर्ण प्रबन्ध वही करता था, और उसमें परिवर्तन करने का किसी में साहस न था। उस पर मुंजाल महेता का नौकर वस्ता इस प्रकार काक के लिए प्रबन्ध करे यह उसे अपने गौरव और सत्ता पर चोट करने जैसा लगा। उसने काकके लिए अपने निवास-स्थान के नीचे के भाग में दो कमरे खोल दिए थे ताकि उसकी दृष्टि उस पर रहे। किन्तु वह कमरा तो ऊपर था जहाँ से महाराज, रानियाँ, मीनलदेवी, मुंजाल आदि के निवास-स्थानों में तुरन्त जाया जा सकता था। वह अपनी मूंछें दाँतों के बीच में रखकर चबाने लगा।

इतने में शंभू वस्ता को ले आया। जगदेव राजमहल के कई लोगों को दूर-ही-दूर रखता था। वे अधिकतर वृद्ध थे, और ऐसा कहा

जाता था कि वे मुंजाल महेता के विश्वासपात्र आदमी हैं। हो सके जहाँ तक मुंजाल या उसके आदमियों पर खुले रुप से अधिकार जमाने में सार न था, ऐसी प्रेरणा जगदेव को बड़ी विचित्र रीति से हुई थी। और उसी प्रेरणा के अनुसार वह आजकल चलता भी था। किन्तु इस समय उसे लगा कि वस्ता ने उसकी सत्ता के क्षेत्र में अनधिकार प्रवेश किया है।

वस्ता वृद्ध था, किन्तु चतुर था। उसने मौन रहकर हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

'वस्ता! महाराज की आज्ञाओं का तुझे भान है?'

'कैसी?'

'कि महल की व्यवस्था मेरे सिवा कोई न करे।'

'मुझे मालूम है।'

'तो आज यह आज्ञा तूने कैसे भंग की?'

'मैंने कहां भंग की?' कुछ चकित हो कर वस्ता ने कहा।

'मैंने सुना है तूने काकभट के लिए महल में कमरा खोल दिया है।'

'ओहो!' वस्ता हँसा, 'भटराज! यह तो ऐसे हुआ कि काक भट जी महाराज के साथ भोजन करके लौटे तो उनके लिए बैठने का स्थान न था। अतः मेरे पास उस कमरे की कुंजी थी तो मैंने खोल दिया। भटराज! उन बेचारे थके-माँदे अतिथि के लिए इतना-सा करना अपराध हो गया?' वस्ता ने निर्दोष बात कही।

'बिस्तर आदि किसने दिया?'

'मैंने।'

'किसकी आज्ञा से?'

'अतिथि-सत्कार करने के लिए।' सादगी से वस्ता ने कहा।

'तुझे यह सब अधिकार किसने दिया?' आँखें निकालकर जगदेव ने पूछा। उसे लगा मानो वह वृद्ध उसकी हँसी उड़ा रहा हो।

'ऐसा करने के लिए क्या अधिकार की आवश्यकता होती है ?' वस्ता मुस्कराया।

'अच्छी बात है। जाकर काक भटराज को कह आ कि उनके लिए मैंने नीचे चौक में दो कमरे खोज दिए हैं वहीं जाकर रहें। तेरा बताया हुआ कमरा उनके जैसे बड़े आदमियों को शोभा नहीं देता।'

'बापू! यह आपके गणों का काम है—मेरा नहीं। महल का प्रबन्ध आपके हाथ में है।' वस्ता ने उपेक्षा से कहा।

'तू और मेरे गण सभी महाराज का नमक खाते हो।'

'खाते हैं।'

'तो यह तुझे करना पड़ेगा।'

'नहीं।' वस्ता ने दृढ़ता से कहा।

'क्यों नहीं ?' जगदेव गरजा।

'मैंने कारण कभी का बता दिया।'

'तू मेरी आज्ञा का अनादर करता है ?'

'हाँ।'

'किसी की आज्ञा से या अपनी इच्छा से ?' जगदेव ने पूछा।

'अपनी इच्छा से।'

'ऐसा ? शंभू ! इसको बंदी बना ले।'

'शंभू !' हँसकर वस्ता ने कहा, 'क्यों कष्ट करता है ? मुझे कोठरी बता, मैं यह चला।' कहकर वस्ता आगे बढ़ा। शम्भू कहने गया—'बापू !'

'अपनी आज्ञा का अनादर मैं नहीं सहन करूंगा।' जगदेव ने चिंघाड़ की। शम्भू और वस्ता चले गए।

'मुझे स्वयं को जाकर ही यह काम करना चाहिए।' कहता हुआ जगदेव उठा, कमर पर तलवार लटकाई और काक से भेंट करने चला।

: २० :

काक से भेंट

जिस समय जगदेव परमार काक के कमरे में उससे भेंट करने के लिए गया उस समय द्वारके सामने वाहड़ जिस व्यक्ति को काक समझकर पकड़ लाया था वह बैठा हुआ था।

'काक भटराज हैं ?'

'सोये हुए हैं।' उस व्यक्ति ने कहा।

'कौन है ?' अंदर से एक स्वर सुनाई पड़ा।

'यह तो मैं जगदेव परमार।'

'पधारिए।' काक की आवाज़ आई।

परमार अन्दर गया। एक छोटे-से हिंडोले पर नाम का गद्दा डालकर काक लेटा हुआ था। वह उठ बैठा।

'आओ परमार! आपने कैसे कृपा की? बैठो।' काक ने परमार को अपने पास बैठने का संकेत किया।

'वैसे ही!' जगदेव ने बैठते-बैठते मीठा उत्तर दिया, 'आपके लिए मैंने दो कमरे खुलवा दिए हैं यही कहने आया हूं।'

'अरे, क्यों कष्ट किया? मेरे लिए यहीं ठीक होगा।'

'ऐसा कहीं हो सकता है?'

'अरी इससे अच्छे स्थान में रहने की टेव नहीं है।'

'किन्तु महाराज की विशेष आज्ञा है।'

काक सावधान हो गया। इस भलमनसाहत में कुछ रहस्य दिखाई दिया।

'कह देना कि अब यहीं ठहर गया तो ठहर गया।'

'उन्हें बुरा लगेगा।'

'मैं मना लूंगा।' काक ने हंसकर कहा।

'नहीं,नहीं। किन्तु यह कैसे हो सकता है ? मेरे उत्तरदायित्व पर लाँछन लगता है।' जगदेव ने कहा।

'परमार ! मेरा स्वभाव कुछ विचित्र है जब मैं यहीं आगया तो मुझे यहीं अच्छा लगेगा।'

'किन्तु यह तो उस आदमी की भूल थी। महल का प्रबन्ध तो मैं करता हूं न ?' जगदेव ने तनिक अधीर होकर कहा।

'मेरे लिए प्रबन्ध करनेका कष्ट मत कीजिएगा। मैं अपने आप प्रबन्ध कर लेता हूं।'

'और फिर यह कोठरी तो अन्य काम के लिए है।' जगदेव ने कुछ सत्ता से कहा।

काक इसीकी प्रतीक्षा कर रहा था। जिस प्रकार बाघ छलांग मारता है उसी प्रकार वह जगदेव की ओर घूमा और बोला, 'परमार ! तुम योद्धा हो। मैंने भी कई युद्धों में भाग लिया है। स्पष्ट कह दो न कि इस सबका रहस्य क्या है ?'

'नहीं—नहीं—कोई विशेष—'

'कह दूं ?' हंसकर काक बोला, 'तुम मुझे निश्चित किये हुए स्थान पर रखना चाहते हो। मैं वहाँ नहीं रहने का। हुआ ?'

जगदेव चमका। इस प्रकार बात करने के लिए वह तैयार न था।

'भटराज ! किन्तु महल की व्यवस्था—'

'परमार ! उसकी मुझे लेशमात्र भी चिन्ता नहीं। देखो हम प्रथम बार मिले हैं, अतः स्पष्ट बातें करलें।'

'कैसी ?'

'तुम यहाँ के बड़े सत्ताधीश हो। मैं जयसिंहदेव महाराज की सत्ता के सिवा और किसी को गिनता नहीं। इसलिए मुझे क्या करना है, कहाँ रहना है इस सम्बन्धमें उनके सिवा किसी दूसरे को 'पंचात' करने की आवश्यकता नहीं।'

'भटराज ! आप मेरा अपमान करना चाहते हैं, क्यों ?' गर्व से हँसकर जगदेव ने दाढ़ी पर हाथ रखा।

'नहीं, केवल मैं अपमान सहन नहीं करता।'

'भटराज ! आपको किसी ने भ्रम में डाल दिया है। मैं किसी का अपमान नहीं करता।'

'परमार ! बिना अधिकार कोई मुझ पर सत्ता जमाने आए तो मैं उसे अपमान ही समझता हूं।'

'भटराज ! महल में मेरा ही अधिकार है।'

'मैं उसे स्वीकार नहीं करता।'

'क्यों ?'

'परमार ! तुम्हारा बल अगाध समझा जाता है, तुम्हारे मालवी वीर जिसे चाहे पकड़कर पीट सकते हैं। इस सबका जैसा चाहे उपयोग करो। मैं सामना करने के लिए तत्पर हूं।' काक ने निश्चिंतता से हिंडोले को धक्का देते हुए कहा।

'भटराज ! आप व्यर्थ का वैर बाँध रहे हैं।' हिंडोले पर से क्रोध में उतरते हुए जगदेव ने कहा, 'मुझसे शत्रुता करने वाले किसी पट्टणी का भला नहीं हुआ।'

'और—' उपेक्षा से मुस्कराकर काक ने कहा, 'किसी विदेशी ने मुझ पर सत्ता जमाने का प्रयत्न करके लाभ नहीं उठाया।'

'भटराज ! आपकी जिह्वा बड़ा बुरा परिणाम लाएगी।' जगदेव का हाथ तलवार पर गया।

'तुमसे कहीं अधिक बलवानों को मेरी जिह्वा ने जीवित जला दिया है।' धीरे से हिंडोले परसे उतरते हुए काक बोला, 'तुम्हारे हाथ अकुला रहे हैं, क्यों ? अच्छी बात है। खेमा ! मेरा खड्ग ला तो।' तिरस्कार से काक बोला, 'अभ्यास किये बहुत समय हो गया है, पुनः ताजा हो जायगा।'

जगदेव को एकदम भान हुआ। वह नम्र हो गया।

'भटराज ! क्षमा करो । मुझे तनिक क्रोध आगया था । क्षमा करो । 'महाराज जानेंगे तो क्या कहेंगे ?' जयसिंह देव का स्मरण होते ही परमार काँप उठा ।

'कोई बात नहीं । यह तो विनोद ही हो रहा था ।'

'नहीं, नहीं, यह कैसे हो सकता है ? भटराज ! क्षमा करो,' कहकर चतुर जगदेव ने हाथ जोड़े, 'आपने मुझे व्यर्थ ही उत्तेजित कर दिया ।'

'घबराओ नहीं । हाँ, एक बात और कहूँ, नहीं तो फिर रह जायगी । तुम्हारे जैसे परमार का बल और शौर्य तो धारा के परमार के यहाँ शोभा देता है; परमार के कट्टर शत्रु पाटण के राजा के यहाँ नहीं,' काक ने चाबुक मारा । 'परमार, बैठो, एक दूसरी बात करनी है ।'

'नहीं, अब मैं जाऊं —' इतनेमें एक वृद्ध अनुचर आया जिसे देखकर जगदेव अटक गया ।

'परमार !' उसने आकर कहा, 'महाअामात्य जी बुलाते हैं ।'

'कौन ?' साश्चर्य जगदेव ने पूछा । उसका मुंह कुछ उतर गया ।

'मुंजाल महेता जी !' उस वृद्ध ने कहा ।

काक की आँखें कुछ चौड़ी हो गईं । जगदेव घबरा गया था यह स्पष्ट दिखाई दे रहा था । जहाँ तक सम्भव हो वह मुंजाल से भेंट नहीं करता था और न मुंजाल ही उसे बुलाता था । जगदेव का मुंजाल से परिचय न था किन्तु राजा को उसे अत्यंत मान देते देखकर वह भी उससे सम्मान के साथ दूर ही रहता था । आज जब उसके गर्व पर चोटें पड़ रही थीं तो इस प्रकार का बुलावा उसे अच्छा न लगा ।

'कहना, तनिक काम में लगा हूं, फिर आकर भेंट कर लूंगा ।' कुछ अभिमान से जगदेव ने कहा ।

उसकी साधारण स्थिरता उसमें होती तो परमार इस प्रकार कहने का स्वप्न में भी विचार न करता । किन्तु उसका मस्तिष्क ठिकाने न था । यह उत्तर सुनकर काक और अनुचर दोनों चकित होगए ।

'आपने क्या कहा ?' अनुचर ने स्पष्ट पूछा ।

'मैं फिर भेंट करूंगा।' प्रत्येक शब्द पर भार देकर जगदेव ने कहा।

काक सीधा होकर कठोर दृष्टि से देखने लगा। 'तुम क्या कह रहे हो यह भी मालूम है?' उसने धीरे-से पूछा।

'हाँ, क्यों?'

'मुंजाल महेता बुलाएं और कोई न जाय, इसका अर्थ क्या होता है, मालूम है?'

'मैं जानता हूं कि वे महाआमात्य हैं। मुझे महाराज के पास जाना है।'

काक स्थिर नयनों से देखने लगा।

'जगदेव! चले जाओ!' उसने कठोरता से कहा, 'इतने वर्ष यहाँ रहकर भी मुंजाल को नहीं पहचानने यह आश्चर्य की बात है। जाओ, नहीं तो यह अनुचर पुनः आएगा।'

काक के बोलने का ढंग इतना गंभीर और सत्तापूर्ण था कि जगदेव मौन होकर अनुचर के पीछे हो लिया। उसका गर्विष्ठ हृदय फट रहा था।

काक मुस्कराया। 'खेमा!' उसने कहा, 'जा, जाकर मंगी को पूछ आ, लीलादेवी को अवकाश है? हो तो भेंट कर कृतार्थ होऊं।'

'जो आज्ञा।'

: २१ :

परमार की चिन्ता

जगदेव के अन्तर में क्रोध की आँधी चल रही थी। लीलादेवी, काक और मुंजाल इन तीनों ने आज उसे पैरों की रज-सा समझ लिया

था। इतने वर्षों के पश्चात् यह क्या ? उसे काक ने सावधान किया यह उसे न सुहाया, और मुंजाल महेता ने आज्ञा देकर बुलवाया, यह उसे भला न लगा। उस पर काक के शब्दों ने उसके गर्व पर आघात किया था। वह विदेशी था, सेवक था, वह अपने योग्य स्थान पर न था, यह उसे प्रथम बार मालूम हुआ। फिर भी वह हठी होकर अपना गर्व बनाए रहा।

गर्व से सिर ऊँचा करके संग्राम की मूर्ति जैसी प्रचंड भयानक दीखने वाली मूंछ पर हाथ रखकर वह महाआमात्य के निकट गया। मुंजाल महेता से उसका कभी सीधा काम न पड़ा था अतः आत्मगौरव को सुरक्षित रखने के लिए उसे यही उचित साधन जान पड़े।

वृद्ध मुंजाल गद्दी पर बैठा हुआ था। गौरवशाली मुख पर सत्ता की रेखाओं में सज्जनता की रेखाएं मिली हुई थीं। एक ओर एक जैन मुनि बैठे हुए थे। थोड़ी दूर पर शोभ कान में लेखनी खोंसकर अभी-अभी के लिखे आज्ञा-पत्र पर रेत डाल रहा था। दो व्यक्ति दूर घुटने टेककर बैठे हुए थे। वातावरण किसी धनाढ्य और श्रद्धालु वणिक के घर जैसा था।

'आपने मुझे बुलाया ?' तनिक कठोरता से जगदेव ने कहा।

मुंजाल ने मधुर मुस्कराहट से उसके प्रणाम को स्वीकार किया और जगदेव की ओर बिना देखे ही कहा—'परमार ! तनिक ठहरो। मैं यह आज्ञा-पत्र पढ़ लूँ।' कहकर उसने शोभ से आज्ञा-पत्र लेकर धीरे-धीरे पढना आरम्भ किया। जगदेव को पट्टणियों की रीति-नीति के प्रति बहुत तिरस्कार था और विशेषकर मंत्रियों के प्रति तो उसकी अरुचि इतनी थी कि बड़ी कठिनता से ही वह उसे दबा सकता था। किन्तु इस शान्त आमात्य के सामने वह कुछ घबराया। गर्व से उसने अपना क्षोभ दबा दिया।

'परमार !' मिठास से ऊपर देखकर मुंजाल ने कहा, 'तीन घड़ी हुई तुम्हारा आदमी वस्ता को बुला ले गया था। वस्ता को पहचानते

हो न ?' मंत्री की मुस्कराहट चित्त को हर लेने वाली थी।

'हां !' तनिक गर्व से होंठ बन्द करते हुए जगदेव ने कहा।

मन्त्री की मुस्कराहट जाती रही। उसने शान्त रुक्षता से जगदेव के मुख की ओर देखा। जगदेव घमंड में भान खोकर तिरस्कार से मुस्करा उठा।

'एक घड़ी में वस्ता जहां भी हो वहां से खोज लाओ।' शांति से मुंजाल ने कहा।

'महेता जी !—' जगदेव बोलने लगा तो क्षोभ से या अभिमान के आवेश से स्वर मोटा और विनयहीन हो गया। वहाँ बैठे हुए व्यक्तियों को ऐसा लगा मानो यमराज के पदार्पण से जैसा कंपन होता है वैसा ही कंपन हुआ। मन्त्री का विशाल सिर गर्व से ऊँचा उठा। सज्जनता से शोभायमान उसके मुख पर निश्चल गौरव प्रकट हुआ। उसके कपाल पर शांति थी किन्तु आँखों में मानो ज्वालामुखी फट पड़े थे। उनकी ज्वाला देखकर जगदेव की जिह्वा तालु से चिपक गई।

'परमार !' जिस स्वर से पाटण का अरिदल काँपता था उसमें वह गरजा। उसमें प्रभाव था, गर्व था, और दुःसह शांत सत्ता थी, 'एक घड़ी में—एक घड़ी में या तो वस्ता को खोजकर लाओ या अपने शस्त्र और आज्ञा-पत्र शोभ को सौंपकर यहाँ उपस्थित हो जाओ।'

जगदेव का सिर चकरा खाने लगा। इस आमात्य का मस्तिष्क फिर गया है या वह स्वयं पागल हो गया है ? शस्त्र और आज्ञा-पत्र शोभ महेता को सौंपने का अर्थ वह समझता था। क्या एक अनुचर को उसका स्थान दिखाने के लिए उसके जैसे योद्धा को, भटराज को, महाराज के विश्वासपात्र को पदभ्रष्ट करके देशनिकाले का दण्ड दिया जायगा ?

'किन्तु—' काँपते हुए होंठों से वह बोला।

पुनः वे आँखें चमक उठीं, 'मेरी आज्ञा का पालन न हो जाय तब

तक मैं किसी की कोई बात नहीं सुनता।' मुंजाल ने प्राणघातक तिरस्कार से कहा। 'जाओ शोभ ! मैंने कहा वह सुन लिया ?'

'जी हां।' शोभ महेता ने कहा।

खड़ा रहे, गिर पड़े या धरती पर बैठ जाय—जगदेव को कुछ न सूझा। वह चुपचाप चला गया।

जगदेव के मुख पर फेन आगया। क्या मालवे से यहाँ इन सभी के पद की रज बनने के लिए लाया गया था ? उसने क्या अपराध किया था ? उसे जयसिंहदेव महाराज का स्मरण हुआ। बेचारा पाटण का नरेश ! उनसे अपने महल में भी सत्ता नहीं दिखाई जा सकती। जगदेव का स्वामि-भक्त रक्त खौलने लगा। इस समय उसके स्वामी को उसकी बहुत आवश्यकता थी। उसकी सत्ता की रक्षा करना उसका काम था। यह उनकी कृतज्ञता की कसौटी थी। स्वयं परमार था और वीर था। कैसे किसी को अपने स्वामी की सत्ता पर आक्रमण करने दे सकता है ? उसके प्रचंड शरीर में पवित्र और निःस्वार्थ रोष का संचार हुआ। उसकी अपनी बात तो अलग, उसके स्वामी ऐसी दशा में !कैसी बात है ? शीघ्रता से पाँव उठाता हुआ वह महाराज के निकट गया।

जयसिंहदेव मुरार के साथ बातें करते हुए बहुत हंस रहे थे।

'और मालवी सैनिक को एक ब्राह्मण ने बाँधा—और ब्राह्मण रानी के आवास में चला गया।' राजा को बहुत ही हंसी आ रही थी मानो कुछ समझ ही में न आ रहा हो।

'किन्तु ब्राह्मण....हा—हा—मुरार यह तो नितांत गप्प है।' जगदेव का मुख हँसी से लाल हो गया। 'और रानी...लीला...बुद्धिमान् रानी....हा—हा....ब्राह्मण ! गप्प...नितांत गप्प।'

'अन्नदाता !' मानभंग और रोष के कारण फूले हुए मुख से जगदेव बोला। उसकी वाणी रोते हुए बच्चे की-सी थी, 'गप्प नहीं, सच्ची बात है।'

'क्या सच्ची बात है ?' राजा ने सकर कहा. 'एक ब्राह्मण तेरे

सैनिक को बांधकर अंदर चला गया। हा-हा परमार!' कृत्रिम गंभीरता से राजा बोला, 'महल की ऐसी देख-भाल करता है? यह ब्राह्मण गया कहाँ?'

'महाराज! मैं उसीको खोज रहा हूं किन्तु मिलता ही नहीं।'

'अररर!' महाराज हंसी न रोक सके।

'परमार! यह....क्या....हा....हा....होने लगा है?'

'अन्नदाता! आप हंसते हैं और मेरे प्राण जा रहे हैं।'

'और यदि मैं न हंसूं तो तू जीवित रहेगा? ले जगदेव, यह चुप हुआ। तेरे प्राण क्यों जा रहे हैं—कब जा रहे हैं—कहाँ जा रहे हैं—कह डाल।' कहकर राजा पुनः हंसा।

'देव! देव! आप हंसते हैं—उधर आपकी सत्ता का आज सत्यानाश हो गया।'

'हाय, हाय!' सहानुभूति दिखाते हुए राजा ने कहा।

'सुनिए अन्नदाता! एक ब्राह्मण ने हमारे एक मालवी सैनिक को बाँधा—'

'यह तो जानता हूं।'

'वह रानी के कमरे में अन्तर्धान हो गया—'

'यह भी जानता हूं।'

'और रानी को जब मैं पूछने गया तो, महाराज! मुझे दुत्कारकर निकाल दिया।'

'अरे! मेरे परमार को? मैं रानी से समझ लूंगा।'

'किन्तु देव! और सुनिए। वस्ताने मेरी आज्ञा बिना काक भटराज के लिए कमरा खोल दिया—'

'वस्ता है ही ऐसा।'

'मैंने वस्ता को बंदी बना लिया—'

'अच्छा किया।'

'और मैंने भटराज के लिए नीचे कमरे खुलवा दिए तो उन्होंने वहाँ जाना अस्वीकार कर दिया।'

'यह काक भी बहुत हठी है।' राजा ने हंसकर कहा।

'और देव! मुझे मुंजाल महेता ने बुलवाया।'

'क्यों?' राजा ने गम्भीर होकर पूछा।

'सबके सामने अपमान किया।'

'क्यों?'

'मुझे कहा कि घड़ी-भर में वस्ता को ले आ, नहीं तो अपने शस्त्र और आज्ञा-पत्र शोभ महेता को सौंप दे।'

'क्या कहता है?'

'देव! इसमें मेरी प्रतिष्ठा नहीं जाती, आपकी जाती है। अपाकी सत्ता भंग करने की यह युक्ति है।'

'परमार! मैं रानी और काक दोनों को समझ लूंगा, किन्तु वस्ता को छोड़ दे।'

'किन्तु महाराज—'

राजा ने धीरे-से कहा, 'परमार! शस्त्र और आज्ञा-पत्र अच्छे नहीं लगते क्या?'

जगदेव ने घबराकर राजा के सामने देखा। राजा ने जो कुछ कहा वह स्पष्ट न सुन सका ऐसा कुछ उसे लगा।

'देव!—'

'जगदेव! मेरी मान और वस्ता को छोड़ दे।'

परमार निराश हो गया। उसने रूठे बच्चे-सा मुंह बनाकर कहा, 'देव! आपकी बात आप जानें। मैं तो यही करूंगा।'

'जगदेव! देख, इसके स्थान पर मैं तुझे कल अधिक सत्ता दूंगा। और अब काक भी आगया है अतः तुझे अधिक सत्ता की आवश्यकता पड़ेगी ही, नहीं तो उसे वश में रखना दूभर होगा।'

'लगता तो ऐसा ही है।'

'जगदेव ! अपनी अश्वशाला में से अच्छे-से-अच्छे दो अश्व काक के लिए तैयार रखना और अपने आदमियों से कह देना कि उसके आने-जाने में बाधा न दें।'

'जो आज्ञा।'

'और कल प्रातःकाल हम चलकर चुपचाप तनिक शिविर की दशा देख आयंगे।'

'जो आज्ञा।'

'परमार ! बिलकुल घबराना मत। मेरी सत्ता को कोई छू भी नहीं सकता।'

जगदेव ने झुककर प्रणाम किया और विदा हुआ

'मुरार !'राजा पुनः हंस पड़ा, 'जा, रानी को सूचना दे आ कि आज मैं उनके आवास हो में भोजन करूँगा और सोऊंगा।'

'जो आज्ञा !'

: २२ :

प्रेमकुंअर का निश्चय

प्रेमकुँअर नागर मंत्री शोभ की पत्नी थी। वह लंबी, गोरी और कुछ मोटी थी। उसकी आँखें विशाल और भावपूर्ण थीं, उसके होंठ कुछ मोटे और विलास की ओर झुकाव प्रदर्शित कर रहे थे। उसके गालों पर यौवन की लाली थी, उसके नन्हें कपाल पर बड़ी-सी चंदन-रेखा शोभा दे रही थी, और उसके होंठो से पान की लालिमा कभी अदृष्ट न होती थी। उसके शरीर की रेखाएं भरी हुई थीं—ऐसा लगता था मानो विलासवृत्ति का वह मूर्तरूप हो।

पाटण के प्रथम नागरकुल के रत्न की पटरानी को शोभा दें वैसे उसके हाव-भाव थे। वह विभिन्न प्रकार के वस्त्र धारण करती और शृंगार करती थी। वह धनाढ्य, आनंदमय और गर्विष्ट कुल को शोभा देने वाले ठाठ-बाठ से रहती थी। रानियों से भी उसकी वेश-भूषा अधिक आकर्षक लगती थी और उसके आभूषणों की चमक के सामने महाराज का शृंगार भी फीका पड़ जाता था।

जीवन का उल्लास उसे सदा आकर्षित करता था। वह चलती तो उसका शरीर झूमता, उसकी कमर लचकती और उसके पांव थिरक उठते—और पृथ्वी कांप उठती। उसकी आंखें दो क्षण के लिए भी एक-सी न रहतीं वरन् नए-नए भावों से दीप्त हो उठती थीं। कोई भी उस पर दृष्टि डालता कि 'नखराली' स्त्रियों का प्रथम लक्षण तुरंत दिखाई पड़ जाता; उसका घूँघट कहाँ-से-कहाँ खिसक जाता था और दर्शक को ऐसा लगे मानो लज्जा से उसे ठीक करने के लिए रुक गई हो, ऐसा वह प्रयत्न करती थी।

बाहर के संसार को वह कुछ गिनती ही न थी। उसके अंतर में पहले वह स्वयं थी, फिर उसके रास-रंग थे, फिर वस्त्राभूषण थे और फिर उसका 'महेता' अर्थात् शोभ मंत्री था। अपने को मध्यबिन्दु मानकर अपने से अपने महेता तक त्रिज्या खींचकर जो वृताकार बनाती उसमें स्वर्ग, मृत्यु और पाताल—यह भव और वह भव—सभी समा जाते।

आज उसको क्रोध आ रहा था। मीनलदेवी ने उस पर लीलादेवी आदि रानियों को क्रीड़ाप्रिय बनाकर बिगाड़ देने का आरोप लगाया था। अब इसमें उसका क्या अपराध? रानियाँ उसके जैसी रसिक न हों, या उसके महेता जैसा स्नेही पति उन्हें न मिला हो, तो उसमें इस बेचारी का क्या दोष? और बिना दोष के उस पर आक्षेप! मीनलदेवी में, इस उम्रमें तो अधिक बुद्धिमानी होनी चाहिए। उन्होंने तरुणावस्था में क्या क्या किया होगा! अब इतने वर्षों पश्चात् उन्हें भी कहने की सूझी।

लोग यौवनावस्था में आनन्द न करें तो क्या पति और संसार को छोड़ने के पश्चात् करें !

वह लीलादेवी का कमरा सजा रही थी। समर्थ उसकी सहायता कर रही थी। समर्थ उसे अच्छी न लगती थी। वह उसे बहुत बातूनी समझती थी क्योंकि वह उसे दिन-भर उसके संसार की बातें पूछती थी। इतनी बड़ी होकर जो बिना वर के इधर-उधर भटकती फिरे उसे और क्या कहा जाय !

मीनलदेवी से बदला लेने का एक मार्ग उसे सूझा। यदि सभी रानियों को वह क्रीड़ाप्रिय बना दे तो मीनलदेवी की खीझ का पार न रहेगा और अपने बुढ़ापे में सभी को वृद्ध बनाने की इच्छा रखने वाली से बदला भी पूरा-पूरा ले लिया जायगा। और इस युक्ति का प्रयोग उसने लीलादेवी पर ही करने की सोची क्योंकि वे बहुत गर्वीली, उदासीन और गम्भीर थीं।

'उनको ऐसा बनाऊँ कि कोई क्या कहे,' प्रेमकुंअर बड़बड़ाई और अधिक उत्साह से उसने कमरा सजाना आरम्भ किया।

'यह समर्थ न जाने किस घड़ी में जन्मी है। कटकट,कटकट किया ही करती है,' वह बड़बड़ाई।

किन्तु जब समर्थ को बोलने की इच्छा होती थी तो सुनने वाले की वह चिन्ता न करती थी।

'प्रेमा भाभी ! आज ऐसा मज़ा आया ! रानी देवी चकरा गईं।' धीमे-से उसने कहा, 'ऐसी चकराईं — ऐसी —'कहकर समर्थ हंसने लगी।

'किस प्रकार ?' बिना ध्यान दिए प्रेमकुंअर के पूछा।

'आज उनके कमरे से एक व्यक्ति निकला।'

'हैं !' प्रेमकुंअर ने एकदम ध्यान देकर आश्चर्य से पूछा।

'अंदर के कमरे में घुस गया था।'

'फिर ?'

'मैंने उसको दूसरे रास्ते से जाने दिया,' समर्थ हंसने लगी, 'ऐसा मज़ा—'

हिंडोले पर फूल टाँगते हुए प्रेमकुंअर ने पूछा—'कैसा ?'

'अरे ऐसा—'

प्रेमकुंअर फूल टाँगना छोड़कर समर्थ के निकट गई ।

'कैसा ?'

'देवी आईं, किन्तु वह कैसे मिलता ? ऐसी घबराईं कि रुंआसी हो गईं ।'

'तूने कैसे जाना ?'

'मैं लौटकर फिर आई न ?'

'हं !' प्रेमकुंअर ने कहा और मन-ही-मन बोली, 'अब समझी कि देवी ऐसी उदास-उदास क्यों रहती हैं ।' फिर ज़ोर से बोली, 'कौन था वह ?'

'कोई पुजारी ब्राह्मण ।'

'धत्तेरे की ! मर यहाँ से ।' धारणा सच न निकलने से प्रेमकुंअर ने कहा ।

'देखो, प्रेमा भाभी ! मैं आपको मरने के लिए कहूँगी तो कैसा लगेगा ? मुझे तो कह देती हो ।' होंठ-पर-होंठ रखकर समर्थ बोली—'और मैं आपको आपके सभी को—'

इतने में एक अपरिचित व्यक्ति आया । 'महारानी देवी के पास समय है ?'

'क्यों ?' प्रेमकुंअर ने पूछा ।

'काक भटराज भेंट करना चाहते हैं ।'

'का—क !' समर्थ चीत्कार कर उठी ।

'क्या बात है समर्थ ?' प्रेमकुंअरने कठोरतासे कहा, 'बोलना आता है या नहीं ?' और फिर खेमा की ओर घूमकर कहा, 'भाई ! ठहरो, मैं पूछ देखती हूं ।' प्रेमकुंअर अंदर गई ।

रानी पलंग पर बैठी हुई थीं। 'देवी ! भटराज काक कहते हैं कि आपके पास समय हो तो वे भेंट करने आवें।'

रानी तनिक मुस्कराई। उस मुस्कराहट को प्रेमकुंअर ने हृदय में जमा लिया। 'हाँ, कह दे कि मुझे अवकाश है। प्रेमू ! तू अभी फूल ही टाँग रही है ? तू न होती तो मेरा क्या होता ?' रानी ने कहा।

'देवी ! यह क्या कहती हैं ?' उमड़ती हुई लज्जा को न रोक पा रही हो इस प्रकार मुंह नीचा करके मुस्कराते हुए, अंग लचकाते हुए प्रेमकुंअर ने कहा। 'आज इनका मन कुछ आनंदित है,' इस प्रकार मन-ही-मन बड़बड़ाती हुई प्रेमकुंअर लौट गई और जाकर खेमा को संदेशा दिया।

'अच्छा हुआ यह पापी यहीं आया।'

'कैसा पापी ?' प्रेमकुंअर ने ध्यान किए बिना ही पूछा।

'य ः काक !'

'तेरा उसने क्या बिगाड़ा है पगली ?'

'उसने नहीं बिगाड़ा तो फिर किसने बिगाड़ा ?' बहुत ज़ोर देकर समर्थ ने पूछा।

प्रेमकुंअर ने सिर हिलाया और मन-ही-मन प्रमाणपत्र दिया, 'बिलकुल बुद्धू है।'

थोड़ी देर तक दोनों काम करती रहीं और प्रेमकुंअर के हस्तकौशल के प्रताप से कमरे के रूप-रंग में आमूल परिवर्तन हो गया।

कुछ देर पश्चात् किसीका पगरव सुनाई पड़ा। दोनों घूमीं। द्वार में एक भव्य और कांतिमान् व्यक्ति खड़ा हुआ था। प्रेमकुंअर के सिरसे आंचल खिसक गया। उसे उठाकर खोंपकर पुनः ठीक किया। फिर उसने नीचे देखकर आँखें ऊँची कीं। उसकी देह-लता डोल रही थी किन्तु उसके मुख पर घबराहट के चिह्न थे। इसमें प्रेमू का कोई दोष न था। जिस प्रकार कोयल अपने आपको सर्वोपरि प्रमाणित करने के

लिए कुहुक उठती है उसी प्रकार यह इस विलासी युवती के व्यवहार का एक ढंग था। इसे देखकर सबका ध्यान उधर जाता और शोभ महेता की मोहक मानिनी के चरणों पर हृदयों का ढेर लग जाता। नवागन्तुक थोड़ा-सा मुस्कराया। इस व्यवहार से वह स्तब्ध हो गया हो ऐसा कोई चिह्न प्रकट न हुआ।

समर्थ से न रहा गया। वह एकदम कूदकर प्रेमू के पास गई। 'देवी के कमरे में प्रातःकाल जो ब्राह्मण था यह वही है,' वह धीरे-से बोली। प्रेमू ने उसे ध्यान से देख, समर्थ का हाथ दबाया और उसका स्वागत किया, 'पधारिए भटराज!' मीठे, धीमे, भावसूचक और लजीले स्वर में नीचे देखती हुई नागर कन्या बोली।

'देवी हैं?' नवागन्तुक ने मधुरता से पूछा और उसकी तीक्ष्ण दृष्टि कमरे के चारों ओर घूम गई।

'अभी बुला लाती हूं।' कहकर आँचल ठीक करती, नीचे देखती और शरीर को लहराती हुई प्रेमू अंदर गई। जाते-जाते वह बड़बड़ाई, 'काक भटराज रानी के कमरे में? धत्तेरे की लीलारानी! तू भी विलक्षण है! कैसी तेरी प्रकृति और कैसा तेरा ढोंग! अरे तेरी की! और खोज भी कैसे निकाला? मेरे फूल आज क्यों सुहाए यह अब समझ में आया।'

वह अंदर गई इतने में समर्थ भागी आई। 'क्यों काक भटराज! पहचानते हो?'

'ओहो! आप भी यहीं हैं?' काक ने हंसकर कहा।

'मुझे आपसे लड़ना है।'

'अरर, मुझे नहीं लड़ना है। मैं हार मानने के लिए तैयार हूं।'

'हंसी की बात नहीं है।' समर्थ ने कहा।

'समर्थ!' पीछे से रानी का कठोर स्वर आया, 'तू और प्रेमू बाहर जाओ।'

पीछे आती प्रेमू मन में बोली, 'अरी माँ! आज कैसी खिल रही

हैं !' वह नीचे देखती हुई आगे आई, काक के सामने गई, मुंह तनिक नीचा किए ऊपर देखकर एक दृष्टि डाली और चली गई। समर्थ क्रोध में मुंह चढ़ाकर चली गई। काक उस समय रानी को प्रणाम कर रहा था।

'समर्थ ! मंगी को भेजना।' रानी ने कहा।

'अच्छा देवी।'

: २३ :

पुरुष को वश में करने की कला

जब वे दोनों चली गईं तो रानी हिंडोले पर बैठ गईं और काक सामने भूमि पर बैठ गया।

'काक ! तुझे कुछ हुआ ?'

'कुछ भी नहीं। महाराज की मुझ पर अत्यंत कृपा है।'

'अब समझ में आया।'

'क्या ?'

'मुंजाल महेता कहते हैं कि मैं तुझे अच्छी तरह पहचानती नहीं। तुझे कुछ नहीं हो सकता।'

'महेताजी की मुझ पर विचित्र श्रद्धा है। आप क्या मेरे लिए गई थीं ?'

'हाँ, तुझे उस कमरे में न देखकर घबरा गई थी।'

'देवी ! आप मेरे लिए बहुत चिंता न कीजिए।'

रानी शांति से देखने लगी। विषय पलटा, 'काक ! रेवापाल कैसा है ?'

'जैसा था वैसा ही। अब भी लाट को स्वतंत्र करने की आशा उसने त्यागी नहीं है; और हम दोनों पर से उसका क्रोध भी अभी गया नहीं है। जो हो सो ठीक।'

'क्यों ?'

'मुझे उस उदा के लड़के पर तनिक भी विश्वास नहीं है।'

'तुझे तो किसी पर विश्वास नहीं होता।'

'कुछ में मुझे बहुत अधिक विश्वास होता है।'

'जैसे मंजरी।'

'जैसे आप।'

रानी मुस्कराई—'बोल, फिर यहाँ का क्या ?'

'यहाँ ? धीरे-धीरे सब ठीक हो जायगा। प्रथम बार सफल होगया है। महाराज मार्ग पर आगए हैं।'

'देख,भूल मत करना। उनको समझने में जन्म-पर-जन्म व्यतीत हो जायंगे।' शांत तिरस्कार से रानी ने कहा।

'देवी ! यदि आप सहायता करेंगी तो वे बहुत शीघ्र रास्ते आ लगेंगे।'

'मैं किसलिए सहायता करूं ?' कुढ़कर रानी ने पूछा।

'देवी ! किसलिए ?' काक ने तीक्ष्ण दृष्टि से रानी के सामने देखा, 'देखिए 'स्पष्टवक्ता सुखी भवेत', यह सूत्र भूलने जैसा नहीं है। मैंने आपको यहां ब्याहा और पटरानी-पद की आशा दिलवाई। इस समय आपका वह पद संकट में है। आपको भी ऐसा ही लगा तभी तो मुझे बुलाया। अब हमें स्पष्ट बातें कर लेनी चाहिएं।'

'तो करो न ! मैंने कब ना कहा ?' ऊबकर रानी ने हिंडोले को धक्का दिया।

'बुरा तो न मानिएगा ?'

'तेरा कहा बुरा लगने पर भी सुन लूंगी।'

'देवी ! बाप, भाई, या माँ जो गिनो इस समय मैं ही हूँ, इसलिए जो कहता हूं वह कहने देना ।'

'इस सब चर्चा की मैं आवश्यकता नहीं समझती ।'

'मैं समझता हूं । इस समय मेरी स्थिति बड़ी कठिन है । मेरे जैसे पर-पुरुष को इस प्रकार बात नहीं करनी चाहिए, किन्तु मैं न करूं तो कौन करे ?'

'जो कहना है कह ।'

'आपको पटरानी-पद से हटना नहीं चाहिए ।' काक ने एक तीक्ष्ण दृष्टि रानी पर डालकर कहा ।

'यह मेरे हाथ में नहीं है ।' रानी तनिक तिरस्कार से हंस दी ।

'मुझसे जो बनेगा करता हूं किन्तु अन्त में सब कुछ आप ही के हाथ में है ।'

'किस प्रकार ?'

'आपको जयसिंहदेव को रिझाना होगा ।' काक ने धीमे-से कहा और रानी के मुख के भाव देखने लगा ।

'कराना क्या चाहता है तू ?' तनिक तिरस्कार से लीलादेवी ने कहा ।

'जिससे काम बन जाय वह सब ।'

'अर्थात् ?'

'देवी ! प्रत्येक स्त्री में पुरुष को रिझाने की अद्भुत शक्ति होती है । वह आपको प्राप्त करनी होगी, नहीं तो यह काम नहीं होने का ।'

क्रूर शांति से रानी काक की ओर देखने लगी । काक मौन रहा ।

कुछ देर के पश्चात् रानी ने एक निःश्वास लिया, 'मुझे पुरुष को रिझाना नहीं आता ।' वह कुछ देर तक मौन रही फिर तिरस्कारपूर्वक मुस्कराई 'ऐसा जानती तो थोड़ा-बहुत मंजरी से सीख लेती ।'

काक ने उत्तर नहीं दिया, किन्तु कहा—'देवी ! इस समय हम दो सेनापतियों के समान मंत्रणा कर रहे हैं । हमें गढ़ जीतना है ।

अपने शस्त्रों का आप प्रयोग कीजिए, मैं अपने शस्त्रों का प्रयोग करता हूँ। कहिए, इस प्रकार बात करूँ तो अच्छा लगेगा ?'

'चलेगा !'

'तो, आप ऐसा कुछ करिए कि जयसिंहदेव महाराज आप पर अनुरक्त हो जायं, तभी गढ़ गिरेगा।'

'राणकदेवी के समान खुले केश रखकर, सिन्दूर लगाकर फिरूं ? '

'अवसर पड़ने पर यह भी करना होगा।'

'और क्या ?' तिरस्कार से रानी ने कहा।

'पहली बात तो यह है कि वे महत्वाकांक्षी हैं।'

'इससे क्या ?'

'उनको ऐसी पटरानी चाहिए जिसे सभी पूजें। ऐसा मार्ग पकड़िए कि सभी आपको पूजने लगें।'

रानी एकाग्र होकर देखने लगी। ऐसा लग रहा था मानो काक उत्साह से, स्नेह से विनय करता हो। पल-भर के लिए उसने काक के तेजस्वी मुख की ओर देखा।

'किस प्रकार ?'

'गुरुदेव ने आपको शस्त्र-विद्या सिखाई थी; प्रभु ने आपको चतुराई दी है; कुछ ऐसा करिए कि आपकी कीर्ति महाराज को मुग्ध कर दे।'

'तो क्या युद्ध में जाऊं ?'

'वह भी करना पड़ेगा। और दूसरी बात—महाराज भावुक हैं।' काक ने कहा।

'अच्छा ?' तिरस्कारपूर्वक रानी बोली।

'आप क्या नहीं जानतीं ? और फिर भी आप उनके प्रति स्नेह नहीं प्रकट करतीं। आप बहुत हो तटस्थ, शांत और भावहीन हो गई हैं।'

'तू स्त्री होता तो ननद अच्छी बनता।'

'अपनी रानी के लिए वह बनना भी मुझे स्वीकार है।' काक ने

मुस्कराकर कहा। 'देवी! चाहे जैसा आदमी हो स्त्री के प्यार के बिना नहीं रह सकता। विश्रांत व्यक्ति जिस प्रकार रेखा की तरंगों में कूदकर नवजीवन प्राप्त करता है उसी प्रकार पुरुष को स्त्री के प्यार, स्नेह और छोटे-बड़े विलासों में स्नान करके सजीव होने की आवश्यकता पड़ती है। और महाराज का हृदय इतना उत्साही है कि महाराज को प्यार, स्नेह और विलास की विशाल तरंगों की आवश्यकता होती है।'

'मालूम होता है तू पुरुष का हृदय बहुत पहचानता है।'

'हाँ! बचपन से उसे परखने का धंधा ही ले बैठा हूं। देवी! प्रत्येक बात के प्रति तिरस्कार रखने से क्या लाभ? यदि पाटण की पटरानी बनना है तो पाटण के स्वामी का अन्तर परखकर उसे बन्दी बनाओ। आप भी तो मनुष्य-हृदय को परखती हैं। आप चाहें तो उन्हें नचा सकती हैं। नहीं तो, आज देवड़ी गई तो कल कोई दूसरी आजायगी।'

'अर्थात् लाट की कुंअरी दासी बनकर रहे ऐसा करूँ?'

'देवी! सर्वांगसंपूर्ण स्त्री को प्यार प्रकट करने में तो कोई लज्जा की बात नहीं। पार्वतीजी स्वयं क्या प्यार नहीं करतीं?'

'अच्छा माना। एक—अपनी कीर्ति से उन्हें मुग्ध करूँ—अपने अन्तर के भावों से उन्हें भिगोए रखूं—और कुछ है या बस इतना ही?'

'नहीं, अभी और है।'

'क्या?'

'महाराज का स्वभाव बहुत चंचल है। उन्हें दृढ़ता की आवश्यकता है। अपनी निश्चलता पर उनके जीवन की रचना होने दीजिए।'

'यह किस प्रकार?' रानी को भी रस आने लगा।

'वे जो चाहे करें किन्तु उनकी कीर्ति और उनकी सत्ता आप ही के कारण है ऐसी श्रद्धा उनमें होनी चाहिए।'

'यह किस प्रकार?'

'उनकी कीर्ति और सत्ता की रक्षक बनकर।'

'चलो, यह तीसरी बात भी सही। और कोई पाठ है?'

'अभी इतने ही पर्याप्त हैं।' मुस्कराकर काक बोला।

'अब करूँ क्या?' रानी ने बात पलटी।

'प्रथम आपकी कीर्ति। आप शस्त्र तैयार रखिए। कुछ दिनों में ऐसा धड़ाका करेंगे कि संपूर्ण गुजरात गूँज उठेगा। कभी-कभी चुपचाप घोड़े पर बैठकर सेना में क्या हो रहा है यह तो देख आया करिए। लाट में थीं तब तो न जाने कितने कोस की दौड़-धूप करती थी।'

'काक! वे दिन गए।' रानी ने निःश्वास लिया।

'दूसरा प्रयोग तो आप ही के हाथ में है।' काक ने मुस्कराकर कहा, 'स्त्रीचरित्र का मुझे अधिक अनुभव नहीं है।'

'ऐसा?' रानी ने हंसकर पूछा, 'तेरी बात से तो ऐसा बिलकुल नहीं लगता।'

'और तीसरी बात के लिए तो यही कि महाराज अपने आपको देवता समझना चाहते हैं। इसी कारण जगदेव जैसे विदेशी को यहाँ रख छोड़ा है। आप उनको दिखा दीजिए वे जब आपके पास आते हैं तो बिना प्रयत्न के ही देवता बन जाते हैं।'

'मेरे पास देवता बनाने का मंत्र नहीं है।'

'है। आप ठाठ-बाठ इतना बढ़ा दीजिए, अनुचरों की संख्या इतनी बढ़ा दीजिए और ऐसा व्यवहार करने लगिए कि आपके निकट आने वाले लोगों को देवमन्दिर का भान हो आए। फिर इस मन्दिर के देवता बनने के लिए राजा स्वयं दौड़ते आवेंगे। और इस बीच ध्यान न दें तो घबराना मत, अपने आप खिंचे चले आएंगे। अब तक मुझे ऐसा मनुष्य न मिला जो देवता माने जाने पर प्रसन्न न हो।'

'मुझे एक मिला है।'

'आपको कुछ भ्रम हो गया है। उसका भी एक छोटा-सा मंदिर है जहाँ वह देवता समझा जाता है।' काक मुस्कराया। पल-भर के लिए उसका मन भृगुकच्छ के साम्बा बृहस्पति के बाड़े में जा लगा।

'पुरुष स्त्री का घर और बाहर सुखी करता है, उसको यौवन और

प्यार देता है, पूजन-अर्चन करता है—मात्र देवता बनने के लिए। इस दुःखी संसार में उसे केवल इतने ही में मुक्ति दिखाई पड़ती है।'

'काक! बहुत हो चुकी तेरी विद्वत्ता।' लाटी ने कहा और शांति से सूखे हुए होठों को गीला किया। 'तुझे पूजूँ या धिक्कारूं यह मुझे नहीं सूझता।'

'मुझे तो आपकी सेवा ही करनी है।' काक ने उत्तर दिया।

'ऐसे बोलेगा तो जीभ खींच लूंगी। बोल, अब महाराज को देवता बनाकर उनकी स्थापना कैसे करूं?'

'जब वे यहाँ आयें तो अपनी सेवा में प्रस्तुत रहने के लिए कुछ सैनिक मांग लेना।'

'फिर?'

'और ऐसा कुछ करिए कि बड़े-बड़े योद्धा यहाँ आयें।'

'क्या रस्सी बांधकर खींच लाऊं?'

'आप प्रयत्न तो करिए। बिना रस्सी सभी खिंचे चले आएंगे। परशुराम को बुलाइए। आप वीरांगना हैं। आपकी वीरता से वह प्रसन्न होगा। वह आया कि सब आए।'

'मुझ पर इतना विश्वास करते हो?'

'देवी! देवी! महाराज पधार रहे हैं।' मंगी हाँपती-हाँपती आई। उसके पीछे प्रेमकुंअर और समर्थ के घबराए हुए मुख दिखाई दे रहे थे। तुरन्त ही, इनके पीछे जयसिंहदेव महाराज आए।

रानी चमककर हिंडोले पर से उतर पड़ी। काक उठकर झुककर खड़ा हो गया।

: २४ :

लीलादेवी का खेल

राजा अपनी उम्र से छोटे लगते थे। उनका सुन्दर मुख इस समय आकर्षक दिखाई पड़ रहा था, और उस पर सदा छाई रहने वाली सत्ता की छाप ने इस समय मोहक गौरव का स्वरूप ले लिया था। उनका मुख ऐसा लग रहा था मानो अभी हँसी फूट पड़ेगी। रानी को काक से इस प्रकार बैठकर बातें करते देखकर उन्हें हंसी आई किन्तु उन्होंने उसे रोककर अपने कपोल को आकुंचित किया।

'रानी! क्यों, क्या कर रही हो?' कुछ हंसते हुए स्वर को कठोर बनाकर उन्होंने पूछा, 'क्यों काक, तू यहाँ कहाँ से?'

'देवी से भेंट करने।' काक ने तीक्ष्ण दृष्टि से राजा की मुखमुद्रा की परीक्षा करते हुए कहा।

'रानी! आज एक विचित्र बात मेरे कानों आई है।' कहकर राजा हिंडोले पर बैठा और हाथ खींचकर रानी को बिठा लिया। उसने चारों ओर देखा और रानी के कमरे की सजावट देखकर कहा, 'तुम बहुत रसिक लगती हो।'

'अच्छा!' शांति और अस्पष्ट तिरस्कार से रानी ने कहा। किन्तु कहते समय उसकी दृष्टि काक पर पड़ी। काक की आंख में घुड़क थी। इतना कहने पर भी रानी कुछ नहीं करती? लीलादेवी के हृदय में काक की प्रेरणा का प्रभाव हुआ, 'मैं तो प्रतिदिन शृङ्गार करती हूँ किन्तु महाराज को देखने का अवकाश कहाँ?'

राजा हंस पड़े। काक ने आंखों-ही-आंखों उपकार माना।

'आज तो मैं एक बात की खोज करने आया हूं।' राजा ने पुनः गांभीर्य का स्वांग रचा।

'कौनसी?'

'प्रातःकाल एक ब्राह्मण महल में घुसकर तुम्हारे कमरे में आया, और अब मिलता ही नहीं।'

रानी तनिक चमकी। काक बिना कुछ कहे हंस पड़ा।

'उस जगदेव ने कहा होगा?' उसने पूछा।

'कैसे जाना?' राजा ने कुछ भवें तानकर पूछा।

'क्योंकि वह ब्राह्मण तो मैं ही था।' रानी यह धृष्टता देखकर फीकी पड़ गई। काक आगे बढ़ा, 'मुझे आपसे भेंट पहले करनी थी इसीलिए ब्राह्मण का वेश बनाकर प्रहरी को बाँधकर मैं घुसा था। मेरे मन में यही था कि ऐसे वेष में आपसे न मिलूं अतः मैंने मंगी से वस्त्र मँगवाए। इतने में देवी को मालूम होगया और उन्होंने मुझे बुला लिया। इतने में परमार भी दौड़ते-दौड़ते आ ही गए। मंगी ने मुझे उस कमरे में छिपाया जहां दंडनायक की पुत्री आ गई। उसने मुझे दूसरे मार्ग से निकाल दिया और मैंने आपसे आकर भेंट की।'

'ऐसा हुआ?' राजा ने कहा, 'मुझे क्या मालूम? तूने और रानी ने दोनों ने मिलकर मेरे विरुद्ध षड्यन्त्र रचना प्रारंभ किया है क्या?'

'हाँ! देवी अभी-अभी मेरे साथ षड्यन्त्र रच रही थीं,' काक ने कहा। 'देवी कहें तो कहूं?'

'क्या?'

'है आज्ञा?' काक ने हँसकर पूछा।

रानी समझी नहीं किन्तु उसने हँसकर स्वीकृत दे दी।

'देवी ने' खेंगार के विरुद्ध षड्यन्त्र रच रही थीं और सब सेना के विषय में पूछ रही थीं।'

रानी ने काक के सामने एक क्रोध-भरी दृष्टि डाली। वह उसे अपनी युक्ति का प्रयोग करने का साधन बना रहा था। किन्तु वह विरोध नहीं कर सकी।

'महाराज ! मैं इस घेरे से थक गई हूँ। मुझे जैसे हो वैसे इसका अंत करना है।'

'तो हम सब क्या मर गए है ?'

'नहीं। किन्तु कितने ही वर्षों तक मैंने युद्ध में भाग लिया है, और कितने ही रण-क्षेत्रों को पार किया है। कितनी ही बार तो इस काक को छकाया है। मेरे प्राण अब इस आलस्य के जीवन से उकता गए हैं।'

'क्या करोगी ?'

'जो आपकी पटरानी को शोभा दे वही।' तनिक अस्पष्ट तिरस्कार से, काक उससे क्या कहलवाना चाहता था उसकी कल्पना करके वह कहने लगी। राजा लगन का यह अप्रत्याशित प्रदर्शन देखने लगा।

'यह कोई लाट का छोटा-मोटा युद्ध है ?'

'देव ! लाट के युद्ध में जो हुआ उसकी गाथा गाने वाला कोई नहीं, अतः सब विस्मृत हो गया है।' काक ने कहा।

'काक जहाँ जाता है वहाँ महाभारत हो जाता है।' राजा ने कहा।

'नहीं महाराज ! जहाँ वीर से वीर भिड़ते हैं वहीं महाभारत होता है।' रानी ने कहा।

'रानी ! आज मैं भोजन यहीं करूंगा।'

'जो आज्ञा। मंगी !' रानी ने कहा, 'महाराज आज भोजन यहीं करेंगे।'

'देव ! मुझे आज्ञा हो। मुझे दण्डनायक से भेंट करनी है।'

'एक स्थान पर टिककर यह कभी बैठता ही नहीं।'

काक मुस्कराया, 'जूनागढ पराजित हो और आप भृगुकच्छ के सोमनाथ का कलश चढ़ाने पधारें तब।'

'न्योता देने की रीति देखी ? जा, प्रातःकाल मिलना।' राजा ने कहा। काक विदा हुआ।

काक बाहर गया और थोड़ा ही आगे गया होगा कि एक द्वार में से किसी ने पुकारा—'भटराज !'

काक ने घूमकर देखा, 'कौन, प्रातःकाल वाली बहन ?'

'हाँ।' समर्थ ने आंखें निकालकर कहा, 'तू सम्पूर्ण संसार में बुरा-से-बुरा आदमी है।'

काक मुस्कराया, 'क्यों, क्या एकदम परख लिया ?'

'तूने मेरा सब कुछ बिगाड़ दिया।' उंगली से काक को धमकाते हुए समर्थ ने कहा।

'मैंने क्या बिगाड़ा।'

'तुम पकड़ा क्यों न गए ?'

'मैं क्यों नहीं पकड़ाया ?' काक को लगा कि यह लड़की पागल है।

'हां, तुम पकड़ा जाते तो वाहड़ महेता को मुंह-मांगा प्राप्त होता और वे मुझसे ब्याह कर लेते।'

'और मैं नहीं पकड़ाया तो—' कुछ-कुछ समझते हुए काक बोला।

'अब मेरे पिताजी उसके साथ मेरा ब्याह नहीं करेंगे।'

'क्यों ?'

'उसका दादा मारवाड़ी था इससे।' होंठ-पर-होंठ रखकर समर्थ ने कहा।

'तो उसमें मैं क्या करूँ ?'

'तुम अब भी पकड़ा जाओ।'

'अरे वाह रे चतुर ! तुम भी भारी हो गईं।'

'तू बहुत बुरा है,' समर्थ ने रूठकर कहा, 'तेरा कभी भला नहीं होगा।'

काक हँसकर चला गया।

: २५ :

राजद्रोही

दूसरे दिन दिन निकलने से पहले राजा और जगदेव गढ़ के नीचे उतरे। गढ़ में सब कुछ शांत था। जगदेव ने जहाँ घोड़े तैयार रखवाए थे वहाँ गये। किन्तु वे घोड़े पर बैठें उससे पहले साईस ने जगदेव के कान में कुछ कहा; रकाब मे पैर रख देने पर भी जगदेव चमककर खड़ा हो गया।

'हैं! सच?'

'हाँ।'

'क्या है जगदेव?' राजा ने पूछा।

'कुछ नहीं देव! आप तनिक रुकें तो मैं हो आऊँ।'

'क्या है?' तनिक कठोर होकर महाराज ने पूछा।

'अन्नदाता! अभी आया।'

'परमार! मैं सुनना चाहता हूं, क्या है?'

'देव! गढ़ के दो प्रहरी घायल होकर मरणासन्न पड़े हैं। मैं उन्हें देख आऊं।'

'क्या कहता है? मैं भी चलता हूं। साईस! यह घोड़ा पकड़।'

'जो आज्ञा।' साईस ने कहा, और महाराज घोड़े से उतरकर जगदेव के साथ गये।

थोड़ी ही दूर पर गढ़ के एक द्वार के सामने जगदेव ने चकमक से मशाल जलाई और भूमि पर देखा। दो प्रहरी एक-दूसरे से दूर अचेत पड़े हुए थे। महाराज और जगदेव ने ध्यान से देखा तो एक का हाथ कंधे से निकल गया था और दूसरे के कन्धे पर गहरा घाव हो गया था।

रात्रि के अन्धकार में मशाल के अनिश्चित प्रकाश के कारण दो शववत् व्यक्तियों को देखकर दोनों को कंपकंपी छूटी। जगदेव का

रंग उड़ गया था। जगदेव ही पहले स्वस्थ हुआ। 'यह किसने किया होगा ?'

'कौन जाने !' अस्थिर स्वर में परमार बोला।

'क्या सोरठी यहाँ आगए ?'

'नहीं देव ! गढ़ ही का कोई व्यक्ति होना चाहिए।' कहकर जगदेव ने दोनों पड़े हुए व्यक्तियों को देखकर दिशा के संकेतों की ओर राजा का ध्यान खींचा।

'ऊँ' जिसका हाथ निकल गया था उस सैनिक के मुख से वाणी निकली।

'यह कौन हो सकता है ?' राजा ने गम्भीर मुख से पूछा। उनके हृदय में क्रोध का उदय हुआ। महल में अब तक ऐसा अत्याचार करने का किसी ने साहस न किया था। उन्हें लगा मानो उनके गौरव की हत्या हो गई है। उनके नथुने क्रोध से फूल उठे।

जगदेव ने उस सैनिक के सिर पर हाथ फेरा। कुछ देर पश्चात् उस सैनिक ने आंखें खोलीं।

'कौन ? क्या हुआ ?'

'कौन बापू ! म—मर गया।'

'किसने मारा ?'

'काकभट—' कहकर वह सैनिक पुनः अचेत हो गया।

जगदेव ने राजा की ओर देखा। उनका मुख लाल हो गया था। उनकी आंखों में रक्त उतर आया था। उनके कपाल पर रौद्ररस दिखाई पड़ता था। जगदेव निश्चिंत हुआ।

'अन्नदाता ! क्या किया जाय ?'

'चल, घोड़े ले लें।'

जगदेव एक अक्षर भी न बोला। क्रोध से फुंकारते हुए राजा और जगदेव घोड़ों तक गए और एक ही छलाँग में उन पर बैठ गए। साईस को उन दोनों प्रहरियों की सेवा-टहल करने के लिए कहकर

जगदेव भी अपने घोड़े पर बैठकर महाराज के पीछे-पीछे चला। राजा बिलकुल न बोले किन्तु अन्धकार में भी जगदेव उनका सीधा शरीर और घोड़े को दौड़ानें की उत्सुकता देखकर उनके मन में उठते हुए विचारों की कल्पना कर सकता था।

जयसिंहदेव के क्रोध की सीमा न थी। उनकी सत्ता और उनके गौरव का खण्डन चाहे ईश्वर ही क्यों न करे वे सहन न करते थे, तो यह था कौन? एक पराजित प्रांत का भटका हुआ सैनिक इस प्रकार करे? वर्षों पहले उसने उनका अपमान किया था। उसने रा' खेंगार को उनकी देवड़ी ले जाने दी थी। लाट के गौरव की रक्षा करने के लिए उसने भटकती कुंअरी से उसका ब्याह करवा दिया था, आज प्रातः-काल छद्मवेष में, उनकी आज्ञा भंग करके वह रानी से पहले मिला, जगदेव की, अर्थात् उनकी, सत्ता का विरोध कर मनचाहा करने लगा, और अब एक डाकू के समान उसके गढ़ के प्रहरियों को घायल किया।

राजा के हृदय में होली जलने लगी। उनका, परम भट्टारक जय-सिंहदेव सोलंकी का ऐसा अपमान! भले खेंगार जीते, भले पाटण का सत्यानाश हो, किन्तु यह अपमान कैसे सहन हो? उन्होंने काक को शिक्षा देने क अनेक प्रकार के विचार किए।

वे पट्टणी सेना की चौकी के सामने आ पहुँचे और धीमे-धीमे सेना की स्थिति को दृष्टि में उतारने लगे। एक टीले पर घोड़ों को विश्राम देने के लिए वे खड़े होगए। थोड़ी दूर तक देखने पर वहाँ सभी चौकियां आगे-पीछे की हुई लगती थीं।

'यह क्या है?'

'दण्डनायक ने कोई नई आज्ञा दी लगती है।' जगदेव ने कहा।

'चलो देखें क्या है।' कहकर राजा ने घोड़ा बढ़ाया। थोड़ी दूर जाने पर दो घोड़ों की टाप सुनाई पड़ी। प्रकाश फैलने लगा था अतः शीघ्र ही दो अश्वारोही दृष्टिगोचर हुए।

'कौन, परशुराम निकले हैं, अभी?'

'नहीं देव ! दण्डनायक इतने दुबले और लम्बे नहीं हैं।'

'चल उसे पकड़ें।'

किन्तु उन्हें यह करने की आवश्यकता न पड़ी। आगे जाते हुए अश्वारोहियों के आगे जानेवाले ने इन दोनों को देख लिया था। वह तुरन्त घोड़ा फेरकर राजा और जगदेव की ओर आने लगा। सूर्योदय होने ही वाला था। चारों अश्वारोही एक-दूसरे के निकट आ गए।

'जयसिंहदेव महाराज की जय !' नवागन्तुक ने कहा।

'का—क' कटकटाते दाँतों में से राजा का यह शब्द निकला। 'जगदेव ! उसे बुला ला।' कहकर उन्होंने घोड़ा रोका। जगदेव आगे गया, किन्तु उसके पहले तो काक ही आ पहुंचा।

'देव ! घणीखम्मा,' काक ने मुस्कराकर कहा और फिर परमार की ओर मुड़ा। 'परमार ! महाराज इस प्रकार घूमें उस समय क्या यह घोड़ा लाना चाहिए ? सम्पूर्ण संसार जानता है कि पाटण के स्वामी के सिवा सुनहरी नालवाले घोड़े पर दूसरा कोई नहीं बैठता। शत्रु देख ले तो—' कहकर काक ने उदय होते हुए सूर्य की किरणों में चमक रही राजा के घोड़े की नालों की ओर संकेत किया।

'तेरी सलाह लेने के लिए नहीं खड़ा हूँ।' क्रोध से काँपते हुए राजा बोला, 'तू कब का निकला है ?'

'मध्यरात्रि के पश्चात् अंतिम मुहूर्त में।'

'क्या कर रहा है ?'

'चौकियों का प्रबंध कर रहा हूं।'

'किसके कहने से ?'

'मैंने दंडनायक से बात चीत कर ली थी।'

'प्रत्येक बात में हाथ अड़ाने का तुझे अधिकार नहीं है। काक ! आज तूने मेरे सामने सिर उठाने का साहस किया है,' होंठ पीसकर राजा ने कहा।

'जब तक यह सिर धड़ पर है तब तक यह कैसे हो सकता है ? किस आधार पर कह रहे हैं ?' शांति से काक बोला।

'मेरे प्रहरियों को तूने मारा ?'

'हाँ, वे मुझे बंदी समझने की धृष्टता कर रहे थे। आप तो जानते हैं कि भटराज का अपमान करने पर सैनिक की क्या दशा होती है ?'

'उन्होंने क्या किया था ?'

'मुझे महल से बाहर जाने से रोका था।'

'तूने अपना नाम नहीं बताया होगा।'

'बताया था, किन्तु उन्होंने कहा कि मैं होऊं तो भी रोकने की आज्ञा है।'

राजा ने जगदेव की ओर देखा। वह चिंताग्रस्त मुख से यह वार्तालाप सुन रहा था।

'किन्तु मेरे गढ़ में मेरे सैनिकों पर हथियार क्यों चलाया ? मुझसे कहना था।'

'देव ! मध्यरात्रि को रनवास में आता आपसे पूछने ?'

'परमार को कहना था।'

'ऐसे कुछ ही व्यक्ति हैं जिनसे मैं आज्ञा लेता हूं। परमार उन व्यक्तियों में नहीं है।'

राजा फट पड़े। 'अर्थात् ?' वे मोटे स्वर में बोले।

काक ने साहस से ऊपर देखा, 'किसी ने मुझे रोकने का साहस अब तक नहीं किया, और न अब कर सकेगा।'

'अच्छा ? परमार ! इसके हाथ बाँध।' राजा ने आज्ञा दी।

काक गर्व से देखने लगा। परमार ने घोड़ा एक डग भी आगे न बढ़ाया। पीछे खेमा काक की आज्ञा की प्रतीक्षा करता हुआ खड़ा था। काक खड़खड़ हंस पड़ा।

'परमार ! यह रहे हाथ। बाँधो। सोलंकियों का शासन मेरे लिए सदा

मान्य रहा है।' कहकर उसने अपने हाथ लंबे कर दिए। परमार ने ज़ीन में से रस्सी निकालकर काक के हाथ बाँध लिए।

'इस घोड़े की लगाम हाथ में ले।' राजा ने जगदेव से कहा। जगदेव ने आज्ञा मानी।

'क्यों रे, तेरा नाम क्या है?'

'खेमा, अन्नदाता!'

'तू पीछे चल।'

'जैसी आज्ञा।'

राजा ने घोड़े को एड़ दी और चारों घोड़े वेग से आगे बढ़े।

खेमा ने काक से दृष्टि मिलाकर आँखों से संकेत किया। काक यदि आज्ञा देता तो उसके बंधन तोड़ने के लिए वह तत्पर था। काक ने गर्दन हिलाकर ना कह दिया।

: २६ :

काक का दूसरा रूप

थोड़ी देर में वे लोग एक उजाड़ प्रदेश में आए। यहाँ चौकियाँ भी दूर-दूर थीं और गाँव भी छोटे-छोटे और बहुत अंतर पर थे। दोनों सेनाओं की छावनियों से भी यह स्थान बहुत दूर था।

राजा का शौर्य जाग पड़ा। प्रातःकाल के उन्मत्त पवन ने उनमें अपार उत्साह भर दिया था। काक के प्रति जो आवेश था वह वीरता के उत्साह में परिवर्तित होता जा रहा था। एक चौकी आई किन्तु वह नितान्त निर्जन दिखाई दे रही थी। सब चकित हो गए, उन्होंने सावधानी से चौकी की परिक्रमा लगाई। एक ओर चौकीदार मरा हुआ पड़ा था।

'जगदेव ! लगता है शत्रु घुस आए हैं।'

'हाँ, देव !'

'खड़ा रह, देखता हूँ।' राजा घोड़े पर से उतरे। जगदेव के हाथ में तो बन्दी काक के घोड़े की लगाम थी इसलिए राजा की आज्ञा के बिना उसे छोड़ नहीं सकता था।

'खेमा ! महाराज के आगे-आगे चल।' काक ने तुरन्त राजा के रक्षण के लिए आज्ञा दी।

खेमा उतरा और आगे गया और चौकी का द्वार खोला। पहले खेमा अन्दर गया और कहा—'अन्नदाता ! तीन व्यक्ति मरे पड़े हैं।'

'देखा जायगा।' कहकर राजा अन्दर घुसा।

वहाँ तीन व्यक्ति पड़े हुए थे। दो मरे हुए पड़े थे और एक खंभे से बँधा हुआ था।

'जय सोमनाथ !' उन्हें देखकर बँधे हुए सैनिक ने कहा।

'जय सोमनाथ !' महाराज ने कहा, 'खेमा ! इसके बँधन खोल। क्यों रे, क्या हुआ ?'

'देव !' प्रश्नकर्ता का पद ऊंचा लगने के कारण सैनिक सम्मान से बोला, 'सोरठी दंडनायक महाराज की घोड़ी चुरा ले गए।'

'परशुराम की घोड़ी ?' राजा ने पूछा।

परशुराम की घोड़ी सम्पूर्ण सोरठ में विख्यात थी और सैनिकगण यही विश्वास करते थे कि उसी घोड़ी के प्रताप से दण्डनायक दुर्जय था।

'हाँ, देव !' सैनिक ने कहा।

'कब ले गए ?'

'एकाध घड़ी हुई होगी।'

'किधर गये ?'

'इस ओर।'

'तेरे दूसरे चौकीदार जीवित हैं या नहीं, पता लगा।' राज

चौकीदार से कहा, 'हम घोड़ी पकड़ लाते हैं। चल खेमा !' कहकर राजा बाहर आए। उनके मुख पर तेज छा रहा था।

'जगदेव ! सोरठी परशुराम की घोड़ी चुरा ले गए।'

'काली घोड़ी ?'

'हां ! अभी-अभी इधर से निकले हैं। चलो, पकड़ लेते हैं।'

'किन्तु देव ! महल पर लौटने में विलंब हो जायगा।'

'चिन्ता नहीं।' राजा ने कहा।

'महाराज ! कितने आदमी होंगे ?'

'क्यों, डर लगता है ?' राजा ने तिरस्कार से कहा।

'पाटण के स्वामी को ऐसा व्यर्थ का साहस शोभा नहीं देता। मुझे आज्ञा दीजिए मैं जाऊं।'

'भाग जाना चाहता है ?' राजा ने व्यंग किया।

'महाराज !' काक ने कठोरता से कहा, 'काक भाग जायगा उस दिन धरती रसातल को चली जायगी।'

राजा ने उत्तर न देकर घोड़े को एड़ मारी। चारों व्यक्ति घोड़ों को दौड़ाते हुए आगे बढ़े। चौकियों के बीच के अरक्षित प्रदेश से होकर वे वेग से आगे बढ़े। पथ उजाड़ प्रदेश में था किन्तु आगे जानेवालों के पद-चिन्हों से वे मार्ग ढूंढ़ लेते थे। बीच में पथ में चढ़ाई थी अतः वे रुके। टेकरी के नीचे एक छोटा किन्तु उजाड़ गाँव दिखाई पड़ रहा था। उसके आगे एक पथ जूनागढ़ की ओर जा रहा था। इस टेकरी के निकट एक और छोटा टीला था जिस पर पत्थर की दीवालों की एक मंजिल की चौकी थी।

'देव ! उस वट के नीचे बैठे हुए वे आदमी ही घोड़ी के चोर होंगे।' जगदेव बोला।

'पन्द्रह के लगभग होंगे।' राजा ने कहा।

'इन्हें ठिकाने लगाने में देर न लगेगी।' जगदेव ने मूंछों पर ताव देते हुए कहा।

राजा ने काक पर दृष्टि डाली। वह मौन होकर सब खेल देख रहा था। उसे छोड़ने का राजा का मन हुआ किन्तु क्रोध अभी शांत न हुआ था और अभिमान पर लगा घाव पूरा न हुआ था।

'अन्नदाता!' कहकर खेमा ने जिस पथ से वे आए थे उस ओर उंगली से संकेत किया। उधर से चालीस सोरठी अश्वारोही आ रहे थे।

'मरे!' राजा ने कहा और उनके मुख से रंग जाता रहा, 'अब?'

'देव! चलिए भाग चलें।' जगदेव को भी स्थिति की गम्भीरता का भान हुआ।

'और कोई चारा ही नहीं।' राजा ने कहा और जूनागढ़ की ओर जानेवाले पथ की ओर उन्होंने घोड़े का मुंह मोड़ा। जगदेव ने भी वैसा ही किया। तड़ित् की चपलता से काक ने खेमा की ओर देखा। खेमा समझा। कटार निकालकर एक झपाटे में काक के बन्धन काट डाले। काक के हाथ स्वतन्त्र होगए—उसका घोड़ा एकदम स्थिर खड़ा हो गया। सरपट भागते जगदेव के हाथ से लगाम छूट गई। एक ही छलांग में काक का घोड़ा सबसे आगे निकल गया। नंगी तलवार को सामने कर यमराज के समान काक घूमा।

'महाराज! इस पथ से न जाइए।'

जयसिंहदेव के मुंह का रंग उड़ गया। जगदेव ने तलवार की मूठ पर हाथ रखा। काक के अङ्गरक्षक खेमा ने जगदेव के तलवार निकालने से पहले ही उसके हाथ तोड़ डालने के लिए लकड़ी आधी ऊपर उठाई।

'परमार! सावधान, तलवार निकाली तो। नहीं तो तुम्हारे हाथ तोड़ देने पड़ेंगे।'

'चांडाल! द्रोही—' क्रोध और साहस से ऊपर देखते हुए जयदेव बोले। उनके होंठ फड़के, उनकी आंखों से चिनगारियां निकलने लगीं। उनका हाथ तलवार पर गया।

'देव !' काक ने तनिक नम्रता से कहा, 'यह समय लम्बी बातें करने का नहीं है। आप एक दूसरी भूल भी करते आए हैं—देखिए !' काक ने सोरठी सैनिकों की ओर संकेत किया।

वे सब हथियार ऊँचे किये हर्षनाद करते हुए आगे बढ़ रहे थे।

'देखिए महाराज ! आपको उन लोगों ने पहचान लिया है। अपने घोड़े की नालें तो देखिए—अँधेरी रात में भी पहचानी जा सकें ऐसी हैं। पाटण का सत्यानाश होने आया है।' कहकर काक ने राजा के घोड़े की सुनहरी नालों की ओर संकेत किया।

'किन्तु हरामखोर ! मुझे जाने से क्यों रोकता है ?'

'ये लोग आपको अभी पकड़ लेंगे। यह पथ एभल नायक की चौकी पर जाता है।'

'एभल नायक !' जयदेव ने घबराकर कहा।

'हाँ महाराज ! अब समझे ? आप मृत्यु के मुख में जा रहे थे।'

'तो क्या करें ?' जगदेव ने कहा।

'सुनिए, जैसा मैं कहूँ वैसा करिए।' काक ने कहा।

उसकी आंखों में स्थिर तेज था, उसकी भवों पर भयंकर शांति थी, उसके मुख पर अटल सत्ता थी। जगदेव मौन रहा। महाराज भी मौन रहकर उसकी शक्ति देखने लगे।

'वह चौकी देखो ? आप उसमें घुस जाइए और चौकीदारों को ठिकाने लगाइए। आपकी कलंगी पहनकर मैं आपके घोड़े पर बैठता हूँ। भ्रम में डालकर इन्हें मैं दूर ले जाता हूँ। सौ सैनिक भी आ जायँगे तो भी उस चौकी में रहकर आप लड़ सकेंगे और अवसर देख कर भाग सकेंगे।'

'किन्तु तुझे वे मार डालेंगे।'

'महाराज ! बातें करने का समय नहीं है।' सत्ता-भरी वाणी में काक ने कहा, 'पाटण से अधिक काक का मूल्य नहीं। चलिए।' वह महाराज का घोड़ा पकड़कर चौकी की ओर जाने लगा।

'किन्तु काक !' राजा ठीक न समझने के कारण चिढ़कर बोले, 'मुझसे यों ज़बरदस्ती क्यों करता है ?' जयदेव अपना घोड़ा तनिक आगे लाए।

'देखिए !' दांत पीसकर काक बोला, 'उन आने वालों को देखा ? एक शब्द भी अधिक बोले तो एक ही प्रहार में अचेत करके उठा ले जाऊंगा। चलिए !' कहकर काक ने महाराज के घोड़े को ज़ोर से चाबुक मारा। वह काक के घोड़े के साथ एकदम टेकरी के नीचे उतर गया। राजा ने काक की मुखमुद्रा देखी। उसका गांभीर्य, उसकी तेजस्विता, उसकी भयंकर स्थिरता, उसकी दूरदर्शिता, इन सबने राजा के हृदय में विचित्र श्रद्धा को जन्म दिया।

थोड़ी देर में वे पत्थर की चौकी के सामने पहुँचे। घोड़े पर बैठे-ही-बैठे काक ने द्वार खटखटाया। एक चौकीदार ने जैसे ही द्वार खोला वैसे ही काक झट से द्वार धकेल कर अंदर घुस गया। राजा, जयदेव और खेमा तीनों उसके पीछे-पीछे गये। किन्तु इसके पहले ही काक ने उस चौकीदार के मुंह पर हाथ रखकर उसको भूमि पर पटक दिया था। उसकी पगड़ी से वह उसके हाथ-पांव बाँध रहा था। यह गड़बड़ सुनकर अन्दर से दो आदमी दौड़े आए। राजा, खेमा और जयदेव तीनों उन पर टूट पड़े। थोड़ी ही देर में तीनों चौकीदार बांध दिये गए।

'महाराज ! आपकी पगड़ी और कलंगी।'

जयदेव ने बिना एक अक्षर बोले ही पगड़ी और कलंगी उतार-कर दे दी।

'खेमा ! जितने बन सकें उतने घोड़े अन्दर ले ले। देव मैं जाता हूँ। खेमा ! ध्यान रहे, महाराज को कुछ भी हो उससे पहले तेरा सिर धड़ से अलग हो जाय।'

'जो आज्ञा !'

'और परमार ! यह महल की व्यवस्था करने जितना सरल नहीं

है। महाराज को कुछ भी हो गया और मैं बचा रहा तो वंथली से बच निकलना कठिन हो जायगा, याद रखना।'

'काक!' प्रशंसा से स्तब्ध बने राजा ने कहा, 'तू रह जा, जगदेव को जाने दे।'

'महाराज! यहाँ रहकर बच जाना सरल है। कठिन काम दूसरों को सौंपने की मेरी टेव नहीं। जगदेव! द्वार बन्द करो।' कहकर काक ने बाहर जाकर द्वार बन्द किया और राजा के घोड़े पर चढ़कर वहाँ से निकला।

: २७ :
चौकी में

काक चौकी से तनिक आगे आया और पीछे आते हुए सैनिकों पर दृष्टि डालकर उन्हें ध्यान से देखने लगा। वे निकट की टेकरी पर आ पहुँचे थे और चारों ओर देख रहे थे। वे इन चारों की गतिविधि समझ पाए हों ऐसा न लगा। काक ने घोड़ा रोका, राजा के जीन से बँधा हुआ छोटा किन्तु दृढ़ धनुष हाथ में लिया और एक अचूक तीर फेंका। तीर का निशाना सालक्ष्य था। तीर जाकर उस टोली के नायक को जो इधर-उधर देख रहा था लगा, और वह घायल होकर घोड़े पर से गिर पड़ा।

और सम्पूर्ण टोली का ध्यान काक की ओर गया। उसके सिर की कलंगी और उसके लाल घोड़े की नालें धूप में चमक रही थीं। विकराल पशु की गर्जना के समान वे एक ही स्वर में बोल उठे, 'जेसंग सोलंकी!' और उसके पीछे भागे। काक को यही चाहिए था। उसने ज़ोर से एड़ मारकर जयसिंहदेव के घोड़े को सरपट भगाया। चौकी के ऊपर के भाग की जाली में से राजा ने काक को भागते हुए और उस टोली के अधिक-

तर अश्वारोहियों को उसके पीछे भागते हुए देखा। इस राजसेवक की भक्ति देखकर उनका हृदय उमड़ आया। कैसे-कैसे वीर योद्धा उसकी कीर्ति की वृद्धि के लिए अपने प्राण दे रहे थे!

'अन्नदाता!' जगदेव ने पीछे से आकर राजा का ध्यान खींचा। 'वे कुछ व्यक्ति हमारी ओर आरहे हैं।'

'हाँ! काक ने जिसे घायल किया था उसे लेकर।'

'और वह देखिए!' एक व्यक्ति को सबसे अलग होकर दूसरी दिशा में जाते देखकर परमार ने कहा। 'मुझे लगता है वह वृक्ष के नीचे बैठे हुए व्यक्तियों को बुलाने जारहा है।' राजा ने कहा।

'सब आ जायँगे।'

'हाँ,' हँसकर राजा ने गिनते हुए कहा, 'पंद्रह-एक तो वे हैं, और एक-दो-तीन-चार-पाँच और वे चार—नौ-दस के आ रहे हैं।'

'तो कुल पच्चीस हुए।'

राजा को विनोद सूझा, 'हाँ! हममें से प्रत्येक के भाग में आठ-आठ पड़ेंगे।'

परमार ने गर्दन हिलाई।

'परमार! नब्बे आवें तब तक तो चिन्ता नहीं।' कहकर राजा पुनः हँसे।

'मैं समझा नहीं।'

'काक के पीछे तीस आदमी गए हैं।' राजा ने शान्ति से कहा, 'खेमा कहाँ है?'

'यह रहा, देव! कहता हुआ खेमा कुछ रोटियाँ और मिरचें लेकर ऊपर आया। 'महाराज! इतना-सा भोजन हाथ लगा है। खा लीजिए। कौन जाने फिर कब भोजन करने को मिले।'

कर्णदेव सोलंकी के रसिक पुत्र को बड़ी और मोटी रोटियाँ देखकर कँपकँपी हो आई। किन्तु उन्हें खेमा की सलाह ठीक लगी अतः रोटियाँ एक-एक टुकड़ा करके बड़ी कठिनाई से गले उतारीं।

'खेमा! उन चौकीदारों का क्या किया?'

'महाराज! उन्हें नीचे कोठरी में बंद कर दिया है।'

'परमार!' महाराज बोले, 'वे लोग यहाँ आएं उससे पहले भाग निकलें तो कैसा?'

'चलिए।' कहकर परमार ने कमरबंध कसा। परमार की परिस्थिति ऐसी गम्भीर होती दिखाई देने लगी कि उसकी बोलती बंद होगई थी। ऐसे समय में बोलने से अधिक युद्ध करना उसे स्वाभाविक लगता। तीनों-के-तीनों नीचे उतरकर घोड़ों के निकट गये। इतने में उन्हें दूर से आते हुए लोगों का स्वर सुनाई पड़ा। जगदेव ने चौंककर चारों ओर देखा; राजा के होंठ कड़े होगए।

'अधिक सैनिक आ मिले हैं।' जयदेव ने कहा।

खेमा भी सावधान हो गया था। वेग से ऊपर जाकर देख आया।

'वे इस ओर आरहे हैं।'

'कितने हैं?'

'बीस-पच्चीस।'

राजा की आँखों में आवेश की चमक थी।

'हम अभी बाहर नहीं निकल सकेंगे।'

इतने में बाहर से आगन्तुकों ने द्वार खटखटाया।

तीनों शांत रहे। थोड़ी देर पश्चात् बाहर वालों ने अधीरता से द्वार खटखटाया और चिल्लाकर कहा, 'चौकीदार! द्वार खोल! खोल!'

किसी ने उत्तर नहीं दिया। कुछ ही देर पश्चात् द्वार पर पदाघात होने लगे और गालियों की बौछार होना प्रारम्भ हुआ।

'अन्नदाता!' जगदेव ने कहा, 'मुझे एक ही मार्ग दिखाई देता है।'

'क्या?'

'मैं बाहर जाकर बन सकें उतनों को ठिकाने लगाता हूँ। दस-पन्द्रह को तो लगा ही दूंगा। तबतक आप यहाँ से भाग निकलें।'

राजा मुस्कराए, 'तो लड़ना तुम्हीं सबको आता है, क्यों ? काक ने संकट से रक्षा की, तू औरों से रक्षा कर और जयसिंहदेव सोलंकी विधवा के समान भाग निकले ! देखता जा, सभी ठिकाने लग जायंगे।'

'किस प्रकार ? हम अन्दर रहकर लड़ न सकेंगे। ऊपर की जाली से तीर भी तो नहीं जा सकता।'

बाहर से लोग अधीर होकर द्वार पर आघात कर रहे थे। दूसरी टोली जो वृक्ष के नीचे बैठी देखी थी वह भी आ मिली थी। वे सब पूछ-ताछ कर जानकारी प्राप्त कर रहे थे। एकाएक एक आदमी ने ढेला लेकर जाली की ओर फेंका। कुछ धूल उड़कर राजा की आँखों में जा बैठी।

'वे सोलंकी के आदमी हैं। एक तो भाग गया। इन्हें झोंटे पकड़कर बाहर निकालो।'

राजा मुस्कराया 'परमार ! जयसिंहदेव सोलंकी कैसा फँस गया ? मीनलदेवी जानेंगी तो कितनी क्रुद्ध होंगी ?'

परमार ने गंभीर मुख से गर्दन हिलाई—'हँस—हंस।' आज तू मरने वाला है, और कल खेंगार यह सुनकर बड़ा प्रसन्न होगा। उस चिपटे नाक वाले को देखा ? मेरी चले तो उसकी नाक खींच लूँ।'

'अन्नदाता ! वे लोग थककर बैठने लगे हैं।'

'यह जाली तनिक बड़ी होती तो एक-एक को एक-एक तीर में बींधता।'

'जाली लकड़ी की है। तनिक बड़ी कर दूं ?' खेमा ने पूछा।

'हाँ।' राजा ने उत्साहित होकर कहा।

'किन्तु वे लोग सुन लेंगे।' परमार ने कहा।

'लेकिन कुछ देर में अधिक व्यक्ति आ पहुंचेंगे तो मर ही जायंगे न ? खेमा ! कोई हथियार है ?'

'नीचे एक कुल्हाड़ी मिली है।' खेमा ने कहा

'जगदेव ! उस पीछे वाली जाली पर पहले जा।'

जगदेव शीघ्र ही उस जाली की ओर गया और थोड़ी ही देर में बीच का टुकड़ा तोड़कर दो छिद्रों को एक कर दिया। खेमा ने महाराज को धनुष-बाण दिये। जयदेव उन्हें लेकर जाली के सामने गए और निशाना लिया और नई टोली में से एक को घायल कर दिया।

घायल सैनिक चीख़कर भूमि पर गिर पड़ा। उसकी चीख सुनकर आगे जाते हुए अधिकतर सैनिक दौड़कर पीछे लौटे। उन्होंने तीर से घायल सैनिक को देखा, तीर किधर से आया यह भी देखा। वे आपे से बाहर हो गए। ललाकारों, गालियों और पत्थरों की बौछार होने लगी। जयसिंहदेव होंठ पीसकर देखने लगे। उनके मुख पर से विलास के चिह्न अदृष्ट होगए, और रसिक स्वभाव की कोमल रेखाएं कठोर हो गईं। वे शांत थे। भय से वे डर जायं—ऐसे न थे क्योंकि उनके हृदय में यह विश्वास जम गया था कि वे सबसे निराले और दैवी हैं। ऐसा भी नहीं था कि कोई उन्हें हटा सके या मार सके। उन्होंने नीचे झुककर दूसरा तीर लिया और चला दिया। एक और सैनिक गिर पड़ा। बाहर लोगों में हाहाकार मच गई। वे पीछे हटकर दूर गए। उनमें फैली खलबली देखकर राजा अपनी मूंछों में हंसे।

थोड़ी देर तक दोनों पक्ष शांत रहे।

'परमार ! वे सब निश्चिन्त होकर बैठे किसी की प्रतीक्षा कर रहे हैं।' राजा ने कहा।

'अन्नदाता ! मुझे तो पल-पल संकट बढ़ता लगता है।'

'कोई मार्ग दिखाई देता है तुझे ?'

'मुझे तो महाराज ! एक ही मार्ग दिखाई पड़ता है।'

'कौन-सा ?'

'मैं घोड़ा लेकर बाहर जाऊं और इन सबसे लड़ इस लड़ाई का

'इन सबके पास तीर-कमान हैं। कोई घायल करदे तो ?' राजा ने कहा।

'किन्तु यहाँ बैठे रहें और अधिक व्यक्ति आ जायं तो ?'

'तब तक कोई हमारी सहायता को नहीं आएगा ?'

'कोई न आया तो ?' परमार ने शंका प्रकट की।

'कैसी बात करता है ?' राजा ने साहस से हंसकर कहा, दो-तीन दिन तक तो बड़ी सरलता से यहाँ बैठ रहेंगे।'

'महाराज ! खेमा खिड़की के सामने खड़ा हुआ था, वहीं से बोला, 'दो दिन कौन रहेगा ? वे तो चौकी जला देने की युक्ति कर रहे हैं।' सब इस प्रकार स्तब्ध हो गए मानो बिजली कड़क उठी हो। फिर सबको वास्तविक स्थिति समझ में आई और सबके हाथों के तोते उड़ गए।

: २८ :

जयसिंहदेव का शौर्य

जयसिंह छलाँग मारकर खिड़की तक गये और बाहर देखने लगे। दो-तीन लोग हाथ लम्बे करके बातें कर रहे थे; एक व्यक्ति चकमक से आग जला रहा था; दूसरे दो-एक लोग सूखी लकड़ियाँ इकट्ठी कर रहे थे। थोड़ी देर तक राजा एकाग्रता से देखते रहे;एक व्यक्ति लकड़ी जलाकर द्वार में आग लगाने के लिए कह रहा था यह स्पष्ट दिखाई पड़ा। स्थिति बड़ी भयंकर लगी। राजा ने एक गहरी साँस ली और भवें तानकर कुछ देर तक विचार किया। थोड़ी देर पश्चात् उन्होंने गर्दन ऊंची की।

'परमार ! तेरी बात सच है। अब हमें मरना या मारना पड़ेगा।'

उत्तर में परमार ने दाढ़ी में बल दिया।

'देख ! एक द्वार खोल दें। यदि बाहर निकलेंगे तो ये लोग बींध देंगे। अतः तू द्वार के बीच खड़ा हो जा। तेरे पीछे मैं खड़ा होता हूँ और सबसे पीछे खेमा बैठा-बैठा तीर चलायगा। इस प्रकार एक के पश्चात् दूसरे को ठिकाने लगा देंगे, और समय देखकर घोड़ों पर बैठकर भाग निकलेंगे।' राजा ने अपनी योजना बताई।

'जो आज्ञा' कहकर परमार सीढ़ियाँ उतरा और अपना प्रचंड खड्ग नंगा करके हाथ में ले लिया। राजा ने एक हाथ में भाला और दूसरे में तलवार ली और द्वार से कुछ दूर पर वे खड़े होगए। घोड़ों को तैयार कर पीछे घुटनों के बल बैठकर खेमा ने निशाना साधा। परमार और खेमा ने महाराज की ओर इस प्रकार देखा मानो यह उनका अंतिम समय हो। फिर भी तीनों जानते थे कि इसके सिवा रक्षा करने का और कोई मार्ग नहीं है। जब तक चालीस योद्धा घेरा डालकर पड़े हों तब तक बचने का कोई मार्ग नहीं था।

'अन्नदाता ! सावधान, मैं द्वार खोलता हूं।'

'खोल !' शांति से सोलंकी ने उत्तर दिया।

परमार ने महाकालेश्वर का स्मरण करके अर्गला हटाई और एक-दम एक द्वार खोल दिया।

द्वार खुलने की आवाज़ सुनकर बाहर बैठे हुए लोग चमके और निश्चिंत होकर द्वारकी ओर बढ़े। दूसरे ही क्षण उन्होंने जयघोषणा की; कितने ही तो हंसने लगे। आगे खड़े हुए सैनिक शस्त्र निकालकर चौकी में से बाहर निकलने वाले को भूमिसात् करने के लिए तत्पर होगए, किन्तु दूसरे ही क्षण वे तनिक चकित होकर खड़े होगए; चौकी के अध-खुले द्वार में से कोई न निकला। सोरठी सैनिक थोड़ी देर तक देखते रहे, फिर आगे बढ़े। एक पल के लिए उन्होंने परमार के उग्र मुख को भया-नक अट्टहास करते देखा और अधीर होकर अधखुले द्वार की ओर बिना सोचे-समझे दौड़ पड़े। उत्साहोन्मत्त सोरठी जैसे ही द्वार में घुसे कि एक प्रचंड यमराज द्वार के पीछे से आगे आया—एक झटके में दो

सैनिकों के सिर धड़ से अलग होकर भूमि में लोटने लगे; पीछे के एक को तीर लगा और वह धरती पर लुढ़क गया। किसी को भान न रहा कि क्या होगया। पीछे आने वाले पीछे हटे और अधखुला द्वार जैसा था वैसा ही निर्जन दीख पड़ा। एक ही पल में यह खेल पूरा होगया। आक्रमण करने वाले चौंक पड़े और दूर हटकर एक-दूसरे से मंत्रणा करने लगे। थोड़ी देर में एक व्यक्ति ने दो तीक्ष्ण बाण छोड़े। वे अधखुले द्वार में होकर आरपार होगए। उत्तर में मात्र परमार का अट्टहास सुनाई पड़ा। खेमा के तीर से घायल हुए व्यक्ति की वेदना-भरी चीत्कार के सिवाय सब कुछ शांत था। चौकी में तीन व्यक्ति प्रतीक्षा करते हुए खड़े थे।

मध्याह्न हो गया। सोरठ का प्रखर सूर्य भी मानो रंग में आ-गया था।

थोड़ी देर में महाराज और उनके साथियों ने नया और अपरिचित स्वर सुना। वह किसी वृद्ध का विनोद-भरा स्वर था।

'छोकरो! क्या कर रहे हो?'

'मरे।' परमार बड़बड़ाया और बंद द्वार के छिद्र में से देखकर बोला,'महाराज! मेरे पीछे छिपकर रहिएगा। एक बूढ़ा आठ-दस अश्वारोही लेकर आया है। एभल नायक के विषय में सुना था, कहीं वही तो नहीं है?'

'बड़ी श्वेत मूँछें हैं? मोटा और नाटे क़द का है?' राजा ने पूछा और फिर जिज्ञासा न रोक सकने के कारण आगे आकर कहा, 'परमार! हट, तनिक देखने दे।'

परमार हटा और राजा ने देखा।

'अनर्थ हो गया! यह तो एभल ही है।'

बाहर अचूक योद्धा आया है इसका प्रमाण तुरन्त ही मिल गया।

राजा देखने लगे अतः परमार के शरीर का कुछ भाग खुले द्वार में से दीखा ही था कि सन् करता हुआ एभल का तीर आया। एभल

का निशाना चूकता नहीं था किन्तु परमार के भाग्य से तीर उसके शरीर पर खरोंच ही कर सका। बाहर के सैनिकों ने एभल को जानकारी दे दी लगती थी। थोड़ी देर तक इस वृद्ध का निश्चिंत हास्य ही सुनाई देता रहा। बाहर के सैनिक चतुर नायक की आज्ञानुसार कुछ युक्ति रचते-से लगे। परमार के स्नायु आवेश में तन गए। 'अन्नदाता!' उसने मोटे स्वर में कहा, 'यह बन्द द्वार भी खोलता हूँ। सावधान रहिएगा। मैं उनको एकदम घुसने देकर फिर द्वार के मध्य में खड़ा होकर युद्ध करूँगा। सोमनाथ भगवान् आपकी सहायता करें।'

परमार होंठ पीसता हुआ बन्द द्वार पर अपना कन्धा टेककर खड़ा हो गया। बाहर के लोग बन्द द्वार के सामने रहकर, दो-तीन बड़े लट्ठों को पकड़कर उनकी शक्ति से द्वार खोलने के लिए आए। उन्होंने एक नारा लगाया और लट्ठों से द्वार पर आघात किया। घर कांप उठा। द्वार थोड़ा-सा खुला किन्तु जगदेव के बल से पुनः बन्द हो गया। सोरठी सैनिक पीछे हटे और पुनः लट्ठों को साथ बांधकर निनाद किया। परमार कुछ पीछे हटकर खड़ा हो गया। बाहर के झटके से निराधार द्वार एकदम खुल गया। आक्रमण करने वाले कुछ लोग गिर पड़े।

'जय सोमनाथ' की भयंकर घोषणा करके परमार उन पर टूट पड़ा और देखते-देखते घायल हुए सैनिक चारों ओर भागने लगे। दोनों द्वार खुल गए थे अतः बाहर निकलकर दोनों द्वारों के मध्य में खड्ग घुमाता हुआ परमार खड़ा हो गया। उसने अनेक युद्धों में भाग लिया था किन्तु आज स्वामी के संरक्षण के लिए उसमें विचित्र शौर्य आगया था। उसकी प्रचण्ड भुजाओं में अपार बल प्रकट हुआ। उसकी लम्बी तलवार दसों दिशाओं में नृत्य कर रही थी मानो कोई महाज्वाला पवन में नृत्य कर रही हो। खड्ग के प्रहार उसे स्पर्श नहीं कर रहे थे, तीरों की वर्षा खड्ग से अड़कर छितरा जाती थी। एभल

उसकी ओर बढ़ रहे थे, किन्तु परमार को कभी-कभी घायल करने से अधिक वे कुछ न कर सके।

पीछे महाराज भी सावधान होकर खड़े हुए थे। परमार पर अचानक होते प्रहारों को झेलना और उसके सामने आने वाले को ठिकाने लगाना—यह काम वे करते रहे। परमार थोड़ी देर में थक जायगा अतः इस आक्रमण का सामना करने का काम उन पर ही आएगा यह महाराज समझते थे और उसके लिए वे तैयार भी होगए थे। पीछे बैठे खेमा के तीर भी अचूक निशाने पर लगा किए।

घड़ी दो घड़ी तो परमार शौर्य से लड़ता रहा किन्तु इसके पश्चात् उसका श्वास थकने लगा और स्थान-स्थान से रुधिर बहने लगा। सामने के वृक्ष के नीचे घोड़ी पर बैठा हुआ एभल हँस रहा था और विपक्ष के सभी सैनिक अभी थके नहीं थे। महाराजा सोच ही रहे थे कि क्या करें इतने में खेमा ने पीछे से उनके कन्धे पर हाथ रखा, 'महाराज! चौकी के बाहर निकलिए। उस दुष्ट ने पीछे से छप्पर पर से आदमी चढ़ाए हैं। वे उधर से उतरकर अभी आने ही वाले हैं। तब हमारी दशा चक्की के दो पाट के बीच में की हो जायगी।'

'ठीक।' जयदेव ने कहा, 'परमार! तनिक आगे बढ़ जिससे मैं और खेमा बाहर निकल सकें। पीछे से सैनिक आरहे हैं।'

परमार ने सुना या न सुना कुछ मालूम नहीं, किन्तु वह खिसक अवश्य गया। जयदेव बाघ के समान छलांग मारकर बाहर निकले। उनका सुन्दर मुख तेज से दीप्त था, उनकी विशाल आंखें लाल-पीली हो रही थीं। उन्होंने जय सोमनाथ की घोषणा की और दीवाल की ओर पीठ करके लड़ने लगे। एक से दो होते देखकर सभी सोरठी योद्धा उन पर टूट पड़े।

खेमा द्वार के सामने पड़े हुए शव के निकट लेट गया। वह धीरे-धीरे पेट के बल आगे सरक रहा था। उसने धनुष-बाण बड़ी दृढ़ता से पकड़ रखे थे। महाराज का आक्रमण इतना अचिंत्य था कि किसी

ने खेमा की ओर ध्यान नहीं दिया। एभल नायक ने धूप से बचने के लिए कपाल पर हाथ की ओट की।

'कौन, जैसंग सोलंकी ?' उसने मोटे स्वर में कहा, 'जो इसे जीवित पकड़ेगा उसे एभल नायक का पद प्राप्त होगा !' जयसिंह सोलंकी को स्वयं इस प्रकार लड़ते देखकर योद्धा पल-भर के लिए पीछे हटे और फिर 'रा' खेंगार की जय' कहकर टूट पड़े। महाराज का रक्त लहरें मार रहा था। उनकी आँखें लाल होगई थीं। उन्होंने रक्त के प्यासे सैनिकों को बढ़ते हुए देखा, दूर एभल नायक को मूंछों पर ताव देते देखा, निकट ही परमार को भयंकर शौर्य दिखाते हुए देखा। उन्हें लगा कि परमार उनकी ओर आते सैनिकों को स्वयं रोक रहा था, किंतु उसका श्वास रुक रहा था और उसके कपाल से रक्त की धाराएं बह चली थीं, अतः वह कितनी देर तक टिक सकेगा यह नहीं कह जा सकता था। जयदेव के हाथ में तलवार फूल के समान घूम रही थी। वे प्रहार झेलते और करते। तीरों की वर्षा करते; और रह-रहकर 'जय सोमनाथ' का घोष कर उठते। उन्हें लगा कि आज उन्होंने अपनी लाज रख ली। उन्हें उनके पूर्वज उत्साहित करते हुए सुनाई पड़े। स्वयं की परमभट्टारक की उपाधि सार्थक होती लगी। गर्व के कारण शौर्य जितना था उससे कहीं अधिक बढ़ गया। एक क्षण के लिए उनकी आँखों के सामने अँधेरा आया—गया। उन्हें अधिक अच्छी तरह दिखाई देने लगा। मात्र उनके कानों में कुछ स्वर सुनाई पड़ने लगे। उनका दायां हाथ कुछ ढीला पड़ने लगा। एक क्षण में हाथ पलट लिया। वे बाएं हाथ से खड्ग घुमाने लगे। सामने से आते हुए सैनिकों के मुख पर उन्हें कायरता दिखाई पड़ रही थी। हो सकता है यह मात्र भ्रम ही रहा हो।

एकाएक परमार गरजकर अपनी ओर आते हुए सैनिक पर टूट पड़ा।

यह इस प्रकार क्यों घबराता है ? वह स्वयं तो अभी तक नहीं

थका! चारों ओर सैनिक घायल हो-होकर गिर रहे थे किन्तु खेमा किधर गया?—

एकाएक एक चीत्कार सुनाई पड़ी। महाराज ने ऊपर देखा। उन्होंने कपाल पर से स्वेद और रक्त पोंछा। सामने घोड़ी पर से एभल नायक भूमि पर गिर पड़ा था। किसीने उसे बाण मार दिया था। क्या खेमा ने मारा?

'शाबाश!' महाराज के मुंह से निकल गया। सैनिकों में खलबली मची। वे एभल नायक को देखने के लिए दौड़े। बेभान परमार ने लौटते हुए एक-दो सैनिकों को समाप्त किया ही था कि खेमा कूदकर आ पहुंचा। उसने राजा पर आक्रमण करने वाले दो-चार सैनिकों को ठिकाने लगाया। दो-तीन भाग गए। राजा की आँखों के सामने अंधेरा होने लगा। उन्होंने दीवाल पर हाथ टेका। वे तलवार अब भी घुमा रहे थे किन्तु अब किसी को लग नहीं रही थी। परमार उनकी सहायता को आ रहा था, किन्तु निकट आते-आते धम से गिर पड़ा। राजा का कंठ सूख गया। उन्हें चक्कर आगए।

'देव! इस पानी से मुंह धो लीजिए।' खेमा का स्वर सुनाई पड़ा।

उन्होंने पानी लिया और मुंह पर डाल लिया। अब उन्हें कुछ-कुछ स्पष्ट दिखाई देने लगा। सब सैनिक भूमि पर पड़े हुए थे। परमार उनके पावों के सामने पड़ा हुआ था। खेमा और वे दोनों खड़े हुए थे।

'कहाँ गए सब?' राजा ने इस प्रकार पूछा मानो वे कुछ समझ न पाए हों।

'यम के घर; कुछ भाग गए। महाराज आप दोनों ने मिलकर ही सभी को समाप्त किया है।'

'और एभल को तूने मारा?'

'हाँ महाराज! आप बाहर निकले और मैं लेटा-लेटा धनुष तीर लेकर निकला और पेट के बल सरकते-सरकते उसे तीर मारा।'

'जीता रह !'

'महाराज ! अब समय नहीं है। वह काली घोड़ी वहाँ चर रही है। वह परशुराम ही की लगती है। थकी हुई नहीं लगती। मैं सब कर लूंगा, आप वंथली जाइए। अब और कोई आजायगा तो लड़ने की शक्ति नहीं है।'

'यह क्या कहता है ? जयदेव से कोई जीता भी है ?'

'जब तक सोमनाथ भगवान् की कृपा है तब तक क्या हो सकता है ?' कहकर खेमा घोड़ी ले आया और सहारा देकर जयदेव को उस पर चढ़ाया।

'थोड़ा पानी पी लीजिए और खड़े रहिए, यह तलवार साफ करके देता हूँ, और यह धनुष-बाण भी लेते जाइए। हाँ, ठहरिए, इन एक-दो बड़े घावों को भी बाँध देता हूँ।' कहकर खेमा राजा की टहल में लग गया।

'तू भी तो चल !'

'देखूँ तो सही कि परमार जीवित है या नहीं।'

'खेमा ! आज तो हमने हद ही कर दी।' राजा गर्व दिखाए बिना न रह सके।

'महाराज ! काकभटजी का पता लगवाइएगा।' खेमा ने सूचित किया।

'अवश्य' राजा ने कहा और घोड़ी को एड़ मारी। परशुराम की सुविख्यात घोड़ी हिरन के समान उछलकर बढ़ी।

ताप दुःसह था, किन्तु राजा के मस्तिष्क में विजय का प्रमाद था। अकेले ही दुर्जय एभल और सोरठी सैनिकों को ठिकाने लगाया था और परशुराम की घोड़ी लौटा लाए थे। उनकी रगों में रक्त उछल रहा था, उनकी आँखों के सामने रंग-बिरंगे चित्र दिखाई दे रहे थे। सब कुछ अपार्थिव दिखाई पड़ रहा था। घोड़ी पवनवेग से जा रही थी। चारों ओर की वस्तुएँ भागती-सी लग रही थीं।

उनके नथुने फूल रहे थे, उनके घावों में से रक्त निकल रहा था। किन्तु उनके कान में विजय-घोषणा हो रही थी। एकाएक एक की अनेक घोषणाएं हो गईं। चारों ओर से अश्वारोही निकल आए। ये सब कहाँ से आगए यह समझ में न आया। आगे आनेवाला परशुराम-सा लग रहा था।

साथ में कोई अपरिचित पुरुष भी था। नहीं, अपरिचित नहीं—उसका मुख उसकी रानी के समान था। उन्होंने घोष किया—'जय-सिंहदेव महाराज की जय!'

'जय सोमनाथ!' राजा ने कहा।

सभी उन्हें घेरकर खड़े हो गए। उनका गला सूखने लगा।

'कौन, देवी? तुम कहाँ से? परशुराम....तुम्हारी....घोड़ी'....राजा ने बोलने का प्रयत्न किया किन्तु कंठ रुंध गया। 'परमार! काक.... खेमा....एभल' किन्तु कुछ भी स्पष्ट न निकल सका। लोगों ने उन्हें उठाया....अँधेरा हो चला था।

: २६ :

काक का क्या हुआ?

दूसरे दिन रात्रि को जयसिंहदेव महाराज को लगा कि उनके अंग-अंग में पीड़ा हो रही है और उसके हाथ-पाँव पर पट्टियाँ बंधी हुई हैं। क्या वे बंदी बना लिये गए? क्या उन्होंने एभल नायक और सोरठियों पर विजय प्राप्त की यह बात सच नहीं है? उन्हें लीलादेवी और परशुराम मिले वह क्या स्वप्न था? उन्होंने आँखें खोलने का प्रयत्न किया, किन्तु ऐसा लगा मानो वे सी दी गई हों। बड़ी कठिनाई से

वे आँखें खोल पाए। क्या वे कारागृह में थे ? पाँवों की ओर दो वृद्ध मनुष्य बैठे थे। सिरहाने के निकट एक स्त्री बैठी हुई थी। उन्हें सभी के मुख परिचित लगे।

'बेटा ! जयदेव !' उस स्त्री का स्वर सुनाई पड़ा।

जयदेव ने स्वर पहिचाना, 'माँ, मैं कहाँ हूँ।'

'राजमहल में।' मीनलदेवी ने कहा, 'वैद्यराज, दवा लगाओ।'

'बहुत अच्छा।' कहकर वैद्यराज ने दवा लगाई। राजा को कुछ आराम मिला।

'माँ ! परमार कैसा है ? कौन महेता जी ?' राजा ने पावों की ओर बैठे हुए दूसरे वृद्ध को संबोधन करके कहा।

'हाँ, महाराज !' मुंजाल ने कहा, 'परमार अच्छा है। चिन्ता न कीजिए।'

'और एभल नायक ?'

'उसका जीना कठिन है।'

'और काक का क्या हुआ ?'

'तू क्यों चिन्ता कर रहा है ?' मीनलदेवी ने पूछा।

'मैं न करूं तो कौन करेगा ? वह तो मेरा दायां हाथ है।' राजा ने तनिक चिढ़कर कहा। वैद्य ने उनके हाथ-पर-हाथ फेरा। मीनलदेवी ने राजा के माथे पर हाथ रखा। राजा तनिक अस्वस्थ होने लगा। राजा की मच्छरदानी के पीछे से एक निःश्वास सुनाई पड़ा। राजा ने सुना। उनके मस्तिष्क के आगे लीलादेवी का मुख आया।

'महेताजी ! मैं कब अच्छा हो जाऊँगा ?'

'शीघ्र ही—दो-तीन दिन में ! चोट बहुत थोड़ी लगी है।'

'परशुराम कहाँ है ?'

'बेटा उसे बुलवाने भेजूं ?'

'हाँ।'

मीनलदेवी की आज्ञा पाकर एक अनुचर परशुराम को बुलाने

गया। राजा आँखें मींचकर पड़े रहे। थोड़ी ही देर में दंडनायक आ पहुँचे। राजा उसकी प्रतीक्षा ही कर रहे थे अतः उसके आते ही उन्होंने आँखें खोलीं।'

'परशुराम !'

'आज्ञा।'

'काक की खोज की ?'

'महाराज ! चिन्ता न कीजिए। उसके लिए चारों ओर अनुचर दौड़ा दिए हैं।'

'मां ! मैंने उसके प्रति अन्याय किया और एक वह है कि मेरे लिए मृत्यु के मुख में गया। वह न होता तो आज हम सब एभल नायक के बंदी बन जाते।'

'खेमा ने मुझे सब कह दिया है।' मीनलदेवी ने कहा, 'और खेमा स्वयं काक को खोजने गया है।'

'कौन जाता है और कौन रहता है इसकी मुझे चिन्ता नहीं। मुझे काक मिलना चाहिए।'

'महाराज !' मुंजाल ने कहा, 'आप इस समय शांत रहें। कल प्रातःकाल इच्छा हो तो आप स्वयं खोजने जाइएगा। मुझे भी काक की चिन्ता है।'

'नहीं तो उस खेंगार का पूरा-का-पूरा गिरनार उखाड़ फेंकूंगा।' राजा ने कहा।

'अन्नदाता ! अब मौन होकर सो जायं तो अच्छा।' वैद्यराज ने कहा। राजा ने पक्ष पलटा।

दूसरे दिन प्रातःकाल खेमा लौट आया। उसने कल जहां युद्ध हुआ था वहां से पदचिह्नों के पारखियों की सहायता से काक के अश्व द्वारा पकड़ा हुआ मार्ग भी खोज डाला था। पदचिह्नों से लगा कि राजा से विदा होकर वह एकाध योजन आगे गया, पीछे सोरठियों की टोली भी बढ़ी चली आ रही थी, और सामने से कुछ दूसरे

व्यक्तियों के आने के चिह्न भी थे। वहां भिड़न्त के चिह्न भी थे। कुछ व्यक्ति मरे, ऐसा भी लगा। वहां से अनुमानतः सभी एभल नायक की चौकी की ओर गये।

आगे बढ़ना खेमा को बुद्धिपूर्ण न दिखाई दिया। किन्तु दो बातें स्पष्ट हो गईं—एक तो यह कि काक बन्दी बना लिया गया, और दूसरी यह कि उसे एभल की चौकी पर ले जाया गया। किन्तु काक जीता पकड़ा या मरा, एभल ने उसे बन्दी किया या मार डाला, वह चौकी में था या नहीं, इन प्रश्नों का निर्णय न हो सका। मुंजाल और परशुराम ने मन्त्रणा करके निश्चय किया कि इस समय एभल की चौकी पर हमला करने से कुछ हाथ न लगेगा क्योंकि यदि क्रुद्ध सोरठी आवेश में आ जाते तो काक को मार डालते। एभल इस समय अचेत था अतः उससे भी कुछ मालूम न हो सकता था।

स्थिति गम्भीर हो गई। अच्छे होकर महाराज में काक को खोजने की अधीरता इतनी बढ़ गई थी कि उन्हें पुनः ज्वर चढ़ आया। जगदेव परमार जीवन और मृत्यु के बीच झूल रहा था। एभल नायक मृत्यु के द्वार में जा खड़ा हुआ था। मुंजाल ने सम्पूर्ण अधिकार अपने हाथ में ले लिये। राजगढ़ के द्वार बन्द करके, राजा के अच्छे हो जाने का समाचार चारों ओर फैला दिया गया। सम्भव है एभल का बदला लेने के लिए सोरठी काक को मार डालें इस भय से एभल भी अच्छा है यह समाचार जूनागढ़ तक पहुँचाने की युक्ति की गई। सम्भव है इस समाचार का लाभ उठाकर खेंगार आक्रमण कर बैठे अतः ऐसा प्रबन्ध किया गया कि वह विजयी न हो सके। चारों ओर की चौकियाँ दृढ़ कर दी गईं। परशुराम के स्थान पर मुंजाल बठे और चारों दिशाओं का अधिकार महाआमात्य ने अपने हाथ में ले लिया।

मीनलदेवी और वैद्यराज ने राजा की दशा सुधारने का प्रयत्न किया। लीलादेवी मर्यादा के कारण राजा के निकट न बैठ सकीं।

तीन दिन हो गए, काक का पता न लगा। यदि वह जीवित होता

और बन्दी न बना होता तो अवश्य लौट आता। और यदि उसे एभल नायक ने पकड़ा होता तो वह एभल नायक के साथ क्यों न था? सभी के मस्तिष्क में यह भारी शंका उत्पन्न हो गई कि काक एभल के साथ लड़ते हुए मारा गया। यह शंका जैसे-जैसे दृढ़ होती गई वैसे-वैसे प्रत्येक व्यक्ति के आचरण में परिवर्तन होने लगा। मुंजाल का मुख गम्भीर हो गया, और उनकी वाणी में मधुरता का स्थान कटुता ने ले लिया। मीनलदेवी को लगा कि काक की मृत्यु बड़ा अशुभ चिह्न है और उसका अमंगल प्रभाव उनके पुत्र और उनकी पुत्रवधू पर अवश्य होगा। परशुराम उग्र हो गया और उसकी आंखें ऐसे रहने लगीं मानो धुड़क रही हों, और उनमें क्रोध का आवेश होते हुए भी वे अपनी बेचैनी न छिपा सकीं। लीलादेवी तो सिंहनी के समान अकेले ही इधर-से-उधर चक्कर काटती रहीं।

राजगढ़ पर चिंता के मेघ छा गए थे। प्रत्येक के हृदय में किसी नई, किसी अपशकुन-भरी बात की झनझनाहट हो रही थी।

तीसरा खण्ड

: १ :

अक्षयतृतीया का उत्सव

अक्षयतृतीया की संध्या थी। भृगुकच्छ में गंगनाथ का विशाल मेला लगा था। आज कितने ही दिन से गाँव-गाँव से लोग इस उत्सव में भाग लेने के लिए चले आरहे थे। किसी भी अक्षयतृतीया पर इतने अधिक लोग एक साथ एकत्रित हुए हों ऐसा किसी को स्मरण नहीं आता था।

रेवास्नान या यात्रा के बहाने, लाट की राजधानी में घूम आने के बहाने, आनन्द करने के बहाने, व्यापार-वृद्धि करने या 'आढ़त' निश्चित करने के बहाने, विभिन्न स्थानों का दर्शन करने के बहाने, या साल-भर के लिए अनाज भर ले जाने के विचार से—यों अनेक कारणों से लोग अक्षयतृतीया पर लाट में एकत्रित होते थे; ऐसे समय पर रेवास्नान का माहात्म्य भी बढ़ जाता था; और गाँव-गाँव से ब्राह्मणों के संघ श्रद्धा प्राप्त करने या उसका प्रचार करने आ पहुँचते थे। तीन-चार दिन के लिए यात्री उत्सव में रँग जाते थे; और प्रत्येक प्रकार के रास-रंग में स्वच्छंद होकर निमग्न हो जाते थे।

रेवाजी के विशाल तट पर फूस की कामचलाऊ कुटियां बनाकर लोग पड़े थे; सम्पूर्ण गाँव में चींटियों के समान लोग उमड़े पड़ रहे थे। रात-दि कीर्तन भजन होते थे। मंदिरों और घाटों पर लोग जमा रहते थे।

इस वर्ष मेले में दो वस्तुएँ असाधारण थीं। मेले में आनेवाले स्त्री-बच्चों को बहुत कम ला रहे थे; और इतने बड़े मेले में विदेशियों की दुकानें इनी-गिनी ही थीं। लूट लिये जाने की गप्प भी कुछ-कुछ उड़ चुकी थी, किन्तु इसे कोई मानता न था। लोगों में इतना अधिक उत्साह

था और नगर के रसिक लोग इस अवसर पर आमोद-प्रमोद में इतने तल्लीन होगए थे कि कोई भी यह न देख सका कि इस मेले में कुछ-न-कुछ असाधारणता अवश्य है।

अक्षयतृतीया की संध्या को सरिता तीर पर लोगों की विचित्र भीड़ थी। कोई गा रहे थे, कोई 'गङ्गनाथ की जय' कह रहे थे, कितनी ही भजनमंडलियाँ कीर्तन कर रही थीं। कुछ रसिक लोग चक्राकार बैठकर इधर-उधर की बातें कर रहे थे, कई सरिता में जलते हुए दीपक छोड़ने की तैयारी में लगे हुए थे, कई आतिशबाज़ी छोड़ने के लिए अँधकार होने की प्रतीक्षा से बैठे हुए थे; कई धीवरों से सरिता में घूमने का मूल्य ठहरा रहे थे।

फिर भी, न जाने क्यों कई विदेशी मौन होकर चुपचाप इधर-उधर घूम रहे थे। ज्यों ही अँधेरा होने लगा त्यों ही वे शीघ्रगति से छिप-छिप कर गलियों में घुमने लगे।

पट्टणी सैनिक भी इस पर्व का पूरा-पूरा लाभ उठाने के लिए गले में हार पहनकर, हाथ में छड़ा लेकर अन्य व्यक्तियों के साथ मिल-जुल कर आनंद से घूम रहे थे।

रात होने आई। नगर में दीपमालिका-सा प्रकाश हो गया।

इस मेले का मुख्य अंग गंगानाथ महादेव और नर्मदा की मूर्ति की आरती थे। महादेव की आरती में पुरुष जाते थे और नर्मदा की आरती में स्त्रियाँ जाती थीं। गंगानाथ का प्राचीन मंदिर छोटा किन्तु सुन्दर था। उसका मध्यद्वार छोटा था और उसके अंदर के अंधेरे स्थान में विशाल शिवलिंग बड़ी कठिनाई से दिखाई पड़ता था। इस समय लिंग पर रूपहरी झालर झूल रही थी, और चार दीपकों का अस्थिर और मंद प्रकाश अंदर के अंधकार को भेद रहा था। तीन ब्राह्मण सिर नीचा किए रुद्री कर रहे थे।

बाहर मंडप में वेदी के निकट दो दीपकवृक्षों में जलते हुए अनेक दीपक मामूली-सा प्रकाश करते हुए वातावरणको पूज्यभाव उत्पन्न करने

की अद्भुत शक्ति प्रदान कर रहे थे। इस वातावरण में रह-रहकर भक्त-जन सजलनयन होकर जगपावनी गंगा के स्वामी के दर्शन करके पाप-मुक्त हो रहे थे।

रात होने आई। अतः दर्शनार्थियों को अंदर आने से रोक दिया गया। जितने मंडप में थे बस वे ही खड़े रहे। देखते-ही-देखते मन्दिर के सामने दर्शनार्थियों और मेले में घूमने वालों का झुंड जम गया। आरती का समय होगया था अतः नगर के अग्रगण्य नागरिक भी आगए थे। नगरसेठ तेजपाल और उनके लाट तथा अन्य नगरों से आये हुए अतिथि, पट्टणी सेना का नायक भटराज माधव और लाट का सेना-नायक रुद्रमल्ल, कोठारी भामा सेठ और दो-चार अग्रगण्य नागरिक—ये सभी आगए थे।

गंगनाथ महादेव की अक्षयतृतीया की आरती पुरातनकाल से बहुत महत्वपूर्ण अवसर माना जाता था। लाट के स्वतन्त्र राजा सभासदों सहित इस अवसर पर उपस्थित रहते थे और आरती समाप्त होने के पश्चात् नगर में राजा की 'सवारी' निकलती थी। लाट की स्वतन्त्रता नष्ट हो जाने के पश्चात् भी पट्टणी सत्ताधीशों ने इस आरती के माहात्म्य की ज्यों-का-त्यों बना रखा था। केवल आरती के पश्चात् सवारी निकालने की प्रथा उन्होंने बन्द कर दी थी।

सभी अग्रगण्य नागरिक आगए थे किन्तु दुर्गपाल आँबड़ महेता न आए थे। इन तीन दिनों में मेले का संपूर्ण उत्साह उनमें भी भर गया था और वे भी आमोद-प्रमोद में निमग्न होगए थे। माधव भी रसिक व्यक्ति था अतः उसने भी जी भरकर रस लिया किन्तु दंडनायक और दुर्गपाल दोनों की अनुपस्थिति में पाटण की सत्ता के प्रतिनिधि स्वरूप कोई-न-कोई तो आरती में होना ही चाहिए यह सोचकर वह आ-गया था। प्रातःकाल उसने आँबड़ महेता से आरती के विषय में पूछा था उस समय उन्होंने आरती में उपस्थित रहने की अनावश्यकता जताते हुए देवभद्रसूरि के उपाश्रय में उपस्थित रहने की घोर आवश्य-

कता के विषय में कुछ कहा था। माधव को यह अच्छा न लगा, किन्तु दुर्गपाल और महेता के पुत्र को उपदेश देना उसने उचित न समझा। तेजपाल सेठ ने अपने भावी जामाता के विषय में पूछताछ करवाई किन्तु कुछ पता न लगने के कारण उन्होंने इसकी चर्चा ही छोड़ दी।

किसी को आरती की तैयारी न करते देख तेजपाल ने मध्यद्वार में गर्दन डालकर कहा—'क्यों गोर, कितना विलम्ब है?'

एक अधेड़ वय के ब्राह्मण ने गर्दन उठाई, 'आज तो पिताजी आने वाले हैं।'

तेजपाल सेठ की आँखें तनिक चौड़ी होगईं। जब से लाट की स्वतन्त्रता नष्ट हुई तब से वृद्ध राजगोर ने किसी भी काम में भाग लेना बन्द कर दिया था। आज उसकी आरती करने की इच्छा से वह तनिक शंकित हो उठा। उसने चारों ओर देखा। कुछ विदेशी व्यक्ति थे और कुछ नगर के अग्रगण्य नागरी थे। उसे शंका निरर्थक लगी।

इतने में पौत्र का सहारा लेकर चलता हुआ, लगभग अंधा हो चुका राजगोर आया। सभी ने स्वागत किया। जयजयकार को स्वीकार करते हुए वह अंदर गया। उसके पुत्र ने पूछा, 'पिता जी, आरती आरंभ करूं?'

'हाँ! संध्या हो गई है। किन्तु—किन्तु—' वह चारों ओर देखने लगा।

उसका पुत्र दीपवृक्ष प्रज्वलित करने लगा। बाहर लोग बात करते रुक गए। राजगोर ने आरती लेने के लिए हाथ बढ़ाया ही था कि द्वार से एक गंभीर और प्रौढ़ स्वर सुनाई पड़ा, 'गुरु! तनिक रुकिए। स्वामी महाराज ब्रह्मानन्द सरस्वती को आ जाने दीजिए।'

सबको ऐसा लगा मानो मंदिर घूम रहा हो। चकित होकर सबने द्वार की ओर देखा। रेवापाल द्वार में खड़ा हुआ था। उसके गंभीर मुख पर अमानवीय गांभीर्य था। उसकी आँखों में गहन आवेश था। ब्रह्मानन्द सरस्वती—पूर्वाश्रम के ध्रुवसेन सेनापति—नष्ट हुए लाट की

अमर महत्ता की सजीव मूर्ति-इस समय यहां! तेजपाल सेठ के मस्तिष्क में, कुछ प्रकाश-किरणें चमकीं। उन्होंने घबराकर अपने पुत्र की भयंकर मुखमुद्रा की ओर देखा। माधव भटराज का कपाल आकुंचित हो गया। उसे लगा वह स्वयं वहाँ न आया होता तो अच्छा होता।

ब्रह्मानन्द सरस्वती ने हाथ में दंड लेकर प्रवेश किया। सबने विशेष सम्मान से उनके लिए मार्ग कर दिया। मंदिर के वातावरण में पूज्यभाव और भी प्रबल हो गया। वे धीरे-धीरे चलते हुए वेदी के निकट जाकर तेजपाल सेठ के निकट बैठ गए। रेवापाल—कालभैरव के समान भयानक और अचल—द्वार के सामने खड़ा रहा।

स्वामीजी के आने से बाहर खड़े लोगों में कुछ हलचल मची। इस धमाचौकड़ी का लाभ उठाकर एक नवयुवक योद्धा मंडप के द्वार तक आ गया। सोमेश्वर—काक का शिष्य और नए गढ़ का गढ़रक्षक, आरती में विलंब से पहुँचने के डर से दौड़ा-दौड़ा आया था। वह द्वार के अंदर आया। उसने रेवापाल को देखा। उसने अंदर ब्रह्मानन्द सरस्वती को वेदी की ओर जाते हुए देखा। शिवलिंग के सामने वृद्ध राजगोर को आरती की तैयारी करते हुए देखा और पिछले दिनों में देखी हुई कई अपरिचित वस्तुओं और सुनी हुई कई गप्पों का स्मरण हो आया। उसकी आँखें चमक उठीं। वह कुछ-कुछ समझ रहा था। वह अंदर घुस कर माधव के निकट जाने लगा। रेवापाल ने हाथ लंबा करके द्वार पर रख दिया।

'सोमेश्वर! आगे स्थान नहीं है।' सत्ता-मय स्वर में रेवापाल बोला।

सोमेश्वर ने क्रुद्ध होकर रेवापाल की ओर देखा। उसने रेवापाल की आँखों में क्रूर तेज देखा। वह रेवापाल का स्वभाव जानता था। शंका कारण शीघ्रता करके झगड़ा मचाने में उसे कोई तथ्य न दिखाई पड़ा। वह रेवापाल के पीछे ही खड़ा रहा। सबको वातावरण रहस्यमय

और क्षुब्ध लगने लगा। राजगोर ने काँपते हुए हाथों से आरती ली और थर-थर करते खड़े हुए। खड़े होते समय पाँव फिसल गया और आरती हाथ से गिर पड़ी—

इसके पश्चात् क्या हुआ कोई न समझ पाया। वातावरण भयंकर स्वप्न के समान हो गया। मंत्र पढ़ने वाले ब्राह्मणों ने फूँक मारकर दीपक बुझा दिए। रेवापाल ने वेग से अगला द्वार बंद कर दिया। संपूर्ण मंडप में प्रगाढ़ अन्धकार छा गया। कहीं लोगों का पगरव—कहीं भाग-दौड़—एक-दो चीत्कार और धक्कमधक्का की आवाज़—और रेवापाल का प्रेतलोक में प्रतिध्वनि के समान अपार्थिव स्वर सुनाई पड़ा—'राजगुरु! स्वतन्त्र लाट की ओर से अब गंगनाथ भगवान् की पूजा करो।'

ब्राह्मणों ने दीपक जलाए। मंडप में एकत्रित हुए नागरिकों ने आँखें खोलीं। वहाँ खड़े हुओं में से अधिकतर के हाथ में नंगी तलवारें थीं और तेजपाल, माधव, रूद्रमल, और भाभासेठ—पाटण की सत्ता के प्रतिनिधि—वहाँ से अन्तर्धान हो गए थे। वेदी के सम्मुख ब्रह्मानन्द सरस्वती खड़े हो गए, 'लाटवासियो! घबराओ मत! लाट आज स्वतन्त्र हो गया है। राजगुरु! आरती प्रारम्भ करो। रेवापाल! मैं कल जोगिया उतार दूंगा।'

'गुरुदेव की जय! गंगनाथ भगवान की जय!' उत्साह से रेवापाल बोल उठा।

'गंगनाथ भगवान की जय!' वहाँ खड़े सब लोग बोल उठे।

राजगुरु ने खड़े होकर आरती प्रारंभ की। रेवापाल बाहर निकला। गंगनाथ की छत पर जाकर उसने एक 'चक्री' लेकर छोड़ी। 'चक्री' उड़कर ऊपर गई और फट पड़ी। सम्पूर्ण नदी-तीर पर उसका प्रतिबिम्ब पड़ा। नीचे नदी-तीर पर सहस्त्रों व्यक्ति आनन्द कर रहे थे। उन्होंने 'चक्री' को फटते हुए देखा।

सोमेश्वर यह सब देखने के लिए खड़ा न रहा। उसने राजगुरु को जान-बूझ कर आरती बुझाते देखा, ब्राह्मणों को दीपक बुझाते देखा,

और रेवापाल को द्वार बंद करने के लिए हाथ बढ़ाते देखा। वह सब समझ गया। लोगों को धक्का मार-मारकर मार्ग बनाते हुए वह साम्बा बृहस्पति के बाड़े की ओर भागा।

नदी-तीर पर आनन्द मनाते पट्टणी सैनिक रेवापाल द्वारा छोड़ी हुई 'चक्री' देखकर हँसने लगे। किन्तु हास्य पूरा होने के पहले ही दो हज़ार सशस्त्र व्यक्ति उन पर टूट पड़े और हाथ बाँधकर उन्हें ले चले। मेले में हाहाकार मच गया। लोगों में भगदड़ मच गई। नगर में द्वार बन्द होने प्रारम्भ हो गए।

'चक्री' उड़ाकर रेवापाल छत पर खड़ा रहा। फिर, वहाँ एकत्रित हुए व्यक्तियों से कहा, 'लाटवासियो! आज हम पशु न रहकर मनुष्य हो गए हैं। पट्टणी सेना को भृगुकच्छ से उखाड़ फेंका है। इस समय खेटकपुर* वटप्रद† जम्बूसर, अंकलेश्वर और नांदोद, माँडवी और कामरेज—सब स्थानों पर उनकी सेना का विनाश प्रारम्भ हो गया होगा।

'बन्धुओ! लाट की शृंखलाएं आज टूट गई हैं—कल प्रातःकाल स्वर्ण का सूर्य उदय होगा। हाथों से निकला लाट कल प्रातःकाल तुम्हारे हाथों में होगा। गुरुदेव ध्रुवसेन सेनापति कल जोगिया उतार देंगे और लाट पर उनका अधिकार होगा। जाओ आनन्द करो और बोलो—गंगनाथ भगवान् की जय!'

वहाँ खड़े हुए कई व्यक्ति समझे। कई न समझते हुए भी खड़े रहे। सबने दुहराया—'गंगानाथ महादेव की जय! ध्रुवसेन सेनापति की जय!'

आनन्दमग्न भृगुकच्छ में घबराहट फैल गई। लोग बिना समझे भागने लगे। उनका उत्साह त्रास में परिवर्तित हो गया। दूकानदारों ने दीपक बुझा-बुझाकर दूकानें बन्द करना प्रारम्भ कर दिया। यात्री

---

* खेड़ा † बड़ौदा

कुछ समझ न सके। किसीके बच्चे खो गए, किसी ने मां-बाप खो दिए, कोई समझ न पाया कि कहाँ जायँ। किसीने कहा पट्टणी मार डाले गए, किसीने सुना कि पट्टणिओं ने मार-काट आरम्भ कर दी है। किसी ने 'ध्रुवसेन सेनापति की जय' सुनी, किसीको विश्वास हो गया कि ध्रुवसेन सेनापति परलोकवासी होगए। प्रत्येक व्यक्ति भागने लगा, प्रत्येक कांपने लगा। सब अपने घर या निवास-स्थान की ओर भागे।

थोड़ी देर में नगर में सशस्त्र व्यक्ति चक्कर काटने लगे और पट्टणी सम्बन्धियों के घरों की तलाशी लेने लगे। जहाँ पट्टणी पगड़ी पहने किसीको देखा उसे बन्दी बनाना आरम्भ किया।

तीन-चार घड़ी पश्चात् कुछ मनुष्यों के साथ रेवापाल गंगानाथ के मन्दिर से बाहर निकला और घोड़े पर चढ़कर नगर की देख-भाल करने के लिए चल दिया।

: २ :

नर्मदा की आरती

भृगुकच्छ में नए दुर्गपाल आंबड़ महेता ने अक्षयतृतीया के उत्सव के दिन पूरा-पूरा आनन्द भोगने का निश्चय किया था। प्रातःकाल जब जी करता उठता और शरीर पर उबटन करवाने के पश्चात् स्नान करके पालकी में बैठकर साम्बा बृहस्पति के बाड़े में जाकर दरबार लगाता था। स्थान-स्थान से आये हुए निमन्त्रणों को स्वीकार करने में और माधव नागर के संग मेले में घूमने में दिन व्यतीत हो जाता था। संध्या को नौका में बैठकर सरिता में घूमने निकलता और जी करने

पर सरिता में दीपक बहाने का काम भी हँसते-हँसते अपने ही हाथों करता।

आँबड़ महेता के हृदय में अविमुक्तेश्वर के मन्दिर में आरती के समय दर्शन करने के लिए जाने में विचित्र श्रद्धा जाग पड़ने के कारण सरिता पर से वह वहाँ जाता, और घूमते-फिरते रात्रि को तेजपाल नगर-सेठ के यहाँ सोने के लिए पहुँच जाता। मार्ग में चलते हुए व्यक्तियों की हँसी उड़ाना, सुसज्जित दूकानों में चले जाना, जहाँ भजन-कीर्तन हो रहा हो वहाँ सुनने के लिए खड़े हो जाना, रात को दीप पर जाकर आतिशबाज़ी छोड़ना, स्वच्छन्द होकर घूमना और हँसना—नवीन दुर्ग-पाल का यह आचरण शिष्टाचार का रूप लेने लगा। उसकी वेशभूषा की नवीनता, उसकी पगड़ी का रंग, उसके चलने का ढंग, उसकी निःसीम उदारता, इन सबमें कुछ ऐसी मोहक निर्लज्जता थी कि भृगु-कच्छ के इने-गिने रसिकों ने पाटण और खम्भात के अग्रगण्य रसिक के सामने सिर झुका दिया और उसके रहन-सहन का अनुकरण कर लाट की रसिकता में बड़े वेग से पट्टणीत्व का समावेश करने लगे। गम्भीर, वयोवृद्ध और शुष्क नागरिकों ने परम्परा से चली आई प्रतिष्ठा की भावना को इस प्रकार भंग होते देखकर निःश्वास लेना आरम्भ किया।

नेरा तोतला दुर्गपाल का अनुचर बन गया था। उसका हँसता हुआ मुख और हँसी छूट जाय वैसा शरीर दुर्गपाल की रसिकता में अभिवृद्धि करते थे।

आंबड़ महेता मेले का आनन्द लेकर दिन में दो बार मंजरी के घर जाता, किन्तु विद्वत्ता और संस्कार की निरन्तर सेवा में परिपक्व बनी हुई मंजरी की रसिकता और पति-वियोग से हतोत्साह हुई उसकी रसवृत्ति को आम्रभट की यह रसिकता दुःसह हो गई। नूतन दुर्गपाल को यह मनोदशा परखने जितना अवकाश न था। अक्षय तृतीया दिन आँबड़ महेता अपने पूरे रंग में था। उसकी विशेषताएं आवश्य-

कता से अधिक ध्यान आकर्षित कर रही थीं। दुर्गपाल के उदाहरण से लाट के अन्य युवकों को भारी प्रेरणा मिली।

प्रातःकाल आम्रभट ने नेरा को बुलाया। नेरा नूतन-दुर्गपाल का विश्वासपात्र अनुचर और सलाहकार हो गया था।

'नेरा! आज क्या?'

'ब....ब....बापू! सं...संध्या' नेरा ने स्वर धीमा करके कहा, 'को दे...दे....देवी रे....रेवाजी की आरती में जायंगी। आ....अ.... आप तो गं....गंगानाथ की आरती में ज....ज....जायंगे न?'

आम्रभट तनिक कुढ़ गया।

'मैं गंगानाथ की आरती में नहीं जाऊंगा, किन्तु रेवाजी की आरती में केवल स्त्रियाँ ही जायंगी, मैं कैसे जा सकता हूं?'

नेरा के मुख पर विशाल हास्य फैल गया। 'न....नेरा पर विश्वास रखिए मेरे अन्नदाता! प....पड़ोस में एक घ....घ...घर है। वहाँ से स....स... सब कुछ दिखाई देता है।'

'किन्तु घर के लोग जान जायंगे तो?'

'कै....कै....कैसी बात करते हैं मेरे स....स्वामी!' नेरा ने थोड़े ही दिनों में आँबड़ महेता के साथ मित्रता कर ली थी, 'पूरे घ....घ... घर में मात्र हम दो होंगे।'

'वाह, नेरा भट।' आँबड़ ने संतुष्ट होकर कहा।

'ब...ब....बापू को घणीखम्मा' कहकर नेरा ने झुककर प्रणाम किया।

आँबड़ ने बड़ी चतुराई से तेजपाल सेठ को अलग किया, माधव को चकमा दिया और संध्या होने पर नेरा को साथ लेकर पैदल ही देवभद्रसूरि के उपाश्रय की ओर चला। मेले का दिन था अतः दुर्गपाल को इस प्रकार जाते देखकर किसीको विस्मय नहीं हुआ। उपाश्रय के निकट एक निर्जन पथ पड़ा। दोनों गली में मुड़ गए। आम्रभट ने अपनी सुसज्जित वेशभूषा उतारकर नितांत सादी पोशाक

पहन लीं। दोनों जल्दी-जल्दी चलकर पुनः नदी-किनारे आकर नर्मदा के मंदिर के निकट आगए। मंदिर के सामने एक छोटा-सा घर था। नेरा ने कुंजी निकाल कर ताला खोला। दोनों ने अंदर जाकर द्वार बंद कर लिया। द्वार के निकट एक खिड़की थी। नेरा ने उसे खोल दिया और उसी के निकट एक गद्दी-तकिया रख दिया। खिड़की में से रेवाजी का मंदिर दिखाई पड़ता था। यह मंदिर छोटा किन्तु सुघड़ था और मूर्ति भी बहुत पुरानी थी। गतवर्ष ही त्रिभुवनपाल दंडनायक ने पाटण से कारीगर बुलवाकर उसका पुनरुद्धार करवाया था। उसका छोटा और सुन्दर शिखर ऐसा लग रहा था मानो वह रूद्रदुहित नर्मदा की लावण्यमय देह की प्रतिमा हो। मंदिर का मंडप इतना छोटा था कि ऐसे अवसर पर दर्शन करने के लिए आनेवालों को बाहर के चबूतरे पर ही खड़ा रहना पड़ता था।

लगभग पच्चीस-एक स्त्रियाँ आ पहुँची थीं, और धीमे-धीमे दूसरी भी आ रही थीं। आँबड़ ने तकिए पर सिर रखकर आगन्तुक स्त्रियों को देखना प्रारंभ किया। वहाँ निर्धन स्त्रियाँ भी थीं और आभूषणों के भार से झुकी हुई धनाढ्य स्त्रियां भी थीं। धनवानों की कुलवधुओं में होड़ भी स्पष्ट दिखाई पड़ रही थी। उनमें एक-दूसरे को चका-चौंध करने के प्रयत्न चल रहे थे। निर्धन से धनी बनी स्त्रियों का आडम्बर और परम्परा से धनी और संस्कारशील स्त्रियों के आभूषण पहनने की सरलता, निर्धन होते हुए भी धनवान समझे जाने के लिए व्याकुल स्त्रियों का ठाठ और धन रहते हुए भी सादगी से रहने वाली बुद्धिमान् स्त्रियों की छटा, ये सब वहाँ दिखाई पड़ रहे थे। कई वृद्ध होते हुए भी तरुणियों में गिनी जाने के लिए व्यग्र थीं और कई तरुण होते हुए भी वयभार से दबी हुई और बुद्धिमान होने का स्वांग भरती थीं, कितनी ही रूपगर्विताओं की भृकुटि स्पष्ट दिखाई पड़ती थी और कई लजीली युवतियां नीचा मुँह किए अपना रूप छिपाने का निष्फल प्रयत्न कर रही थीं। एक बहुत ही मोटी स्त्री, बहुत मोटे वलय पहन-

कर, बहुत शीघ्रता से चलने का प्रयत्न करती हुई चली आ रही थीं। दो सुन्दर बहनें, एक-दूसरे के हाथ-में-हाथ डालकर पवन में झूमती दो लताओं के समान चलकर आ पहुंचीं। छोटी बच्चियों का एक समूह कूदता, किल्लोलें करता आ पहुंचा। आँबड़ महेता मंजरी की प्रतीक्षा में अनुभवी रसिक की सूक्ष्मता से यह सब देखने लगा।

नगरसेठ के घर से भी स्त्रियाँ आ गईं। रेवापाल की स्त्री बेनां आगे आई। आँबड़ महेता इस स्त्री को देखते ही उकता जाता था और उसके संसर्ग से कैसे दूर रहे इसकी युक्ति भी कभीकी सोच ली थी। उसके पीछे उसकी सोलह वर्ष की भावी पत्नी उछलती-कूदती आई। आँबड़ विचार करने लगा कि उसके साथ जीवन भली प्रकार व्यतीत होगा या नहीं—उसका चित्त व्यग्र हो उठा। इतने में तीन स्त्रियाँ आईं। उसका हृदय उछल पड़ा।

तीन में सबसे आगेवाली देवदार के समान लम्बी और सुघड़ थी। जहाँ वह डग रखती वहाँ छटा छा जाती और जिधर वह घूमती उधर रस झरने लगता था। राजहंसिनी जैसे तैरकर आती है वैसे ही वह आ रही थी—धीमी, स्वाभाविक किन्तु गर्व-भरी गति से। उसके मुख पर तेजोमय हास्य दीप्त था। उसका स्वर बात करती हुई अन्य स्त्रियों की किलकारियों से अलग बाँसुरी के कोमल स्वर के समान सुनाई पड़ता था। मंजरी सादे और श्वेत वस्त्र धारण किये हुए थी। उसके अंग पर नाम के आभूषण थे। इस अवसर के लिए उसने थोड़ा-सा भी शृंगार किया हो ऐसा न लगा। फिर, उसकी सादगी की विशिष्टता में कुछ निराला ही आकर्षण था।

मंजरी आई—निरभिमान रूप से सबको चकाचौंध करती हुई, स्त्रियों में शान्ति छा गई। आँबड़ महेता के हृदय में आँधी चलने लगी।

वह और उसकी सखियां अपनी परिचित स्त्रियों के साथ हंसती-बोलती हुई आईं।

'कैसी हो बेनांभाभी ?' मंजरी ने पूछा।

'अच्छी हूँ।'

'और प्राणकुंअर तू—' आँबड़ की भावी पत्नी से मंजरी ने पूछा।

'मंजरी दीदी! आज इस प्रकार सादगी क्यों?' वह मंजरी के श्वेत वस्त्रों और निराभूषण अंगों की ओर देखने लगी।

मंजरी मुस्कराई। मुस्कराहट में तनिक ग्लानि छिपी हुई थी। 'बहन! यह समझने में अभी तुझे समय लगेगा।'

'मंजरी देवी! आपके बिना तो सब अंधेरा ही था।' एक वृद्ध स्त्री ने कहा। आँबड़ ने मौन स्वीकृति दी।

'देवी!' पुजारी आगे आया, 'देवी! अब आप आरती प्रारम्भ करिए। आपके बिना कोई आगे बढ़ती ही नहीं।'

'हाँ, देवी!' मोटे वलय वाली स्त्री का मोटा और कठोर स्वर आया, 'आपके सिवा जानता ही कौन है?' आँबड़ के हृदय में गर्व छलक उठा।

'किन्तु तुम सब कुछ तो बोलो। मैं जो कुछ बोलूंगी उसे तुम दुहराओगी न?'

'नहीं, देवी! आप ही प्रारंभ करिए। हम फिर कुछ बोलेंगी।' दो-तीन स्त्रियों ने आग्रह किया।

बेनां को यह लोकप्रियता अच्छी न लगी, यह उसके मुख से स्पष्ट दिखाई पड़ रहा था।

'अच्छा ठहरो,' मंजरी ने हंसकर कहा, 'मुझे पुराण की एक बहुत प्राचीन प्रार्थना याद है वही सुनाती हूं, बस?'

'हाँ—हाँ' सब बोल उठीं। छोटी बच्चियां तालियां बजाने लगीं, 'हां, देवी, हां, देवी।' उत्तर में मंजरी स्नेह से मुस्करा उठी।

पल-भर वह मौन रही और फिर गला ठीक किया। आंबड़ महेता हृदय में जाने क्या-क्या स्वर बजने लगे!

वह मंद प्रकाश में स्वर्ग से उतरी अप्सरा के समान उस सुन्दरी के अनुपम सौंदर्य को देखने लगा। इन सुन्दरियों के समूह में भी ऐसा

लगा मानो उसका मुख किसी अपूर्व तेज से चमक रहा हो। उसके विशाल, चंचल नेत्रों में अन्तर में दबाये हुए भावों की तनिक खिन्नता-भरी छाया थी। वह इस प्रकार झुकी मानो अपने होठों की अकलित रसमयता ढालने को तत्पर हुई हो। उसकी लम्बी ग्रीवा की मोहक भंगिमा उसके मन में अन-देखे स्वप्न खड़े कर रही थी। किसी चतुर शिल्पी द्वारा निर्मित अपूर्व मूर्ति को देखकर विलासवृत्ति नष्ट होकर निर्मलता या सौंदर्य-भक्ति जाग पड़ती है, आंबड़ की ऐसी ही दशा थी। आंबड़ रसिक था किन्तु उसकी प्रकृति जड़ नहीं हो गई थी। उसके रसिक स्वभाव में सौंदर्य परखने की, सौंदर्य की पूजा करने की शक्ति समाई हुई थी। विलासी जीवन में यह शक्ति कम होगई थी, किन्तु जब मंजरी दूर और दुष्प्राप्य लगी और जब उसने देखा कि उसके दर्शन और उसकी प्रशंसा पर ही जीवन व्यतीत करना पड़ेगा तो उसकी यह शक्ति पुनः सतेज हो गई थी।

वह भक्त के आत्मसमर्पण से उस सुंदरी को देख रहा था। अपने बड़प्पन की बात वह भूल गया। उसकी लालसा नष्ट हो गई। उसके हृदय के अशुद्ध भाव दब गए। वह तो इतना ही सोच रहा था कि जिसे वह सौंदर्य और छटा मानता था, लावण्य और गौरव मानता था, इन सब लक्षणों की विशुद्ध और अपूर्व प्रतिमा इस समय सामने खड़ी हुई थी। अर्घ्य अर्पण करते-करते उसका मन, विनम्र होकर, प्रणाम करने लगा।

: ३ :

मंजरी का स्थान

पुजारी ने आरती प्रज्वलित करके घंटा बजाना प्रारम्भ किया। वसंता-गमन के पहले जैसे कोयल कुहुक उठती है वैसे ही मंजरी कुहुक उठी। उसके स्वरों ने आँबड़ के हृदय में जाने किन-किन प्रतिध्वनियों को जन्म दे दिया। उत्साह, आकांक्षा, विजय सुख, प्रेम—सभी भाव जाग पड़े। उसने अपने वक्षःस्थल पर हाथ रखकर दबा दिया; और ऐसे पड़ गया मानो मूर्छित हो गया हो।

आँबड़ के हृदय में उठते हुए भावों को जाने बिना ही मंजरी ने आरती-गीत प्रारंभ किया—

नर्मदा सरितां श्रेष्ठा रुद्रदेहाद्विनिःसृता।
तारयेत्सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च॥
सर्वदेवाधिदेवेन त्वीश्वरेण महात्मना।
कथिता ऋषिसंघेभ्यो ह्यस्मांक च विशेषतः॥
मुनिभिः संस्तुता ह्येषा नर्मदा प्रवरा नदी।
रुद्रदेहाद्विनिष्क्रान्ता लोकानां हितकाम्यया॥
सर्वपापहरा नित्यं सर्व देवनमस्कृता।
संस्तुता देवगन्धर्वैरप्सरोभिस्तथैव च॥
नमः पुण्यजले ह्याद्ये नमः सागरगामिनी।
नमस्ते पापशमनि नमो देवि वरानने॥
नमोऽस्तु ते ऋषिगणसिद्धसेविते नमोऽस्तु ते शंकरदेहनिःसृते।
नमोऽस्तु ते धर्मभृतां वरप्रदे नमोऽस्तु ते सर्वपवित्रपावने॥

स्वर का जादू भग हुआ। वहाँ फैली शांति में बाधा उपस्थित हुई—दो आदमी दौड़ते-दौड़ते आए और चीत्कार करने लगे। 'जेली—जेली—'सब विस्मित होगईं। कुछ ने उनकी ओर देखा। मंजरी गाती-गाती रुक गई। पुजारी आरती करता-करता अटक गया।

'अरे सब घर जाओ। देखती क्या हो ? गंगानाथ में विप्लव हो गया है। ध्रुवसेन ने जोगिया उतार दिया है—और लोग लहूलुहान हो गए हैं—भागो। जेली की माँ—' कहकर वह जेली और उसकी माँ को लेकर वहाँ से चलता बना।

तीन-चार स्त्रियों ने दूसरे मनुष्य को घेर लिया और उसके साथ जल्दी-जल्दी चलने लगीं। सब घबराकर एक-दूसरे के सामने देखने लगीं। नदी तीर से गड़बड़ की स्पष्ट आवाज़ आरही थी। दूर से कुछ चीत्कारें भी सुनाई पड़ रही थीं। कुछ स्त्रियों के घर निकट थे अतः वे अकेली ही चल दीं। मंजरी ने गर्व से चारों ओर देखा। व्याकुल हिरणी की भाँति सभी स्त्रियाँ भयाकुल आँखों से चारों ओर देख रही थीं।

'बहनो, घबराओ मत। गप्प मालूम होती है। हमें कौन छेड़ सकता है ?'

'ओ देवी—देवी —मंजरी देवी ' चीत्कार करता हुआ मणिभद्र हाँपता-हाँपता आया। उसके कंधे पर मंजरी की पुत्री महाश्वेता थी और काँख में मंजरी का पुत्र वामरि। उसकी आँखें भय से फटी हुई थीं।

मंजरी का मुख कुछ उतर गया। 'मणिभद्र ! क्या है ?'

'देवी ! देवी ! हो न ? रेवापालने सब पट्टणियों को मार डाला। नगर में लूट-पाट मची हुई है। अपना घर लूटने आए थे। मैं छत पर होकर इन दो को ले आया हूं। देवी, चलिए भाग चलें।'

मंजरी के होठ फड़के। उसकी आँखों से अग्नि निकलने लगी। उसने बेना की ओर क्रोध से देखा, 'बेना देवा, यह क्या है ?'

बेना कुछ-कुछ जानती थी। वह निश्चित होकर खड़ी-खड़ी देखती रही। 'ह क्या ?' उसने अपमान-भरे स्वर में कहा, 'सौ दिन सुनार के और एक दिन लुहार का। आज पाटण का अस्त हुआ और लाटका दिन उदय हुआ है। बहनो, चलो मेरे साथ। किसी का कुछ न होगा। आज से रामराज्य प्रारम्भ हुआ है।'

'मंजरी घबराई, क्षुब्ध होकर पल-भर तक खड़ी रही। सब घबराकर

बेनां की ओर गईं और वह सबसे आगे आकर खड़ी होगई। मंजरी ने तुरंत मन को स्थिर किया और मणिभद्र से वौसरि को ले लिया।

आँबड़ ने सब सुना। उसके प्राण निकल गए। किंतु इस समय पाटण या स्वयं की चिंता से अधिक तो उसे मंजरी की चिंता थी। वह एकदम उठा, नेरा को लेकर द्वार खोलकर, घर के बाहर आया।

बेनां थोड़ी देर खड़ा रहो, हंपा, और गौरवनष्ट, घबराई हुई मंजरी की ओर देखने लगी। एकाएक उसे उसके पति काकको दिया हुआ वचन याद आया और वह उसके पास जाकर कुछ अभिमान से बोली—

'मंजरी भाभी! तुम्हारे जेठ ने मुझसे कहा है कि तुमको मैं अपने घर ले जाऊँ। अब यहां पाटण का कोई नहीं जो तुम्हारी सहायता को दौड़कर आ सके। और इस समय तुम्हारे घर का भी ठिकाना नहीं कि वहां जाकर रह सको। मेरे साथ चलो। मेरे देवर इस समय यहां नहीं हैं। आ भी नहीं सकेंगे।'

एक-एक शब्द मंजरी को डंक के समान चुभा। उसका गर्वीला स्वभाव ये डंक सहन न कर सका। उसका क्षोभ जाता रहा। गर्दन ऊंची करके एक तिरस्कार-भरी दृष्टि से उसने बेनां को उसके आडंबर और उसकी अल्पता का भान करा दिया।

'किसकी मजाल जो दुर्गपाल की स्त्री को छू तक सके?' उसने क्रोधित होकर पूछा। उसका मुख क्रोध से लाल हो रहा था, उसकी आँखों में विद्युत् चमक उठी।

बेनां तिरस्कार से मुस्कराई। आम्रभट से न रहा गया। मंजरी की असहायावस्था और गौरव देखकर उसका हृदय वीरता से उमड़ पड़ा। वह आगे आया।

'बेनांदेवी! कौन कहता है कि पाटण निराधार हो गया है?' उसने पूछा।

'मैं इस समय विवाद नहीं करूंगी,' बेनां बोली, 'पुरुषों की बात पुरुष जानें। मुझे तो तुम्हारे भाई ने कहा था—'

उसकी बात अधूरी रह गई। सोमेश्वर हाथ में नंगी तलवार लेकर आया। वह हाँप रहा था, उसके केश बिखरे हुए थे और उसके मुख से रक्त बह रहा था। उसे देखकर सब स्त्रियाँ चीत्कार कर उठीं।

'देवी हैं न ? भाई, बहन, सभी हैं ? देवी !'

'क्या है भाई ?' मंजरी ने पूछा।

'अच्छा हुआ आप मिल गईं। अपने बाड़े में लूट मची हुई है। पट्टणी सेना बंदी बना ली गई है। आँबड़ महेता ! आप यहाँ कैसे ? भागो। रेवापाल ने लाट का झंडा उठाया है। कोई आपको देख लेगा तो उसी समय मार डालेगा।'

आँबड़ की आँखों में क्रोध चमका।

'क्या कहता है ? तो पाटण के सैनिक—'

'पाटण के सैनिक !' सोमेश्वर ने कठोरता से हँसकर कहा—'आप, मैं औहयरनेरा तोतला। किन्तु देवी का क्या होगा ?'

'मैं वही कहती हूँ,' बेनां ने कहा, 'तुम्हारे भाई ने कहा है कि मंजरी बहू और बच्चों को साथ लेती आना—'

क्रोध में मंजरी ने होंठ काट लिये।

'बेनांदेवी ! रेवाभाई से कहना कि दुर्गपाल की स्त्री और बच्चे वहीं रहेंगे जहाँ पाटण के सैनिक,' कहकर वह एक पग सोमेश्वर की ओर बढ़ी। सब यह पागलपन देखकर चकित हो गए। सोमेश्वर से न रहा गया—

'देवी ! बेनांदेवी सत्य कहती हैं। रेवाभाई के घर को छोड़कर इस समय आप कहीं न रह सकेंगी। प्रातःकाल होने से पहले ही हम तो मर जायंगे।'

'सोमेश्वर !' मंजरी ने गर्व से कहा, 'यह सब तुम्हारे विचारने का

नहीं। जहाँ मेरे दुर्गपाल का स्थान है वहीं मेरा भी। बेनांदेवी, जाओ!' कहकर उसने बेनां की ओर इस प्रकार तिरस्कार-भरी दृष्टि डाली मानो वही विजयी साम्राज्ञी थी। बेनां यह सहन न कर सकी। क्रोध में वह वहाँ से चली। सब स्त्रियाँ उसके साथ चली गईं। आँबड़ का हृदय इस योगमाया का आवेश देखकर स्तब्ध हो गया।

'देवी! यह क्या किया?' सोमेश्वर ने निराश से सिर पीट लिया।

'सोमेश्वर! यह कायरता किस गुरु से सीखी?' मंजरी ने तिरस्कार से पूछा। 'तेरे गुरु और पाटण की सत्ता एक ही है। पाटण की सत्ता चली जाने पर तू जी—किन्तु मुझसे कैसे जिया जायगा?'

आँबड़ महेता पक्का पट्टणी था। जब तक पाटण की सत्ता है तब तक उसका जीवन है, यही उसका सिद्धांत था। मंजरी के शब्दों ने उसके हृदय में प्रतापी प्रतिध्वनि की।

'और देवी! पाटण की सत्ता के जाने से पहले हम मरने के लिए तैयार हैं।'

'कि....कि....किन्तु यहाँ से तो च....च....चलिए।' नेरा से काँपते होंठों से बोले बिना न रहा गया।

'चुप, पागल!' आँबड़ गरजा।

'सोमेश्वर! नए गढ़ की कुंजी तुम्हारे पास है?'

'हाँ। अच्छी याद दिलाई। चलिए, वहाँ देखा जायगा। मणिभद्र, बहन को उठा। देवी! वौसरि को मुझे दे दीजिए। गढ़ में बैठे-बैठे हम संपूर्ण लाट को छका देंगे।'

सोमेश्वर ने वौसरि को लिया, मणिभद्र ने महाश्वेता को लिया, और सब शीघ्र गति से गढ़ की ओर चले।

: ४ :

गढ़ में

सोमेश्वर पथ जानता था अतः मुख्य मार्गों से बचते हुए, गली-कूचों में होकर वे खाई के सामने जा पहुँचे। कहाँ से खाई सरलता से पार की जा सकती थी यह भी सोमेश्वर जानता था अतः अक्षयतृतीया का ज्वार होते हुए भी एक व्यर्थ की पड़ी डोंगीमें बैठ कर वे खाई पार कर गए। चन्द्रमा का प्रकाश तो नाम ही का था अतः अँधकार में सबसे आगे सोमेश्वर, फिर महाश्वेता को कंधे पर लिए मणिभद्र, फिर मंजरी, फिर आम्रभट और फिर नेरा—इस प्रकार वे खाई से द्वार तक की चढाई चढ़े। आम्रभट आगे चलती मंजरी की ओर देख रहा था। कहीं उसके पाँव में कंकड़ न लग जायं, कहीं वह फिसल न जाय—इस डर से उस का मन अधीर हो रहा था। किन्तु मंजरी जितनी सुकुमारी थी उतने ही दृढ़ मन की भी थी। उसके कोमल पाँव शीघ्रता से और सावधानी से उठ रहे थे। अंत में वे गढ़ के द्वार तक आए। सोमेश्वर उन्हें एक छोटी खिड़की के सामने ले गया। उसने खिड़की खोली।

'कौन है ?' देवा नायक का स्वर आया।

'सोमेश्वर।'

'इस समय कैसे ?' शंकित होकर देवा ने पूछा।

'देवी और बच्चे और नए दुर्गपाल आए हैं।' देवा ने शीघ्रता से सिर पर साफा बाँधा और चकमक से मशाल जलाई। 'देवी ! आप, इस समय ?'

'हाँ' मुस्करा कर मंजरीने कहा, 'तेरे भाई चले गए अतः तेरे संरक्षण में आए हैं।'

'कौन, नए दुर्गपाल—'देवा कठोर होकर बोला,'और नेरा तोतला !

'देवा ! नगर में विप्लव होगया है, रेवापाल ने पट्टणी सेना को बंदी बना लिया है, काकभट और दूसरे पट्टणी अधिकारियों के घर लूट लिए

हैं, अतः देवी को रक्षा के लिए हम गढ़ में आए हैं।' सोमेश्वर ने खिड़की अंदर से बंद कर ली।' अब पाटण से जब तक सहायता न आ जाय तब तक यहीं रहेंगे।' देवा की आँखों के सामने अंधेरा-सा छा गया। वह सिर पर हाथ रखकर निकट के चबूतरे पर बैठ गया—'हे मेरे भगवान्।'

मंजरी ने निकट जाकर स्नेह-भरे स्वर में पूछा—'देवा, क्या बात है? ऐसे क्या करता है?'

'देवी! बुढ़ापे में देवा की भी बुद्धि मारी गई।'

'कैसे?'

'मैंने भाई की आज्ञा नहीं मानी।' देवाकी वाणी काँप रही थी, 'मैंने आप सबको बेमौत मार डाला।'

'किन्तु बात क्या है?' मंजरी ने पूछा।

'उस रेवापाल के कहने से मैंने कोठार में का अनाज फेंक दिया।'

'कोठार का अ....अनाज फें—क दिया—' सब चकित होकर पीछे हट गए।

देवा ने कपाल ठोंक लिया—'मुझे जीवित नहीं रहना चाहिए। मुझे रेवापाल ने कहा कि मेरे भाई तो पाटण में बंदी बना लिये गए और यह मेरा तोतला यहाँ भट बनकर आने वाला है। भाई के लौट आने पर उसने कोठार पुनः भर देने का वचन दिया था। मैं भुलावे में आ गया। देवी मैं आपको और कीकाभाई को खिलाऊंगा क्या?'

'वर्षभर चल सके उतना सामान फेंक दिया?' आँबड़ महेता ने आगे बढ़कर क्रोध में कहा, 'पापी! किसके कहने से?' कहकर उसने तलवार निकाल ली।

'मार डालो बापू!' देवा बोला, 'मुझे गला घोंट कर मर जाना चाहिए—'

आँबड़ तलवार उठाने जा रहा था कि उसकी दृष्टि मंजरी पर पड़ी। उसकी आँखों में तिरस्कार था।

'आँबड़ महेता !' मंजरी ने तनिक क्रोध में कहा, 'अपनी तलवार म्यान में रखो, वह और कई काम आएगी। देवा ! गढ़ में थोड़ा-बहुत अनाज तो है ?'

'इतने आदमियों के लिए तो आठ दिन भी नहीं चलेगा।'

'देवी ! ठहरिए। हम गढ़ में आए हैं यह नगर का कोई व्यक्ति नहीं जानता है। मैं जाकर थोड़ा-बहुत अनाज ऊपर ले आने का प्रबन्ध करता हूँ।'

'किन्तु तुम बाहर पकड़ा गए, तो ?'

'जैसी भोलानाथ की इच्छा। आँबड़ महेता—' उसके सामने देखकर सोमेश्वर तनिक अटका, 'आँबड़ महेता ! आप यहाँ रहकर देवी को सँभालिएगा। मणिभद्र, तू भी यहीं रह। नेरा ! तू मेरे साथ चल।'

'मैं आऊँ ?' आँबड़ ने पूछा।

'नहीं। हम दोनों में से एक को तो यहाँ रहना ही चाहिए।'

'संभव है रेवापाल गढ़ घेर ले, तो सामना कौन करे ?'

'अच्छा। नेरा ! सोमेश्वर भट के साथ जा।'

'ब•••बापू—' पीछे खड़े नेरा को गढ़से बाहर जाना अच्छा न लगा।

'जा !' आँबड़ ने आँखें निकालीं। नेरा नीची गर्दन करके सोमेश्वर के साथ बाहर गया।

'देवा ! कहीं बैठने का ठिकाना-विकाना है ? बच्चे बेचारे थक गए हैं।'

'अवश्य है, देवी !' कहकर देवा सबको थोड़ी दूर पर एक छोटे घर में ले गया। आवश्यक वस्तुएँ निकाल दीं। कोई घेरा डाल दे तो पट्टणी सेना के लिए गढ़ में ऐसी सुविधाएं थीं कि रहने-करने के लिए तो किसीको कोई कठिनाई हो ही नहीं सकती थी। मणिभद्र पानी ले आया।। मंजरी घबराये हुए बच्चों को सहलाकर सुलाने लगी। देवा और आँबड़ महेता गढ़ को देखने के लिए निकल पड़े।

आँबड़ गम्भीर हो गया था। पाटण की सत्ता को गढ़ में रहते -

रहते ही टिका रखना, और पाटण से सहायता आए तब तक मंजरी की रक्षा करनी—इन दो उद्देश्यों ने उसके पौरुष को तीक्ष्ण कर दिया। यह गढ़ सुरक्षित था और सरलता से अधिकृत नहीं किया जा सकता था। किन्तु तीन-चार व्यक्तियों की सहायता से उसे टिकाए रखना कोई सरल बात न थी। फिर, खाद्य समाप्त होने पर क्या होगा यह उसे सूझ न पड़ा; किन्तु फिर भी उसने साहस न छोड़ा। मंजरी की दृष्टि के सामने इस गढ़ को टिका रखना, अपना शौर्य दिखाना और समय आने पर मर जाना—इससे बढ़कर उसे कुछ भी रुचिकर न लगा।

किसीकी सहायता प्राप्त न होने के कारण उसने बहुत मन लगाकर गढ़ को देखा। किस दिशा से धावा किया जा सकता है, कहाँ से रक्षा भली प्रकार की जा सकती है, और किस स्थान से चारों दिशाओं पर दृष्टि रखी जा सकती है—यह सब उसने जान लिया। उसने नगर की ओर की कोट पर जाकर नीचे देखा। मध्यरात्रि होने आई थी, फिर भी नगर में स्थान-स्थान पर जलती मशालें इधर-उधर जाती हुई दिखाई पड़ रही थीं। किसी-किसी स्थान से रह-रहकर चीत्कार भी सुनाई पड़ती थी। नदी-तीर पर पूर्ण शांति थी।

घूमते-घूमते आँबड़ महेता देवा से बातचीत करने लगा। जैसे-जैसे वह बात करता गया वैसे-वैसे देवा के हृदय, उसके अनुभव और गढ़ के विषय में जानकारी प्राप्त करने का एक मार्ग मिलता गया। बात करते-करते वृद्ध देवा को आवेश आ जाता था, और गढ़ पर से कैसे शत्रुओं को छकाया जा सकता है इसका कुछ-कुछ धुंधला चित्र थोड़े-से शब्दों में वह उसके मस्तिष्क के सामने खड़ा कर दे रहा था। किन्तु प्रत्येक बात का सार और प्रत्येक बात का 'आत्मा' उसके 'भाई' में ही समाप्त होते थे। 'भाई' ने मार्ग दिखाया और 'भाई' ने यह कँगूरा बनवाया; 'भाई' ने कहा था कि इस कोने में खड़े होकर तीन आदमी तीन-सौ आदमियों को ठिकाने लगा सकते हैं, और 'भाई' का विचार था कि दीवाल को गिरवाकर दूसरी बनवा दी जाय। आम्रभट इस

बात से कुढ़ता अवश्य था किन्तु इस समय वीर-पूजा के लिए वह इतना अधिक तत्पर था कि काक की प्रशंसा सुनकर उसका उत्साह बढ़ रहा था। अन्त में चारों ओर घूमकर वे खिड़की के निकट आकर सोमेश्वर की प्रतीक्षा करने लगे। किन्तु सोमेश्वर न लौटा। अंततः आँबड़ देवा द्वारा दिखाये हुए कमरे में सोने चला गया और देवा खिड़की के सामने सोमेश्वर की प्रतीक्षा करते-करते सो गया।

आम्रभट लेटा किन्तु नींद नहीं आई। विचार करते-करते उसे पिछले पन्द्रह दिवसोंमें किये गए अपने मूर्खता-भरे कार्योंकी याद आई। पन्द्रह दिन में सम्पूर्ण सेना को निर्बल कर दिया, और सम्पूर्ण सत्ता अपने हाथ में ले ली। उसके आचरण से सब लोग भ्रम में पड़ गए और क्रांतिकारियों को उत्तेजना मिली। अपनी कुबुद्धि से उसने पाटण के मित्रों को छेड़ा और शत्रुओं को चढ़ बैठने का अवसर दिया, और एक घड़ी में रेवापाल ने सम्पूर्ण लाट पर अधिकार कर लिया और उसके जैसे पाटण के सत्ताधीश को, उदा महेता के पुत्र को, इस प्रकार चोर के समान गढ़ में घुसकर बैठना पड़ा।

रात्रि के एकांत में उसने अपने पिता और काक के कार्य के साथ अपने कार्य की तुलना की। दोनों ने अपरिचित उद्गम से जीवन-सरिता प्रारम्भ की और इस समय उनके प्रताप से चारों दिशाएँ फल-फूल रही थीं। इस छोटी उम्र में उसे पिता के प्रताप से मान, सम्पत्ति और सत्ता मिले किन्तु इन सब पर उसने पानी फेर दिया।

उसे अपनी निर्बलता का भान हुआ और साथ ही मंजरी का स्मरण हुआ। उसके अङ्गों में एक आनन्द-लहर दौड़ गई। इस पूरे गढ़ में वे दोनों साथ-साथ रह रहे थे। जिस अवसर के लिए वह व्याकुल था वह इतना निकट आ लगा था और जाने कितने दिन तक यह यों ही चलता रहेगा, और रात-दिन अपनी हृदय-सम्राज्ञी की चरण-वंदना करने का लाभ प्राप्त होगा। और वह प्रसन्न—

आँबड़ बिस्तर में उठ बैठा। मंजरी उस पर प्रसन्न होगी! वह

समझ न पाया किन्तु अभिमान त्यागकर वह आत्म-तिरस्कार से मुस्करा दिया। उस पर प्रसन्न हो! यह गर्विष्ठा, विद्वान्, तेजस्वी और पति-परायणा मंजरी उस पर प्रसन्न हो! क्यों न हो? वीरता दिखाने और मंजरी की उपकार-वृत्ति को जागरित करने का अवसर उसके हाथ लग गया था। चाहे प्राण ही क्यों न चले जायं किन्तु मंजरी को प्रसन्न करने का उसने संकल्प कर लिया। उसका सिर गरम हो गया। उसने उसे हाथ से दबा दिया।

न जाने क्यों मंजरी उसे कुछ रहस्यमयी लगी। उसने गृह-कुशल गृहिणियाँ देखी थीं, अनाज पीसकर पति की सेवा करने वाली सतियां देखी थीं, पति-विरह से पीड़ित वधुएँ देखी थीं, और शास्त्र का अभ्यास करने वाली साध्वियां देखी थीं। किन्तु उसने ऐसी स्त्री नहीं देखी थी। काक के वियोग में उसने आभूषण त्याग दिए थे, इसे छोड़ वह पति के लिए और कुछ करती हो ऐसा न दिखाई पड़ा। फिर भी, उसे देखते ही काक का स्मरण हो आता था और काक को देखकर उसका। कल उसने अपनी और अपने बच्चों की रक्षा करने के बदले अपरिचित व्यक्ति के साथ गढ़ में आना पसन्द किया था। यह विचित्रता आंबड़ की समझ में न आई। यह स्त्री अन्य सब स्त्रियों से किस प्रकार विभिन्न थी?

उसे ऐसे कितने ही विचार आए किन्तु कोई परिणाम न निकला। वह थक गया, उसे झपकी आगई। नीचे कुछ गड़बड़ सुनकर वह उठ बैठा।

'कौन सोमेश्वर?'

'न....नहीं ब....बापू!' नेरा का हांपता और रुआंसा स्वर आया, 'यह तो मैं हूं। स....स....सोमेश्वर भट जी छूट गए।'

'हैं! तो तेरे साथ कौन है?' आंबड़ ने बिस्तर में खड़े होते-होते

'म...महाराज, म...म...मेरी घ...घर वाली।' नेरा ने उत्तर दिया।

: ५ :
सोमेश्वर कहां गया ?

सोमेश्वर और नेरा शीघ्रता से नीचे उतरे, पुनः डोंगी में बैठकर खाई पार की और नगर में गये। वे एक-दो गलियां पारकर एक परिचित बनिये की दूकान के सामने गये। सोमेश्वर ने नेरा से कई बार उसे बुलवाया, उसने स्वयं ने सांकल खड़खड़ाई, किन्तु उसने दूकान न खोली। एक दूसरी दूकान पर जाकर उसे खुलवाने का प्रयत्न किया किन्तु सफल न हुए। कुछ देर तक अन्दर सोये हुए लोगों ने चुपचाप बात की और फिर अन्त में एक स्त्री का स्वर आया—वे तो घर में नहीं हैं और स्त्रियां अकेली कैसे द्वार खोल दें ? सम्पूर्ण नगर में त्रास फैला हुआ था।

सोमेश्वर के पीछे नेरा मौन होकर चल रहा था। वह अत्यन्त भय-भीत हो गया था। पाटण बन्दी हो गया और दुर्गपाल भाग गया था अतः उसको किसीकी सहायता मिल न सकती थी। उसने इस नगर में रहकर ऐसी निर्लज्जता की थी, और लोगों में उसके प्रति ऐसा तिर-स्कार था कि प्रातःकाल यदि वह किसीको दिखाई पड़ जाता तो कोई उसे जीवित न छोड़ता, यह निश्चित था। अतः आंबड़ महेता के साथ गढ़ में गये बिना और कोई चारा नहीं था इतना वह स्पष्ट समझ गया।

समय जा रहा था और काम बन नहीं पा रहा था अतः सोमेश्वर अधीर हो गया। पकड़ा जाने के डर से वह प्रतिष्ठित लोगों के घरों

की ओर जा नहीं सकता था और छोटे लोगों से कोई सहायता मांग न सकता था।

'ब....ब....बापू !' नेरा ने धीमे-से सोमेश्वर के कान में कहा।

'आ....आप कहें तो म....म....मैं अनाज-पानी ले आऊँ।'

'कहाँ से ?' तनिक चिढ़कर सोमेश्वर ने कहा।

'म....म....मेरी ससुराल यहीं है।' उसके स्वर से लगा कि नेरा के गोल-मटोल मुख पर लज्जा छा गई। नेरा की पत्नी उसे छोड़कर अपने भाई के पास यहीं-कहीं रहती थी यह वह जानता था। सोमेश्वर इस पर विश्वास न करता था, किन्तु इस समय जैसे हो अनाज एकत्रित करना ही था।

'हाँ, हाँ, तो ले आ न !'

'त....तो आ....आइये।' कहकर नेरा आगे हो गया और थोड़ी ही देर में एक निर्धनों के मुहल्ले में वे आ पहुंचे। नेरा एक छोटे घर के द्वार के सामने जा खड़ा हुआ, 'अरी ओ—'

किसी ने उत्तर नहीं दिया। नेरा ने धीमे-से कड़ा खड़खड़ाया और पुनः बोला—'यह तो मैं हूं।'

'मुए ! इस समय तू कहाँ से ?' एक कठोर स्वर आया।

'अरी ओ ! मैं म....मरने....को....हूँ। देख स....स....सुन, मुझे अनाज चाहिए। फिर म....मैं चला जाऊँगा, देख !'

'अभी मैं अनाज कहां से लाऊँ ?'

'ज....जो घर में हो वही दे दे। देख मैं आंबड़ महेता का विश्वास-पात्र बन गया....अ....और भ....भट बन गया, और त....त....तू मुझसे ऐसा व्यवहार करती है ?' नेरा ने रुआंसे स्वर में कहा।

'व्यर्थ में ढोंग करता है।'

'र....र... रेवा मां की सौगन्ध !' कहकर नेरा सिसकियां भरने लगा।

'देख, तुझे सोने की ल....लड़ी देता हूँ।' कहकर उसने सोमेश्वर

के कान में कहा, 'ब....बापू ! अ....अपनी लड़ी देना तो ! यह क.... क....कच्चा नहीं है । यों नहीं मानेगी ।'

'सोने की लड़ी कहाँ से लाया ?'

'यह रहा', देख तो स....सही ।' कहकर नेरा ने लड़ी द्वार से लगाकर हिलाई ।

नेरा की अर्धाङ्गिनी को कुछ विश्वास हुआ । उसने दीपक की बाती उकसा करके द्वार की दरार में से झांका और किसी दूसरे को भी साथ देखकर पूछा—'दूसरा कौन है ?'

'य....ये मेरे मित्र हैं ।'

सोमेश्वर के जी में तो आया कि इस बातूनी को एक थप्पड़ मार दे किन्तु किसी प्रकार अपने पर वश किया ।

'देखूं, लड़ी ला ।'

'ऊंह, पहले आ....नाज तो दे ।'

नेरा की स्त्री को कुछ विश्वास हुआ और उसने द्वार खोल दिया । 'अन्दर आ जाओ ।' नेरा को और सोमेश्वर को जैसे ही उसने देखा वैसे उसने घूंघट खींच लिया । 'पधारिये बापू,' वह बोली और खड़ी रह गई ।

'मुझे पहचानती है ?' सोमेश्वर ने पूछा ।

'क्यों नहीं ? मेरा भाई आपका तेली है, बापू ! आप कहाँ से ?'

'वि ..विदेश में जाने कैसे ब्याह ह....हो जाता है ?' नेरा ने अपना बचाव करने के लिए कहा किन्तु किसी ने सुना नहीं ।

'तू पाँचा की बहिन है ? तो चल शीघ्रता कर । तेरे यहां जितना अनाज हो ले आ । बदले में मेरी यह लड़ी और अँगूठी ले ।'

'किन्तु बापू, इस समय आप कैसे ?' फिर अपने पति की ओर देखकर पूछा—'और इसके साथ ?'

'देख, हम सब गढ़ में चले गए हैं । वहां आवश्यक अनाज नहीं है । इस समय कोई बनिया दूकान नहीं खोल रहा है ।'

'हाय ! हाय ! आपकी मां भी है ?' तेलन ने कहा ।

'नहीं । उन्हें कोई कुछ न कहेगा । किन्तु मंजरीदेवी और भटराज के बच्चे हमारे साथ हैं । और हम चार व्यक्ति हैं । पाटण से सेना आए तब तक अनाज पहुँचते रहना चाहिए ।'

'मंजरीदेवी ?' सम्मान से तेलन बोली और उसकी दृष्टि के आगे दूर से देखी एक गौरवर्ण, लम्बी और स्वस्थ स्त्री आ गई ।

सोमेश्वर को एक बात सूझी ।

'देख, मजरीदेवी अकेली है । तू हमारे साथ चलेगी ? थोड़े ही दिनों में पाटण की सेना आकर हमें छुड़ा लेगी ।'

तेलन ने भय से नेरा की ओर देखा । सोमेश्वर उस दृष्टि का अर्थ समझ गया ।

'मैं हूं, नए दुर्गपाल आंबड़ महेता हैं, देवा नायक है, और एक दूसरा ब्राह्मण है । घबराने का कोई कारण नहीं ।'

'किन्तु पाटण से सेना न आए तो ?'

'जो हमारा होगा वही तेरा होगा । और देवी की रक्षा में हम मरेंगे तो तू भी मर जाना ।'

क्षणभर के लिए तेलन के मस्तिष्क में द्वंद्व मचा । मंजरीदेवी के निकट रहना, बड़े-बड़े दुर्गपालों के साथ गढ़ में रहना, और पाटण से सेना आजाय तो बाजे-गाजे के साथ लौटना ! तेलन के क्षुद्र जीवन में यह भव्य भविष्य तो एक स्वप्न-सा बन गया ।

'क....किन्तु काक भटराज व....वंथली में हैं वे क्या....क्या छुड़ाए बिना रहेंगे ?' नेरा ने अर्धाङ्गिनी की संगत की लालसा से आशा दिलवाई ।

तेलन ने विचार किया—काकभट छुड़वाएँगे अवश्य । और मंजरी देवी के साथ ! उसके मुंह में पानी आ गया ।

'चलिए ! मैं आती हूं ।' फिर धीमे-से बोली, 'वह लड़ी तो लाओ ।' उसने लड़ी ली और अन्दर के कमरे में उसे कहीं छिपा आई ।

थोड़ी देर में उसने वर्ष-भर का अनाज निकाला और तीनों से बंध सका उतना ले लिया। नेरा की पत्नि बलवान थी। बचपन से मज़दूरी करती थी अतः उसने बहुत सारा बोझ बड़ी सरलता से उठा लिया।

तीनों ने अनाज बाहर निकाला। तेलन ने द्वार बन्द कर कुंजी द्वार के नीचे सरका दी और तीनों गढ़ की ओर चले। अन्त में वे खाई तक आ पहुँचे। इतने में पीछे से पाँच-सात मनुष्यों की पगध्वनि सुनाई दी। सोमेश्वर चमका। तीनों के कंधों पर बोझ था।

'नेरा!' सोमेश्वर ने सावधान होकर कहा, 'तू और तेरी पत्नी उस डोंगी में बोझ रख आओ और फिर मेरा बोझ ले जाओ तो! मैं यहीं पटकता हूं। सम्भव है कोई आ रहा हो तो मैं रोक रखूँगा।'

आगन्तुक निकट आये। ध्वनि से मालूम होता था कि उनके पास शस्त्र हैं।

'कौन है?' उनमें से एक चिल्लाया। सोमेश्वर ने उत्तर नहीं दिया। उसने घूमकर देखा तो नेरा और उसकी पत्नी डोंगी में अपना बोझ डाल रहे थे। उत्तर न मिलने के कारण आगन्तुकों में से एक ने चकमक से मशाल जलाने की तैयारी की। सोमेश्वर ने देखा कि मशाल जल उठेगी तो सत्यानाश हो जायगा। डोंगी कुल दस पग ही पीछे थी। एक छलांग में वह वहां पहुँचा और नेरा के कान में कहा—'नेरा! यह गढ़ की खिड़की की कुंजी रही। तुम एकदम अनाज लेकर ऊपर जाओ तब तक मैं इन लोगों को रोक रखता हूं। नहीं तो अनाज बिना ऊपर सब मर जायंगे।' इतना कहकर उसने डोंगीको धक्का दिया। समय देखकर नेरा ने भी बाँस लेकर डोंगी खेना प्रारम्भ किया।

सोमेश्वर कूदकर आगे आया। प्रगाढ़ अँधकार में मशाल जलने से आगन्तुकों के चकाचौंध हो जाने का लाभ उठाकर वह तलवार लेकर मार्ग रोककर खड़ा हो गया।

'तू कौन है? उस गढ़ में कौन जा रहा है?'

'इससे तुम्हें 'पंचात'? रेवाभाई की आज्ञा है।' सोमेश्वर

ने कहा।

किन्तु उसका झूठ बोलना काम नहीं आया। पीछे खड़े हुए एक व्यक्ति ने आगे आकर कहा --'अरे ! यह तो काकभट का सोमेश्वर-दुर्गरक्षक ! पकड़ो इसे।'

'किन्तु तुम कौन हो ? मुझे पकड़ने वाले तुम कौन ?' साहस से समय व्यतीत करने के हेतु सोमेश्वर ने कहा, 'उत्तर दो !'

'अरे, किन्तु वे जा रहे हैं उन्हें तो पकड़ ले'—कहता हुआ एक व्यक्ति दौड़कर आगे बढ़ा।

'सावधान !' सोमेश्वर मार्ग रोककर खड़ा हो गया, 'तू कौन है ? बिना कहे आगे नहीं जा सकता।'

'पकड़ो इसे।' एक व्यक्ति ने कहा और दूसरा आगे बढ़ा।

'मुझे पकड़ना सरल नहीं है।' कहकर सोमेश्वर उन पर लपका। वे लोग पीछे हटकर तलवारें निकालने लगे। पतवार की स्वर से सोमेश्वर का लगा कि डोंगी वेग से खाई के उस पार जा रही थी। वह पांचों का मार्ग रोककर खड़ा हो गया। विदेशी सैनिक अनुभवी योद्धा न थे अतः उन्हें रोकना सरल हो गया। थोड़ा देर में डोंगी के उस पार पहुँचने का स्वर आया और नेरा और उसकी स्त्री अनाज के थैले उठाते सुन पड़े। सोमेश्वर को लगा कि अब यदि वह खाई में गिर जाता है तो सरलता से तैरकर उस पार पहुँच जाता है, अतः उसने धीरे-धीरे पीछे हटना आरंभ किया। अक्षयतृतीया के ज्वार का पानी पीछे हट गया था अतः खाई से कुछ दूर इधर भूमि गीली और चिकनी थी। सोमेश्वर यह भूल गया और पीछे हटते समय उसका पाँव फिसल गया। वे सैनिक एकदम उस पर टूट पड़े और उसे बंदी बना लिया। सोमेश्वर ने कान लगा कर सुना—नेरा और उसकी पत्नी वेग से ऊपर चढ़ रहे थे।

'अब वहाँ तक कैसे पहुँचें ?' विदेशी सैनिकों में से एक बोला।

'अभी कैसे जायँ ? प्रातःकाल देखा जायगा। इसीको पकड़ ले

जायँगे।' दो जने सोमेश्वर का हाथ पकड़कर चलने लगे। सोमेश्वर ने देखा कि अभी एकदम गढ़ में लौटने के लिए व्याकुल होना व्यर्थ था अतः वह चुपचाप चलता रहा। उन लोगों ने नदी की ओर का मार्ग पकड़ा।

सोमेश्वर को लगा कि यदि ये लोग उसे रेवापाल के पास ले जायँगे तो वह अवश्य उसे प्राणदंड देगा अतः किसी-न-किसी प्रकार भागे बिना कोई और चारा न था। इतने में वे लोग नदी के ढाल पर आ पहुंचे। सोमेश्वर ने नदी के सामने देखा और एक विचार आया। उसने एक अप्रत्याशित झटके से अपना हाथ छुड़ाया और उसे पकड़ने वाले के संभलने से पहले ही वह नदी में कूद पड़ा। वे सैनिक पहले तो तनिक विचार में पड़ गए किन्तु फिर दो ने हथियार निकालकर सोमेश्वर के पीछे कूदने का निश्चय किया। किन्तु इस नदी से वे अपरिचित थे। रात अँधेरी थी, ज्वार का पानी सागर के समान फुंकार रहा था, अतः उनका निश्चय ज्यों-का त्यों रह गया। लज्जित होकर वे अपने मार्ग चले।

कोई पीछे कूदे तो उससे बचने के लिए पहले तो सोमेश्वर जल्दी-जल्दी दूर गया किन्तु जब उसे विश्वास होगया कि कोई कूदा नहीं है तो वह खाई की ओर चला। किन्तु आज उसका भाग्य अनुकूल न था। जागने और लड़ने के कारण वह थक गया था। अतः उसके पाँव में ऐंठन आ गई। वह बड़ी कठिनाई से तैर सका। कई बार तो वह चित्त होकर पड़ रहा और नदी के प्रवाह के साथ बहता रहा। बहाव प्रतिकूल था अतः वह भृगुकच्छ से दूर चला गया।

इतने में उसे किसी डोंगी के आने का स्वर सुनाई पड़ा। उसने ध्यान से सुना तो रातों-रात भृगुकच्छ से भागने वाले यात्रियों की नौका जान पड़ी। और कोई रास्ता न देखकर उसने नौकावालों को पुकारा और नौकावालों ने दया करके उसे नौका में ले लिया। नौका लखी गाँव जा रही थी। सोमेश्वर ने सोचा कि वहाँ से पुनः भृगुकच्छ जाकर

गढ़ में घुसना तो मूर्खता होगी। इससे तो लखीगाँव जाकर, अखात पार करके इस झगड़े की सूचना काक को क्यों न दी जाय ? उसे यही बात अच्छी लगी अतः उसने मौन रहकर संपूर्ण रात नौका में व्यतीत कर दी। रातभर वह यही चिंता करता रहा कि आँबड़ के संरक्षण में मंजरी को क्या दशा होगी।

: ६ :

मंजरी शस्त्र चलाना सीखती है

मंजरी रात भर आँख न मींच सकी। बेनां का संरक्षण छोड़ने में उसने संकट अवश्य अपनाया था किन्तु इसका उसे पश्चात्ताप न था। चार मनुष्यों के साथ गढ़ में बैठना उसने सहन कर लिया, वह घबरा नहीं रही थी। उसके मस्तिष्क में एक ही विचार रह-रहकर उठता था—'दुर्गपाल की अर्धांगिनी और उनके गौरव की रक्षा करने का समय आ गया है।'

इस काश्मीरी पंडित की कन्या के संस्कार और स्वभाव जैसे विचित्र थे वैसा ही असाधारण इसका विकास था। जिस माता ने पिता को भुला दिया उसे इसने छोड़ दिया, जिस उदा महेता ने बल-पूर्वक इसका पाणिग्रहण करने की आशा बाँधी उसे इसने ठुकाया, जिस अपरिचित सैनिक ने उसकी रक्षा करने के कारण उससे ब्याह किया उस काक को उसने तिरस्कार से जलाया। किन्तु काक के शौर्य से वह चकित हो गई, उसका बुद्धिबल देखकर उसकी प्रशंसा करने लगी, उसकी चतुराई ने उसे पराजित कर दिया। काक के हृदय की विशालता का अनुमान लगाते-लगाते वह अपना गर्व खो बैठी, उस की कर्त्तव्यपरायणता और एकनिष्ठा परखते-परखते अपना अभिमान

भूल गई। और उसके प्रेम-प्रवाह में बहते-बहते अपना स्वत्व खो बैठी। जिस सैनिक को उसने श्वान कहा था उसीकी पूजा करने में गौरव समझने लगी।

काव्य और शास्त्र के अभ्यास से सुसंस्कृत हुई उसकी आत्मा ने पति को ईश्वर मानने और ईश्वर जैसे पति के बिना कुँआरी मरने का निश्चय किया था। जिसे पत्थर समझा था उसी पति को ग्रहण करने पर वही पत्थर ईश्वर दिखाई पड़ने लगा। और उसने उस परमेश्वर की भक्ति करना अपना जीवनमंत्र बना लिया।

भक्ति अनेक प्रकार की होती है। उस लेने के डर से कुछ लोग नाग की भक्ति करते हैं और नागपंचमी मनाते हैं। सुख की आशा से कई इष्टदेव की आराधना करते हैं। फल-प्राप्ति से उत्पन्न कृतज्ञता के कारण कई वरदाता की भक्ति करना प्रारंभ कर देते हैं। कई भक्त नरसी के समान देवता के पीछे पागल होकर उमड़ते हृदय से भक्ति में लीन हो जाते हैं। कोई-कोई ऐसे विरल भक्त भी होते हैं जो भक्त और भगवान का अंतर ही तोड़ देते हैं, देवता के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं, जिनकी पूज्य-भावना गर्व-भरी श्रद्धा का रूप लेती है, जिनके सेवाधर्म में अधिकार का प्रताप होता है, जिनका जीवन सदा देवमय होता है और हृदय सदा देवरस में निमग्न रहता है।

मंजरी की पति-भक्ति अंतिम प्रकार की थी। उसकी पति-भक्ति परपुरुष के समागम के अभाव में प्रकट न हुई थी और अज्ञान अवस्था से ही पति के संग रहने के कारण वह उत्पन्न भी न हुई थी। सशक्त पुरुष से भय का उसमें अंश न था, पालन करने वाले के प्रति उपकार वृत्ति का लेश न था, संतान के पिता के प्रति होने वाली भावनाओं पर वह पनपी न थी। यौवन की उछलती तरंगों को झेलने या रसिकता के अद्भुत रंगों को शोभा प्रदान करने का साधन मानकर भी यह भक्ति न जन्मी थी। मृत्यु के पश्चात् सुख पाने का लोभ, या ईश्वर को रिझाने की इच्छा इस भक्ति की प्रेरणाएं न थीं।

इस भक्ति का मूल अनिर्वचनीय प्रणय था, इसकी रचना पति के स्वभाव और जीवन-क्रम के साथ ऐक्य स्थापित करने से हुई थी; इसका पोषण सर्वव्यापी, एकनिष्ठ और उमड़ती हुई रसिकता और संस्कार करते थे। काक के निरंतर साथ की इच्छा, उसीके जीवन में रस, उसी की सेवा की इच्छा, उसी पर सत्ता जमाने की आकांक्षा, उसीकी अर्धांगिनी बने रहने का लोभ—ये सब इस भक्ति के अंग थे। किन्तु इन अंगों से बनी देह में निवास करती आत्मा निराली थी। इस आत्मा की ज्वलत शक्ति के कारण वह बिना प्रयास के आत्मासमर्पण साधती और देह और स्वभाव की भिन्नता भूलकर काक की अर्धांगिनी बनी रहती।

जिस समय बेनां ने मंदिर में उसका अपमान किया उस समय इस भक्ति ने उसके हृदय में अद्भुत प्रेरणा का संचार किया था। जिस वीर का वह अंग थी उसके प्रताप की उसमें स्फुरणा हुई। वह निःशस्त्र और निराधार स्त्री न रही, और कालभैरव को पराजित करने वाले और नवघण रा' को बन्दी बनाने वाले महारथी के साहस और उसकी अडिगता की मूर्ति बन गई।

रात-भर वह सोचती रही। पाँच-दस दिन में वंथली समाचार पहुंचेगा, उसके पश्चात् दस-बारह दिन में सेना उन्हें छुड़ाने के लिए आ पहुंचेगी। अतः बीस-पच्चीस दिन इस घेरे का सामना करना होगा। पांच आदमी और एक स्त्री मिलकर यह भगीरथ-कार्य कैसे पूरा करें यह वह सोचने लगी। गढ़ दृढ़ था। देवा नायक और सोमेश्वर प्रवीण गढ़रक्षक थे। आँबड़ महेता को भी घेरे का सामना करने की थोड़ी-बहुत कला आती होगी। उसे पश्चात्ताप होने लगा। काश्मीरादेवी कई बार उसे युद्ध-कला सीखने और शस्त्रों का प्रयोग करना सीखने के विषय में कह चुकी थी किन्तु अपनी विद्वत्ता और पति के शौर्य के विश्वास पर उसने उसका कहना न माना था। और इस समय वह पति की प्रतिष्ठा नष्ट करने बैठी थी। जैसे-जैसे रात व्यतीत होती गई वैसे वैसे उसे अपनी

निर्बलता पर तिरस्कार होता गया।

प्रकाश होते-होते वह उठी और देवानायक को उठाया।

'देवा! सोमेश्वर कहाँ सोया हुआ है? मुझे गढ़ देखना है।'

'देवी!' देवा ने गर्दन हिलाई, उसकी वाणी में अशांति थी।

'क्यों?'

'सोमेश्वर भाई तो पकड़ा गया।'

'हैं!' मंजरी के भाल पर स्वेद छूट गया।

'हाँ।'

'किंतु उसका हुआ क्या?'

'अनाज लेकर लौटते समय नगर के चौकीदार मिल गए। सोमेश भट ने नेरा और उसकी पत्नी को ऊपर भेजा, और स्वयं लड़ने के लि रह गए। उसके पश्चात् उनका क्या हुआ यह नेरा को नहीं मालूम।

मंजरी काँप उठी। इस अप्र-याशित दुर्घटना से उसका साह डिग गया।

'देवा! भगवान् की क्या इच्छा है?'

'देवी! जो भगवान् करे अच्छा है।'

'किन्तु अपना क्या होगा?' चिन्ता-भरे स्वर में मंजरी ने कहा उसके अंतर में निराशा अपना प्रभाव जमा रही थी।

'हमारा?' देवा बोला, 'भाई आएं तब तक गढ़ को टिकाए रखन और क्या?'

देवा के ये सामान्य शब्द सुनकर मंजरी लज्जित हो गई। जित श्रद्धा एक सैनिक को उसके पति में थी उतनी भी उसमें न थी! उस अंतर की गहराई से प्रेम और श्रद्धा उमड़ पड़े। उसके हृदय में ए वेगवती लहर आई। उसका मुख लाल हो गया।

'देवा!' वह गर्व-भरे स्वर में बोली, 'ठीक है। तेरे भाई आ तब तक हम गढ़ की रक्षा करेंगे। तू मेरे साथ चल, मैं गढ़ देख चाहती हूँ।'

'अभी देखकर क्या करोगी ?'

'मुझे दुर्गरक्षक बनना है,' मंजरी ने मुस्कराकर कहा।

देवा मंजरी से ईर्ष्या करता था। वह समझता था कि उसने उसके भाई से ब्याह करके अनधिकार चेष्टा की है। उदार होकर उसने अपने इस विचार का परिवर्तन आरम्भ कर दिया।

'चलिए!' कहकर वह आगे हो गया।

मंजरी और वह गढ़ पर घूमने लगे। जैसे-जैसे प्रकाश बढ़ता गया वैसे, वैसे गढ़ के कंगूरे नीचे का नगर और दूर-दूर के गाँव स्पष्ट दिखाई पड़ने लगे। धीरे-धीरे रेवा का पाट चाँदी की मेखला के समान पृथ्वी को शोभित करने लगा और दूर दिखाई पड़ते पर्वतों की शृंखला के ऊपर उषा का प्रकाश रक्तिम होने लगा।

मंजरी गढ़ देखने लगी। कहाँ से क्या होता है, किस स्थान से किस पंथ की रक्षा होती है और किस स्थान से किस प्रकार दूर के गाँव पहचाने जा सकते हैं—यह सब ज्ञान शीघ्रता से प्राप्त करने लगी। फिरते-फिरते जब वे उस स्थान पर आए जहाँ से वे चढ़े थे तो देवा ने सोमेश्वर और चौकीदारों में हुई टक्कर का स्थान उसे दिखाया। उस स्थान को ध्यान से देखने के लिए मंजरी ने तनिक ऊँची होकर कोट पर दृष्टि दौड़ानी आरंभ की।

'देवी! यह क्या कर रही हैं? इतनी नीचे न झुकिए, नहीं तो वह तीर मार देगा।' पीछे से आँबड़ का स्वर आया। मंजरी ने चमक कर पीछे देखा। आम्रभट दौड़ता हुआ आ रहा था। मंजरी जैसे ही पीछे हटी वैसे ही सन् करता हुआ एक तीर आया, और जहाँ मंजरी झुककर खड़ी हुई थी वहाँ पत्थर से टकराया।

'देवा। देखता नहीं? वहाँ खड़ा-खड़ा ताक जो रहा है।' आम्रभट ने क्रोधित होकर पूछा, और उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही देवा से तीर-कमान लेकर तीर छोड़ दिया। तीर नीचे खड़े हुए सैनिक के हाथ पर लगा। वह चीत्कार कर दूर भागा।

'आँबड़ महेता !' मंजरी ने मुस्कराकर कहा, 'तुम धनुष इतना कड़ा क्यों पकड़ते हो ?'

आम्रभट ने मंजरी की ओर इस प्रकार देखा मानो किसी ने उसका अपमान कर दिया हो। बचपन से धनुष को कड़ा पकड़ने की उसकी कुटेव थी। गुरु के रह-रहकर सावधान करने पर भी वह उसे छोड़ न सका था।

'आपने कैसे जाना ?' चकित होकर उसने मंजरी से पूछा।

'तुम्हारे दुर्गपाल बहुत ही हलका पकड़ते हैं उसी से।' मंजरी स्पष्ट किन्तु धीमे स्वर में बोली।

आम्रभट को तनिक क्रोध आ गया। 'तुम्हारे दुर्गपाल' वंथली में कट मरने गए हैं फिर भी यह स्त्री बार-बार उसे बात के बीच में लाती है। उसने मंजरी की ओर एक दृष्टि डाली। मंजरी का अभिप्राय अपमान करने का न था। काक की प्रतिष्ठा बढ़ाने का भी अभिप्राय उसका न था। जिस प्रकार माँ अपने पुत्र को सलाह देती है उसी सरलता से उसने यह बात कही थी।

'यदि आपने हलका पकड़ा होता,' देवा नायक कहने लगा, 'तो उसकी मृत्यु निश्चित थी।'

यह बात आँबड़ बहुत पहले समझ गया था, किन्तु देवा का इस प्रकार स्पष्ट कहना उसे बहुत बुरा लगा। किन्तु मंजरी के सामने इस विचित्र परिस्थिती में, क्रोध दिखाना उसने उचित न समझा। उसने हँसकर बात उड़ा दी।

'देवी। मेरी यह टेव किसी प्रकार नहीं मिटती। हाँ, आप इस समय कैसे निकल पड़ीं ? अभी कुछ हो जाय तो ?'

'मैं तो गढ़ देखने निकली हूँ।'

'हम सब क्या मर गए हैं ?'

'नहीं। किन्तु सोमेश्वर नहीं है तो उसके पर स्थान दुर्गरक्षक मैं ही हूँ न ?'

आम्रभट तनिक हँस दिया।

'वाह! इससे अच्छा और क्या हो सकता है?'

'हंसने की बात नहीं,' मंजरी ने गम्भीर होकर कहा, 'तुम्हारे दुर्ग-पाल के आने तक इस गढ़ की रक्षा करनी है।'

'तुम्हारे दुर्गपाल' ने पुनः आम्रभट पर आघात किया।

'अच्छा, यदि खाद्य समाप्त हो जाय तो—'

'तो भूखे पेट, मंजरी ने हँसकर बात पूरी की। 'चलो, मैं नहाकर नित्यकर्म करलूँ, फिर मुझे शस्त्र प्रयोग करना सिखाओ।'

'आप युद्ध करना सीखना चाहती हैं?' मंजरी का शिक्षकपद लेने की आशा से आम्रभट का हृदय उछल पड़ा।

'हाँ, हमारे एकाकी घर में हम दोनों को योद्धा बनना है।'

अनुपस्थित काक की निरंतर उपस्थिति से बेचारा आँबड़ कट गया, और कोई उपाय न सूझने पर मौन रहा।

: ७ :

आंबड़ को गुरुपद खलता है

आँबड़ महेता ने जिस समय युद्ध कला सिखाने की स्वीकृति दी उस समय तीन वस्तुओं पर उसने विचार नहीं किया था। एक तो उसकी शिष्या की लगना धूप, परिश्रम, थकान की मंजरी को चिन्ता नहीं थी। अपरिचित व्यायाम से हाथ थक जाते, अंग-अंग में पीड़ा होने लगती, सिर दुःखता, किन्तु रात होने तक वह पल-भर के लिए भी विश्राम नहीं लेती थी और न आँबड़ और देवा को विश्राम लेने देती थी।

दूसरी वस्तु मंजरी की बुद्धि थी। उसके कभी शस्त्र न पतड़े थे, किन्तु काक को, त्रिभुवनपाल को और काश्मीरादेवी को शस्त्रों का प्रयोग

करते बड़े ध्यान से देखा था। कई बार यह भी न पता लगता कि वे संजरी को सिखा रहे थे या मंजरी अपने आप सीख रही थी।

तीसरी वस्तु आंबड़ के धीरज को कठोर परीक्षा लेती थी। अपनी प्रयतमा के साथ घूमना-फिरना, हंसना-बोलना, उसे शस्त्रों का प्रयोग सिखाना और सिखाते-सिखाते अनजाने में उसका शरीर छू लेना—फिर भी, अपने और अपनी प्रियतमा के मध्य में एक अनुपस्थित व्यक्ति द्वारा निर्मित अभेद्य वातावरण को सदा देखते रहना—आम्रभट का विश्वास था कि जब से प्रणयसृष्टि का निर्माण हुआ तब से ऐसी त्रासदायक कसौटी पर अन्य कोई व्यक्ति न चढ़ा था। कुछ-समय तक उसने इस अभेद्य वातावरण को भेदने का प्रयत्न किया। उसने कई व्यक्तिगत बातें कहीं, जीवन के बहुत से प्रसंग सुनाए, आशाओं के सुनहले रंगों को चित्रित करने का प्रयत्न किया। इन सबके प्रति मंजरी ममता से देखती, हंस देती, बोलती, सहानुभूति प्रदर्शित करती सलाह देती—किन्तु उसके आस-पास का काकमय वातावरण जैसा था वैसा ही रहा। आम्रभट के सब प्रयत्न निष्फल गए।

दो-चार दिन व्यतीत हो जाने पर भी देख-भाल करने के कारण रेवापाल ने गढ़ को जीतने का कोई प्रयत्न न किया। अतः आम्रभट का संपूर्ण समय मंजरी को शस्त्र-कला सिखाने में ही व्यतीत होता। इन दिनों में उसकी व्यग्रता बढ़ गई थी। दिन भर उसे काक के विषय में सुनना पड़ता था। और रात को स्वप्न में भी काक ही दिखाई पड़ता था। काक के प्रति उसका द्वेष बढ़ता गया।

कई बार स्वप्न में उसे रह-रहकर यह विचार आता था—वह जूनागढ़ के घेरे में मर जाय तो! एक बार आने के पश्चात् यह विचार रह-रहकर आने लगा। वह उसे घायल अवस्था में देखने लगा, मरा हुआ देखने लगा। उसने उसके शव को चिता पर जलते देखा। उसे बड़ा आनन्द हुआ। इस विचार के आने के थोड़ी ही देर पश्चात् उसको मंजरी भेंट से हुई। उसे दूसरा विचार आया—काक मर जाय

तो मंजरी का क्या हो ? उसकी क्या दशा हो ? फिर उसके प्रेम का क्या हो ?

संध्या हो गई थी। मंजरी तनिक उदास थी। दोनों गढ़ के द्वार की खोज में निकले। चार-पांच दिन के साहचर्य के कारण दोनों खुल-कर बातें करते थे। आँबड़ को तो एक ही विचार आ रहा था—काक मर जाय तो मंजरी की क्या दशा हो ? बात करते-करते मंजरी पुराने प्रसंगों को पुनः स्मरण कर रही थी। आम्रभट का ध्यान एक बात पर विशेषकर जाता—मंजरी की बातों में उदा महेता का नाम कभी न आता था। कई बार ऐसे प्रसंग आ जाते थे जहाँ उसका नाम लेना आवश्यक हो जाता था किन्तु ऐसे अवसरों पर जिह्वा तक आ जाने पर भी वह उसका उच्चारण नहीं करती थी।

आज आम्रभट से न रहा गया, 'देवी ! हमारे खम्भात में भी दुर्ग-पाल के विषय में कई बातें प्रचलित हैं।'

मंजरी ने तनिक प्रयत्न करके पूछा, 'ऐसा ?'

'आपको वे वहीं से लाए थे न ?'

'हाँ।'

'मेरे पिता सदा आपका गुण-गान करते रहते हैं।' आँबड़ ने गप्प मारी।

मंजरी मौन रही। उसकी आंखें स्थिर हो गईं।

'आप खम्भात से कैसे भागीं कहिए न ?'

मंजरी तनिक मुस्कराई—'दुर्गपाल ले आए।' उसके स्वर में मधुरता थी।' मुझे अगले दिन साध्वी बनाने वाले थे और साध्वी बनने से पहले मैं मरने का निश्चय कर चुकी थी। ये तो तुम्हारे हेम-चन्द्राचार्य को लेने के लिए आए थे। किन्तु उसने जाने से मना कर दिया अतः उसके स्थान पर मुझे उठा लाए।' वह हंस पड़ी। उस हास्य में प्रणय की मधुर झंकार थी। 'खंभात से हम डोंगी में चले। जिस समय मुझे चेत हुआ उस समय तो इनके प्रति मुझे तिरस्कार

था--वह पुनः हँसी और आँबड़ के कान में रस-सागर उछल पड़ा।

'और अब—' समझ न पड़ने वाली कटुता से आंबड़ ने पूछा, किन्तु साथ ही हंस दिया।

उस शांत और निःशब्द संध्या में भी उसने मंजरी का मुख चमकता देखा।

'अब, उसके स्वर में प्रणय की झंकार थी' 'मेरा देवता है।'

कोई कुछ न बोला। प्रथम बार मंजरी इतनी अस्थिर होकर बात कर रही थी। प्रथम बार काक के लिए एकवचन का प्रयोग देखकर उसका हृदय धड़क उठा।

'दुर्गपाल अद्भुत व्यक्ति हैं,' आंबड़ ने कहा।

'अद्भुत!' मंजरी ने चमकती हुई आंखों से कहा, 'तुम सब उन्हें क्या जानो? वे जीते हैं इसलिए मैं भी जीती हूं—और मैं ही जानती हूं।'

पल-भर तक मंजरी शांत रही। आम्रभट का हृदय भर आया। उसके मस्तिष्क में चक्कर काटता हुआ विचार बाहर निकल पड़ने के लिए व्यग्र हो गया। वह समझा—न समझा और बोल पड़ा, 'ईश्वर न करे—उन्हें कुछ हो गया तो—' वह बोला और पछताया। कैसा प्रश्न था? और वह भी किससे? उसका अपनी जिह्वा खींच लेने का मन हुआ। मंजरी क्रोधित न हुई। ऐसा लगा, यही प्रश्न उसके मस्तिष्क में भी घूम रहा था। पल-भर के लिए उसकी आंखों में घबराहट छा गई, उसके स्वर में शब्दों से भी अधिक करुणा का अवर्णनीय भाव सुनाई पड़ा।

उसने सिर ऊपर उठाया।

'उनके मरने पर—मैं भी मर जाऊंगी।'

शब्द सीधे और सरल थे। उनके उच्चारण में भयंकर शांति थी, फिर भी आम्रभट की दृष्टि में सौंदर्य की यह अप्रतिम मूर्ति—इन शब्दों में ही मानो स्वयंभू अग्नि में जलती दिखाई दी। वह एक भी शब्द न बोल सका। मंजरी म्लान मुख से रेवा की ओर देखने लगी।

'देवी ! गला ठीक करके आँबड़ बोला, 'दुर्गपाल को कुछ नहीं होने का, वे तो अमर हैं।'

'मुझे भी ऐसा ही लगता है।' मंजरी ने अस्पष्ट और खिन्न वाणी में उत्तर दिया। 'यम को उनके निकट आते डर लगता है।' दोनों वहाँ से फिरे और अपने-अपने स्थान पर गये।

आँबड़ के मस्तिष्क के सामने काक के मरने पर निराधार बनी मंजरी आकर खड़ी होगई। यह गर्विष्ठा और सुन्दर स्त्री, सूखी और जलते पत्तों के समान, बिना अग्नि के जल जाने वाली थी। फिर भी ऐसी स्त्री को—जो ऐसे प्रसंग में जीवित रहने की कल्पना तक न कर सकती थी—ऐसी स्त्री को वश में करने की आशा रखना! आँबड़ का सिर घूमने लगा। मंजरी तो वैसी-की-वैसी, काक के वातावरण से ही आच्छादित रहने वाली थी, और यदि काक अग्नि की भेंट हो जायगा तो उसकी आँच से प्रज्वलित इसी वातावरण में वह जल मरने वाली थी। यह विचार आते ही आँबड़ अल्पता की अधम-से-अधम दशा में जा गिरा। जिस मनुष्य ने इस स्त्री पर विजय प्राप्त की थी वह उससे इतना बड़ा, बुद्धिशाली और शूरवीर था कि उसके स्थान को स्पर्श करने तक की योग्यता उसमें नहीं थी। उसका हृदय बैठ गया, आशाएं धूल में मिल गईं, अल्पता में मंजरी के प्रेम बिना जीवन व्यतीत करना उसे व्यर्थ-सा लगा।

'मंजरी! मंजरी!' अपने कमरे में वह मन-ही-मन चिल्लाया 'तुझे भगवान् ने ऐसा क्यों बनाया?' उसकी निद्रालस आँखों ने एक लंबी और तेजस्वी देवी, आत्मतेज से अँधकार को चीरते हुए, दूर, और दूर जाती हुई देखी। उसके कल्पना मंदिर में उसने उसे सिंहासन पर बैठते देखा। उसने नमस्कार किया। आँखें कब बंद हुईं यह वह न जान सका किन्तु जब वह उठा तो वही आम्रभट न रहा। उसका उद्वेग कुछ-कुछ कम हो गया था। निराधार हृदय की शक्ति उसमें प्रगट हुई। उसे अपनी चिंता न थी। भले काक मंजरी को ले जाय

भले मंजरी उस पर ध्यान न दे—किन्तु वह एक हतोत्साह व्यक्ति, उसके लिए अपने प्राण अवश्य देगा। जीवन में और कोई रस नहीं रह गया था—अतः काक और मंजरी के जीवन-रस में क्यों न वृद्धि करे? उसके मस्तिष्क में विचित्र विचार उठने लगे। वह अपने आप को काक और मंजरी के सुख का अधिष्ठाता समझने लगा, और इस पद को निभाने के लिए उसने सर्वस्व होम देने का निश्चय किया। विचारों की धुन में वह समर्पण के शिखर पर पहुंच गया था।

जिस समय आँबड़ महेता इस प्रकार विभिन्न भावों और विचारों के झूले में झूल रहा था उस समय रेवापाल लाट पर एकछत्र अधिकार स्थापित कर रहा था। प्रत्येक गाँव में पट्टणी अधिकारियों को बंदी बनाने या मार डालने और उनके स्थान पर लाट के अधिकारियों को नियुक्त करने में लगा हुआ था। पट्टणी सेना के खंभात तक आ जाने की शंका से उसने अपनी सेना खेटकपुर के निकट एकत्रित करनी आरंभ कर दी थी। भृगुकच्छ का गढ़ लेने की उसने आवश्यकता न देखी। गढ़ में नाममात्र के लोग, थे यह वह जान चुका था। दहेज तक उसकी आज्ञा का ढिंढोरा पीट दिया गया था। अतः किसीके लिए नदी पार करके गढ़ में जाना संभव न था।

गढ में अनाज था नहीं, अतः कुछ दिनों पश्चात् शस्त्र डाल देने के सिवा गढवासियों के लिए और कोई चारा न था।

: ८ :

वंथली की हलचल

अक्षयतृतीया के अवसर पर वंथली में बहुत हलचल थी। एभल नायक मर चुका था और उसे लौटाने की जूनागढ़ में किसीको चिन्ता न थी। वहाँ से कोई समाचार नहीं आया। जगदेव परमार के घाव अभी पूरे न थे अतः वहाँ की हलचल में भाग न ले सकने के कारण वह बिस्तर में पड़ा-पड़ा कुढ़ रहा था।

कुछ दिन हुए राजा का स्वास्थ्य सुधर गया था जब से उनका स्वास्थ्य सुधरा तब से पट्टणी सेना में विचित्र उत्साह आ गया था—मानो गिरनार को कंकड़ के समान उठा फेंकेंगे। इसका कारण राजा और रानी दोनों थे। पत्थर की चौकी के सामने लड़ते समय राजा के स्वभाव में कुछ परिवर्तन हो गया था। परिपाटी के अनुसार युद्ध करने की प्रणाली ही उन्होंने स्वीकार की थी और गर्व-भरा शौर्य दिखाने और घेरे की योजना बनाने को ही वे राजा के योग्य गौरव मानते थे। किन्तु चौकी के सामने उनके सिंह के समान स्वभाव ने व्यक्तिगत पराक्रम के रक्त का आस्वादन किया था, तब से राजसी ठाठ से घेरा डालने में उन्हें निर्बलता दिखाई दी। मन्त्रियों और सेनापतियों की वीरता के यश से लाभ उठाना उन्हें कायरता लगा।

उनके हाथ प्रलय ढाने को व्यग्र हो गए। उनका हृदय युद्ध में कूद पड़ने के लिए व्याकुल हो गया। उनकी इच्छा अपने ही हाथों से खेंगार का मानमर्दन करने के लिए उछलने लगी। स्वयं ही गिरनार को भूमिसात् करने की उनकी महत्वाकांक्षा थी। उन्होंने सेना के व्यूह रचने आरम्भ किए, सेनापतियों को आज्ञाएं देनी प्रारम्भ कीं और चारों की सेना को अपनी बनाकर खेंगार को उसके गढ़ में कुचल डालने का महाप्रयास प्रारम्भ किया।

राजा की इन सभी योजनाओं में लीलादेवी का भी हाथ सदा

रहता। कुछ लोग अन्दर-ही-अन्दर यह भी कहते थे कि ये सब योजनाएं उन्हीं के कारण बन रही हैं। वह निर्बल होगई। उसकी आँखें अधिक स्थिर होगईं, अधिक अन्दर धंस गईं। जो जूनागढ़ के घेरे का विचार तक न करती थी वही आज जूनागढ़ के लिए काल बन बैठी। उसके शांत और गहन हृदय में से द्वेष और आवेश की लहर पर-लहर आने लगी, जिनमें सम्पूर्ण पट्टणी सेना भी बहने लगी। इस आवेश और द्वेष का मूल निकट रहने वाले चतुर लोग सरलता से देख सकते थे। आज कितने ही दिन हो गए काक का कोई समाचार न मिला था। कोई बोलता न था किन्तु सबके मन में यह विश्वास जम गया कि काक मर गया। जैसे-जैसे दिन व्यतीत होते गए और यह विश्वास दृढ़ होता गया वैसे-वैसे जूनागढ़ के प्रति लीलादेवी का क्रोध और द्वेष बढ़ता ही गया। राजा ने प्रथम बार भावहीन रानी में उत्साह के बीज देखे, रानी ने प्रथम बार जयदेव को राज्यपद के आडम्बर से अलग आत्मशौर्य में शोभित देखा। शरारत करने पर तुले दो बालकों पर जैसे रंग छा जाता है वैसे ही इन दोनों पर भी रंग छागया था। इन दो के साथ और दूसरे दो व्यक्ति मिल गए थे। त्रिभुवनपाल दण्डनायक और काश्मीरादेवी। उत्तर में एक सेना के साथ होने पर भी काक के विषय में सुनकर वे आ पहुंचे और रानी के निश्चय को और भी दृढ़ बनाने लगे।

मुंजाल महेता यह उत्साह देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्हें जूनागढ़ के घेरे से अधिक जयदेव के स्वभाव की चिन्ता थी। जयदेव में शौर्य प्रकट हुआ देखकर वे निश्चिंत हो गए। जयदेव को व्यर्थ आडंबर रखने का इस समय अवकाश न था। बाबरा भूत या जगदेव परमार की सहायता से भय उत्पन्न करने का अवकाश न था। वे पट्टणी सेनापतियों के साथ मित्र के समान हिलते-मिलते थे और युद्ध की योजना बनाते थे। अपने ही शौर्य से अपनी सर्वोपरिता को प्रमाणित करने के लिए वे व्याकुल थे। राजा और रानी में सम्बन्ध प्रगाढ़ हो रहा

था यह भी उनकी दृष्टि के बाहर न था। विश्वकर्मा के गर्व से वे सभी में रस लेते थे।

: ६ :

प्रणयी की गुप्त बातें

कुछ दिनों तक वंथली में भारी हलचल रही। एक दिन मध्य-रात्रि को समर्थ खिड़की खोलकर बाहर झाँक रही थी। उसे ऐसा लग रहा था मानो पृथ्वी अपनी धुरी से खिसक गई हो। उसके पिता का जी ठिकाने न था अतः वे दिन-भर बाहर रहते थे। राजा को जाने क्या उछल-कूद करने की सूझी थी। लीलादेवी तो विकराल जगदम्बा-सी लगती थी। 'प्रेमकुँअर,' समर्थ बड़बड़ाई, 'वह पेमला' पागल हो गई थी क्योंकि उसके 'महेता' को घोड़े पर चढ़कर मेंदरड़े जाना पड़ा था। और वाहड़ महेता तो जाने कहाँ पाताल में घुस गया था कि दिखाई ही न पड़ता था। बाहर से सभी शांत रहने का प्रयत्न कर रहे थे किन्तु अन्दर-ही-अन्दर सभी अस्थिर थे। एक घेरे के लिए कैसे लोग इतने पागल हो जा सकते हैं यह वह न समझ सकी, और इतना दुःख किसी और पर पड़ा हो यह भी समर्थ न जानती थी।

कभी-कभी वाहड़ महेता इस खिड़की के सामने आता था, अब आता ही नहीं, सजल-नयन होकर समर्थ ने विचार किया। 'काक पकड़ा न गया, और वाहड़ महेता का दादा मन्त्री न था—अतः उसके स्वप्न तो नष्ट होगए। अब उसका और उसके महेता का क्या होगा ?' पशोपेश में पड़कर उसने प्रश्न किया। उत्तर में किसी की पग-ध्वनि सुनाई पड़ी। यदि यह पग-ध्वनि वाहड़ की निकल आए तो उसने शासनदेवी पद्मावती को चुनरी चढ़ाने की मनौती मानी। उसने अन्धकार में बहुत ध्यान से घूरकर देखा और नवपद

का जाप किया।

उसकी मनौती और जाप फलीभूत हुए। शीघ्र ही वाहड़ महेता का स्वर आया—'समर्थ !'

'अरे !' कहकर समर्थ खिड़की से आधी बाहर लटक गई, 'मैंने मनौती मानी ही थी कि तुम आगए।'

'धीरे बोल।'

'क्यों ?' धीरे और सरलता से समर्थ ने पूछा।

'मैं एक शुभ-समाचार देने आया हूं।' कवि हृदय उमड़ा।

'क्या ? बताओ—बताओ—बताओ—'

'अरे ! तू धीरे बोल, नहीं सम्पूर्ण गढ़ एकत्रित हो जायगा।'

'हाय ! मुंह से निकल जाता है। क्या है ?'

'किसीको कहना मत !'

'तुम तो मुझे मूर्ख ही समझते हो।' होंठ चबाते हुए समर्थ बोली।

'देख, मैं एक समाचार लाया हूं जिससे हमारा ब्याह पक्का हो जायगा।' उत्साह से भरकर वाग्भट बोला।

'सच ?'

'अरे ! धीरे, मुझे समाचार मिला है कि काकभट जीवित हैं।'

'चूल्हे में जा— '

'सुन ! उसे बन्दी बनाकर रा' के महल में रखा गया है।'

'झूठ !' समर्थ बोली।

'अरे, मैं अपने कानों सुनकर आया हूँ। मैं पिताजी के साथ जूनागढ़ गया था वहीं सुना कि उसे चोट तो बहुत लगी है, किन्तु खेंगार उसे महल में रखकर उसकी टहल कर रहा है। अब मैं उसे छुड़ा लाऊं कि फिर—'

'कि फिर पिताजी मुझे तुम्हारे साथ ब्याह देंगे। ठीक है न ?'

'अरे धीरे—' कुढ़कर वाहड़ बोला।

'अरे अच्छा ! धीरे—' चिढ़कर समर्थ ने कहा, 'जन्मी तभी से मैं तो धीरे ही बोलती आई हूं।'

'अब मैं जाता हूँ,' वाहड़ ने कहा, 'तू आराम से सोना।'

'महेता—ओ महेता !'

'क्या है।'

'मैं अब समझी ?'

'क्या ?'

'मेरे पिताजी मुझे ब्याहते क्यों नहीं, यही—'

'क्यों ?' कुछ चिन्तातुर मुख से वाहड़ ने कहा।

'हम कुछ मनौती नहीं मानते इसीलिए।'

'इसमें क्या है, तू कहे वह मनौती मान लूं। तेरे बिना मेरा जीवन सूख जायगा।' भावुक वाहड़ बोला, 'कठिन-से-कठिन मनौती मानूँ—तू कहे तो।'

'अच्छा एक काम करो। किसी तीर्थ का उद्धार करने की मनौती मानो।'

'मैं तो अड़सठ ही तीर्थों का उद्धार कर दूं—'

'हाय—हाय—इतना अधिक नहीं—'

'तो ?'

'एक पर्याप्त होगा।'

वाहड़ इस भोली लड़की की ओर प्रशंसा-भरी दृष्टि से देखने लगा। उसके हृदय में तीव्र प्रणय-संगीत गूंज उठा।

'अच्छी बात है समर्थ, तू मिल जाय तो मैं शत्रुंजय का जीर्णोद्धार करवाऊँ—बस ?' गम्भीर स्वर में वाहड़ बोला। उसका तेजस्वी मुख दीप्त हो उठा।

समर्थ को सतोष हो गया, 'महेता ! अब मेरा गीत पूरा हो जायगा।'

'ऊँह !' कहकर वाहड़ महेता कल्पना के घोड़े पर आरूढ़ होकर

विहार करता हुआ वहाँ से विदा हुआ। समर्थ के हर्ष की सीमा न रही। उसे लगा कि वाहड़ अवश्य काक को छुड़ायगा। फिर उसका पिता उसके साथ उसका ब्याह कर देगा, और फिर वे दोनों मिलकर शत्रुंजय का जीर्णोद्धार करेंगे। उसके नन्हे-से हृदय के लिए यह बात बहुत बड़ी थी—उसे लगा कि इस समय सम्पूर्ण राजगढ़ को नाच उठना चाहिए। काकभट जीवित है यह उसके वाहड़ ने पता लगा लिया। कितनी अच्छी बात है! किन्तु यह अच्छी बात जानने-सुनने वाला कौन? वह एकदम उठी, कुछ हँसी और कूदकर बाहर निकली। 'प्रेमकुंअर क्या कर रही होगी?' कहते हुए वह चुपचाप पिछली सीढ़ियों से जहाँ शोभ महेता रहते थे वहाँ गई।

शोभ महेता तो मेंदरड़े गये हुए थे अतः उसने साहस करके धीरे-से कड़ा खड़खड़ाया।

'कौन है?' प्रेमकुंअर का घमण्ड-भरा प्रश्न सुनाई पड़ा।

प्रेमकुँअर को राज्य-कार्य के प्रति एकदम तिरस्कार हो गया था। उसके महेता को मेंदरड़े भेजा—यह भी कोई बात है? उसकी न जाने कितनी भावनाएं दबी पड़ी रह गई थीं—कि किसी ने कड़ा खड़-खड़ाया। उसका हृदय धड़क उठा—'क्या उसके महेता आगए?' एक निःश्वास लेकर उसने द्वार खोला कि समर्थ उससे लिपट गई। पति की प्रतीक्षा करती प्रेमकुंअर को समर्थ के आलिंगन से कंपकंपी छूट गई। उसने अपने को एकदम छुड़ाया और बड़बड़ाई—'यह पगली अभी कहाँ से?'

'प्रेम भाभी! प्रेम भाभी!' समर्थ प्रेमकुंअर के कन्धे पर सिर रखकर हर्ष से हाँपने लगी, 'मेरा ब्याह पक्का हो गया।'

'किसके साथ?' तिरस्कार से प्रेमकुंअर ने पूछा। अपने ब्याह को छोड़ दूसरों के ब्याह का कोई महत्व हो भी सकता है यह वह न समझ सकी।

'वाहड़ महेता। वे काकभट को छुड़ाकर लाने वाले हैं।'

'काकभट !' चतुर नागरनी के कान खड़े हो गए।

'हाँ, उसे बन्दी बनाकर रा' ने महल में रखा है। मेरे वाहड़ मट्टेता उससे भेंट कर आए हैं।'

'हैं !'

'हाँ, तू देखती जा,' कहकर समर्थ पागल-सी हंसने लगी। प्रेमकुंअर इस बात का महत्व समझती थी।

'जाकर सो जा, पागल हो जायगी।' कहकर गर्व से प्रेमकुंअर समर्थ को झिड़कती हुई वहाँ से चली गई।

'किन्तु किसीको कहना मत, मेरी सौगन्ध है।'

'तेरी सौगन्ध,' कहकर प्रेमकुंअर अदृष्ट हो गई और इस हृदय-हीन मित्र के प्रति मौन तिरस्कार प्रकट करती हुई समर्थ वहाँ से चली गई।

लीलादेवी होंठ पीसती हुई अपने कमरे में इधर-से-उधर घूम रही थी। उसकी आंखों में नींद न थी। उसका हृदय उद्विग्न था। उसे विश्वास हो गया था कि काक मर गया है। उसको झुकाने वाला, लाट की महत्ता का प्रतिनिधि, उसकी महत्वाकांक्षा को उत्तेजित करने वाला वीर इस समय किसी घाटी में मरा पड़ा होगा। श्वान या सियार उसके माँस को सूँघ रहे होंगे। भृगुकच्छ में उसकी स्त्री आशा-भरे हृदय से प्रतीक्षा कर रही होगी। उसके शांत और कठोर हृदय में मंजरी के लिए भी दो स्नेह-भरे शब्द निकल पड़े।

कमरे में एक छोटा दीपक जल रहा था। एकाएक द्वार खुला और प्रेम आई। रानी ने बनावटी शांति से उसकी ओर देखा। रानी का कठोर और भावहीन मुख देखकर प्रेम तनिक संकुचित होकर खड़ी हो गई।

'देवी ! एक शुभ-समाचार लाई हूं।'

रानी को इस समय विनोद पसन्द न था। उसने कठोर होकर पूछा—'क्या है ?'

'काकभटजी जीवित हैं।' प्रेमकुंअर जल्दी-जल्दी बोली।

लीलादेवी उछली, 'सच ?'

'हाँ, जूनागढ़ में रा' के महल में हैं। बहुत अस्वस्थ हैं।'

रानी के भाल की नसें उभर आईं—'किसने कहा ?'

'समर्थ ने।'

रानी निराश हो गई, 'उसने कैसे जाना ?'

'वाहड़ महेता ने उससे कहा।'

'वाहड़ ?' लीलादेवी ने अधीर होकर पूछा, 'उसने कैसे जाना ?'

'वह जूनागढ़ में काक से भेंट कर आया है।'

'जूनागढ़ जाना क्या इतना सरल है कि वहाँ जाकर उससे भेंट कर आया ? चल यहाँ से, ऐसी व्यर्थ की गप्पें लाती है ! जा, जाकर सो जा।' तिरस्कार से रानी ने कहा, 'प्रातःकाल बात करूंगी।'

प्रेमकुँअर अपमानित हुई अतः नाक चढ़ाकर वहाँ से चली गई। 'कितना घमंड है,' मन-ही-मन वह बड़बड़ाई, 'यह तो सोलंकी के घर आई है इसलिए सब कुछ निभ जाता है।'

लीलादेवी की अधीरता बढ़ी। उसे कुछ न सूझा। उसकी अकुलाहट की सीमा न रही। अन्त में उसे एक मार्ग सूझा और उसने मंगी को बुलाया—'मंगी ! जा, देख आ, महाराज क्या कर रहे हैं ? कहना मुझे एक आवश्यक काम से भेंट करनी है।'

'इतनी रात गए ?'

'इससे तुझे क्या ?'

मंगी एकदम गई और शीघ्र ही लौट आई।

'देवी ! देवी ! महाराज पधारे हैं।' जयसिंहदेव उत्साह से डग भरते हुए आए। उनकी आँखें अधीरता से चमक रही थीं।

'मैंने नींद से तो नहीं जगाया ?' रानी ने मुस्कराकर पूछा।

'नहीं रे, मैं अभी-अभी एक झंझट से छूटकर आ रहा हूँ। क्यों, क्या बात है ?' रानी की गोद पर हाथ रखकर वे बैठ गए।

'मुझे एक समाचार मिला है।'

'क्या ?'

'काक जीवित है और रा' के महल में है।'

राजा ने आँखें फाड़कर देखा, 'कौन यह गप्प लाया ?'

'बताती हूं किन्तु यह गप्प है या नहीं यह आप खोज निकालिए। शोभ की बहू प्रेमकुँअरी यह समाचार लाई है।'

'उसे कहाँ से मिला ?'

'समर्थ से, और उसे कहा वाहड़ ने। कहते हैं वाहड़ ने उससे जूनागढ़ में भेंट की है। ऐसे कैसे हो सकता है ?'

राजा खड़खड़ हंस पड़े, 'वाहड़ तो कवि का कवि रहा! तब तो बात सच है। वाहड़ शंका का समाधान करने अभी अपने बाप के साथ जूनागढ जाकर आया है। मैं उदा महेता से अभी-अभी यही बात कर रहा था।'

'समाधान!' लीलादेवी के हृदय में होली सुलग उठी।

'ये तो व्यर्थ में प्रयत्न कर रहे हैं, रा' ने स्पष्ट ना करदी है। हाँ, तुम्हारी बात ठीक लगती है। वाहड़ को कुछ-न-कुछ पता अवश्य लगा होगा।'

'ठीक-ठीक पता लगवाइए।'

'अभी लो। मंगी! जा, वाहड़ को बुला ला।' महाराज ने आज्ञा दी।

: १० :

वाहड़ काक को छुड़ाने जाता है

इन कुछ दिनों में राजा में बहुत परिवर्तन हो गया था। उनकी एकाग्र आँखें, फूलते नथुने, और उनके शरीर की धनुष-सी सुघड़ता उनके हृदय में के उत्साह को प्रकट कर रहे थे। वे न थकते थे, न सोते थे, न उनकी शक्ति कम होती थी, न कोई वस्तु उनके ध्यान से बाहर रहती थी और न किसी साधन का प्रयोग करना ही वे चूकते थे। विलास और सत्ता के प्रेमी-से वे एकदम प्रलय के समान बन गए।

कई मनुष्यों के स्वभाव ऐसे होते हैं जिनमें निरंतरता, एकतारपन सदा ही दिखाई देता है। या तो उनमें उग्र एकाग्रता, या स्थिर कर्तव्य-परायणता, या सुमधुर रसिकता या निश्चितता या निर्बलता निरंतर प्रवाहित होती रहती है। किन्तु कईयों के स्वभावों में विभिन्न समयों पर विभिन्न तरंगें आ जाती हैं; इतना ही नहीं कभी-कभी तो यह तरंगें इतने वेग से आती हैं कि देखने वाले को यह भ्रम हो जाता है कि यह व्यक्ति कहीं पागल न हो जाय। जयसिंहदेव महाराज ऐसे ही तरंगी स्वभाव के थे। स्वाभिमान को छोड़कर उनके स्वभाव में और कोई वस्तु स्थायी न थी। पाटण के प्रतापी नरेश, सोलंका कुल-शिरोमणि, विजय-सेना के नायक, और गुजरात की अतुल समृद्धि के स्वामी अपने ही गर्व में निमग्न रहते थे। किन्तु तरंग आते ही वे सब छोड़कर विलासी बन जाते, घड़ी में स्वार्थी और शंकाशील हो जाते, घड़ी में उदार और निर्मल हृदय बन जाते। कभी उनके चातुर्य की प्रतापी चमक सभी को चकाचौंध कर देती, कभी औदार्य की जलधारा चारों ओर बहने लगती। जो बाबराभूत की सहायता से अमानवीय होने का दम भरते थे वे ही कभी-कभी मानव-हृदय की सद्भावनाओं को बड़ी सरलता से प्रकट कर सकते थे। हिमालय के प्रदेश में प्रकृति जैसी अनिश्चित होती है वैसी ही महाराज की थी। पल में प्रखर ताप छा जाता है और पल में

आकाश मेघाच्छन्न हो जाता है, अटूट वर्षा थम जाती है और प्रकृति हँसने लग जाती है, हरियाली और हिम दोनों का सौंदर्य वहाँ दिखाई पड़ता है और सब परिवर्तन अनजाने ही हो जाते हैं। इन स्वप्नों में से किसी विशेष समय पर जो स्वरूप होता है वह प्रचण्ड तो होता ही है। महाराज को भी ऐसी ही प्रचंड धुन लग गई थी। उन्होंने जूनागढ़ का विनाश करने के लिए तांडव-नृत्य इस प्रकार प्रारम्भ किया मानो वे रुद्र के अवतार हों।

बीमारी से उठने के पश्चात् महाराज में यह तरंग इस प्रकार उठी कि जो लोग उनसे वर्षों से परिचित थे वे भी चकित हो गए। बड़े-बड़े शूरवीर महारथी इस ज्वलंत प्रताप को देखकर चकाचौंध हो गए। जो जगदेव की तलवार या बाबरा के आतंक से कभी भयभीत न हुए थे वे महाराज की इस धुन से डर गए। पुत्र की बीमारी से मीनलदेवी को जितनी चिंता हुई थी उतनी ही चिन्ता यह धुन देखकर हुई। किन्तु उठती लहर को रोक देने वाला भी उनकी इस तरंग को न रोक सकता था। जिसके उत्साह को उकसाने की आवश्यकता थी आज उसीके उत्साह को कोई कम कर दे तो अच्छा, ऐसा उन्हें लगा। चतुर, दूरदर्शी लीलादेवी इस तरंग को देखकर चकराई तो नहीं, हाँ कुछ विस्मित अवश्य हो गई। उसके चतुर हृदय को यह नवीनता, देखकर कुछ आनन्द हुआ, उसकी महत्वाकांक्षा कुछ-कुछ संतुष्ट हुई। उसे लगा यदि महाराज सदा ही ऐसी तरंग में रहें तो पाटण कदापि दुसःह न हो।

मंगी के बाहर जाने पर महाराज रानी की ओर मुड़े। 'उदा एक नई युक्ति लाया है,' वे बोले।

कुछ भवें सिकोड़कर रानी ने पूछा, 'क्या?'

'उदाने रा' के भाणेजों को अपने हाथ में कर लिया है।'

'कौन देशल और वीशल?'

'हाँ, ये हमसे मिल जायँगे।'

'किन्तु मुझे ऐसों पर विश्वास करना अच्छा नहीं लगता।'

राजा गर्व से हंस दिए, 'मैं उन पर विश्वास करूँ ! मैं उन्हें भलीभाँति जानता हूं। ये तो खेंगार बड़ा भोला है कि उन्हें घर में रख छोड़ा है। किन्तु उनके कारण जूनागढ़ हाथ लग सकता है।'

'किस प्रकार ?' तनिक अधीर स्वर में रानी ने पूछा।

'गढ़ में उन्होंने कितने ही सैनिकों को अपनी ओर मिला लिया है।'

'अर्थात्,' कुछ तिरस्कार से रानी ने कहा, 'चुपचाप गढ़ में प्रवेश किया जा सकेगा ?'

'हाँ,' मुस्कराकर राजा ने कहा।

'महाराज !' रानी ने शांत और तिरस्कार-भरे स्वर में कहा, 'विश्वास-घात से गढ़ लेना बुरा नहीं, किन्तु खेंगार की कीर्ति आपकी कीर्ति को मन्द कर देगी।'

ये शांत शब्द महाराज को कोड़े-से लगे। उन्होंने रानी की ओर कुछ अधीर होकर, कुछ क्रोध में, देखा। किन्तु रानी के शांत तिरस्कार में सदा ही ऐसी तटस्थता रहती थी कि राजा प्रायः उसमें अन्दर-ही-अन्दर डरता था।

'कीर्ति !' अधीर होकर जयसिंहदेव ने कहा, 'मेरी कीर्ति को खेंगार मंद करेगा ? देवी, युद्ध में कीर्ति विजेता को प्राप्त होती है। पराजित की कीर्ति कैसी ? जूनागढ़ जीतना है और जिस-किसी साधन से वह जीता जा सके वही मेरा हथियार है।'

'हाँ,' हंसकर लीलादेवी बोली, 'किन्तु आपके पास जब आपको शोभा दे ऐसा अस्त्र है तो अशोभनीय अस्त्र क्यों उठाते हैं ? यदि आप गढ़ को शक्ति से तोड़ सकते हैं तो लोगों को फुसलाकर छिप-कर प्रवेश करने से क्या लाभ ?'

उत्तर की प्रतीक्षा में रानी पल-भर के लिए रुकी। राजा ने उत्तर न दिया। शक्ति और भेद दोनों का प्रयोग वे क्यों करना चाहते थे

यह बात रानी को बताने जैसी नहीं थी। क्रोध, शत्रुता, आवेश के धुँआधार में कभी-कभी उन्हें अपने हृदय में राणकदेवी का मुख दिखाई दे जाता था, और जिस स्त्री ने बचपन में उनका तिरस्कार किया था उसे झुकाने की लालसा सदा से उनके हृदय में थी। यह सब वे कैसे लीलादेवी को कह सकते थे ?

कुछ देर पश्चात् राजा ने उत्तर दिया, 'जूनागढ़ गिर जाय तभी मुझे कुछ सूझेगा।'

'अच्छा ?' उत्तर की असंबद्धता देखकर रानी ने उदासीनता से पूछा।

'अन्नदाता ! वाहड़ महेता आगए हैं।' मंगी आकर बोली।

'बुला ला' राजा तनिक मुस्कराकर बोले। रानी के साथ अधिक वादविवाद करने में उन्हें सार न दिखाई दिया।

वाहड़ ने अंदर प्रवेश किया और हाथ जोड़कर खड़ा होगया।

'वाहड़ ! तूने जूनागढ़ में काक के विषय में कुछ सुना ?' राजा ने पूछा।

वाहड़ चकित हो गया। राजा को यह बात कहाँ से मालूम हो गई ?

'क्या सुना ?' शांत और सत्ता-भरे स्वर में लीलादेवी ने प्रश्न में संशोधन किया।

'मुझे लगता है कि भटराज जीवित हैं।'

यह सुनकर रानी की आँखें चमकीं।

'तो मुझसे कहा क्यों नहीं ?' राजा ने क्रुद्ध होकर कहा। 'अभी-अभी मुझसे सब बातें कर गया किंतु इस संबंध में एक अक्षर भी न कहा। तू भी अपने बाप के समान सब कुछ चुपचाप करना सीख गया है क्या ?'

'महाराज !' नीचे देखते हुए वाहड़ बोला, 'क्षमा कीजिए। मेरा विचार—'

'क्या ?'

'कि काकभट को छुड़ा लाकर महाराज को प्रसन्न करूं।' वाहड़ बोला।

लीलादेवी हँस पड़ी। राजा की आँखों में भी हंसी चमक गई। उनका क्रोध जाता रहा।

'वाहड़ ! इसी समय जा —'

'जो आज्ञा।'

'देशल और वीशल के लिए संदेशा भी तू ही लेता जा।'

'जी।'

'उनसे कहना विलंब करना मुझे पसंद नहीं। मुझसे आकर भेंट करनी हो तो एकदम आएं। तू लेकर ही आना। परसों सब यहाँ एकत्रित होंगे। यदि समय पर आने का उनमें साहस न हो तो कह देना कि जयसिंहदेव सोलंकी धावा बोलने के पश्चात् किसी की चिंता नहीं करेंगे।'

'जी।'

'और उनकी सहायता लेकर काक को छुड़ाकर लाना।' राजा ने कहा।

'इस समय काक के बिना हमारा काम नहीं चल सकता।' रानी ने बात पूरी की।

'देवी ! भटराज जीवित होंगे तो खाली हाथ न लौटूंगा।'

'परसों तुम चारों को यहाँ देखना चाहता हूँ।'

'जो आज्ञा।'

'जा, शीघ्र जा।'

वाहड़ प्रणाम करके वहाँ से चला गया और मंगी भी जाने लगी।

इतने में महाराज उठे।

'क्यों, जा रहे हैं ?'

राजा मुस्कराए, 'परमारी रानी आज कई दिनों से रूठी हुई है। कितनी ही बार संदेशा भेज चुकी है।'

लीलादेवी खड़खड़ हंस पड़ी, 'मैं नहीं रूठने की। पधारिए !' वह शांत और तटस्थ बनकर खड़ी रही। राजा ने उसकी ओर देखा और उसकी शांति और स्थिरता देखकर घबराए। यह स्त्री उनके ठीक-ठीक समझ में नहीं आती थी। उनका मन रात यहीं काटने का हुआ, किन्तु इस तलवार की धार-सी तीखी, तेजस्वी, और भावहीन स्त्री के साथ रात काटने का उनमें धैर्य न रहा। उन्हें तो इस समय कोई ऐसा चाहिए था जो उन्हें हंसा सके, रिझा सके, उनसे झगड़ सके। वे मुस्कराकर वहां से चले।

लीलादेवी कुछ देर तक सोचती रही। उसके होंठों पर मुस्कराहट छा गई। वह आत्मतिरस्कार से कुछ बड़बड़ाई—'यह हीरा अनपरखा ही रह जाने का।' फिर वह मंगी की ओर घूमकर बोली, 'मंगी, मैं सोती हूँ।'

'जैसी देवी की इच्छा।' कहकर मंगी ने द्वार के सामने अपना बिस्तर लगाना प्रारंभ किया।

रानी के हृदय में असंतोष न था, ईर्ष्या न थी। जूनागढ़ के विजेता की वह पटरानी थी और काक जीवित है इस बात से उसके हृदय में शांति छा गई थी। वह निश्चिंत होकर सोने की तैयारी करने लगी।

: ११ :

देशलदेव

दूसरे दिन रात को देशलदेव जूनागढ़ में अपनी हवेली के सबसे ऊपर के कमरे में बैठा हुआ था। पाटण के मंडलेश्वर का पुत्र, रा' खेंगार के भाणेज का शरीर पन्द्रह वर्ष पहले पाटण आने पर काक ने जैसा देखा था वैसा ही क्षीण था। उसका मुख स्वाभाविक कुरूपता और आयु दोनों के प्रताप से अत्याकर्षक लग रहा था। उसकी आँखें पीली होते हुए भी तेजस्वी थीं। वह मूँछ मुंह में रखकर चबा रहा था।

उसकी आँखें चंचल होकर नाच रही थीं।

वह आज व्यग्र था, स्वाभाविक असंतोष को पाल-पोसकर उसने बहुत विशाल बना लिया था। इस असंतोष का मूल कारण उसका पाटण और सोरठ से सम्बन्ध था। इन दोनों प्रतापी सिंहासनों की छाया में उसका जन्म हुआ था।

वह सदा विचार किया करता—यदि कर्णदेव महाराज निपूते मर गए होते, या जयसिंहदेव बाल्यावस्था मे मर गया होता और त्रिभुवन-पाल जैसे वर्णशंकर और मुंजाल जैसे की सहायता न होती तो आज वह पाटण का स्वामी होता। यदि खेंगार निपूता मर जाय या उसके पुत्र मर जायँ तो वह जूनागढ़ का स्वामी बन जाय। उसके दुर्भाग्य से दोनों सिंहासन उसकी दृष्टि के सामने थे फिर भी कभी निकट और कभी दूर दिखाई पड़ते थे।

इस बात को साठ वर्ष होगए थे। पहले वह ननिहाल में रहा, फिर पाटण में रहा किन्तु सोरठ को सहायता देने के कारण मुंजाल बिगड़ खड़ा हुआ और उसे पाटण से निकाल बाहर किया। यहां आने पर उदार खेंगार ने आश्रय दिया किन्तु पूर्णतः उस पर विश्वास नहीं किया। अन्त में थककर उसने पाटण और जूनागढ़ के बीच संधि करवा दी। जयसिंहदेव का कृपापात्र बनने का प्रयत्न किया। उसने उदा महेता के

साथ सलाह करना प्रारंभ किया, उसके द्वारा उसने जयसिंहदेव को मनाया, बड़ी कठिनाई से खेंगार के दृढ़ निश्चय को ढीला किया, और अब राणकदेवी ने बाधा डाली। उसका असंतोष सीमा का उल्लंघन करने लगा। अब उसे किसीकी चिंता न रही, चाहे जूनागढ़ पराजित हो चाहे पाटण उजड़ जाय और चाहे जयदेव राणकदेवी को उठा ले जाय—उसे किसी की चिंता न रही। अब वह अपना अंतिम प्रयत्न कर रहा था—अपने भाग्य की अंतिम पँखुरी खोलने का निश्चय कर रहा था। किन्तु उसे खोलने की कोई युक्ति न सूझती थी। पिछले थोड़े दिनों से एक योजना उसके मस्तिष्क में चक्कर काट रही थी और इस समय वही उसके मन में रमी हुई थी। वह मूँछ मरोड़कर मुस्कराया। कितनी सरस योजना!

कुछ दिनों पहले उसका भाई वीशल एक अच्छा समाचार लाया था और तभी से यह योजना उसके मस्तिष्क में आई थी। समाचार इतना ही था कि राणकदेवी छिपकर किसी परपुरुष की सेवा करती है। यह बात सुनकर देशलदेव को अपनी शंकाएं उचित लगीं? इस साध्वी दिखाई पड़ने वाली रानी की साधुता ही उसके किसी गुप्त पापाचार की साक्षी दे रही थी। अब यह पकड़ में आ गई।

उसने गहरा विचार किया—जूनागढ़ की दुर्जयता का आधार वहाँ का गढ़ था, गढ़ का आधार उसके स्वामिभक्त योद्धा थे, ये योद्धा खेंगार की अडिगता पर टिके हुए थे और यह अडिगता देवड़ी की एकनिष्ठा पर निर्भर थी। यह एकनिष्ठा असत्य प्रमाणित हो तो खेंगार डिगे, खेंगार डिग जाय तो सोरठी निराधार हो जायं, वे निराधार हो जायं तो गढ़ गिरे और गढ़ गिरे तो जयदेव को विजय प्राप्त हो—जयदेव जूनागढ़ ले ले तो फिर जूनागढ़ पर राज्य करने के लिए उसे किसी की आवश्यकता होगी ही। तो फिर—फिर एक सिंहासन तो हाथ में आएगा! देशलदेव को लगा कि जीवन के अन्तिम दिन निकट आते जा रहे हैं और थोड़े ही समय में उसकी आशाओं के महल धूल में मिल जायंगे। फिर अवसर क्यों गंवा दिया

जाय ? उदा महेता को बुलाकर चुपचाप उससे भेंट की और जयसिंहदेव को जूनागढ़ पर विजय प्राप्त करवा देने का वचन दिया। उदा महेता संदेशा लेकर वंथली गये।

इतने में उसका भाग्य और चमकता दिखाई दिया। एभल नायक गुम होगया, और एभल नायक की चौकी पर पट्टणियों ने अधिकार कर लिया। यह चौकी जूनागढ़ का महत्त्वपूर्ण नाका था, और इसी के कारण वर्षों से जूनागढ़ में कभी अनाज की कमी न हुई। एभल चतुर और बुद्धिमान मोरठी था और उसने चारों ओर ऐसा दबदबा फैला रखा था कि पट्टणी सेना ने उसे पराजित करने की आशा कभी की त्याग दी थी। उसे कोई न छेड़ता था। चौकी में बैठे-बैठे ही वह चारों ओर से अनाज, घास और अन्य आवश्यक वस्तुएं एकत्रित कर के गढ़ को टिकाए रखता था। एभल मरा कि जूनागढ़ का अन्नदाता चला गया। चौकी को पुनः हाथ में करने के काम में खेंगार शीघ्रता और लगन से जुट गया और एभल के ग्यारह पुत्रों ने अपने पिता की आन की रक्षा के लिए चौकी पर पुनः अधिकार करने का बीड़ा उठाया। पहले दो पुत्र गये और लड़ाई में खेत रहे। उसके पश्चात् दूसरे दो गये। उनमें से एक तो कट मरा और दूसरा घायल होकर लौटा।

खेंगार ने दूसरे दो को जाने के लिए कहा। छत्रसाल ने स्वामी की आज्ञा स्वीकार की, किन्तु दादु डर गया। पन्द्रह दिन में पिता और तीन भाई मरे—और एक भाई घायल हुआ। खेंगार क्या करने पर तुला है ? दादु दुर्गरक्षक देशलदेव का जामाता था। पति को मृत्यु के मुख में जाते देखकर उसकी पत्नी व्याकुल हो उठी। वह पिता के समाने जाकर रोने लगी। दादु की रक्षा भी हो जाय और उपयोगी भी हो—ऐसा मार्ग उसे सूझा।

इस समय वह दादु की प्रतीक्षा में बैठा हुआ था। इस दुर्गरक्षक की सहायता से वह उदा महेता से जाकर मिल जा सकता था, और वह समझता था कि उदा महेता के दूत का संदेशा भी वह लेकर आ सकता था।

अन्त में देशल देव अधीर हो गया। उसने पुकारा।'भीमा !'

एक वृद्ध अनुचर उपस्थित हुआ।

'जा, दादु नायक को बुला ला। और छोटे बापू कहाँ हैं ?'

'अन्नदाता ! छोटे बापू अभी नहीं आए। दादुनायक को बुला लाता हूं।'

किन्तु इतने ही में नीचे एक स्वर सुनाई पड़ा जिसे देशलदेव ने पहचान लिया।

'देख, हो-न-हो वे नायक ही हैं। ऊपर भेज दे।'

'बड़े बापू हैं क्या ?' एक स्वर आया।

'कौन नायक ! आओ।' देशलदेव बोला।

दो व्यक्ति अन्दर आए।

देशलदेव सावधान होगया। उसने भीमा को नीचे जाने की आज्ञा दी।

: १२ :

देशलदेव की चिंता

देशलदेव कुछ चिन्तातुर होकर नवागन्तुकों की ओर देखने लगा। भय उसका हृदय साहस खो बैठता था। यह कौन हो सकता है क्या होगा ? यह क्या संदेशा लाया होगा ?

'यह कौन ?'

व्यक्ति निकट आया, 'देशलदेव महाराज ! मैं हूं।' मुँह पर से हटाते हुए उस व्यक्ति ने कहा।

'कौन वाहड़ महेता ?'

'जी हाँ।' कहकर वाहड़ निकट जाकर बैठ गया।

'महेता! वस्त्र बाँध लो।'

'जो आज्ञा।'

'कहो, क्या समाचार लाए हो?'

'पिताजी ने महाराज से बातचीत की थी। महाराज आप पर प्रसन्न हैं, किन्तु कहते हैं कि आप वहाँ चलें तो फिर बातें हों। इस समय वे कोई वचन देना नहीं चाहते।'

देशलदेव ने मूंछ मरोड़ी, 'तो?'

'पिताजी ने कहलाया है कि आप चलें फिर जूनागढ़ को कुछ भी हो महाराज ना नहीं कहेंगे।'

थोड़ी देर तक देशलदेव मौन रहे।

'अर्थात् मैं जयसिंहदेव पर विश्वास करूं और वे मुझ पर न करें, क्यों?'

वाहड़ ने उत्तर नहीं दिया।

'और कुछ कहलाया है?'

'हाँ। मैं यहाँ आया था तब एक उड़ती बात सुनी थी कि काक भटराज को यहाँ बन्दी बनाकर रखा गया है।'

'काक भटराज?' विस्मित होकर देशलदेव ने कहा।

'हाँ।'

'ऐसा नहीं हो सकता, हँसकर देशलदेव ने कहा। 'वे तो कभी सुरलोक पहुंच गए।'

'यह सच नहीं है। वे आपके राजगढ़ में बन्दी हैं। स्वयं मुझसे कहा है कि कुछ भी करके उसे लेते आना'

'राजगढ़ में हों और मुझे मालूम न हो ऐसा कभी

'देशलदेवजी!' दादु गढ़रक्षक ने गर्दन हिलाते हुए कहा, की बात सत्य मालूम होती है।'

'कैसे?'

'पिताजी के मरने के पश्चात् उनकी चौकी पर से एक पालकी में बन्द करके मेरा भाई किसी को लाया अवश्य था।'

'कौन, छत्रसाल जी ?'

'हाँ।'

देशलदेव का कपाल आकुंचित हो गया। वह ज़ोर से मूँछ चबाने लगा। वीशलदेव की बात और इसमें कोई सम्बन्ध तो नहीं है।

'भृगुकच्छ वाला काकभट न ?'

'हाँ।' वाहड़ ने कहा।

'खेंगार जी से राणकदेवी का ब्याह भी इसी ने कराया था।'

'ऐसा कहा अवश्य जाता है।' वाहड़ बोला।

'अब मैं समझा।'

थोड़ी देर तक देशलदेव लेटा रहा। जैसे-जैसे उसके विचारों का वेग बढ़ता जाता था वैसे-वैसे वह मूंछें ज़ोर से चबाता जाता था। थोड़ी देर पश्चात् वह बोला, 'वाहड़ महेता ! तुम इसी समय वापस जाने को तैयार हो ?'

'हाँ, क्यों ?'

'तुम्हें यहाँ रखने में भय लगता है।'

'तो मैं जाता हूं, किन्तु आप---'

'जिस स्थान पर उस दिन मैंने तुम्हारे पिताजी से भेंट की थी वह स्मरण है ?'

'हाँ।'

'कल रात को वहाँ आना। मैं वहाँ आकर तुमसे भेंट करूंगा।'

दादु चमका किन्तु कुछ बोला नहीं।

'तो मैं जाऊँ ?' वाहड़ ने पूछा।

'हाँ,' देशलदेव ने कहा। 'गढ़रक्षक ! इन्हें कोट के बाहर छोड़

आओ । देखना, किसी को पता न लगे । मैं अभी महाराज के पास जाता हूँ और कुछ-न-कुछ पता लगाता हूं ।'

'और मेरा क्या ?' दादु ने पूछा ।

'तुम्हारा ? घबराते क्यों हो ? जहाँ मैं वहाँ तुम । इनको पहुंचाकर राजमहल में आ जाना ।'

'जी ।' कहकर गढ़रक्षक वहाँ से जाने को तैयार हुआ ।

'देशलदेवजी !' वाहड़ ने रुककर पूछा, 'काक भटराज का क्या ?'

'उनका क्या ?'

'उनको साथ लेना पड़ेगा ।'

'नहीं तो ?'

'नहीं तो महाराज के क्रोध का पार न रहेगा ? मुझे विशेष आज्ञा दी है ।'

'ठीक है । मुझसे जो हो सकेगा करूंगा । किन्तु उनके बिना ज़यसिंहदेव का क्या काम नहीं चलेगा ?'

'वे महाराज के बहुत विश्वासपात्र हैं ।'

'अच्छा ।' कहकर देशलदेव ने गर्दन हिलाकर वाहड़ को विदा दी । वाहड़ ने यह न सोचा था कि देशलदेव उसे इतनी जल्दी विदा कर देगा। किन्तु इस समय उसने कुछ भी पूछना उचित न समझा । वह मौन होकर वहाँ से चला गया । देशलदेव शीघ्रता से उठा और तलवार बाँधकर पगड़ी बाँधी । मूँछों पर ताव देता हुआ वह घर से बाहर निकला और राजमहल की ओर गया। उसकी चाल, उसके शरीर की भंगिमा से असाधारण क्षोभ टपक रहा था । वह जल्दी से राजमहल पहुंचा । जूनागढ़ की सामने की कोट के निकट आजकल जो मस्जिद है वह वास्तव में रा' खेंगार का महल था— दुर्जय जूनागढ़ का प्रतापी मध्यबिंदु था । खेंगार और उसकी राणक-देवी उसमें निवास करते थे और वहीं से सोरठियों को शौर्य और उत्साह की प्रेरणा मिलती थी । राज्यभक्त सोरठियों के मन में इस

प्रासाद के लिए देवमंदिर-सा पूज्यभाव था। देशलदेव के मन में इस प्रकार के भाव का अंश भी न था। कई बार तो वह यह विचार करता कि यह महल कब उसका घर होगा? इस विचार के कारण उस महल के प्रति उसका आकर्षण था किंतु खेंगार उसमें रहता है यह विचार आते ही उसका मन खट्टा हो जाता था।

'महाराज हैं?' उसने द्वार पर बैठे हुए सैनिक से पूछा।

'कौन देशलदेव महाराज! हाँ महाराज ऊपर बैठे हैं।'

'जा, पूछ आ कि आ जाऊं?'

'अरे बापू! आपको भी क्या आज्ञा लेनी पड़ेगी? जाइए, ऊपर छत पर हैं।'

'क्या कर रहे हैं?'

'टहल रहे होंगे।'

'अच्छा।' देशलदेव जल्दी से अन्दर गया और सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर छत पर चढ़ा। ऊपर चढ़कर उसने चारों ओर देखा। चंद्रमा के मंद प्रकाश में उसने देखा की छत के पूर्व की ओर दो व्यक्ति खड़े हुए थे। वह धीरे-धीरे उस ओर गया। छत पर से चारों ओर का दृश्य देखकर देशलदेव के हृदय पर मानो भारी बोझ पड़ गया। उसका क्षोभ बढ़ गया और चिंता से वह चारों ओर देखने लगा। गढ़ के पीछे गिरनार दैवी रक्षक के समान खड़ा हुआ था। शुक्लपक्ष के अर्द्ध चंद्र के प्रकाश में उसके शिखर सुन्दर लग रहे थे। उसकी तलहटी के वनों में समीर धीमा और मधुर स्वर कर रहा था। थोड़ी ही दूर पर सोनरेखा का छोटा पाट कहीं-कहीं चमक रहा था।

दो ओर चौकियों की चमकती हुई शृंखला के मनके दिखाई पड़ रहे थे। मात्र मेंदरड़े के परे से कभी-कभी चीत्कार सुनाई पड़ती थी और कभी-कभी दौड़ते घोड़ों का टाप कान में पड़ जाती थी। उससे परे—दूर—वंथली के दीपक चमक रहे थे। इन दीपकों के विस्तार से वंथली

की सीमा एकदम जानी जा सकती थी। वंथली से नगाड़े का स्वर भी आ रहा था।

जूनागढ़ और वंथली में बारह वर्षों से वैर चला आ रहा था। पर्वतशृंग के निवासी गरुड़राज के समान खेंगार ने अपने दुर्गस्थान में बैठे-बैठे ही शत्रुओं को छका दिया था, वन में विचरते वनराज के समान जयसिंहदेव मैदान में निश्चिंत होकर बैठे-बैठे ही गरुड़राज को धमकियां दिया करते थे। किन्तु गिरिनिवासी के विहार की सीमा दिन-दिन कम होती जा रही थी—वनचर का प्रताप दिन-दिन बढ़ता जा रहा था।

देशलदेव को वहां खड़े-खड़े पाटण के बढ़ते हुए प्रभुत्व का तीव्र विचार हुआ। जूनागढ़ के गले में फांसी धीरे-धीरे कसती जा रही थी। एभल की चौकी हाथ से निकल जाने पर अब भूखों मरने का समय आने वाला था। यदि ऐसा ही चलता रहा तो थोड़े समय में गिरनार का गढ़ भी भूमिसात् हो जायगा। देशलदेव के हृदय में चिन्ता बढ़ गई। खेंगार उसे न जाने दे तो? जयदेव उसका स्वागत न करे तो? उसके हृदय में रहा-सहा साहस भी जाता रहा। उसे यहां से भाग निकलने में ही मोक्ष दिखाई पड़ी। उसे पश्चात्ताप हुआ। वह किसलिए बैठा है? क्यों अब तक उसने खेंगार का चिन्ता की? चारों ओर फैली चन्द्रिका ने उसे क्षुब्ध कर दिया। प्राण लेकर वहां से भाग जाने को उसका मन हुआ। उसे खेंगार कट्टर शत्रु सा लगा और उसकी रानी भी उसे भयंकर शत्रु लगी। वह अपनी निर्बलता का मूल समझ गया। इस राणकदेवी के जादू में वह भी फंसा था। वह सचमुच जादूगरनी थी। वह जूनागढ़ को दुर्जय मानती थी और उसी के कारण औरों को भी प्रेरणा मिलती थी। वह पाटण से संधि नहीं करने देती थी अतः सब यही मानते थे कि संधि करना अधमता है। उसके द्वारा प्रसारित गर्व के वातावरण में किसी की मजाल न थी कि कोई झुकने का विचार भी करे। उसी वातावरण में उसे भी कोई मार्ग न सूझा।

वह तनिक कांप उठा। लोग इस देवड़ी को भवानी का अवतार

मानते थे। क्या यह बात सच हो सकती है ? क्या वह सबको खप्पर में भरने के लिए यह वैर बनाए रख रही है ? क्या उसकी विचारधारा से वह परिचित होगी ? क्या वह उसे शाप दे सकती है ?

ये विचार हृदयकी गति रोक देने वाले थे। देशलदेव को पसीना होने लगा। इस जगदम्बा के यहां से निकल भागूँ या उसके खप्पर में भरा जाऊँ ? यह छोटी-सी नारी क्या उसका, उसके भाई का और उसके पुत्र का प्राण लेगी ?

वह घबराहट और अनिश्चितता में थोड़ी देर तक खड़ा रहा और फिर उन दोनों का ध्यान आकर्षित करने के लिए गला खखारा।

: १३ :

देशलदेव को दंड

उन दो व्यक्तियों में से एक स्वयं रा' था। वह शांत और स्थिर खड़ा हुआ था। उसकी दाढ़ी सावधानी से सँवारी हुई थी। उसके वस्त्रहीन शरीर पर शोभायमान आभूषण ऐसे समय में भी, उसके रसिक स्वभाव की साक्षी दे रहे थे। हाँ, उसका मुख उदास था और जब उसकी आँखें वंथली की ओर घूम जाती थीं तो उनमें रक्त उतर आता था। उसके निकट खड़ा हुआ व्यक्ति नाटा और बहुत ही बलवान था। उसकी आँखों की विशाल पुतलियाँ बाहर निकली पड़ती थीं। उसकी भारी मूंछें मुँह को ढककर चिबुक तक आ गई थीं। उसकी दाढ़ी अव्यवस्थित और अस्त-व्यस्त थी। उसका स्वर बैठा हुआ था। वह रा'की ओर बड़े सम्मान और प्रीति से देख रहा था।

जिस समय देशलदेव आया उस समय रा' शांत स्वर में वार्तालाप कर रहा था।

'छत्रसाल ! जो तू सोचता है वही मैं भी सोचता हूं । जूनागढ़ के दिन आगए हैं। एभल नायक की चौकी के गिरते ही सोलंकी ने सेना एकत्रित करना प्रारम्भ कर दिया है। हम त्रिभुवनपाल को भी बढ़ने से न रोक सके। उसने वंथली की ओर उंगली से संकेत किया, 'चारों ओर से वहाँ सैनिक इकट्ठे हो रहे हैं।' मानो दिव्यचक्षु से सेना की गणना कर रहा हो ऐसी एकाग्रता से रा' देखने लगा, 'देखना है मेरा गिरनार कब तक टिका रहता है।'

'बापू ! चूड़ासमा का राज्य अमर है। इतने वर्ष हो गए सोलंकी कुछ भी तो न कर सका।'

'छत्रसाल ! मुझे किसी प्रकार का भय नहीं है। सोलंकी यहाँ भले आए। उसे भी रा' खेंगार की तलवार का स्वाद चखने को मिल जायगा। किन्तु हमें हाथ-पर-हाथ धरकर न बैठ जाना चाहिए। कपाल पर आए हुए केश को हटाते हुए रा' ने कहा।

'देव ! आप जो कहें वही मैं करने के लिए तैयार हूं। कल मैं पिताजी की चौकी लेने तो जा ही रहा हूँ। यह चौकी हाथ में आई कि फिर सोलंकी की कुछ चलने की नहीं।' छत्रसाल ने मूंछों पर हाथ रखा।

'किन्तु तेरा दादु नहीं मानेगा।' हंसकर रा' बोला।

'उस मूर्ख में इतना साहस कहाँ ?' छत्रसाल ने कहा, 'वह तो महाराज, सदा से ही ऐसा है। जो कहा जाता है करता है। साथ में आने से मार्ग पर लग जायगा।'

इतने में पीछे से देशलदेव की खंखार सुनाई दी। दोनों घूमे।

'कौन है ?' रा' ने पूछा।

'मैं हूँ, महाराज' कहते हुए देशलदेव आगे आया। खेंगार के मुख पर तिरस्कार-भरी मुस्कराहट छा गई। 'कौन देशलदेव महाराज ? ओहो ! इस समय कैसे ?'

'कुछ आवश्यक काम है ?' कहकर देशलदेव आगे आया।

'इतना बड़ा क्या काम है ?'

'महाराज ! छत्रसाल जी के सामने मैं—'

'देशलदेव जी !' तनिक विनोद में रा' ने कहा, 'डरो मत। छत्रसाल तो मेरा मित्र है—मेरा दायाँ हाथ है।'

'किन्तु—किन्तु—'

'अच्छी बात है,' रा' ने कहा, 'छत्रसाल ! नीचे चला जा। मैं अभी आता हूँ।'

'जैसी महाराज की इच्छा।' छत्रसाल बोला और वहाँ से चला गया। जाते-जाते उसकी आंखों में क्रोध चमका और क्षण-भर के लिए उसने देशलदेव की ओर घूमकर देखा।

'कहिए देशलदेव जी ! क्या कहना है ?' खेंगार ने पूछा। उसके शांत स्वर में हंसी छिपी हुई थी।

'महाराज ! मुझे जूनागढ़ की ग्रहदशा अच्छी नहीं लगती।'

'किस ज्योतिषी से पूछा ?' रा' ने सरल स्वर में पूछा।

'अन्नदाता ! हँसी छोड़िए। मुझे शकुन अच्छे नहीं लगते।'

'देशलदेवजी !' गम्भीर होकर रा' ने कहा, 'अपशकुन की बात तो स्त्रियाँ करती हैं। तुम्हारे और मेरे जैसे पुरुष को ऐसी बातें शोभा देती हैं ?'

'महाराज ! क्या करूं ? मुझे तो लगता है कि हमारा अन्त आ गया।'

'इसमें रोना क्या ? मैं और तुम क्या यों हीं बैठे-बिठाए मरने के हैं ? मरेंगे तो रण ही में।'

'ऐसा क्या कहते हैं अन्नदाता ?, अटकते-अटकते देशलदेव ने कहा, 'किन्तु मुझसे यह नहीं देखा जाता।'

'फिर करें क्या ?' हंसी में रा' बोला, 'जूनागढ़ को पराजित देख सकोगे ?'

'जूनागढ़ के गिरने में कसर क्या रह गई है ?'

'कैसे ?'

'अधिक क्या कहूँ ? मुझसे यह सब सहन नहीं होता।'

'क्यों ? जूनागढ़ छोड़ देना चाहते हो, या क्या ?' तिरस्कार से खेंगार ने पूछा।

'हाँ! यदि अन्नदाता की आज्ञा हो।'

'क्या कहा ?' विस्मित होकर नीचे झुकते हुए रा' ने कहा। देशलदेव पीछे हट गया।

'देव ! देव ! मेरा विचार तो आपके साथ खड़े रहकर लड़ते-लड़ते मरने का था।'

'अब कैसे परिवर्तित हो गया ?' पुनः तिरस्कार से रा' ने पूछा।

'जूनागढ़ की कीर्ति नष्ट हो जाने से।'

'जूनागढ़ की कीर्ति ? देशलदेव जी !' सीधे खड़े होते हुए खेंगार बोला, 'तुम घर के हो इसलिए छोड़ देता हूँ, अन्य कोई होता तो जीभ खींच लेता।'

'देव ! खींच लेनी हो तो भले खींच लीजिए किन्तु हमसे तो यह देखा नहीं जाता, 'रा' खेंगार के विषय में क्या कहा जाता है, मालूम है ?'

खेंगार थोड़ी देर तक देखता रहा और फिर कुछ हंस दिया।

'क्या कहा जाता है ?'

'कि—कह दूं महाराज ?—क्या करूं, कहना ही पड़ेगा। महाराज! सभी कह रहे हैं कि जूनागढ़ में पुरुष नहीं स्त्री राज्य करती है।'

रा' कुछ देर मौन रहा, फिर सदा के समान शांत स्वर में कहा—'हाँ! मेरी सीता राज्य करती है। इसको मैं श्रेष्ठ भी समझता हूं। देशलदेव जी ! तुम्हें भले बुरा लगे।'

'महाराज ! महाराज ! अधिक बोलने से क्या लाभ ? मैं कुछ-का-कुछ कह बैठूंगा। किन्तु मैं क्या करूं ? सती के सामने कोई कुछ कह थोड़े ही सकता है ?' 'सती' शब्द पर भार देकर उसने कहा।

'क्या कहा ?' खेंगार क्रोध-भरे स्वर में बोला। उसका शांत स्वर गरज उठा। उसकी आंखें प्रज्वलित हो उठीं। अनजाने में ही उसने दाएं हाथकी मुट्ठी भींच ली। देशलदेव घबराया। कहने को तो कह गया किन्तु उसके शब्दों का क्या परिणाम होगा यह सोचकर वह काँप उठा।

'क्षमा कीजिए अन्नदाता! देव! मामा जी! मैंने तो जो जनश्रुति सुनी वही कही। कोई कह रहा था कि सती किसी पर पुरुष की चुपचाप सेवा करती है।'

रा' मौन खड़ा रहा। वह कुछ देर तक इस नराधम को ओर देखता रहा।

'ऐसी बात है?' उसने दांत पीसते हुए हंसी उड़ाते हुए स्वर में कहा।

'महाराज!—'

'देशलदेव! मैंने बहुत हरामी देखे किन्तु तेरे जैसा और न मिला।' असाधारण शांति से रा' ने कहा, 'देवड़ी को पगली कहते सुना—किन्तु कुलटा कहने वाला तू ही मिला।'

'महाराज! महाराज!' काँपते हुए स्वर में देशलदेव बोला। 'मुझे क्षमा कीजिए! मुझे जाने दीजिए।'

'अब कहाँ जाता है?' कहकर खेंगार आगे आया, 'मैं तुझे भली-भांति जानता हूँ। चल!' कहकर रा' ने हाथ आगे किया।

'कहाँ?'

'रनिवास में देवड़ी के निकट।'

'महाराज!' देशलदेव बोला, 'बापू—'

'चल' कहकर खेंगार ने देशलदेव की भुजा पकड़ी।

देशलदेव निःसहाय होकर देखने लगा। रा' के स्वर में क्रोध भरा हुआ देखकर वह घबरा गया और आगे-आगे चलने लगा। पीछे-पीछे खेंगार चला।

वे रनिवास की ओर जाने के लिए छत के एक कोने में सीढ़ियों के निकट आए। नीचे उतरने से पहले देशलदेव ने तनिक पीछे फिरकर

देखा। रा' की विकराल आंखें देखकर वह चुपचाप सीढ़ियां उतरने लगा। साथ चल रहे अपने मामा की ओर वह आंख के कोने से देख रहा था। शांत, सुन्दर और गौरवशाली रा' गर्व से चल रहा था। बारह वर्ष तक कठिनाइयां भोगने के पश्चात् भी न उसने साहस खोया और न आन खोई। उसे देखकर देशलदेव के हृदय में द्वेष उबल पड़ा। उसे लगा कि जब तक यह रा' पृथ्वी पर है तब तक उसके अच्छे दिन नहीं आने के। यदि उसकी चले तो वह उसे हटाकर जूनागढ़ के सिंहासन पर स्वयं चढ़ बैठे। किन्तु करे क्या ? वह मौन होकर चलने लगा। वे रनिवास में आए।

'देवी ! हो क्या ?' खेंगार ने पूछा।

'पधारिए,' अंदर के कमरे से स्वर आया। स्वर में खिन्नता थी, मधुरता थी और था दबाई हुई भावनाओं को दर्शाने वाला कँपन। रा' ने तनिक उत्साह से डग भरा, देशलदेव के हृदय से सारी आशा जाती रही। वे अंदर गये। एक मंद दीपक जल रहा था। एक चौकी पर बैठी हुई राणकदेवी एक आले में स्थापित अम्बाभवानी की मूर्ति की पूजा कर रही थी। वह छोटी स्त्री अपार्थिव लग रही थी। उसके श्याम वस्त्र उसकी देह की रेखाओं को रात्रि के अंधकार के साथ एक कर दे रहे थे। और उसका छोटा और तेजस्वी मुख एक अपूर्व तेजपूर्ण चक्र के समान शोभायमान लग रहा था।

'सोमली ! चौकियां ला।'

'नहीं, आवश्यकता नहीं। हम चौकियों पर बैठने के योग्य नहीं। सती ! तुम्हारा भाणेज तुमसे भेंट करने आया है। न जाने क्या-क्या जनश्रुति लाया है।'

राणकदेवी मुस्कराई। उसके मीठे मन्द हास्य में तटस्थ स्नेह था।

'यह कहता है जूनागढ़ का अन्त आगया है।'

मुस्कान में क्षमा प्रकट हुई, 'मेरे रा' के जीते जूनागढ़ को क्या हो सकता है ? देशलदेव जी ! ऐसी बात कहां से लाए ?'

देशलदेव ने हृदय में उठती ज्वाला की भावना को दबाने का प्रयत्न किया।

'मामी! लोगों की जीभ पर क्या ताले डाले जा सकते हैं?'

'तो लोगों से जाकर कहो कि जब तक मेरे रा' हैं तब तक ब्रह्मा भी कुछ नहीं कर सकते।'

'अरे बात यहीं नहीं रुक जाती,' दाँत पीसकर खेंगारने कहा। वह छलांग मारकर कमरे की ओर गया और किसी से कहा, 'तनिक बाहर तो आ।' वह पुनः लौट आया। उसका शांत मुख भभक उठा, 'सती! इस हीरे ने नई बात खोज निकाली है।'

खेंगार के स्वर से स्वाभाविक स्थिरता चली गई। उसके धीमे किंतु भयंकर स्वर में प्रचंड क्रोध भर गया—उसका हाथ काँप उठा।

देशलदेव बीच ही में बोल उठा, 'महाराज—'

दाँत पीसकर खेंगार उस पर गरजा, 'विषाक्त नाग! तुझे वर्षों तक दूध पिलाया, पाला-पोसा, आश्रय दिया, फिर भी तूने विश्वासघात करके द्रोह किया। शत्रु के साथ मैत्री की—किन्तु मैं अपने धर्म से न डिगा और अब तू मेरी सती की कीर्ति को कलंकित करना चाहता है?'

'क्या कहते हैं?' तनिक खेद-भरे स्वर में राणकदेवी बोली।

'इस पवित्रता के भक्त से तेरे जैसी कलंकिनी के नगर में कैसे रहा जा सकता है?' कटाक्ष करते हुए रा' आगे बढ़ा, 'तू तो पर-पुरुष की टहल करती है। देशलदेव की ओर फिरकर रा' ने क्रोध से कहा, 'वह कौन है यह जानता है? उसे देखा?' खेंगार ने निकट के द्वार की ओर संकेत किया। देशलदेव ने द्वार की ओर देखा तो एक लंबा किंतु दुबला पतला व्यक्ति द्वार में खड़ा हुआ दिखाई दिया। उसके कपाल पर पट्टी थी। उसकी मुख-मुद्रा कठोर थी—फिर भी वह मुस्करा रहा था। देशलदेव को वह मुख-मुद्रा कुछ परिचित-सी लगी और अनजाने ही उसके मुख से निकल पड़ा, 'भटराज काक!'

'हाँ।' खेंगार ने कहा, 'पन्द्रह वर्ष पहले पाटण में भेंट हुई थी

याद है ? यह सती जिसकी टहल कर रही थी वही है। दुष्ट, अब बोल क्या कहना है ? तेरी जिह्वा क्यों चिपक गई ?'

देशलदेव को कुछ भी भान न रहा। भय, क्षोभ आश्चर्य, और निराशा के बीच उसे कुछ भी न सूझ पड़ा। उसने खेंगार के प्रदीप्त मुख की ओर देखा। हंसी में मुस्कराता काक का मुख देखा। दोनों यमदूत के समान खड़े हुए थे।

'महाराज ! मामी ! मुझे क्षमा करो।'

'तुझे क्षमा करूं ?' दाँत पीसकर रा' ने कहा और देशल के निकट जाकर उसका कान मसल दिया, 'नीच, क्या करूं, तूने मेरी बहन के गर्भ से जन्म लिया है नहीं तो तेरे प्राण ले लेता। अब तुझे जीवन-भर के लिए बंदी बना कर रखूंगा।'

देशलदेव के होंठ फीके पड़ गए, 'महाराज ! महाराज !'

कान की वेदना दुःसह होने से वह काँपने लगा।

'अब महाराज होगया ?' खेंगार ने तनिक शांत होते हुए कहा, 'तुझसे इस पापपूर्ण नगर में रहा कैसे जायगा ? क्यों ठीक है न ? गिरनार में मेरे गढ़ का तलगृह है वहाँ तू रह सकेगा।'

'क्या—मुझे—' देशल देव के पांव लड़खड़ाने लगे।

'हां, तुझे !'

'मामी !—'देशलदेव बोला।

खेंगार ने राणकदेवी की ओर देखा। पल-भर के लिए उसके नेत्र देशलदेव पर ठहरे।

'इसे छोड़ दो।'

'क्या कहते हो ? सती ! ये काला नाग है।'

राणकदेवी मुस्कराई। उसकी फीकी मुस्कराहट में मधुरता थी। 'इसकी क्या मजाल जो जूनागढ़ के स्वामी को डस सके ? इसको बंदी बनाने से आपको लांछन लगेगा। जैसा भी हो है तो भाणेज—'

'कभी भाणेज को कृतज्ञ होते भी देखा है ?'

'किंतु मामा के क्षमा करने में ही बड़ाई है,' राणकदेवी ने कहा, 'इसे अपने संबंधियों के पास जाने दीजिए।'

'अच्छा।' हँस पड़ते हुए रा' ने कहा, 'इसके लिए वंथली बहुत अच्छा रहेगा। इसके भाई को भी निकाल देता हूँ। दोनों एक-से हैं।' ताना मारते हुए उसने देशलदेव की ओर देखा—'भानेज मेरे, सुना? जाओ अपने बाप के यहाँ। ननिहाल में अब तुम्हारे लिए स्थान नहीं।'

'मैं कल—'

'कल?' तिरस्कार से रा' बोला, 'कुछ और गड़बड़ करनी है? इसी समय—इसी घड़ी, चलो, चलते बनो, एक घड़ी भी अधिक नहीं। चल, मैं अभी छत्रसाल को कह देता हूँ। वह विशलदेव को बुला लायगा।' 'छत्रसाल! छत्रसाल!' उसने पुकारा। छत्रसाल आकर द्वार में खड़ा हो गया। 'छत्रसाल! इस मेरे संबंधी को नगर के बाहर निकालना है। इसके भाई को भी बुला भेज। और देख इन दोनों में से कोई तनिक भी आनाकानी करे तो तुझे ठोकर मारनी आती है न? अच्छी बात है, जाओ।'

देशलदेव नीचा मुँह किए छत्रसाल के साथ जाने लगा।

छत्रसाल देशलदेव को लेकर जब बाहर आया तो दादु गढ़रक्षक मिला।

'दादु!' छत्रसाल ने कहा, 'तू यहीं रहना मैं अभी आता हूँ।'

'अच्छा।' दादु ने कहा।

'छत्रसाल!' पीछे से रा' का स्वर आया, 'खड़ा रह।' रा' बाहर आया, 'उस सामंत यादव को लौटते समय लेते आना।'

'जी।'

इस समय का लाभ उठाकर देशलदेव ने दादु को धीरे-से कहा 'एक-दो रात तक गढ़ पर ही रहना।'

दादु ने आंखों ही से हां कहा।

: १४ :

खेंगार निश्चय करता है

रा' जब पुनः रनिवास में लौटकर आया उस समय काक का मुख गंभीर हो गया था।

'क्यों ? तुझे अच्छा न लगा ?' खेंगार ने पूछा ।

'आपने भूल की। यह हरामखोर यहीं ठीक था।'

'ये क्या कर लेगा ?' राणकदेवी ने पूछा।

'इस समय आपको और कोई आपत्ति मोल न लेनी चाहिए।'

'अरे व्यर्थ ही डरता है। इससे कुछ नहीं हो सकता।' खेंगार ने कहा, किंतु उसके स्वर से लगा कि उसे पश्चात्ताप हो रहा था। राणकदेवी धीरे-से रा' के निकट आई। 'इन दो के चले जाने से निश्चित तो हुए। हमारे धर्मयुद्ध में ये ही दो कलंक थे,' उसने तनिक हँसकर कहा। पलभर के लिए उसकी आँखें रा' पर रुकीं। उनमें श्रद्धा और अडिगता थी। खेंगार ने अपनी पत्नी की श्रद्धा देखी और उमड़ते हृदय से उसके कंधे पर हाथ रखा।

'सती ! सत्य है। ऐसों के स्पर्श से भी हम दूषित हो जाते हैं। काक !' खेंगार हँसकर बोला, 'जूनागढ़ के रा' सदा धर्मयुद्ध ही करते हैं।'

'मैं जानता हूं बापू ! जानता हूँ।' कुछ कुढ़कर काक बोला, 'किन्तु मैं तो उसी युद्ध को धर्मयुद्ध मानता हूँ जिसमें विजय प्राप्त हो।'

'काकभट जी !' राणकदेवी ने कहा, 'तुम्हारा विश्वास मैं जानती हूँ। हम ठगा जायँ ऐसे नहीं। चलो, ऊपर छत पर चलोगे ? बहुत उष्णता है।'

'आप दोनों जाइए मैं थोड़ी देर पश्चात् आता हूँ।'

राणकदेवी की आँखें रा' की आँखों से जा मिलीं। जो प्रेम मान, संयम और विपत्ति में अदृष्ट रहता था वह पल-भर में दिखाई दे गया। देवड़ी धीरे-से गर्व-भरे डग भरती हुई आगे चली, खेंगार पीछे चला और काक की आंखें इस दंपति का ऐक्य देखकर सजल हो गईं। उसने निःश्वास ली। ये दो विपत्ति में भी साथ थे। ईश्वर ने उसे उसकी मजरी के निकट रहने का सुख न दिया था।

खेंगार और राणक छत पर गये। राणकदेवी ने स्नेह से गिरनार की ओर देखा। उसके मन में वह निर्जीव पत्थर न होकर उदार इष्टदेव था। प्रातःकाल और संध्या को वह उसकी ओर देखती थी और विभिन्न समय के रंग उस पर विभिन्न प्रकार के प्रभाव डालते थे। इस समय चंद्रिका में वह उसे मुस्कराता हुआ लग रहा था।

'आज मेरा गिरनार प्रसन्न है,' उसने हंसकर कहा।

'तुम्हें देखकर कौन प्रसन्न न होगा?' खेंगार ने स्नेह से उसके कंधे पर हाथ रखा, 'सती! आज तुम न होतीं तो मेरा क्या होता?'

'वाह रे मेरे सोरठ के स्वामी!' मंद हास्य करती हुई वह बोली। 'आप भी पत्नी के दास हो गए हैं?' तनिक कटाक्ष करती हुई वह बोली। किन्तु उसकी आंखों में गहन और गंभीर स्नेह था। उसने खेंगार के हाथ-पर-हाथ रख दिया।

'तुम्हारे पीछे पागल होने में मैं अपना सम्मान समझता हूँ। किन्तु देवी! हमारा क्या होगा?'

'क्यों?' आश्चर्य से देवड़ी ने पूछा।

'क्यों क्या? वह वंथली देखी? उसकी सीमा दिन-दिन बढ़ती जाती है। और हमारी चौकियाँ देखीं? दिन-दिन पीछे हटती जा रही हैं।'

'मेरे रा'!' उसने धीरे-से अपना भाल खेंगार के कँधे से अड़ा दिया, 'आपके हृदय में भी भय उत्पन्न होने लगा?'

'नहीं।' गर्व से रा' ने कहा, 'देवी! मेरे बापदादा लड़ते आए हैं

और युद्ध करते ही मरे हैं। उनके सामने भी मैं नहीं झुकने का तो इस सोलंकी के सामने झुकूंगा ? किंतु आँखों से देखा अनदेखा तो नहीं हो सकता न ?'

अवर्णनीय प्रीति से देवड़ी ने खेंगार के गले पर हाथ रखा, 'मेरे रा' ! मैं तो अबला हूँ। अधिक तो क्या कहूँ, हां झुकने से तो मृत्यु भली !' खेंगार इस निर्बल दिखाई पड़ने वाली स्त्री की ओर देखने लगा। उसके हृदय में भावनाएँ प्रचंड वेग से उठीं। उसने देवड़ी को वक्षःस्थल से लगा लिया। उनके भावों और उनकी बातों में संयम और गांभीर्य था। उन्हें एक-दूसरे में अगाध श्रद्धा थी।

'देवी ! तुम रहोगी तब तक मैं इसी प्रकार अटल रहूँगा।'

'मैं रहूँ या नहीं किन्तु टेक का दृढ़ मेरा रा' तो सदा इसी प्रकार रहने का है।'

कुछ क्षणों तक दोनों में से कोई न बोला। वातावरण में भी असाधारण गांभीर्य था—वे इस प्रकार खड़े थे मानो सृष्टि के छोर पर खड़े होकर अनंत व्योम में उड़ जाने की तैयारी कर रहे हों।

कोट के बाहर दूर कोई चीत्कार सुनाई पड़ा। रा' ने देखा। तीनेक कोस दूर पर दिखाई पड़ता एक दीपक बुझ गया।

'सती !' होंठ पीसकर रा' ने कहा, 'हमारी एक चौकी गई।'

'कल प्रातःकाल पुनः ले लेना,' देवड़ी ने तुरंत उत्तर दिया।

रा' ने कुछ नहीं कहा। दोनों बड़ी देर तक मौन खड़े रहे। इतने में बाहर की सीढ़ियों पर किसी का पगरव सुनाई दिया।

'कौन है ?' रा' ने पूछा।

'महाराज ! सामंत थानेदार आए हैं।'

'कौन दादु ?'

'हाँ, देव !'

'जा, सामन्त को ले आ।'

'जी !' कह कर दादु चला गया।

'मैं चली जाऊं ?'

'नहीं । तुम्हारा काम पड़ेगा, बैठो ।' खेंगार ने कहा और दोनों वहाँ बिछी हुई गद्दी पर बैठ गए ।

सामन्त थानेदार वजेसंग नायक को साथ लेकर आया । दोनों वृद्ध थे और दोनों की श्वेत दाढ़ी उनका गौरव बढ़ा रही थी । पीछे-पीछे दादु भी आया ।

'महाराज, आजाऊँ ?'

'कौन, काका ?'

'हाँ, देव !' नायक ने उत्तर दिया ।

'आओ, आओ ।' खेंगार ने हँसकर कहा । दोनों आगे आए । दोनों ने पहले राणकदेवी को झुककर प्रणाम किया

राणकदेवी सोरठियों के लिए रानी न थी, स्त्री न थी । वे उसे सती और माता मानते थे । वृद्ध, बालक, पुरुष, स्त्री, सभी उसे पूज्य मानते इतना ही नहीं, वे यह भी मानते थे कि उसके पास ईश्वरीय शक्ति है । सम्पूर्ण सोरठ में उसके नाम की मनौती मानी जाती थी और दुःखी लोग उसके आशीर्वाद प्राप्त करके दुःख टालने की इच्छा करते थे । वह झूठी प्रतिष्ठा नहीं पालती थी । कई बार नगर के लोग उससे भेंट करने आते थे ।

अतः देवड़ी को बैठे हुए देखकर ये दो वृद्ध भी संकोच में पड़कर सम्मान से बैठ गए । वे अपने रा' से स्नेह करते थे किन्तु अपनी रानी की पूजा करते थे ।

'क्यों काका जी ! सब प्रसन्न तो हैं ?' राणकदेवी ने पूछा ।

'हाँ, देवी, आपके प्रताप से सब प्रसन्न हैं । देव ! अच्छे तो हैं ?'

'आनन्द में । देशलदेव को निकाल दिया यह तो सुन ही लिया होगा ?'

'जीते रहो मेरे सोरठ के स्वामी ! इनका तो यही होना था । आपके धर्मराज में यही कलंक था ।'

'अरे, यह दादु झुंझला उठेगा।'

'यह तो देव! आप उदार हृदय हैं नहीं तो आप इतने वर्ष इसको आश्रय न देते। यह तो कहिए कि दादु गद्दरक्षक भाग्यशाली है, नहीं तो इसकी सात पीढ़ियों का पता न चलता।'

दादु तनिक घबराया। उसके बाप की चौकी पुनः लेने के लिए तो उसे नहीं भेज रहे हैं?

'महाराज!' सामन्त थानेदार बोला, 'वह चौकी गई सो देखी?'

'हाँ।'

'अन्नदाता! अब हमें क्या करना चाहिए?'

'मैं भी यही विचार कर रहा था। जैसे भी हो एभल नायक की चौकी पुनः हस्तगत करनी होगी।'

'जीते रहो मेरे सोरठ के स्वामी!' वजेसंग ने कहा, 'जैसा तुम्हारा शौर्य वैसे ही तुम्हारे वचन! देव! विजय करो।'

'काका! इसके सिवा और कोई चारा नहीं। नहीं तो थोड़े दिनों पश्चात् हमें भूखों मरना पड़ेगा। मैंने इसलिए यादव को भी बुलाया है।

'देव!' सामन्त ने कहा, 'हम कल मध्यरात्रि के पश्चात् निकलेंगे। तीन-सौ सोरठी तैयार कर रहा हूँ।'

'सती! तुम क्या कहती हो?'

'मेरे रा' युद्ध में जाएंगे तो विजय ही प्राप्त करेंगे।' राणकदेवी ने कहा।

'जीते रहो देवी!' वजेसंग बोला, 'मेरे वीर! देवी का कहना सत्य है। विजय प्राप्त करो मेरे स्वामी!'

'इतना ही नहीं। मेरा विचार है कि इस प्रकार बैठे रहने में बुद्धिमानी नहीं। इस चौकी को लेकर हम मेंदरड़े पर छापा मारेंगे।' खेंगार ने कहा, 'हमारे बैठे रहने से सोलंकी सबल होता जाता है।'

'सत्य है देव!' वजेसंग ने कहा।

'यह विचार भी अच्छा है देव !' सामन्त ने कहा, 'जितने चाहिएं उतने सैनिक तैयार हैं।'

'अच्छी बात है सामन्त ! आप और छत्रसाल तैयारी करिए, और काका ! आप गढ़ की रक्षा करिएगा।'

'जैसी देव की इच्छा।'

'ऐसा युद्ध मचाऊँगा' हाथ पोसते हुए गर्व से खेंगार ने कहा, 'कि हमारी सात पीढ़ियों का उद्धार हो जाय।'

राणकदेवी एक म्लान हास्य से उत्साहित करती रही।

'और दादु ! तू क्या करेगा ? चौकी लेने के लिए जाने का साहस होगा ?' रा' ने पूछा।

'महाराज ! आपकी जो आज्ञा हो वही करने के लिए मैं तैयार हूँ।'

'तू यहीं गढ़ की रक्षा करना।'

रा' बोलते-बोलते अटक पड़ा। नीचे दो-चार लोगों के दौड़ने की-सी आवाज़ हुई। एकाएक कोलाहल मच गया। छत पर बैठे हुए सभी खड़े हो गए। दो-तीन लोग शीघ्रता से ऊपर आए। सबसे आगे दादु का भाई रायधण हांपता-हांपता आया।

'महाराज ! महाराज !'

'क्या है ?' रा' ने पूछा।

'छत्रसालजी मारे गए। वीशलदेवजी को खोजने के लिए बड़े भाई उनके घर गये। वहाँ मोघांभाभी ने कटार से उनको मार डाला।'

: १५ :

सती का आशीर्वाद

मोघांभाभी देशलदेव जी की पुत्री और दादु गढ़रक्षक की धर्मपत्नी थी। ससुराल और पीहर दोनों को कंपानेवाली कुलदेवी थी। असाधारण लम्बाई बेरोक उठाव, बड़ी नाक, फटी आँखें, तीखा स्वर—ये सब उसके स्वभाव और निर्लज्जता के चिह्न थे। उसके हृदय में यदि किसी के प्रति कुछ भी स्नेह था तो वह एक देशलदेव जी थे, और यदि देशलदेवजी का हृदय कभी आर्द्र होने का कष्ट करता था तो वह मात्र अपनी पुत्री के लिए।

छत्रसाल देशलदेव के साथ वीशलदेव को लेने आया उस समय मोघांभाभी ससुराल जाने की तैयारी कर रही थी। इतने में बाहर का वार्तालाप सुनकर उसके रोष का पार न रहा। वह द्वार के पीछे खड़ी हो गई और कुछ सुना, कुछ देखा। उसका हाथ कमर पर की कटार पर गया। ज्योंही देशलदेव बाहर जाने लगे कि वह बाहर आई।

'बापा, कहाँ जा रहे हो ?'

'मुझे रा' ने नगर से बाहर निकाल दिया है।' देशलदेव ने कहा।

'और तुम ले जा रहे हो ?' छत्रसाल के सामने फुंकार करके मोघां ने पूछा।

'तू अपना काम—' वह उत्तर देने ही जा रहा था कि उसके एक भी शब्द बोलने के पहले मोघां ने कटार निकालकर उसके सीने में भोंक दी। छत्रसाल गिर पड़ा। देशल और वीशल घबरा गए। मोघां शांत थी। 'देखती हूं कौन आपको नगर के बाहर निकालता है !' वह बोली।

'छोकरी ! तूने सत्यानाश कर दिया।' पिता ने घबराकर मूंछों पर उखड़ जाने जितना ज़ोर देकर उत्तर दिया।

रायधण छत्रसाल के साथ आया था। वह घबरा गया। वह एकदम रा' को सूचना देने के लिए दौड़ पड़ा। समाचार मिलते ही रा',

थानेदार वजेसंग नायक और दादु गढ़रक्षक एकदम रायघण के साथ आ पहुंचे । दो-तीन दासियों को लेकर राणकदेवी भी पीछे से आई । देशलदेव की हवेली राजगढ़ के निकट ही थी । रा' एकत्रित लोगों को दूर हटाकर अन्दर गया । द्वार के सामने ही अचेत छत्रसाल को दो-तीन लोग आराम से लिटा रहे थे । वीशल और देशल वहीं खड़े हुए थे । अन्दर के द्वार में से घबराई हुई स्त्रियाँ देख रही थीं ।

रा' पल-भर तक देखता रहा फिर तिरस्कार से देशलदेव की ओर देखा ।

'देशलदेव !' उसने भयंकर शांति से पूछा, 'तुम किस मुंह से यहाँ खड़े हो ? थानेदार, ये दो नाग देखे ? इनको नगर के बाहर निकाल दे । आनाकानी करें तो गर्दन ही मरोड़ देना ।'

'महाराज !' देशलदेव ने काँपते हुए होंठों से कहा, 'यह हमने नहीं किया है ।'

'तुमने नहीं तो तुम्हारी पुत्री ने । बहुत अन्तर नहीं है । मैं एक शब्द अधिक नहीं सुनना चाहता । जाओ, अपना मुंह काला करो ।'

रा' के मुख की उग्रता देखकर वहाँ जितने उपस्थित थे सभी काँप उठे । देशलदेव ने मौन होकर थानेदार की ओर देखा और मुंह नीचा करके वहाँ से चला । वीशलदेव भी पीछे-पीछे चला । जाते-जाते देशल ने दादु की ओर देखा । गढ़रक्षक अपने भाई के निकट गया हुआ था और उसके घाव में से बहते हुए रक्त को रोकने की चेष्टा कर रहा था । उसने ससुर की दृष्टि का अर्थ समझा । कल रात को गढ़ में रहने की सूचना उसमें थी ।

इतने में भीड़ ने मार्ग किया और राणकदेवी प्रकट हुई । लोग मौन होकर खड़े हुए थे । जो थोड़ा-सा भी उससे स्पर्श कर सके वे 'आस्का' लेने लगे । वह आकर छत्रसाल की ओर गई और उसकी देख-भाल में लगी । थोड़ी देर में वह वहाँ बैठ गई और पंखा लेकर झलने लगी ।

'मोघां कहाँ है ?' रा' ने पूछा। उसने दादु की ओर देखा।

अन्दर के द्वार में किसी ने आकर पूछा—'क्यों, क्या काम है ? यह रही मैं।'

सब स्तब्ध हो गए। रा' की उपस्थिति में इस प्रकार आना और बोलना अकरणीय था। यह छोकरी क्या कर रही है ?

'दादु ! अभी इसे बन्द करदे। फिर देखूंगा।' रा' ने कहा।

दादु पत्नी को ठीक करने की कभी से सोच रहा था। किन्तु रा' और राणकदेवी की उपस्थिति से संकोच कर रहा था। रा' की आज्ञा पाकर वह आगे बढ़ा।

'मेरा कोई क्या कर सकता है ?' आगे बढ़कर मोघां बोली। उसकी विशाल आँखें विकराल बन रही थीं और वह क्रोध से कांप रही थी। उसके बड़े हाथ अब भी रक्त से भरे हुए थे। वह रा' की ओर देखने लगी। रा' ने दादु की ओर देखा।

दादु—बेचारा कोमल गढ़रक्षक—का रक्त खौल उठा। उसने कई वर्षों से इस हिडिंबा का आतंक सहन किया था, किन्तु आज उसने उसके भाई को मार डाला और पूजनीय रा' का अपमान करने चली। उसमें बची-खुची विनाश-वृत्ति सबल हो उठी। मोघां को पीटना, उसे दबा देना, उसे वश में करना, जीवन में प्रथम बार उसे ऐसा आवेश आया। वह निकट गया।

'दादु !' राणकदेवी बोली, 'उसे जाने दे। व्यर्थ में पाप अपने सिर न ले।' उसके स्वर में मृदुलता थी। प्रत्येक व्यक्ति या तो मोघां या राणक की ओर देख रहा था। मोघां—बिगड़ खड़ी हुई स्त्री शक्ति की प्रतिमा—कौन उसे डराना चाहता है, इसकी प्रतीक्षा करती हुई खड़ी थी। निकट ही गीला वस्त्र छत्रसाल के मुख पर फेरती हुई संरक्षक वृत्ति की अवतार के समान देवड़ी बैठी हुई थी।

रा' भी निश्चयात्मकता दरशाता हुआ कमरे के मध्य में खड़ा हुआ था। आवेश से अस्थिर दिखाई पड़ता दादु हांप रहा था। सम्पूर्ण

खंड में शांति थी। जिस समय रानी कह रही थी उस समय दादु मोघां का हाथ पकड़ने जा रहा था। 'अलग हट जाओ' अपमान-भरे स्वर में मोघां ने अपने पति से कहा, 'नहीं तो जो दशा तुम्हारे भाई की हुई है वही तुम्हारी भी होगी।'

यह अपमान की पराकाष्ठा थी। दादु ने होंठ पीसकर हाथ उठाया। रा' ने अधीर होकर तलवार पर हाथ रखा। रानी ने छत्रसाल की ओर देखा, मोघां की ओर दृष्टि डाली और मृदुलता से छत्रसाल के कपाल पर के केशों को हटाया।

'दादु! शांत हो।' रानी ने शांति से कहा, 'अंबाभवानी चाहेंगी तो सब ठीक हो जायगा।'

बोलते-बोलते राणक का स्वर कांपा—तनिक गरजा भी। सारा खंड कांपने लगा मानो कोई चमत्कार हो गया हो। सब काँप उठे। फिर, मानो मोघां को उत्तर हो, या सती की आज्ञा हो, छत्रसाल ने आखें खोलीं और राणकदेवी पर टिका दीं।

'देवी! सतीमाता! अंबा!' छत्रसाल धीमे-से बड़बड़ाया। सबने शब्द सुने। सबकी छाती बैठ गई।

रा' के मुख से उग्रता जाती रही। उसके गले में आँसू भर गए, 'सती! धन्य है तुझे!'

मोघां की आंखें फट गईं। उसके हाथ में से कटार छूट गई। उसका मुंह फीका पड़ गया। मानो भय दूर कर रही हो इस प्रकार उसने हाथ लम्बे किये और फिर आंखों पर रख लिये।

'ये—चुड़ैल—है—' कहकर वह सबके मध्य में अचेत होकर गिर पड़ी।

'सती माँ को खम्मा!' लोगों ने सम्मानपूर्वक घोष किया।

राणकदेवी उठी और छत्रसाल को दूसरों को सौंपकर जल का पात्र लेकर मोघां के उपचार में लगी। लोग मानव रूप में इस देवी की ओर सम्मानपूर्वक देखने लगे।

'सती ! अब महल में चलो। दादु ! छत्रसालको भी वहीं ले चल !' रा' ने कहा।

'इस छोकरी को तनिक चेत हो जाय तो मैं आऊं। आप चलिए।'

'मेरे स्वामी ! आप चलिए,' वजेसंग ने कहा, 'मैं देवी को लेकर आता हूं।'

रा' ने देखा कि जब तक वह वहाँ खड़ा रहेगा कोई और स्त्री रानी की सहायता नहीं करने की, अतः वह वहां से चला। लोग बिखरने लगे। सम्पूर्ण नगर में सती माता के चमत्कार की बात फैल गई। नगरवासी टोलियों में राणकदेवी के दर्शन करने और उसके चरण-स्पर्श करने आए। चारों ओर उत्साह फैल गया। चारों ओर सती माता के भजन-कीर्तन होने लगे। उस रात्रि को आनन्द के उत्साह में जूनागढ़ सोया नहीं।

: १६ :

भविष्यवाणी

देशलदेव के यहां से लौटने पर रा' गंभीर हो गया था। वह अपनी रानी को देवी मानता था। प्रणयी और पुजारी दोनों की भक्ति उसके हृदय में उमड़ रही थी। नगरवासियों में फैला उत्साह उसमें वीरता का संचार कर रहा था, फिर भी कोई गूढ़ क्षोभ उसके हृदय को दबा-सा रहा था। राजगढ़ में जाकर उसने काक को बुलाया और छत पर जाकर काक को सब बात सविस्तार कही।

'काक ! आज बड़ा शुभ दिन है।' रा' ने कहा, 'मेरी सती का प्रताप सचमुच चमक उठा। छत्रसाल को उसने जीवन-दान दिया और

उस कर्कशा को नीचा दिखाया। सचमुच देवी अंबाभवानी का अवतार हैं।'

'सच है बापू! ये तो आपके घर और देश की लक्ष्मी हैं। जब तक ये हैं आपका राज्य अमर होगा।'

'काक! शांत और सुघड़—वह कैसे बैठी-बैठी छत्रसाल को पुनर्जीवन दे रही थी।' स्नेह-भरे स्वर में रा' ने कहा।

'लोगों को भी विचित्र आनन्द हुआ लगता है।'

'हां! लोग तो उसके पीछे पागल हैं। काक! मेरी ग्रहदशा आज से पलट जायगी!' होंठ पीसते हुए रा' ने कहा।

'महाराज! आप जैसे सुख के दिन न देखेंगे तो देखेगा कौन?' रा' की बात का उलटा अर्थ लगाते हुए काक ने कहा।

'यह कौन जानता है! मैं कल रात्रि ही को धावा बोल दूंगा। तू देख लेना, अब खेंगार हाथ बताएगा।'

'भोलानाथ आपका भला करें।'

'काक! मेरे प्रस्थान करने से पहले तू यहां से चला जा। मेरे यहां न रहने पर तेरे प्राण व्यर्थ ही संकट में पड़ जायंगे।'

'बापू!' काक बोला, 'मुझे भेज देने की क्या जल्दी पड़ी है? और फिर आज जाकर आपकी बातें कह दूं तो?' वह हंसकर बात पलटने लगा।

'काक! तू विश्वासघात करे तो फिर भले ही मृत्यु आ जाय!' रा' ने गंभीर होकर उत्तर दिया। 'उसकी मुझे चिन्ता नहीं। भाई! प्रातःकाल से पहले निकल जाना।'

'अच्छा! किन्तु यहाँ रहकर मैं कुछ नहीं कर सकता।'

'काक! मैं तेरी टेक जानता हूँ। उसमें मैं बाधा नहीं डालना चाहता। किन्तु इतना याद रखना तेरा स्वामी कभी तेरा मूल्य समझने का नहीं। तू मेरे पास रहा होता—'

'बापू! जैसा आपके लिए आपका जूनागढ़ है वैसा ही मेरे लिए

मेरा भी लाट है। उसी के लिए तो मुझे इस मूल्य न करने वाले स्वामी को स्वीकार करना पड़ा। क्या करू ?'

'तू भी मेरे समान निश्चिंत होकर बैठा नहीं।' रा' ने कहा।

'और न बैठने का महाराज ! मुझे भी कुछ ऐसा लगता है—'

'सती आई,' भावपूर्ण होकर रा' ने कहा और वह सीढ़ियों की ओर जल्दी-जल्दी गया। काक खड़ा-खड़ा देखता रहा। कैसी सुयोग्य जोड़ी ! कैसी श्रद्धा और कितनी निर्मलता ! काक की आंखों के सामने उसकी सहचरी आई। वे दो भी कितने श्रद्धालु, सुयोग्य और निर्मल थे। प्रभु ऐसे लोगों को क्यों कष्ट देता है ? अलग कर देता है ? काक को कँप-कँपी छूट गई।

'सती ! इस काक को भी अब निकाल देता हूँ। आज सबको निकाल बाहर करने को मुझे धुन लग गई है।' रा' ने खेद-भरे स्वर में कहा।

'इसने भी मुझे गाली देना आरम्भ किया क्या ?' राणकदेवी ने मुस्कराकर कहा।

'देवी ! आपको गाली देने से पहले तो मैं इस जिह्वा ही को खींच डालूंगा। महाराज अब मुझे दूर कर देना चाहते हैं।'

'दूर न करूं तो क्या करूं !' रा' ने कहा, 'मेरे साथ रहकर यह क्या सुखी होगा ?'

'तो और कहां होऊंगा ? फिर देवी, दादु गढ़रक्षक की पत्नी का क्या हुआ ?'

राणकदेवी हँसी, 'थोड़ी देर पश्चात् उसकी मूर्च्छा टूटी और मुझे बैठी देखकर फिर आंखें मींच लीं। उसके विचार से तो मैं जीवित ही चुड़ैल हूं।'

'एक समय यही कहती थी तुम सम्पूर्ण सोरठ को खप्पर में लेने के लिए जन्मी हो।' रा' ने कहा। उस स्वर में विनोद था किन्तु न जाने क्यों उसमें भी गंभीरता की झनक थी।

'बापू ! जय-पराजय भाग्य की बात है किन्तु आपके जैसा पुरुष और देवी जैसी नारी कलियुग में नहीं देख पड़ते ।'

रा' का कपाल आकुंचित हो गया । उसने उत्तर नहीं दिया ।

'काक !' राणकदेवी ने कहा, 'ऐसा न कह नहीं तो हमें अभिमान हो जायगा ।'

'आपको घमण्ड नहीं हो सकता । यह सब तो हम जैसे तुच्छ लोगों के लिए है ।' कहकर काक ने वंथली की ओर हाथ किया ।

रा' और रानी दोनों उस ओर घूमे और कुछ देर तक देखते रहे ।

एक भटका हुआ कौआ 'का ! का !' करता सुनाई पड़ा ।

जिस ओर से कौए का स्वर आ रहा था उस ओर रा' घूमा । उसका मुख फीका पड़ गया और उसके होंठ भिड़ गए । वह गहन और क्रूर स्वर में बोला, 'काक ! जयसिंह सोलंकी ने भी क्या अत्याचार किया है ? अंबाभवानी करे और वह एक बार मेरे हाथ में आ जाय । उसका सारा घमंड उतार दूं ।' काक मौन रहा ।

'किसी का घमंड रहा भी है कि इसका रहने का है । राणकदेवी ने कहा, 'किन्तु मेरे रा', टेक आपही की रहने की !'

'सती ! इस समय तो यही प्रश्न है कि जूनागढ़ टिक सकेगा या नहीं।' रा' का स्वर अधिक गम्भीर होगया । इसका हृदय चारों ओर के आडंबर से क्षुब्ध होगया था । अब अधिक कृत्रिमता वह सहन न कर सका । 'टेक तो रखनी ही पड़ेगी और रखूंगा—मृत्युपर्यन्त—किन्तु मुझे शकुन अच्छे नहीं लगते । काक को भी अब जाने देने को मन नहीं करता । कल तुम्हें छोड़कर युद्ध में जाने को भी जी न करेगा । मुझे कुछ समझ में नहीं आता । मेरा हृदय इतना व्यग्र कभी न हुआ । ऐसा लग रहा है कि हमारा—जूनागढ़ का—चूड़ासमा का अंत आगया है । वह वंथली देखी ? वहाँ से—ज्वालामुखी के मुख के समान—चारों ओर विनाश फैल रहा है । वह गगन और पृथ्वी को क्षुब्ध कर रहा है । मुझे, तुझे—मेरे नाम और मेरी कीर्ति को जलाकर भस्म करता जान पड़ता है ।'

बोलते-बोलते रा' रुका। वातावरण सचमुच क्षुब्ध लगा। राणक वंथली की ओर देखती रही। काक बीच में बोला, 'महाराज! ऐसे विचार आपको नहीं करने चाहिएं। सोरठ के स्वामी! सात पीढ़ी की आन और सोरठ का स्वातन्त्र्य आपके कारण टिके हुए हैं।' काक ने रा' के कंधे पर हाथ रखा। 'जिसका जो होना है हो—अभी तो युद्ध करना है। सोरठ के रा' को कभी पीछे हटते सुना है?'

रा' ने कपाल पर हाथ रखा, 'काक! मैं कभी डिगने का नहीं.... किन्तु भविष्य में क्या लिखा है, यह जान जाता तो—'

'भविष्य!' एक दैवी-सा स्वर आया। रा' और काक चमके। चौथा कोई था नहीं। राणकदेवी के मुख से भावहीन, अपार्थिव, शांत स्वर निकल पड़ा था। छत की दीवाल पर हाथ रखकर, आँखें फाड़कर वह इस प्रकार खड़ी थी मानो वंथली की ओर भविष्य-लिपि पढ रही हो। उसके हाथ तनिक काँप रहे थे, उसकी भवें संकुचित हो गई थीं और उसकी आँखें स्थिर और तेजहीन होगई थीं। वह शव के समान दिखाई पड़ रही थी। दोनों पुरुषों के मुख का रंग उड़ गया। वे मुंह बाए देख रहे थे—सुन रहे थे।

'भविष्य!' राणक बोलने लगी, 'मुझे दिखाई पड़ रहा है—कुछ-कुछ! सोलंकी की सेना सीमा पार कर रही है। प्यारा सोरठदेश—उसका विनाश होगया।।' बोलते-बोलते वह ऐसे बोलने लगी मानो गा रही हो।

रा' और काक दोनों कांप उठे। रा' ने काक का हाथ पकड़ा। राणक इस प्रकार देख रही थी मानो अंधकार में कुछ दीख न रहा हो और वह ध्यान से देखने के लिए व्याकुल हो। स्वर में अधिक-से-अधिक खिन्नता आने लगी, और वह सोरठ और फिर पाटण के नाश की कहानी गुन-गुनाती रही।

फिर रानी का स्वर भंग होगया। उसने निःश्वास लिया। थोड़ी देर पश्चात् वह पुनः वेग से बोलने लगी। स्वर में खिन्नता कम होगई।

'किन्तु सोलंकी को पिंडदान देने के लिए पुत्र नहीं है—कोई नहीं है। पाटण का अंत होगया....नया राजा और नई प्रजा...किन्तु—'

स्वर बिलकुल टूट गया और वह अटक गई। उसकी आंखें बंद हो गईं। उसके मुंह में फेन आगए और खेंगार के उसे सम्भालने के लिए आगे बढ़ने से पहले ही वह मूर्छित होकर गिर पड़ी। काक नीचे से पानी लाने के लिए दौड़ा। काक पानी लाया। रा' ने उसके मुख पर छिड़का। थोड़ी देर में उसकी चेतना लौटी और उसने रा' की ओर देखकर थोड़ा-सा मुस्करा दिया।

'मेरे रा' मुझे क्या होगया ?'

'कुछ नहीं।' रा' ने कहा। उसे लगा कि रानी को कुछ याद नहीं रहा। रानी किसी प्रकार उठ बैठी।

'मेरा माथा घूम रहा है। मैं जाकर तनिक लेट जाऊं।' उसने धीमे स्वर में कहा। रा' उसके साथ जाने को तैयार हुआ तो उसने कहा, 'आप क्यों आते हैं ? यहीं बैठिए। काक के साथ बातचीत करिए। मैं बहुत थक गई हूं।' कहकर वह वहां से चली गई।

कुछ चलकर वह सीढ़ियों की ओर घूमी। काक और खेंगार दोनों उसकी अदृष्ट होती देह को देख रहे थे। एकाएक दोनों की दृष्टि देवड़ी ने जहां पांव रखे थे वहां गई। दोनों ने घबराकर एक-दूसरे का हाथ पकड़ा। दोनों की आंखें फट गईं। दोनों का श्वास रुक गया....

रानी सीढ़ियां उतरकर चली गई....जहां-जहां रानी ने पाँव रखा था वहां-वहां कुंकुम चिह्न होगए थे, यह उन्हें अंधकार में भी दीख गया।

'काक ! देखा ?' रा' ने घबराकर घरघराते स्वर में पूछा।

'हां बापू ! सतीमाता घणीखम्मा !'

रा' ने आंखों पर हाथ रख लिये। काक उन पद-चिह्नों की ओर देखता रहा। देखते-ही-देखते लाल पद-चिह्न अदृष्ट होगए—छत पर जैसा था वैसा ही अँधकार छा गया।

'महाराज ! देखा ?' काक ने खिन्न होकर कहा, 'पद-चिह्न अदृष्ट हो गए।'

'रा' ने आंखों पर से हाथ हटाए। पद-चिह्न अदृष्ट हो चुके थे।

'काक ! सती चिता पर चढ़ती है तभी ऐसे पद-चिह्न दिखाई पड़ते हैं, ऐसे हमारे पुरखे कह गए हैं। मेरा अन्त आगया।' रा' ने गद्गद् कण्ठ से कहा।

'बापू !' काक ने साहस से कहा, 'आप मृत्यु से डरते हैं ? डरेंगे तो सती की श्रद्धा को कलंकित करेंगे।'

'नहीं, मैं डरता नहीं, मैं भाग्यशाली हूं कि मुझे ऐसी सती मिलीं। उसको शोभा दे वैसी ही मेरी मृत्यु होगी।'

'धन्य मेरे वीर !' काक ने कहा।

'काक ! मेरी एक प्रार्थना स्वीकार करेगा ?'

'प्रार्थना ! महाराज ! आज्ञा दीजिए।'

'मैं चौकी लेकर लौटूं तब तक तू यहीं रह। मुझे कुछ हो जाय तो फिर देवड़ी और बच्चों का कौन ?'

'निश्चिंत रहिए, बापू ! युद्ध में जाइए। मैं यहीं रहूंगा और मुझसे जहां तक हो सकेगा इनको आंच न आने दूंगा।'

'काक ! तेरा कितना अनुग्रह है, भाई ! आ आलिंगन कर ले। सम्भव है कि भेंट न हो।'

मौन रहकर दोनों ने आलिंगन किया। फिर नीची दृष्टि किये चला गया।

काक कुछ देर तक वंथली की ओर देखता रहा, और फिर उसने एक निःश्वास लिया।

: १७ :

भग्न-हृदय वाहड़ महेता

दूसरे दिन सन्ध्या को जयसिंहदेव महाराज ने सभी अग्रगण्य योद्धाओं को वंथली के राजगढ़ में बुलाया था।

अन्दर के द्वार के निकट स्वर्ण-खचित गादी-तकिए पर स्वयं महाराज बैठे हुए थे। उनका मुख और उनकी आंखें उनके हृदय में जलती हुई ज्वाला को प्रकट कर रहे थे। उनका एक हाथ निकट ही पड़ी तलवार की रत्न-जड़ित मूठ से खेल रहा था। द्वार के अन्दर लीलादेवी और काश्मीरा देवी बैठी हुई थी। वार्तालाप में आवश्यकता पड़ने पर जब तब हामी भर रही थी। और अन्दर मीनलदेवी बैठी-बैठी पान खा रही थी और बाहर की सब बातें सुन रही थी।

राजा के निकट मुंजाल महेता बैठे हुए थे, उनके निकट प्रचण्ड और तेजस्वी दण्डनायक त्रिभुवनपाल और बली और शांत दंडनायक परशुराम बैठे हुए थे। एक ओर गुजरात के वणिक-श्रेष्ठ उदा महेता घुटनों पर दुपट्टा डाले ठोढ़ी पर हाथ लगाकर बैठे हुए थे। दादाक महेता, दो-तीन मंडलेश्वर और सेनापति भी बैठे हुए थे। मृत्युशैया से उठकर प्रथम बार जगदेव परमार भी अपनी बुद्धि का लाभ देने के लिए आए हुए थे।

सब तैयार था। जूनागढ़ की सभी चौकियों पर एक साथ छापा मारने की योजना बन चुकी थी, और चौकियां लेकर गढ़ पर एक भारी धावा मारने के लिए चारों ओर के सैनिकों को तैयार कर लिया गया था। कौन कहाँ धावा मारे कौन कहाँ से संदेशा ले जाय, कौन किसकी सहायता करे, कोई पीछे हट जाय तो कौन किसकी सहायता को पहुँचे, यह सब निश्चित हो गया था। धावे में दुर्जय त्रिभुवनपाल को जूनागढ़ का विशाल द्वार तोड़ना था, दादाक महेता और अन्य दो सेनापतियों को गिरनार की ओर की दो खिड़कियों पर आक्रमण करना था, स्वयं

महाराज और परशुराम के हाथ में मध्य की चौकियों को लेकर दोनों ओर आवश्यकतानुसार सहायता पहुँचाने का काम था। उदा महेता को मेंदरड़े रहकर चारों ओर की सेना को टिकाए रखना था। मुंजाल महेता वंथली की देख-भाल के लिए पीछे रहने वाले थे। सब पर महाराज के आवेश का प्रभाव होने लगा। त्रिभुवनपाल इसी चिन्ता में पड़े हुए थे कि खेंगार का क्या किया जाय? परशुराम को यह चिन्ता थी कि जूनागढ़ पराजित हो जाय तो उसे किसको सौंपना है? लीलादेवी को यही बात चुभ रही थी कि वे केवल एक ही सेना के साथ रह सकती थी। जगदेव परमार रह-रहकर यही बात कर रहे थे कि वे बिलकुल अच्छे हो गए हैं। किन्तु महाराज का आवेश इन सबसे निराला था। वह जला ही करता—निर्जन वन में जलती हुई अग्नि के समान। चारों ओर उसकी लपटें फैल रही थीं और आशातीत-स्थानों पर पहुंच रही थीं।

'महाराज! मुझे दंडनायक महाराज के साथ द्वार पर जाने दीजिए।' परमार ने तीसरी बार प्रार्थना की।

'परमार! व्यर्थ की 'माथाकूट' मत कर!' महाराज ने अधीर होकर कहा, 'मुझे तुझसे हजार काम करवाने हैं। परशुरामजी! ये सोरठी हरामखोर हैं, गढ़ जीतने के पश्चात् भी कुछ दिनों तक शांत न बैठने देंगे। अतः जितना जीता जाय उस पर पूर्ण अधिकार करना नितान्त आवश्यक है।'

'इसमें कहना क्या!' परशुराम ने कहा।

'वह देशल भी वहीं पड़ा-पड़ा सहायता करेगा, किन्तु है नीच। महेता जी!' उदा की ओर घूमते हुए राजा बोले, 'वाहड़ गया सो लौटा भी नहीं। कुछ उत्तर न लाया।'

'आने ही वाला है।' उदा ने मृदुलता से कहा।

'तुम्हारे इस पुत्र में बहुत पानी नहीं!' और फिर त्रिभुवन को लक्ष्यकर महाराज ने कहा, 'और तुम धावा बोलते समय हाथी पर मत बैठना। हाथी बिगड़ खड़ा होगा तो हमारे ही प्राण लेगा'। इतने

में बाहर कुछ गड़बड़ होने से राजा की भवें तन गईं। 'ये क्या हल्ला मचा रखा है ? बाहर खड़े वे गधे क्या कर रहे हैं ?'

एक द्वारपाल आया।

'अन्नदाता ! भृगुकच्छ से कोई समाचार लाया है।'

'कह दे शोभ महेता से मिले, मुझे समाचार सुनने का अवकाश नहीं।'

'अन्नदाता ! आप ही से भेंट करना चाहता है।'

'सारे नगर से क्या मैं ही भेंट किया करूं ? जा, कह दे शोभ महेता से मिले।'

'और न माने तो ?'

'तेरी तलवार के धार है या नहीं ?' राजा क्रोध में गरज उठे।

'उसका नाम क्या है ?' त्रिभुवनपाल ने पूछा।

'सोमेश्वर भट।' द्वारपाल ने कहा।

'भृगुकच्छ का गद्दरक्षक !' त्रिभुवनपाल का मुख चिन्तातुर होगया, 'वह यहाँ क्यों आया ?'

'अच्छा, बुला ला।' मुंजाल ने कहा, 'इसमें क्या होगया ?'

'यह क्यों आया ?' लीलादेवी ने धीरे-से पूछा।

'बुला, बुला।' महाराज उतावले होकर बोले। उनके मुख से स्पष्ट था कि जूनागढ़ को जीतने की बात छोड़कर उन्हें कोई बात इस समय पसंद न थी। लीलादेवी कुछ आगे बढ़कर देखने लगी। फटी धोती पहने हुए एक पुरुष आया। उसके शरीर पर कीचड़ था। उसके मुख से घास लिपटी हुई थी। उसके घुंघराले बाल सिंह के बालों के समान सिर पर खड़े हुए थे। सभी इस विचित्र आगंतुक की ओर देखने लगे।

'यह है सोमेश्वर भट ?' क्रोध में महाराज ने पूछा।

'हाँ अन्नदाता ! मैं ही सोमेश्वर भट हूं—भृगुकच्छ का गद्दरक्षक।'

'क्यों आया है ?' अधीर होकर राजा ने पूछा।

'महाराज ! रेवापाल ने विद्रोह करके भृगुकच्छ पर अधिकार कर लिया है। सम्पूर्ण लाट पर उसने अधिकार कर लिया है।'

'क्या बकता है ?'

सोमेश्वर को यह अभ्यर्थना अपमानकारक लगी। गुजरात के स्वामी को यह समाचार देने के लिए अनेक कष्ट उठाकर उसने रात-दिन एक कर दिए थे और यहां तो उसका कोई मूल्य ही नहीं।

'मैं बकता नहीं—होश में हूँ।' गर्व से काक के शिष्य ने कहा। 'यह समाचार देने के लिए ही मैं वहां से भागकर आया हूँ।'

'पट्टणी सेना का क्या हुआ ?' मुंजाल महेता ने पूछा।

'बंदी बना ली गई। केवल आंबड़ महेता, मंजरी देवी, और एक वृद्ध सैनिक गढ़ में चले गए हैं।'

'मंजरी—काक की पत्नी ?' महाराज ने कहा।

'हाँ।'

त्रिभुवनपाल बीचमें ही बोल पड़ा, 'सेनापति बंदी बना लिये गए ?'

'हाँ। अक्षयतृतीया के मेले का लाभ उठाकर रेवापाल ने सबको बंदी बना लिया।'

'गढ़ तो टिक सकता है न ?' त्रिभुवनपाल ने पूछा।

'नहीं, महाराज ! अंदर केवल तीन-चार व्यक्ति हैं और रेवापाल ने रक्षक को फुसलाकर सम्पूर्ण अनाज नदी में फिकवा दिया है। यदि शीघ्र ही सहायता न पहुंची तो गढ़ टिक न सकेगा।'

'वटप्रद और खेटकपुर के गढ़ का क्या हुआ ?' मुंजाल महेता ने पूछा।

'रेवापाल कच्चा नहीं है। भृगुकच्छ ले लिया तो उनकी क्या बिसात ? मांडल से खेटकपुर तक सब स्थानों पर विद्रोह हो गया है। शीघ्र ही यहां से सेना जानी चाहिए, नहीं तो—'

'हमें तेरी सलाह की आवश्यकता नहीं।' अंगार आ लगे ऐसे स्वर में जयसिंहदेव बोले।

'हमें क्या करना चाहिए ?' त्रिभुवनपाल ने कहा।

मुंजाल महेता बोलने ही वाले थे कि महाराज क्रोधित होकर कहने लगे, 'क्या करना चाहिए ? इस समय कुछ नहीं। जबतक जूनागढ़ नहीं गिरता तब तक कुछ नहीं हो सकता।'

'किन्तु लाट हाथ से निकल जायगा तो—' लीलादेवी बीच में बोली।

जयसिंह का क्रोध उमड़ पड़ा, 'जाय तो जाने दे। तुझे रखना हो तो इस गधे को लेकर सहायता को जा। भट्ट ! बाहर जा। आवश्यकता होगी तो बुला लूँगा। जाओ इसे बाहर ले जाओ।' राजा ने द्वारपाल को आज्ञा दी। पल-भर के लिए दाँत पीसकर सोमेश्वर ने चारों ओर देखा। जिस आशा से उसने यह यात्रा की थी वह धूल में मिल गई। लाट, भृगुकच्छ, गढ़, मंजरीदेवी और उसके गुरु के बच्चे, सब पर उसे विनाश मंडराता हुआ दिखाई पड़ा। वह समझ गया कि कोई भी प्रयत्न करना हास्यास्पद होगा। उसके लिए लाट और काक बहुत बड़े थे, किन्तु यहाँ तो उनका कौड़ी-भर भी मूल्य न था। निराशा और तिरस्कार से वह कमरा छोड़कर चला गया।

'मुझे तो लगता है इसका मस्तिष्क फिर गया है।' राजा ने ठंडे पड़ते हुए कहा, 'चलो हम अपना काम प्रारंभ करें। काक भी तो नहीं है, नहीं तो उसीको भेज देते।'

'दो-चार दिन में कुछ बिगड़ न जायगा।' मुंजाल महेता ने कहा। महाराज की लगन कम होने देने में उन्होंने कोई सार न देखा। 'सब ध्यान रखना, बात बाहर न जाय। नहीं तो लाट से आई हुई सेना में खलबली मच जायगी।'

'घबराने के लिए मैं समय ही नहीं दूँगा। आज ही रात को हम धावा बोल देंगे।' महाराज ने कहा।

'जो आज्ञा।' मुंजाल बोला। सब कुछ तैयार था अतः व्यर्थ में समय नष्ट करने की आवश्यकता न थी।

'त्रिभुवन भाई ! तुम तैयार हो लो।'

'जी !' कहकर त्रिभुवनपाल उठे।

'मैं भी आज्ञा चाहता हूँ,' दादाक महेता ने उठते हुए आज्ञा माँगी।

'अच्छा।' महाराज ने उत्तर दिया। त्रिभुवनपाल, दादाक महेता और सेनापति उठकर विदा हुए। महाराज और परशुराम योजना पर विस्तारपूर्वक विचार करने में लग गए।

'महेता जी ! अब आप जाइए।' महाराज ने मुंजाल महेता से कहा। अतः वे उठे, और रानियां भी धीरे-धीरे चली गईं।

महाराज, परशुराम और परमार ये तीन रह गए। इतने में एक अनुचर आया।

'क्यों, और क्या है ?' महाराज ने पूछा।

'अन्नदाता ! वाहड़ महेता किसी को लेकर आए हैं।'

'आने दे।' जयसिंहदेव ने एकदम आज्ञा दी और दंडनायक की ओर घूमकर बोले, 'काक आ गया।'

'काक ?' विस्मित होकर परशुराम ने पूछा।

तकिए के सहारे बैठा जगदेव एकदम सीधा होकर बैठ गया।

'हाँ। मैंने वाहड़ को उसे ले आने का काम सौंपा था।' कुछ प्रसन्न होकर महाराज बोले।

'चलो, बहुत अच्छा हुआ। काम के समय आ गया।' परशुराम ने कहा।

वाहड़ महेता और मुँह पर वस्त्र बँधे होने के कारण बिलकुल न पहचाने जा सकें ऐसे दो व्यक्ति अंदर आए। महाराज ने देखा किंतु उन दो में से एक का भी शरीर काक-सा नहीं था। महाराज का मुख एकदम लाल हो गया।

'काक कहाँ है ?' वे गरज पड़े।

'महाराज !' खिन्न मुख से वाहड़ बोला, 'मुझे भटराज न मिले।'

'तो तू लौटकर कैसे आया ?' महाराज चिल्लाए, 'जीता तो है ?'

'हां अन्नदाता !' रुँआसे स्वर में वाहड़ ने कहा। एक तो दिया वचन न रख सका, स्त्री मिलने की आशा जाती रही, और ऊपर से महाराज क्रोधित हो गए। 'अरे काक !' उसने दुःख-भरी साँस ली।

महाराज के कपाल की नसें उभर आईं। 'मूर्ख !' महाराज ने तिरस्कार से कहा, 'षट्गुणी योद्धा होकर सोचा हुआ काम किये बिना ही जीता कैसे लौट आया ? जा, कायर ! अभी छोड़ देता हूँ। इसी समय वंथली से निकल जा। मैं तेरा मुंह नहीं देखना चाहता। जा अपने खंभात, और कविता लिख—' वाहड़ खड़ा रहा।

'क्यों कुछ कहना है ?'

'जाने से पहले अपने पिताजी से भेंट कर लूँ ?' जैसे-तैसे फीके होंठों से वाहड़ बोला।

'बाप से मिल, चाहे माँ से मिल, किंतु जा।' महाराज ने कहा।

मुख नीचा किये हुए भग्न-हृदय वाहड़ बाहर चला गया।

: १८ :

चढ़ाई की तैयारी

'परमार ! तू बाहर जाकर बैठ। काम पड़ने पर बुला लूंगा।' जयसिंहदेव महाराज ने कहा।

'जो आज्ञा' कहकर निर्बल परमार वहाँ से उठा।

'मैं भी जाऊं ?' परशुराम ने विदा ली।

'ये मेरे सम्बन्धी—' धीमे-से महाराज ने दण्डनायक के कान में कहा, 'मामा का पक्ष छोड़कर इधर आ गए हैं।'

'संभल कर काम करिएगा।' धीरे-से सलाह देकर दण्डनायक उठे।

उनके चले जाने पर महाराज उन दो व्यक्तियों की ओर मुड़े।

'देशलदेव जी हैं क्या? यह कौन वीशलदेव? बैठो। चाहो तो वस्त्र भी खोल दो।'

'अन्नदाता की जैसी आज्ञा,' कहकर देशलदेव ने वस्त्र खोल लिया और महाराज के सम्मुख जा बैठा। 'अन्नदाता! आपके संदेश के उत्तर में हम आगए हैं। कहिये, क्या काम है?'

महाराज को देशलदेव की वाणी में छिपा हुआ गर्व अच्छा न लगा।

'मैंने संदेशा कब भेजा? आप ही मुझसे भेंट कर जाना चाहते थे। मुझे तो इतना ही जानना है कि आप मेरी क्या सहायता कर सकते हैं।'

'हम सब प्रकार की सहायता कर सकते हैं।' देशलदेव ने कहा।

'किस प्रकार की?'

'आपको चाहिए तो जूनागढ़ हस्तगत करवा देंगे।'

'कब?'

'इसी समय।'

'किस प्रकार?'

'आपके सैनिकों को गढ़ में ले जाकर।'

'तुम्हारी सहायता के बिना भी मैं गढ़ ले सकता हूं।'

देशलदेव के मुख पर निराशा छा गई। सदा की टेव के अनुसार वह मूंछ चबाने लगा। उसने तो जूनागढ़ दिलवाकर जूनागढ़ का स्वामी बनने की आशा कर रखी थी।

'महाराज! आप सर्वशक्तिमान हैं, किन्तु हम यथाशक्ति सहायता करने के लिए तत्पर हैं। आपकी क्या आज्ञा है?' देशलदेव ने बहुत नम्रता से कहा।

'तुम मुझे गढ़ में किस प्रकार ले जा सकते हो?'

'गढ़ की एक खिड़की पर मेरा आदमी है।'

कहने को तो कह गया किन्तु बाद में देशलदेव का हृदय धड़क उठा। संभव है दादु गढ़रक्षक अपने भाई के मारे जाने से क्रोधित होकर गढ़ पर न आए। और दूसरा आदमी हमीर जिसे उसने गढ़ पर रहने के लिए कहा था—वह भी न आए तो? देशलदेव की समझ में आ गया कि पक्ष-परिवर्तन करना कोई खेल की बात न थी।

'किन्तु गढ़ तक पहुंचा कैसे जायगा?'

'मैंने एक चौकी रख छोड़ी है।'

'वहाँ से कितने सैनिक जा सकते हैं?'

'जितने आप कहें उतने।'

'अन्दर कितने व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ेगी?'

'अन्नदाता! खेंगार मध्यरात्रि को गढ़ की खिड़कियाँ देखने निकलता है, अतः जितने भी आदमी होंगे सबको ठिकाने लगा दूंगा। फिर तो मुख्य द्वार खोलकर आपकी सेना को प्रवेश करवाना ही शेष रह जाता है।'

जयसिंहदेव की आंखों में से एक धिक्कारसूचक ज्वाला निकली। पन्द्रह वर्ष तक मामा के यहां रहकर उसकी सम्पत्ति से आनन्द करने के पश्चात् भी इस प्रकार का प्रतिकार देने वाले लोग भी संसार में बसते हैं। कुछ देर तक महाराज विचार करते रहे—कहीं यह कपट तो नहीं है?

'तुम्हें मेरे साथ चलना पड़ेगा।'

'जी।' मीठी हंसी से देशलदेव ने विश्वास दिलाया।

'यदि कुछ भी गड़बड़ हुई तो तुम दोनों के सिर धड़ से अलग कर दूंगा।'

'प्रसन्नता से। और यदि सब कुछ भली प्रकार हो गया तो?'

'तो क्या? पुरस्कार देने में जयसिंहदेव ने कभी हाथ पीछे खींचा है?'

'किन्तु महाराज ! कुछ निश्चित कर लेना ही अच्छा है ,' देशलदेव ने कहा और कुछ ज़ोर से मूंछों पर ताव देने लगा ।

महाराज क्रोधित हो गए, 'जयसिंहदेव जो दे वही लेना होगा ।'

'आप पर पूर्ण विश्वास है ।' देशलदेव ने धीमे-से कहा, 'किन्तु मुझे संसार में अनुभव ही ऐसे हुए हैं । देव ! स्पष्टवक्ता ही सदा सुखी रहता है ।'

'देशलदेव जी ! मेरा हृदय सदा उदार है ।'

'मैं क्या नहीं जानता ? किन्तु पाटण में मेरे शत्रु इतने हैं—मैं तो आप ही के भरोसे आया हूँ ।'

'मेरा विश्वास है तो फिर किसी की क्यों चिन्ता करते हो ?' महाराज बोले ।

'इसीलिए तो महाराज, मैं स्पष्ट कह रहा हूँ । मैं अब वृद्ध हो गया हूँ । यहां तो मुंजाल महेता ने मेरा मंडल ही छीन लिया है, और जूनागढ़ छोड़ने से खेंगार के मरने के पश्चात् मेरा गद्दी पर अधिकार भी जाता रहा—'

जयसिंहदेव का कपाल आकुंचित हो गया, 'तुम्हारा गद्दी पर अधिकार ! खेंगार के दो पुत्र हैं ।'

'ऊँह—बहुत छोटे—'

'देशलदेवजी !' महाराज कुढ़कर बोले, 'तुमने क्या खोया और क्या नहीं, यह मेरे सोचने की बात नहीं, किन्तु एक बात मैं कह देता हूं।' कुछ देर के लिए महाराज विचार-मग्न हो गए, 'मेरी इच्छा पूरी होगई तो जो माँगोगे वही दे दूंगा ।'

देशलदेव समझ गया कि महाराज को कोई नया विचार सूझा है । जूनागढ़ की विजय से भी अधिक एक अन्य वस्तु उन्हें प्रिय थी । क्या हो सकती है ? क्या यह वास्तव में सच है कि जयसिंहदेव राणकदेवी के पीछे पागल है ?

'आपकी जो इच्छा हो खुशी से कहिए ।'

महाराज ने कोई उत्तर न दिया।

देशलदेव महाराज की इच्छा जानने का मार्ग ढूंढने लगा। 'मैं तो महाराज, दो बातें कर सकता हूं,' वह बोला

'कौनसी ?'

'एक तो जूनागढ़ हस्तगत करवा दूँ—'

'और दूसरी ?'

'जिस स्त्री ने आपका अनादर कर अपमान किया था उससे भेंट करवा दूं।' देशलदेव की मूंछें दाँतों के बीच में चली गईं। महाराज चमके। उन्हें देशलदेव जादूगर-सा लगा। उनके मन से विजय के सब विचार जाते रहे। उन्हें लगा यह युद्ध वे राणक को प्राप्त करने के लिए ही तो कर रहे थे। जूनागढ़ मिले या न मिले किन्तु राणक तो प्राप्त होनी ही चाहिए। उन्हें एकाएक विचार आया कि इतने वर्षों से वे राणक के लिए ही तो व्याकुल हो रहे थे। देशलदेव द्वारा दिये गए लालच से वे एकदम नरम पड़ गए और देशलदेव उन्हें परम दानी जान पड़ने लगा।

'किस प्रकार ?'

'राणकदेवी के आवास में आपको ले जाकर—'

'फिर ?'

देशलदेव ने देखा कि इस राजा को रिझाने के लिए इतना ही पर्याप्त न था।

'मैं मामी का विश्वासपात्र हूं।'

'ठीक।'

'आपके लिए दो शब्द कह सकता हूं, जो आप नहीं कह सकते वह मैं ही कह सकूंगा। जैसा भी हूं बड़ा हूँ।'

महाराज इस वृद्ध का आडम्बर देखकर मुस्करा दिए।

'एक बार मैं उससे भेंट कर लूं तो सब ठीक हो जायगा।'

'किन्तु तनिक हठी है।'

'कौन स्त्री हठी नहीं होती ?' जयसिंहदेव ने अपना ज्ञान प्रदर्शित किया।

देशलदेव ने हंसकर हाथ जोड़े, ' सच है महाराज !'

'मैं भेंट करवा दूं उसके पश्चात् मुझ अकिंचन पर दया करनी पड़ेगी '

'अब भी अविश्वास ही है ?'

'अविश्वास नहीं महाराज ! किन्तु वृद्ध पुरुषों का स्वभाव तनिक अधीर होता है यह क्या आपसे छिपा है ? आपने अभी मुझसे काम नहीं लिया है किन्तु मेरे जैसा व्यक्ति आपको मिलना कठिन है। जिसका भक्त हो गया उसके लिए सिर तक दे दूं, ऐसा हूं।'

आत्म-प्रशंसा के विरुद्ध कुछ भी कहना महाराज को लाभदायक न लगा।

'तुम्हें चाहिए क्या ?'

'मैंने आपसे कहा न, मेरा छीना हुआ मंडल—'

'अच्छा। और ?'

'आपको जूनागढ़ के लिए किसी आदमी की आवश्यकता तो होगी ही। मैं भी आपही के कुटुम्ब का हूं,' देशलदेव ने साहस कर कहा। और दाँतों के बीच से मूंछें हटाकर उन्हें हाथ से संवारने लगा।

महाराज चकित होगए—इस हरामखोर के साहस की भी कोई सीमा नहीं ! किन्तु यह जो कुछ दिलवाने के लिए कह रहा था वह प्राप्त करवा दे तो उसे अच्छा पुरस्कार तो देना ही चाहिए और क्या देना होगा यह भी उनके अधिकार की ही बात तो थी।

'समझा, यों कहो न।' जयसिंहदेव ने कहा, 'देशलदेव जी ! तुम अपना वचन निभाओ, मैं अपना वचन अवश्य पूरा करूंगा।'

देशलदेव के मुख पर हर्ष छा गया।

'महाराज ! आप वचन देते हैं ?'

'हाँ। अब और क्या चाहिए ?'

'तो महाराज! तैयार हो जाइए। आज बारह बजे गढ़ में प्रवेश करना है।'

'अच्छा! चलो तैयारी करवाता हूँ। जगदेव!' महाराज ने पुकारा। उनके मुख पर प्रणय में पागल व्यक्ति का हर्ष छाया हुआ था। उनका मुख पुलकित हो उठा। उनके होंठ भिड़ गए—क्रोध से नहीं किन्तु निमंत्रित प्रणयी की अधीरता से।

'अन्नदाता!' कहता हुआ जगदेव परमार आया।

'परमार! दो सौ अच्छे सैनिक लेकर तैयार हो जा। हमें एक दूसरे स्थान से आक्रमण करना है।'

'जो आज्ञा।'

'और इन लोगों का स्वागत-सत्कार कर और परशुराम और उदा महेता को भेज।'

'जी' कहकर जगदेव वहाँ से गया और उसके साथ देशलदेव और वीशलदेव नीचे झुककर प्रणाम करते-करते गए।

महाराज थोड़ी देर तक भूमि की ओर देखते हुए बैठे रहे। उनकी उत्तेजित शक्ति ने पन्द्रह वर्ष पहले देखी एक बालिका का कोमल मुख उनके सामने ला खड़ा किया। हा! हा! उसी मुख ने उनका हृदय हर लिया था—वही मुख निकट न होने के कारण वह दुःखी था—उसी मुख के बिना उनकी कीर्ति फीकी थी। उसकी उस जयश्री को उसका शत्रु हर ले गया था, वही पुनः उसके घर आएगी। राणक उसके रनिवास में आएगी तभी वह सचमुच में जयसिंह होगा।

उसके हृदय में भावनाएँ सदा प्रचण्ड होकर ही आती थीं। इस समय भी ऐसी ही एक भावना आई। जो विजय के पीछे पागल था वह स्त्री के पीछे पागल हो गया। घोर कामी की तीव्र इच्छाओं का वह देखते-ही-देखते अनुभव करने लगा; इतना ही नहीं, राणक बिना उसे जीवन ही व्यर्थ लगने लगा। उसके मन में भारी उथल-पुथल हुई। रा' खेंगार की विधवा से वह ब्याह करेगा तो पाटण कैसे स्वीकार

करेगा ? और दूसरी रानियां उसे पटरानी-पद कैसे देने देंगी ? महाराज मुस्कराए। वे मन-ही-मन बड़बड़ाए—राजा कालस्य कारणम्। किसकी मजाल है कि मेरी इच्छा के विरुद्ध जाय ? राजा मैं हूं या कोई और !

किन्तु राणक ना कह दे तो ? वह सती मानी जाती थी। महाराज ने मूंछों पर ताव दिया। चंचल स्त्री कभी किसी की हुई है कि खेंगार की होगी ? और हो भी तो उसका प्रताप ही इतना था कि उसकी क्या मजाल जो विरोध करे ? उससे—कलियुगके विक्रमादित्य से—क्या नहीं हो सकता ?

इतने में परशुराम और उदा महेता आ गए।

'दण्डनायक !' महाराज ने कहा, 'वे देशल और वीशल आ गए हैं। उसके हाथ में एक चौकी है उसे पारकर चुपचाप गढ़ में जाऊँगा। मैं और उदा महेता पीछे से होकर जायंगे, त्रिभुवनपाल गढ़ के द्वार पर आ पहुँचेंगे।'

'ठीक है।' उदा महेता ने अपनी योजना सफल होते देखकर हर्षित होकर कहा। 'इसके पश्चात् कुछ करने को रह ही नहीं जाता।'

'किन्तु आपका पिछले द्वार से होकर जाना तो व्यर्थ का संकट उठाना है।' परशुराम ने कहा।

'बिलकुल नहीं,' महाराज ने कहा। 'यदि चौकी पार न की जा सकी तो हमारी पहली योजना तो है ही। और अगर पार हो गए तो फिर लाभ कितना होगा ? और बड़े संकटों का सामना मैं न करूंगा तो कौन करेगा ?'

'संभव है कुछ हो जाय तो—'

'कुछ होने का नहीं। मुझे क्या हो सकता है ?' देवत्व का स्वाँग भरते हुए जयसिंहदेव ने कहा।

'तो खिड़की तक मैं भी आऊंगा। आपके इस प्रकार जाने देने में मेरा मन नहीं मानता।' परशुराम ने कहा।

'अच्छा !' महाराज ने कहा, 'महेता तैयार हो जाओ। सबको कूच

करने की आज्ञा दे दो। हम एक-दो घड़ी में प्रस्थान करेंगे। मैं रानी को तैयार होने के लिए कह आता हूं।'

'जो आज्ञा।' कहकर दोनों चले गए।

'मुझे अपने बाबरा को भी साथ लेना पड़ेगा।' महाराज ने मन-ही-मन कहा।

: १६ :

सोमेश्वर की योजना

सोमेश्वर जयसिंहदेव के पास से लौटकर आया। वह पागल-सा हो गया था। जब वह भृगुकच्छ से निकला था उस समय गुजरात के नाथ के प्रति उसकी श्रद्धा थी। वंथली में अनाथों का नाथ बैठा हुआ था, वहीं उसका प्रतापी गुरू भी था, जैसे ही वह वहाँ जाकर भृगुकच्छ की दशा कहेगा वैसे ही एक विशाल पट्टणी सेना उनकी सहायता के लिए भेज दी जायगी, और उसका महारथी गुरू सब कुछ छोड़कर अपनी पत्नी और अपने नगर की सहायता को दौड़ पड़ेगा। इसी श्रद्धा के कारण उसने अनेक दुःख उठाए, भूख सहन की, निद्रा त्यागी। उसने दौड़ते हुए मार्ग पूरा किया। भूखों मरती मंजरी और उसके बच्चों की रक्षा के हेतु न जाने क्या-क्या कष्ट उठाकर वह वंथली आया। वहाँ जाने के पश्चात् किसी प्रकार वह राजा के सम्मुख पहुंचा। किन्तु वहाँ न उसके गुरू का कोई पता था और न किसीको उसके देश ही की चिन्ता थी। उसके राजा को किसी की लेशमात्र भी चिन्ता न थी। यही जयसिंहदेव सोलंकी है? इसीके लिए सब अपने प्राण अर्पण कर रहे थे? इसीको सब आधुनिक विक्रमादित्य मानते थे?

इसीके लिए काक भटराज अपना तन, मन, धन अपनी पत्नी, सब कुछ होम देने को तत्पर थे ? उसका माथा गरम हो गया। उसमें इन सबसे बदला लेने की भावना बड़ी वेगवती हो गई। किन्तु वह हँस पड़ा। यह आवेश व्यर्थ था। वह प्राण भी लगा दे तो राज्य-सत्ता का एक भी कंकड़ हिलने वाला न था। लाट में परमेश्वर के समान पूज्य त्रिभुवनपाल की यहाँ कोई गिनती ही न थी।

हँसते, हंसी उड़ाते हुए सैनिकों ने उसे इस प्रकार निकाल दिया मानो वह पागल कुत्ता हो। वह रुँआसा हो गया। दो-चार को मार डालने का मन हुआ। चिल्लाकर पाटण को आग देने का मन हुआ। किन्तु हो कुछ न सका। अन्त में सामने के चौक में जाकर आगे क्या करे यह सोचने के लिए वह एक ओर खड़ा हो गया। इस समय तो उसे यही लग रहा था कि उसके काक से तो रेवापाल अधिक चतुर था। लाट भले दुःखी हो, किन्तु दासता में सड़ने देने से क्या लाभ ? इस कठोर राजा की पूजा होने से तो कट मरना क्या बुरा ? उसे लगा कि सुख से स्वाधीनता अधिक मूल्यवान होती है; काक का अनुचर होकर इस प्रकार दुत्कारे जाने से तो रेवापाल का अनुचर होकर मरना अधिक गौरवशाली था। उसे अपनी मूर्खता पर हंसी आ गई। इस समय ये विचार किस काम के ? वह भूखा था, थका हुआ था, और विश्राम करने के लिए कोई स्थान न था। उसका देश दूर था अतः वास्तविक प्रश्न तो यह था कि अब क्या किया जाय ? वह विचार करता रहा। थोड़ी देर बाद उसने सिर ऊपर उठाकर देखा तो एक वृद्ध वणिक उसके निकट खड़ा-खड़ा देख रहा था।

'भाई ! लाट से आये हो ?' उसने मी स्वर में पूछा।

'हाँ, बाबा ! क्या बात है ?' थका हुआ सोमेश्वर बोला।

'कुछ खाया-पिया ?'

'खड़े रहने का जहाँ ठिकाना नहीं वहाँ खाने-पीने की क्या बात ?' कटुता से सोमेश्वर ने कहा।

'ऐसी क्या बात करते हो ? जयसिंहदेव महाराज के यहाँ क्या अनाज चुक गया है ? चलो, मैं व्यवस्था कर देता हूँ।' वह वृद्ध बोला।

सोमेश्वर को यही तो चाहिए था। वह वृद्ध उसे लेकर कोठार की ओर गया और आवश्यक वस्तुओं की व्यवस्था करके अदृष्ट हो गया। सोमेश्वर बहुत भूखा था अतः जल्दी से नहाकर भोजन बना कर खा लिया। इतने में वह वृद्ध पुनः आया।

'सोमेश्वर भटजी ! खा चुके ?'

सोमेश्वर चकित हो गया। इस बूढ़े ने उसका नाम कैसे जान लिया ?

'हाँ, काका ! क्यों ?'

'चलो, तुम्हें बुलाते हैं।'

'कौन ?'

'महाआमात्य।'

सोमेश्वर ने काक के मुख से अनेक बार महाआमात्य की प्रशंसा सुनी थी। राजा के निकट बहुत लोग बैठे थे, उनमें महाआमात्य थे या नहीं यह वह नहीं जानता था। इस विख्यात मुतसद्दी का नाम सुनकर उसका हृदय धड़क उठा।

'मुंजाल महेता ?'

'हाँ।'

सोमेश्वर एक भी शब्द कहे बिना उस वृद्ध के पीछे हो लिया। थोड़ी देर पश्चात् वे ऊपर के एक कमरे के सामने आए। वृद्ध ने उसे वहीं खड़े रहने को कहा। सोमेश्वर खड़ा हो गया और वह वृद्ध अन्दर गया।

सोमेश्वर कुछ घबरा गया। मन्त्रीवर को कैसे मालूम कि वह आया है ? और यदि वे राज-सभा में बैठे हुए थे तो इस प्रकार पीछे से बुलाने का कारण ? वे करना क्या चाहते हैं ? उसे स्वयं पर क्रोध

आया। यह घबराहट किसलिए ? मुंजाल महेता की उसे क्या चिन्ता ? उनके साथ उसका क्या सम्बन्ध ? कुचले जाते हुए लाट के वासी को स्वाधिकार-प्रमत्त जयसिंहदेव के मन्त्री से क्या काम ? उसके देश की दशा बिगड़ गई, देवता जैसे उसके गुरू की दशा अच्छी न थी, अम्बा जैसी उसकी गुरु-पत्नी भूखों मर रही थी—यह सब इन्हींके कारण तो था। तो उनके प्रति क्यों थोड़ा-सा भी सौजन्य दिखाया जाय ?

इतने में वृद्ध आया, 'भटजी ! अन्दर आओ।' सोमेश्वर अन्दर गया। गद्दी पर एक वृद्ध व्यक्ति बैठा हुआ था। वृद्धावस्था में भी उसके मुख का सौंदर्य और गौरव चकाचौंध करने वाले थे, उसके स्नायु का बल मान उत्पन्न करता था, उसकी आंखों में इस समय मुस्कराहट थी। सोमेश्वर ने उसे पहचाना। यही मन्त्री जयसिंहदेव के निकट बैठा हुआ था। और फिर भी उसका अपमान किया गया। सोमेश्वर ने होंठ भींचे।

'आ सोमेश्वर, वस्ता !' उसने उस वृद्ध से कहा, 'तू बाहर खड़ा रह। क्यों सोमेश्वर, भोजन किया ?'

'जी हाँ।' कहकर सोमेश्वर मौन हो गया। मन्त्री यह हठ देखकर मुस्कराए।

'भृगुकच्छ के गढ़ में अनाज कितना बच गया है ?'

'समाप्त होने आया होगा।' कटुता से सोमेश्वर बोला।

'और सैनिक सभी पकड़े गए ?'

'जी, हाँ।'

'माधव सेनापति कहाँ हैं ?'

'कारागार में।'

'ठीक मालूम है ?'

'पकड़ते हुए मैंने स्वयं देखा था।'

'गढ़ में कौन है ?'

'भटराज की पत्नी और बच्चे, आंबड़ महेता, एक सैनिक, और एक ब्राह्मण।'

'गढ़ तो बहुत दृढ़ है।' मुंजाल बोला।

'किन्तु अन्दर रहने वाले हवा पर तो नहीं जी सकते।'

'रेवापाल लोगों को प्रिय है, क्यों?'

'दो व्यक्ति लोगों को प्रिय थे। आपने एक को बुला लिया अतः दूसरे को अवसर मिल गया।' पुनः कटुता से भरकर सोमेश्वर ने कहा।

'काक की बात कहता है?'

'हाँ।'

'तू काक का शिष्य है न?' मुस्कराकर मुंजाल ने पूछा।

'जी। शिष्य कहिए, पुत्र कहिए, सेवक कहिए—जो कहिए वही हूँ।'

'वह तो तेरे रंग-ढंग ही से दीख रहा है। तू यहाँ क्योंकर आया?'

सोमेश्वर कुछ देर तक कुढ़ता हुआ खड़ा रहा और फिर उत्तर दिया, 'मैं गढ़ में मंजरीदेवी के साथ था। किन्तु आपके राजा को समाचार देने के लिए मैं नदी में कूदा। किसी प्रकार यहाँ तक पहुँच गया हूँ।' तिरस्कार से सोमेश्वर ने अपने हाथों को समेटकर एक दूसरे पर रख लिया।

'अब क्या करेगा?' विनोद करते हुए मुंजाल ने पूछा।

'अब?—' कुछ देर तक विचार करने के पश्चात् सोमेश्वर ने कहा, 'अब देखना चाहता हूँ कि जो आपके राजा से नहीं हो सकता वह मुझ अकेले से हो सकता है या नहीं।'

'क्या?'

'भृगुकच्छ के गढ़ को टिका रखने का काम।'

'यह तू किस प्रकार करेगा?'

'शंकर बुद्धि देंगे। मेरी देवी को आप मरने दे सकते हैं, अनाथों का नाथ मेरा भोलानाथ कैसे मरने देगा?'

'कितने वर्ष से तू सेना में है ?' हँसकर मुंजाल ने पूछा।

'आठ-नौ वर्ष से।' सोमेश्वर को थोड़ी-बहुत आशा हुई थी वह भी जाती रही। यह वृद्ध तो केवल जानकारी प्राप्त कर रहा था।

'और गढ़ न टिका तो ?'

'मन्त्रीवर !' क्रोध में सोमेश्वर ने कहा, 'जब तक मैं आपके राजा को अपना मानता था तब तक बात दूसरी थी। अब जो मुझे सूझेगा वही करूंगा।'

'तू तीन बार 'आपके राजा' बोला, अर्थात् मेरे राजा तेरे नहीं ?'

'हमारी रक्षा न करने वाला हमारा राजा कैसे हो सकता है ? मेरा अपमान किया और मेरे लाट को निराधार बनाए रखने का निश्चय किया, तब से वे मेरे राजा नहीं रहे।'

मुंजाल हंस पड़ा।

'मुझे तेरी बातों में बहुत रस आता है।'

'क्यों न हो ?' कटुता से सोमेश्वर ने कहा, 'पराए दुःखों पर हंसना यहाँ के लोगों को बहुत अच्छी प्रकार आता मालूम होता है।'

'हमारी कुछ टेव ही ऐसी है,' हंसी में मुंजाल ने कहा। 'किन्तु सोमेश्वर ! अब तू अकेला जाकर गढ़ को टिकाएगा, उससे होगा क्या ?'

'गढ़ टिकेगा भी तो आपके कारण नहीं बल्कि भटराज के कारण। वे जीवित होंगे तो अवश्य आ पहुंचेंगे। फिर जो करना होगा वही करेंगे। और यदि वे परलोकवासी हो गए होंगे तो मुझे जो सूझेगा वही करूंगा।'

'तुझे क्या उचित लगता है ?'

'रेवापाल भटराज के बाल-मित्र हैं। भटराज की पत्नी और उनका सोमेश्वर लाट की सेना में जा मिलेंगे।'

'रेवापाल ? वह तो तेरे भटराज का शत्रु है।'

'किसने कहा ? अब तक दोनों विरोधी थे अवश्य, किन्तु अब तो लाट का सुख एक ही पक्ष में है।'

'कैसे जाना ?'

'मन्त्रीवर !' भावावेश में सोमेश्वर बोला, 'बहुत हो चुका। मैं अब अधिक बात नहीं करना चाहता। किन्तु आपके प्रश्न का उत्तर दूँगा। यदि मुंजाल महेता में भटराज की श्रद्धा व्यर्थ न होती तो लीलादेवी इस प्रकार निःसहाय होकर हमारे कष्टों को न सुनतीं। मेरे गुरू यदि लाट के अधिपति होते तो हम सब आपके पाटण को ठिकाने लगा देते।'

'महेताजी ! मैं आ जाऊं ?' निकट ही के द्वार से एक स्वर आया, 'मेरा नाम कैसे आया ?'

'ओहो लीलादेवी ! आइए।' कहकर मुंजाल खड़ा हो गया। युद्ध में जाने की आधी पोशाक में सजी हुई रानी आई। उसने सोमेश्वर की ओर देखा किन्तु वह क्रोध के मारे कुछ न बोला।

'कौन, सोमेश्वर ? मैंने सुना कि तू यहीं है इसीलिए मैं आई हूँ।' मन्त्री की ओर देखते हुए रानी ने कहा।

मन्त्री या सोमेश्वर दोनों में से कोई कुछ न बोला।

: २० :

मुंजाल महेता का संकट

'क्यों सोमेश्वर, पहचानता है कि नहीं ? अपनी राजकुँअरी को भूल गया ?'

सोमेश्वर ने क्रोध में देखा, 'हमारी राजकुँअरी रही ही कहाँ ? मैं तो पाटण की पटरानी देख रहा हूँ। मैं आपको नहीं पहचानता।'

'वाह !' लीलादेवी ने शांति से कहा, 'बड़ों के साथ बोलना तूने भी अच्छा सीख लिया है।'

'बड़े हैं तो प्रभु आपका बड़प्पन बनाए रखे, किन्तु हमारे किस काम का वह ? जिसने आपको महारानी बनाया उसके स्त्री-बच्चे मृत्यु के पंजे में फँसे हुए हैं किन्तु आपको कोई चिन्ता ही नहीं। जिन लोगों ने आप की महत्ता बढ़ाने के लिए विदेशियों की दासता स्वीकार की उनके लिए आपके हृदय में लाग-लगाव तक नहीं। आप हमारी नहीं तो हम आपके नहीं।' कुढ़ते हुए सोमेश्वर कह गया। बोलते-बोलते उसकी आँखों में क्रोध के आँसू छलक आए।

'तेरी बात सच है।' शांत स्वर में रानी बोली, 'पाटण न कभी किसी का हुआ और न कभी किसी का होने का।' मुंजाल ने ऊपर देखा। रानी में सदा की गम्भीरता थी।

'और जो कोई पाटण आता है वह भी पट्टणी हो जाता है।' कटुता से सोमेश्वर बोला।

'पद्मनाभ राजा की कुँअरी नहीं।' लीलादेवी ने शांति से कहा, 'महेता जी ! आपको किसीको तो लाट की चिंता नहीं किन्तु मेरे लिए और कोई चारा है ? सोमेश्वर ! निश्चिंत हो। मैं तेरे साथ आती हूँ। हम दोनों मिलकर लाट का उद्धार करेंगे।'

इतने वर्षों के मुतसद्दी जीवन में प्रथम बार मुंजाल चमका। इस दृढ़, कठोर, शांत रानी के मुख पर गाम्भीर्य था। उसकी आंखों में निश्चयात्मक बुद्धि थी।

'क्या कह रही है ?' मुंजाल ने पूछा।

'सुना नहीं ?' तिरस्कार से रानी बोली।

'किन्तु मैंने सोमेश्वर को सब कुछ पूछने के लिए ही तो बुलाया था। मैं अभी लाट की सहायता को सैनिक भेजने की व्यवस्था करता हूं।' मुंजाल ने मृदुलता से कहा।

'सैनिक भेजने से क्या होगा ? लाट की कुँअरी ही लाट की सहायता को जायगी। आपको कुछ भी कष्ट करने की आवश्यकता नहीं। मैंने दादा नायकको बुलाया है। मेरे पचास सैनिक अभी तैयार हो जायंगे

'किन्तु बहन ! आप अभी जायंगी तो जूनागढ़ का क्या होगा ?' मुंजाल महेता ने धीमे-से कहा।

'आप सब तो यहां हैं।' तिरस्कार से रानी ने कहा।

'हम तो हैं ही, किन्तु आपका रहना तो नितांत आवश्यक है।'

'लाट मेरा है। सोरठ की बात आप पट्टणी जानें। सोमेश्वर ! कितने दिनों में लाट पहुंच जायँगे ?'

'पांच दिन में तो पहुँच ही जायंगे।'

'किन्तु इतने लोग जाकर करोगे क्या ?'

'महेता जी ! आपकी हमारे लाट के विषय में कुछ नहीं मालूम। मैं अकेली ही पर्याप्त हूं। यहां मेरा कोई मूल्य नहीं किन्तु वहाँ लोग मेरी पूजा करते हैं। रेवापाल मुझे देखते ही मेरी चरण-रज अपने सिर चढ़ायगा।'

'किन्तु हम जूनागढ़ लेते ही काक को भेज देंगे।'

'जूनागढ़ के गिरने तक मैं प्रतीक्षा नहीं कर सकती।' दृढ़ता से रानी ने कहा, 'काक जीवित हो तो कहना कि लाट आजाय। वहाँ उसके गुरू ध्रुवसेन हैं, उसका बालमित्र रेवापाल है, उसकी रानी मैं हूँ और उस की अर्धांगिनी मंजरी है। कहना कि वहीं आवे। 'सोमेश्वर, चल मेरे साथ।'

मुंजाल इतनी देर तक यह सब देखता रहा। उसने कई विकट प्रसंग देखे थे किन्तु ऐसा विकट प्रसंग वर्षों से नहीं आया था। वर्षों पहले जब पाटण ने विद्रोह किया था तब उसकी चतुराई ने अप्रत्याशित चमत्कार दिखाया था। आज ऐसा ही प्रसंग आया था। वह इस शांत और दूरदर्शी स्त्री के उद्देश्य, लाट की स्थिति, सोरठ की विजय और पाटणकी महत्ता—इन सब पर विचार करने लगा। उसके तेजस्वी नयन चमकने लगे। उसके होंठ भिड़ गए।

'ठहरो,' सत्ता-भरे स्वर में वह बोला, 'लीलादेवी ! मैं भी आपके साथ चलता हूं।'

'कहाँ ?' रानी ने तनिक कठोरता से पूछा।

'लाट की सहायता को।' दृढ़ता से महाआमात्य ने कहा।

'आप ?' चकित होकर रानी ने पूछा।

'हाँ।'

'आपका वहाँ काम नहीं।' रानी ने अपमान-भरे ढंग से कहा।

'सोमेश्वर ! बाहर जाकर खड़ा रह। वस्ता ! द्वार बंद कर दे।' मुंजाल ने आज्ञा दी।

सोमेश्वर ने देखा कि यहां तो कुछ न समझ पड़ने वाला खेल चल रहा है किन्तु वह यह समझ गया कि इससे लाट को अवश्य लाभ होगा। वह मौन होकर बाहर चला गया और वस्ता ने आकर द्वार बंद कर लिया।

कुछ क्षण तक मुंजाल और लीलादेवी एक दूसरे की ओर देखते रहे। मुंजाल की आंखों में दुर्धर्ष प्रताप था, उनमें से तेज की किरणें फूट रही थीं। लीलादेवी की आंखों में शांत और गहन स्थिरता थी। उनमें से नुकीले तीर की तीक्ष्णता टपक रही थी। दोनों की आंखों में भयंकर दृढ़ता थी।

'मैं आता हूँ।' मंत्री ने पुनः दृढ़ता से कहा।

'आपका काम नहीं।' वैसी ही दृढ़ता से रानी बोली।

'बात क्या है, बहन ?' मुंजाल ने एकाग्रता से देखते हुए कहा। लीलादेवी ने उत्तर नहीं दिया। मुंजाल ने नीचे झुककर धीमे-से कहा, 'राजा किसी और को पटरानी बनाएं तो लाट में जाकर राज्य करना, यही न ?'

लीलादेवी स्तब्ध होगई। पल-भर के लिए उसकी स्थिरता चली गई। वह पीछे हटकर महाआमात्य की ओर घबराई हुई दृष्टि से देखने लगी। यह मनुष्य था या जादूगर ? उसने होंठ पीसकर ज़ोर से किन्तु शान्ति से उत्तर दिया, 'क्यों नहीं ?'

'आप सोचती हैं कि जयदेव राणकदेवी को पटरानी बनाएँगे ?'

'मुझे विश्वास है ।'

'आप समझती हैं कि राणकदेवी यह पद स्वीकार कर लेगी ?'

'सम्भव है स्वीकार ले । जो स्वामी पल-पल में बदल जाता है उस का क्या विश्वास ?' रानी ने उदासीनता से उत्तर दिया ।

मुंजाल ने तनिक गर्व-भरे स्वर में कहा, 'अभी मैं जीवित हूं ।'

आप ?' रानी ने तिरस्कार से कहा, 'आप तो पाटण की सत्ता के तार खींचने के चरखे हैं । इससे अधिक आपका क्या मूल्य है ?'

'बहन ! मैं इतना नहीं गिर गया । घबराओ मत । मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर सके ऐसा यहाँ कोई नहीं है ।'

'पाटण आपका पुत्र है और पुत्र के विनाश की बात कभी किसी पिता को कहते सुनी है ? इस विषय में मैं किसी की मानने की नहीं । मैं यहाँ सबको पहचानती हूं । और पटरानी से दासी बनना मुझे स्वीकार नहीं ।'

'बहन ! जब तक मैं हूं आपका पद जाने का नहीं । मेरे वचन में विश्वास नहीं ?'

'अधिक गड़बड़ करोगे तो यह विक्रमादित्य किसी दिन आपका गला काट डालेगा । आपके वचन में विश्वास करके मैं बैठी रहने की नहीं ।'

'अधिक हठ न करो ।' मुंजाल ने समझाते हुए कहा, 'मैं कौन हूं यह आप अभी नहीं जानतीं ।'

'मैं भलीभाँति जानती हूं । आप सोलंकियों की सत्ता बढ़ाने के केवल एक अस्त्र हैं । जैसे मैं एक अस्त्र हूं वैसे ही आप हैं । आपको लगता है मैं लाट चली जाऊंगी तो आपके हाथ से एक उपयोगी अस्त्र जाता रहेगा । मुझे अस्त्र बनकर नहीं रहना, मैं रानी बनना चाहती हूँ । पाटण की नाम की रानी से तो दो-तीन गाँवों की स्वामिनी बनकर ही सन्तोष कर लूंगी ।'

'तो मेरी नहीं ही मानोगी ?' मुंजाल ने तनिक कठोरता से कहा।

'नहीं।'

'तो मैं तुम्हारे लाट को कुचल दूंगा।'

'लाट की माता-स्वरूप मैं कुचला जाना पसन्द करूंगी।'

'वाह !' हंसते हुए मुंजाल बोला, 'बेटी ! आओ हम एक शर्त करें।'

'क्या ?'

'तुम्हारा पद न जाय फिर तो कुछ नहीं ?' मुंजाल ने कहा।

'इसका भरोसा क्या ?'

'इसी समय सोमेश्वर के साथ दो हज़ार सैनिक लाट भेजता हूं। दो सौ लाट के सैनिक तुम्हारे लिए तैयार रखता हूँ। यदि जयसिंहदेव राणकदेवी से ब्याह करें तो तुम अपनी इच्छानुसार करने को स्वतंत्र होगी। तुम लाट जाकर सोमेश्वर से मिल जाना।'

लीलादेवी ने गर्दन हिलाई।

'आप भी जूनागढ़ चलिए और मैं भी चलता हूँ। फिर देखता हूं जयसिंहदेव कैसे उससे ब्याह करते हैं ?' गर्व से मुंजाल बोला।

'और ब्याह करलें तो—'

'बहन !' मुंजाल की भवें तन गईं। उसके शब्द में रौद्र रस की टंकार थी। जिसे मैंने बनाया उसे तोड़ देने में मुझे विलम्ब न लगेगा। वस्ता !' लीलादेवी मौन रही।

'जी।' कहता हुआ वस्ता आया।

'जा, वाहड़ महेता को बुला ला।' आमात्य ने आज्ञा दी, 'और सोमेश्वर को भेज।'

'जी।' कहकर वस्ता गया और सोमेश्वर आया।

'सोमेश्वर। कितने सैनिक लेकर तू रेवापाल का सामना करने के लिए तैयार है ?'

'ढाई हजार से काम चल जायगा।' हर्ष से सोमेश्वर ने कहा।

'देख इस समय तेरे साथ लाट के एक हजार सैनिक देता हूँ। तेरे साथ वाहड़ महेता आएंगे। खंभात से पंद्रह सौ सैनिक और ले लेना। जयसिंहदेव महाराज, लीलादेवी और मैं परसों तक आ पहुँचेंगे।'

सोमेश्वर ने हाथ जोड़े। उसका हृदय उमड़ पड़ा' 'जो आज्ञा।'

'अब तो बस ?' रानी की ओर घूमकर मुंजाल ने कहा।

'अभी नहीं कहूँगी।' मुस्कराकर लीलादेवी ने कहा। इतने में वस्ता आया।

'वाहड़ महेता आ गए।'

'अंदर बुला,' अमात्य ने कहा।

वाहड़ महेता नीचे देखते हुए घबराते हुए और लजाते हुए आया।

'वाहड़, तू आज नितान्त निकम्मा प्रमाणित हुआ।' वाहड़ ने उत्तर नहीं दिया। 'देख, अब तुझे एक दूसरा काम सौंपता हूं।' वाहड़ के मुख पर आशा की किरण चमकी। 'सोमेश्वर एक हजार सैनिक लेकर लाट के विद्रोह का दमन करने जा रहा है। इसके साथ जा। खंभात से पन्द्रह सौ सैनिक और ले लेना। आज्ञा-पत्र अभी देता हूँ। तीन दिन के अन्दर महाराज, लीलादेवी और मैं लाट पर अधिकार करने आएंगे।'

'जो आज्ञा,।' चकित होकर वाहड़ बोला। उसका हृदय नूतन आवेश से कूदने लगा।

'जाओ विजय करो। हमारे आने से पहले बाजी हाथ से निकल जाय तो मुंह मत दिखाना।'

'महाराज !' सोमेश्वर ने कहा, 'तनिक भी चिन्ता न कीजिए। मैं भी आपको दिखा दूंगा कि भटराज के शिष्य क्या कर सकते हैं।' वह और वाहड़ विदा हुए।

मुंजाल रानी की ओर घूमकर मुस्कराया, 'इस भटराज के बिना लाट में क्या कोई जीवित ही नहीं रहता है ?'

उत्तर में लीलादेवी हंस पड़ी।

'बहन ! अब जाओ तैयार हो जाओ। मुझे पहचान लो तो भी बोलना मत और जयदेव तुम्हें दूसरे द्वार से जाने को कहें तो ना मत करना। तुम जितनी दूर रहोगी उतना ही मेरा काम सरल हो जायगा। मैं भी तैयार होता हूं।' कहकर वह जाने लगा।

लीलादेवी ने मुस्करोकर पूछा, 'मीनलदेवी के पास जा रहे हैं ?'

'हाँ, क्यों ?'

'यह सब कहिएगा क्या ?' लीलादेवी ने पूछा।

'तुम क्या सोचती हो ?' मुस्कराकर मुंजाल ने पूछा।

'कुछ नहीं। तुम भी विलक्षण हो।' रानी भी मुस्करा दी।

'आज की बात से ? अच्छा बहन ! अगर मैं तुम्हें जाने से रोक देता और तुम्हें तुम्हारा काम न करने देता तो तुम क्या करतीं ?' मुंजाल के मुख पर वात्सल्य-भाव था।

'कैसे रोकते ?'

'बन्दी बना लेता।'

लीलादेवी ने मुस्कराकर वस्त्रों में छिपाई हुई कटारी दिखाई, 'महेताजी यमराज को छोड़ मुझे कौन रोक सकता है ?' उसने शांत रहकर कहा, 'मुझे बन्दी बनाने जाते तो पाटण महाआमात्य-हीन हो जाता।'

मुंजाल प्रशंसापूर्ण दृष्टि से देखने लगा, 'तुम अद्भुत हो।'

रानी हंसकर विदा हुई।

: २१ :

विजय-प्रस्थान—प्रथम

महाराज की आज्ञानुसार दो ही घड़ी में सब तैयारियां हो गईं। शांति किन्तु शीघ्रता से राज्यगढ़ से एक के पश्चात् दूसरी आज्ञा दी जा रही थी और तुरंत उनका पालन भी किया जा रहा था। वंथली में लोग संदेशे लेकर आ-जा रहे थे; वहाँ से विभिन्न शिविरों के लिए

अश्वारोही छूटे; और सैनिकगण कूच के हेतु विभिन्न स्थानों की ओर चल पड़े।

परछाइयाँ इधर-उधर भाग रही थीं—कुछ पैदल और कुछ घोड़ों पर। यदि दो परछाइयां एक दूसरे से मिलतीं भी तो थोड़ी देर एक दूसरे के सामने निःशब्द खड़ी हो जातीं और फिर अलग हो जातीं। कई स्थानों पर परछाइयों का समूह मौन होकर चला जा रहा था; घोड़ों की टापें भी मानो बिना शब्द किये धरती पर पड़ रही थीं। चारों ओर निःशब्दता थी किन्तु त्रास ऐसा फैला हुआ था मानो चारों ओर भूतों का वास हो। थोड़ी ही देर में सब कुछ शांत हो गया। परछाइयों का आना-जाना बन्द हो गया। ऐसा भास होने लगा मानो सम्पूर्ण वंथली निश्चेत पड़ी हुई हो।

राज्यगढ़ के चौक में आठ-दस घोड़ों की परछाइयां अधीर होती दिखाई पड़ रही थीं। सात परछाइयां गढ़ से बाहर निकलीं। उनमें से एक सबसे आगे चल रही था।

निकट ही के द्वार में से एक शस्त्रसज्जित, ठिगना योद्धा निकला और उस आगे चलने वाली परछांई से तिरस्कारपूर्वक कहा—'राजाजी! मुझे तो भूल ही गए।'

वह परछांई अधीरता से खड़ी हो गई, 'तू भी आएगी?' राजा के स्वर में असन्तोष स्पष्ट झलक रहा था।

'क्यों? मैं तो आपके साथ आने वाली थी न!'

राजा के होंठ टेढ़े पड़ गए, 'तू क्यों संकट में पड़ती है?'

'हम दोनों में संकट तो मैंने ही अधिक उठाए होंगे।' तिरस्कार से रानी ने कहा।

उत्तर में राजा ने केवल इतना-सा कहा, 'चल।'

रानी तुरंत साथ हो ली। पट्टणी योद्धाओं को राजा की बात ही ठीक लगी—स्त्री इस संकट को कभी झेल सकती है? देशलदेव ने वीशलदेव के कन्धे पर हाथ रखकर दबाया। वे उसका कुछ और ही

अर्थ समझे। मौन होकर सब आगे बढ़े और जाकर घोड़ों पर सवार हो गए। थोड़ी ही देर में वे नगर के बाहर सेना के पड़ाव पर आए और वहाँ से चार-पाँच सौ सैनिक लेकर वेग से जूनागढ़ की ओर बढ़े।

चन्द्रमा गिरनार के शृंगों पर झूल रहा था। अधिकांश सेना विभिन्न दिशाओं में पैदल चली जा रही थी जिससे चांदनी में उसकी गति-विधि न जानी जा सके। फिर, वंथली और जूनागढ़ के बीच में पड़ने वाले घने वनों के कारण गति-विधि जानना कठिन भी था। मेंदरड़े से एक टुकड़ी डंका बजाते हुए निकल पड़ी थी। जिससे सोरठियों का इस भ्रम में पड़ जाना सम्भव था कि धावा एक ही ओर से किया जा रहा है।

जैसे पर्वत के चारों ओर धीरे-धीरे कुहासा छाने लगता है वैसे ही पट्टणी सेना आगे बढ़ने लगी। राजा की टुकड़ी थोड़ी ही देर में जंगल पार कर चौकी के सामने आ पहुंची।

'देशलदेव जी यही है तुम्हारी चौकी ?' जयसिंहदेव ने पूछा।

'हाँ महाराज !' कहकर देशलदेव आगे बढ़ा और अपने भाई को लेकर सबसे आगे खड़े चौकीदार के निकट गया। देशलदेव ने सबको मिला रखा था अतः चौकीदार कुछ न बोले। पट्टणी सेना ने तुरंत ही चौकी पर अधिकार कर लिया। यहाँ सब लोग घोड़ों पर से उतर पड़े। और पैदल ही आगे बढ़ने की तैयारियां करने लगे।

यहाँ से पाँच सौ आदमी त्रिभुवनपाल के साथ मेंदरड़े से आने वाली टुकड़ी से मिलकर जूनागढ़ के मुख-द्वार की ओर जाने वाले थे और शेष आदमी महाराज, परशुराम और उदा महेता के साथ गुप्त रूप से प्रवेश करने वाले थे। शीघ्रता से लोग बंट गए। राजा के मुख से क्रोध टपक रहा था। उनकी आंखों में रक्त उतर आया था। जैसे ही सबने चलने की तैयारी की राजा ने त्रिभुवनपाल से कहा, 'त्रिभुवन भाई ! लीलादेवी को अपने साथ ले जा।'

ये शब्द सुनकर रानी कुछ बोलने ही वाली थी कि राजा बोल उ ,

'रानी ! तुम जाओ।' राजा के स्वर में क्रोध था। रानी मन-ही-मन हंस पड़ी। उसने और मुंजाल ने ऐसी स्थिति आने पर क्या करना होगा इस पर कभी से विचार कर रखा था।

'आप अपना ध्यान रखिएगा।' रानी ने विनोद में कटाक्ष किया और त्रिभुवनपाल के निकट चली गई। जाते-जाते उसने पैदल सैनिकों की ओर देखा। इतने अधिक लोगों में ब्रह्मावेष में आए महाआमात्य को पहचान लेना असम्भव था। किन्तु उसको इस पुरुष के वचनों में श्रद्धा हो गई थी। महाराज और उनके साथी चुपचाप प्रकाश से बचते-बचते आगे बढ़े। आगे-आगे देशलदेव और वीशलदेव चल रहे थे और पीछे महाराज, परशुराम, उदा महेता और जयदेव परमार। पैदल सैनिक एक-दो साथ होकर छिप-छिपकर चल रहे थे। कोई एक अक्षर भी नहीं बोल रहा था। सबसे दूर विशाल काले श्वान के समान कोई जानवर शीघ्र गति से साथ-साथ चल रहा हो ऐसा लग रहा था किन्तु उधर देखने का किसी को साहस न होता था। उधर जिसकी भी दृष्टि पड़ती वह काँप उठता था। सब समझ गए कि बाबरा भूत साथ आ रहा था यह भूत जिसकी सहायता करे वह योद्धा कभी पराजित हो सकता है ! महाराज की दुर्जयता में लोगों की श्रद्धा बढ़ गई।

सबके हृदय आशंका से धड़क रहे थे। सभी आज रात्रि के परिणाम पर विचार कर रहे थे। कल पाटण का भविष्य क्या होगा—सभी महारथियों के हृदय में यही विचार था। प्रत्येक व्यक्ति संशय में था कि वह कल सूर्योदय देखेगा या नहीं। जयसिंहदेव के मुख पर क्रोध था। उनकी आंखें विकराल हो गई थीं। उनकी चाल में सबसे अधिक दृढ़ता थी। उनके हृदय में क्षोभ न था किन्तु विनाशकारी उत्साह था। वे जूनागढ को जीतने और राणक से भेंट करने के लिए व्यग्र थे। उनको विश्वास था कि सूर्योदय के साथ ही वे राणक से ब्याह कर लेंगे।

बड़ी काली चींटियों की पंक्ति की भांति—सभी निःशब्द, धीमे-धीमे निरंतर आगे—निरंतर ऊपर की ओर बढ़ते गए। किसी की सांस

तक नहीं सुनाई पड़ रही थी। चारों ओर शांति थी। केवल ठोकर से लुढ़का पत्थर या घबराया हुआ पक्षी एकाएक शब्द करके प्रलय के कड़ाके के समान सबके हृदय में त्रास भर देता था। गढ़ निकट आ गया था। गढ़ पर कोई घूमता-सा दिखाई पड़ा। हर-एक के हृदय में क्षुब्धता छा गई।

दूसरी ओर आगे बढ़ती हुई पट्टणी सेना का स्वप्न में सुनाई पड़ने वाले स्वर के समान सुनाई पड़ने वाला डंका बंद हो गया। कुछ चीत्कारें, कुछ गड़बड़ सुनाई पड़ी और उन्होंने ऐसा भय फैला दिया मानो वे परलोक से आ रही हों। मेंदरड़े से निकली हुई टुकड़ी ने बड़ी चौकी के रक्षकों के साथ युद्ध आरंभ कर दिया लगता था। दूर होती हुई मार-काट का शब्द शांतिमय वातावरण को भयानक बना रहा था।

आगे चलने वाले व्यक्ति एक घने वृक्ष के नीचे छिपकर खड़े हो गए।

'देशलदेव जी!' जयसिंहदेव ने कहा। उनका गला बैठ गया था। 'तुम जाकर गढ़रक्षक से भेंट कर आओ। और महेता!' उदा महेता की ओर आमुख होकर उन्होंने कहा, 'तुम त्रिभुवनपाल से मिलकर बड़ी चौकी पर क्या हो रहा है इसका समाचार लेकर शीघ्र आओ।'

उदा महेता समझा। महाराज की इच्छा थी कि त्रिभुवनपाल और लीलादेवी को वह सीधा बड़ी चौकी पर ही ले जाय। वह नमस्कार करके दसेक सैनिकों को लेकर, त्रिभुवनपाल जिस ओर गया था उसी ओर चला।

देशलदेव ने सावधानी से चारों ओर देखा। वे जिसके नीचे खड़े थे उस वृक्ष और गढ़ की खिड़की के मध्य में अन्य कोई वृक्ष न था। मात्र कतिपय झाड़ियां थीं। उनकी आड़ लेकर, नीचे झुककर वह आगे बढ़ा। सब उसकी गतिविधि देख रहे थे। झाड़ियों की

आड़ से निकलकर वह एकदम गढ़ के द्वार में घुस गया। थोड़ी देर में हाथ लंबा करके उसने खिड़की की साँकर पकड़कर दो-दो बार खड़खड़ाई।

'कौन है ?' धीमे-से एक स्वर आया। देशलदेव हर्ष से उछल पड़ा। स्वर उसके शिष्य हमीर का था।

'कौन, हमीर ?' धीरे-से देशलदेव ने पूछा, 'यह तो मैं हूँ। गढ़रक्षक है ?'

'हां, हूँ। क्यों ?' क्रोधित दादु का स्वर आया।

'गढ़रक्षक ! द्वार खोलो तो !'

'क्या काम है ? अभी द्वार नहीं खुल सकते।' हठ करते हुए दादु बोला। कल की घटनाओं से उसका मन उसके श्वसुर के प्रति कड़वा हो गया था।

'गढ़रक्षक, तनिक खोलो, मुझे बात करनी है। मेरे पुत्र के समान होकर तुम ऐसा कर रहे हो ? कल मुझे एकदम निकाल दिया अतः कुछ कह-सुन भी न सका। मेरे जामाता हो तो तुम और पुत्र हो तो तुम ! कल मेरा जाने क्या हो !'

दादु ने उत्तर नहीं दिया।

'मैं वृद्ध हो गया—मेरा कौन ? तुम दो शब्द तो सुन लो। अपनी बेटी को दो बातें कहलानी हैं और अपनी संपत्ति का निपटारा करना है। मैं फिर लौटकर नहीं आऊँगा। भाई दुर्गरक्षक ! अंबाभवानी के लिए दो शब्द तो सुन लो।' देशलदेव ने दीनता दरशाई। उसके गले से ऐसा स्वर आने लगा मानो उसकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लगी हुई हो।

'जो कहना हो वहीं से कह दो।'

'यों कैसे कह दूँ ? गढ़रक्षक ! कोई चौकीदार सुनले तो ! तुम्हारे समान हमीर थोड़े ही है ? तनिक खोलो तो ! नहीं तो, जीवन में मैंने जो कुछ इकट्ठा किया है वह किसी के हाथ नहीं लगेगा।'

दादु को दया आ गई। इस वृद्ध बेचारे को कल देखते-ही-देखते गढ़ से निकाल दिया। कुछ बातें कर ले तो इसमें चला क्या जायगा? उसने एक छिद्र में से बाहर देखा। बाहर और कोई दिखाई न पड़ा अतः उसने अर्गला हटाई और द्वार को थोड़ा-सा खोलकर गर्दन बाहर निकाली।

'गढ़रक्षक!' देशलदेव ने धीमे-से कहा, 'खिड़की खोल।'

'बोलो, क्या है?' अधीर होकर गढ़रक्षक बोला। उसका यह श्वसुर इस समय प्राणघातक शत्रु जैसा लग रहा था। देशलदेव ने देखा कि गढ़रक्षक द्वार को थोड़ा-सा खोलकर अपने हाथ में पकड़कर खड़ा हुआ था। पीछे हमीर खड़ा था। उसकी और देशल की आँखें मिलीं।

पाटण की महत्ता या सोरठ के स्वातंत्र्य की देशलदेव को चिंता न थी। किंतु वह इतना समझ गया कि इसी क्षण पर उसका संपूर्ण जीवन निर्भय करता है। उसका हृदय और अधिक धड़कने लगा। उसके हाथ-पाँव काँप रहे थे। जितनी अधिक देर होती जा रही थी उतने ही जयसिंहदेव अधीर होते जा रहे थे और उसका जीवन संकट में पड़ता जा रहा था।

'गढ़रक्षक! मेरी इकलौती लड़की का तू पति है—मेरा उत्तराधिकारी है।'

'तो?' गढ़रक्षक बोला।

'मैंने एक युक्ति की है।'

'क्या?'

'जूनागढ़ की गद्दी मुझे और मेरे पश्चात् तुझे मिलने की है।'

'क्या?' चमककर दादु ने पूछा, 'देशलदेवजी! आपका चित्तभ्रम तो नहीं हो गया है?'

'नहीं। उस वृक्ष के नीचे पाटण का स्वामी प्रतीक्षा कर रहा है। खिड़की खोल।'

'क्या ? पाटण के स्वामी को जूनागढ़ में—' आँखें फाड़,आश्चर्य-चकित होकर गढ़रक्षक बोला। उसका स्वर तनिक मोटा हो गया। देशल देव को धैर्य न रहा। गढ़रक्षक खिड़की के द्वार के बीच में गर्दन रख-कर बात कर रहा था। उसने हमीर की ओर देखा। दादु के कुछ भी बोलने से पहले उसने एक हाथ दादु के मुख और दूसरा उसकी गर्दन पर रखा और उसका गला दबाया।

'हमीर ! खिड़की दबा।' देशलदेव बोला।

हमीर समझ गया। तुरन्त वह खिड़की दबाने लगा। दादु की गर्दन द्वार में फँस गई थी। देशलदेव ऊपर से उसका सिर दबा रहा था और नीचे से उसका मुँह। उसने छूटने के लिए हाथ-पांव मारे, चिल्लाने का प्रयत्न किया, किन्तु व्यर्थ। उसका सिर चक्कर खाने लगा। उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। देशलदेव ने अंतिम बार दादु की गर्दन दबाई। दादु हाथ-पांव मार रहा था, वह अचेत हो गया। देशलदेव ने अपने हाथ हटा लिए।

'हमीर ! यह जीवित है या नहीं कुछ मालूम नहीं, इसका मुंह बांधकर पटक दे और द्वार खुले रख। मैं सेना लेकर आता हूं, कल सोरठ अपना।'

'है कौन ?' दादु का मुख बांधते-बांधते हमीर बोला।

'स्वयं जयसिंहदेव सोलंकी—'

'सब कुछ निश्चित हो गया ?'

'हाँ !'

'तो शीघ्रता करो।'

देशलदेव,झुककर, बाघ की गति से वापस वृक्ष की ओर गया।

'महाराज ! द्वार खुले हैं, पधारिए !' देशलदेव बोला।

'चलो।' जयसिंहदेव ने कहा।

'नहीं ,' परशुराम बोला, 'मैं पहले जाता हूँ,मेरे पीछे दूसरे आदमी,

और सबके पीछे आप। मैं किसी भी प्रकार की जोखिम नहीं उठाना चाहता।'

'अच्छी बात है। तुम जाओ। मैं पीछे-पीछे आता हूं।'

'आपके साथ परमार रहेगा।' परशुराम ने कहा।

धीरे-धीरे दो-दो चार-चार करके पट्टणी सैनिक खिड़की के द्वारा गढ़ में घुसे। जयसिंहदेव अधीर होकर देखते रहे।

अंत में वे और परमार ही बच रहे।

'महाराज! पधारिए। अंत में सोरठ गिरा ही।' परमार ने कहा।

महाराज ने उत्तर नहीं दिया। वे मन-ही-मन बड़बड़ाए, 'और अंत में राणक भी प्राप्त हुई।'

दोनों ने गढ़ में प्रवेश किया।

: २२ :

विजय-प्रस्थान—द्वितीय

उस दिन खेंगार के हृदय में उत्साह की सीमा न थी।

रा' सरल और विचारशील था, उदार और हसमुख था, दृढ़ और दूरदर्शी था। उसमें राजपूतों का स्वाभाविक शौर्य था और चूड़ासमा का सुविख्यात साहस था और अनेक वीरों की पीढ़ा-दर पीढ़ी चली आती वीरता उसके स्वभाव का मुख्य लक्षण थी। अडिग टेक, उदार स्वभाव उच्च अभिलाषा, राणक के प्रति असीम प्रेम और उसके सहवास के परिणाम से प्रकट हुई उच्च प्रकार की 'भावनाशीलता'—इन सब गुणों ने मिलकर कुछ ऐसा प्रभाव डाला कि रा' खेंगार मनुष्य न रहकर मूर्तिमान भावना के समान अपूर्व जान पड़ने लगा।

उसके जीवन, शब्द, और आचरण से मान, श्रद्धा, और भक्ति प्रकट होती थी। पुरुषों में वह श्रेष्ठ और निराला लगता था। सामान्य पुरुष इसको देखकर प्रसन्न होते और प्रेरित होते थे। वह सबके साथ स्नेह, उदारता और निष्कपटता से व्यवहार करता था। सभी उसके लिए प्राण अर्पण कर देने में अपना जीवन सफल मानते थे।

ऐसे व्यक्तित्व वाले रा' को भी आज भूत चढ़ गया था। आज उसकी आँखों से हास्य फूटा पड़ता था और मुख से स्नेह झरा पड़ता था। देवता के समान तेजस्वी और पार्थ के समान स्वरूपवान वह जहाँ जाता वहाँ उत्साह-भरे शब्द सुनाई पड़ते। उसके काले लंबे केश हवा में लहरा रहे थे। जिधर उसकी दृष्टि-किरण पड़ जाती उधर ही उत्साह फैल जाता। जूनागढ़ का वह माना हुआ देवता था। आज वह प्रेरणा फूँकते हुए चैतन्य के समान लग रहा था। उसकी प्रेरणा से न एक भी पुरुष में कायरता रही, और न एक भी स्त्री में स्वार्थ बचा। उसने प्रचंड रणोत्सव मनाने की तैयारी की। गढ़ अभेद्य था, उसमें अधिक मनुष्यों की आवश्यकता न थी अतः उसने सैनिक प्रत्येक चौकी पर भेज दिए। स्थान-स्थान पर पुरानी चौकियों से आगे बढ़-कर नई चौकियाँ स्थापित करने की योजना बनाई। और स्वयं कुछ मनुष्यों को साथ लेकर एभल नायक की चौकी हस्तगत करने की तैयारी करने लगा। इस उत्साह में वह गत रात्रि की चिंता और चेतावनी भूल गया। संध्या को ऊँचे जूनागढ़ के गुम्बद पर गर्व से घूमते हुए उसका हृदय उछलने लगा। वह चारों ओर उल्लास से इस प्रकार देखने लगा मानो स्वयं गिरनार की जीवित प्रतिमा हो। सदियों से उसके पूर्वजों ने इसी गढ़ में रहकर विजय-घोषणा की थी। आज स्वयं भी वैसी ही घोषणा करके वह संसार को अपनी वीरता देखने का अवसर दे रहा था। उसने रह-रहकर वंथली की ओर देखा। वर्षों से वहाँ की चतुराई, हरामखोरी, क्रूरता और नीचता उसकी दृढ़ता की परीक्षा ले रही थी। राम ने रावण पर जिस पुण्य-

प्रकोप से अस्त्र छोड़े थे वही प्रकोप उसके हृदय में प्रज्वलित था। सूर्यास्त के समय उसने सोरठ की उजाड़ बना दी गई भूमि की ओर देखा। दूर सागर मे तरंगों की चमकती हुई माला देखी। सोमनाथ पाटण का गगनचुम्बी देवालय उसकी आँखों के सामने तैर गया। उसके इस देवता को मूलराज सोलंकी उसके पूर्वज ग्रहरिपु से छीन कर ले गया था। 'महादेव ! शंभू ! क्या लौटकर मेरे पास नहीं आओगे ?' उसने दीनता-भरी वाणी में प्रार्थना की।

विचार करते-करते उसे यादवश्रेष्ठ श्रीकृष्ण का स्मरण हुआ। बचपन से वह अपने आपको भी यादवश्रेष्ठ मानता था। बचपन ही में वह पुरुषोत्तम की कीर्ति को मन्द करने के स्वप्न देखा करता था, स्वयं उसके कुल का होकर आर्यावर्त के अधिष्ठाता बनने का निश्चय वह कई बार प्रकट कर चुका था, और इस गढ़ मे बैठे हुए इक्के-दुक्के युद्ध करते हुए, वर्षों से विपत्तियां झेलते हुए भी वासुदेव मधुसूदन का आदर्श उसके वीर हृदय से दूर न हुआ था। सोमनाथ पाटण याद आते ही उसे देहोत्सर्ग का पुनीत स्थल याद आया। उस ओर देखने पर उसे मानो वासुदेव की मूर्ति दिखाई पड़ी।

विशाल पीपल की शीतल छाया में यादवनाथ घायल पड़े हुए थे। उनके मुख पर दुःख की रेखा न थी; किन्तु दुर्योधन भी जिससे डर गया था वह भव्यता छाई हुई थी। उनके होंठों पर मन्द किन्तु मधुर मुस्कराहट थी, मानो वर्षों पहले अनुरक्त हुई गोपियों का स्मरण हो आया हो। उनके विशाल नेत्रों में वही प्रेम, शौर्य और करुणा झलक रहे थे जिन्हें अजुदे ने देखा था। उसने पुरुषोत्तम को अपने पाँव में लगे तीर की ओर देखते हुए देखा—धीमे-से नेत्रों को घुमाकर अपनी ओर ममता से देखते हुए देखा। वे मुस्कराए—पुत्र की ओर देखकर जैसे पिता मुस्करा दे ! रा' ने उनकी ओर भक्ति-भाव से हाथ बढ़ा दिए।

किन्तु दृश्य अदृष्ट हो गया—खेंगार ने घबरा कर चारों ओर देखा।

उसने एक निःश्वास लिया। देवों के देव गोवर्धनधारी के सौम्य स्वरूप का उसने साक्षात्कार किया यह सोचकर उसके हृदय में हर्ष की सीमा न रही। 'यादवश्रेष्ठ!' वह बड़बड़ाया, 'मैं भी यादव हूं—तुम्हारी अमर कीर्ति का अधिकारी—' उससे अधिक न बोला गया। उसके हृदय में साहस उछला पड़ता था।

इतने में कई सामंत, नायक और 'भाट-चारण' आ गए और जूनागढ़ के रा'ओं का कीर्तिगान प्रारंभ हुआ। उन सबके साथ रा' भी हंसा, विनोद किया। सामंतों ने उसमें साहस भरा और उसने सामंतों में। अन्त में सब भोजन करने के लिए उठे और भोजन करके युद्ध के लिए तैयार होने के लिए चले गए।

भोजन करके रा' रनिवास में गया। राणक उसके वस्त्र और शस्त्र तैयार कर रही थी। कल से राणक देवड़ी ने बोलना कम कर दिया था। सारा दिन तैयारी करने और पूजा करने में व्यतीत कर दिया था।

'काक कहां है?' रा' ने पूछा।

'वजेसंग और कुंअरों के साथ गढ़ देखने गया है। इसे क्यों व्यथ में रखा?'

'मैं आऊं तब तक तुम्हारी रक्षा तो करेगा!' रा' ने हँसकर कहा।

'मुझे हो क्या सकता है!'

रा' देवड़ी की ओर देखने लगा। देवड़ी की निर्मल कांति इस समय अधिक निर्मल और अपार्थिव दिखाई पड़ रही थी। उसका ठिगना शरीर हलके कुसुम-सा लग रहा था। कल देवड़ी द्वारा दिखाया चमत्कार रा' को याद आया। इस नन्हीं-सी स्त्री में कैसे इतना अधिक देवत्व था? उसका हृदय उमड़ आया। उसने देवड़ी के हाथ में से शस्त्र ले लिया और उसके हाथ अपने हाथ में लेकर उसकी ओर देखने लगा।

'क्या देख रहे हैं?'

'तुझे। तुझे देखने से अभी तक मेरा जी नहीं भरा।'

'मेरे रा' इस समय मेरे सामने न देखो, अपनी कीर्ति की ओर देखो।'

'घबरा मत, मैं कायर नहीं बनने का। तुझे देख-देखकर तो मैं अपना साहस बनाए रखता हूँ।' खेंगार हँस दिया। उसके हास्य के उल्लास का चारों ओर प्रसार हो गया। उसने चारों ओर देखा और केसीको न देखकर चुम्बन किया। 'देवड़ी! मुझे साहस दिलाने के लिए तू कुछ कहती ही नहीं?'

राणक के मुख पर मंद और म्लान मुस्कराहट छा गई। 'मेरे रा'! आपके शौर्य के बल पर तो सोरठ टिका है और आपको कौन साहस दिलाएगा?'

'इसको साहस दिलाना नहीं कहते क्या?' छोटे बच्चे के समान हँसते हुए रा' ने कहा और राणक के कन्धे पर हाथ रखते हुए उसे अपनी ओर खींचा। देवड़ी ने अपना सिर रा' के कन्धे पर रख दिया और एक निःश्वास लिया। थोड़ी देर तक कोई न बोला।

'देवड़ी!' रा' के स्वर में आँसू भर आए, 'मुझे कुछ हो जाय तो बच्चों को संभालना।'

'मेरे रा'!' राणक ने साहस से ऊपर देखा, 'यह काम मेरा नहीं। आपके अन्य दो-तीन रानियाँ हैं, यह काम उन्हीं को सौंप दीजिए।'

'किन्तु बच्चे तो तेरे—'

'पहले मेरे रा' —फिर बच्चे। किन्तु इस समय आप विचार क्यों कर रहे हैं? मैं विजय-माला लेकर बैठी हूं। आप शीघ्र वापस लौटेंगे।' राणक बोली।

रा' को पिछली रात की भविष्यवाणी याद आई और उसने एक गहरी साँस ली।

'देवड़ी! मुझे आज अपने पूर्वज श्रीकृष्ण के दर्शन हुए।' देवड़ी ने ऊपर देखा, 'सच! हमारे धन्यभाग्य!'

'मैंने उन्हें देहोत्सर्ग से पहले पड़े हुए देखा; वे नीची दृष्टि किये

घायल पाँव की ओर देख रहे थे। मुझे देखकर उन्होंने ऊपर देखा और आशीर्वाद देने के लिए तनिक मुस्कराए।' छोटे बालक की श्रद्धा से रा' ने कहा।

'मेरे रा'! जब द्वारकाधीश का हाथ आप पर है तो पामर आपका क्या कर सकता है?' राणक ने उत्साह से नीचे झुके रा' के गाल के साथ अपना गाल दबा दिया। एकाएक दोनों ने चमककर ऊपर देखा—मानो इस प्रश्न का उत्तर हो वैसे दूर से डंके की गड़गड़ाहट सुनाई पड़ी।

'मेंदरड़े से सेना चढ़ी लगती है।' आँखें फाड़कर रा' ने कहा, 'तू तैयारी कर। मैं ऊपर जाकर देख आऊँ।' रा' एकदम ऊपर गया। इतने में वजेसंग, काक और रा' के दो पुत्र आ पहुँचे।

'मेरे देव! जेसंग सोलंकी भी आज ही रण चढ़ा लगता है।' वजेसंग ने कहा।

'इसमें रोना क्या काका? काक! गढ़ देखा?'

'हां, महाराज! गढ़ पराजित हो ऐसा तो नहीं है। तनिक भी चिन्ता न करिए।'

'काक! इस गढ़ में मेरी आज्ञा बिना एक पक्षी तक प्रवेश नहीं कर सकता।'

'गढ़रक्षक तो सभी विश्वासपात्र हैं न?'

'सब चार-चार पीढ़ी के हैं।' रा' ने विश्वास दिलाया।

'अब तैयार होइए मेरे स्वामी!' वजेसंग ने कहा।

'काका! तनिक ध्यान से देखने दो। सम्भव है मेंदरड़े के सामने बड़ी चौकी की सहायता को भी जाना पड़े।' खेंगार ने चारों ओर देखते हुए कहा।

'मेंदरड़े की बड़ी चौकी तो सुदृढ़ है। वहाँ सोलंकी की कुछ न चलेगी। यदि कुछ समय तक वह सफल न हो तो मैं एभल नायक की चौकी पर छापा मारकर उस पर अधिकार करके बड़ी चौकी की सहा-

यता के लिए चला जाऊँ। बड़ी चौकी पर तो कई बार हमले हुए और निष्फल हो गए। किन्तु यदि सोलंकी वहां सफल होता हो तो मैं चौकी पर सहायता भेजूं।'

'ठीक है' काक बोला, 'आपका गढ़ इतना दृढ़ है कि प्रतिदिन चौकी पड़े तो भी कोई चिन्ता नहीं।'

'क्यों बेटा!' बड़े पुत्र माना को रा' ने पूछा, 'मेरे चले जाने पर गढ़ की रक्षा करेगा न?'

माना ने पिता के सामने देखा। उसकी विशाल आँखें गर्व से पिता पर टिक गईं, 'पिताजी! जूनागढ़ का रा' कभी डिगा है?'

'धन्य हो!' कह कर रा' उससे लिपट गया और फिर छोटे पुत्र को गोद में लिया। 'जाओ, अब तुम जाकर सो जाओ—निश्चिंत होकर—हम गढ़ को देख आएँ।'

'पिताजी! मैं न आऊँ?'

'नहीं, अभी उसके लिए पर्याप्त समय है।'

बच्चों को विदा कर रा' काक, और वजेसंग गढ़ पर घूमने लगे। मेंदरड़ा को छोड़कर और सब दिशाओं में शान्ति थी। कभी-कभी पत्तों या टोलों के गिरने का शब्द सुनाई पड़ता था। एभल नायक की चौकी को छोड़कर और सभी चौकियों के दीपक निरन्तर प्रदीप्त थे अतः किसी भी दिशा में भय का कोई कारण न दिखाई पड़ा। एभल नायक की चौकी की ओर मध्य में सोरठ का थाना था वहाँ भी दीपक जल रहा था।

इस प्रकार फिरते-फिरते मध्यरात्रि होगई। मेंदरड़ा की पट्टणी सेना चौकी तक आ पहुँची थी और उसमें और सोरठी सेना में युद्ध आरम्भ हो चुका था। युद्ध गम्भीर था, किन्तु पट्टणियों को सफलता नहीं मिल रही था, यह स्पष्ट दिखाई पड़ रहा था।

'अब चिंता नहीं।' रा' ने कहा, 'प्रातःकाल तक इस चौकी को कुछ

न होगा, इतने में तो मैं एभल नायक की चौकी लेकर लौटती ही हूँ। चलो, महल में चलो। सब तैयार होकर खड़े होंगे।'

शीघ्र ही वे महल में आए और रा' ने शस्त्र ग्रहण किए। गिरनार की ओर की खिड़की से रा' बाहर निकलने वाला था। काक और वजेसंग वहां तक विदा करने के लिए तैयार हुए।

'नहीं। काक! तूने बहुत किया और बहुत करेगा।'

'किन्तु मैं तो खिड़की तक ही आ रहा हूं।'

'नहीं। तू वजेसंग के साथ घूमता है तो बंदी-सा लगता है, और मेरे साथ आएगा तो लोग सोचेंगे कि मित्र है और कोई पट्टणी तुझे देख ले तो मेरे बाद वह सोलंकी तेरे प्राण ले लेगा। मालूम है?'

'मैं एक बार पुनः गढ़ देख आऊं?'

'तू अभी सो जा। अभी तुझे कई रातों तक जागना होगा।'

'जो आज्ञा।' कहकर काक ने रा' से स्नेह-भरा आलिंगन किया।

रा' रनिवास में गया। देवड़ी ने स्थिर प्रेम के अनंत संदेश को प्रकट करते हुए नयनों से रा' को विदा दी। दूसरी रानियों ने भी सजल नेत्रों से शीघ्र लौटने को कहा, रा' ने सोए हुए पुत्रों को चूमा, और छोटी बहन के हाथ से कुंकुम का विजयचिह्न करवाकर वह बाहर निकला।

राणकदेवी खिड़की से रा' को जाते देख रही थी। एकाग्र और खिन्नता-भरे नयनों से वह उस तेजस्वी प्रेममूर्ति को देखने लगी। उस रूपवान मुख की हृदय में स्थित रेखाओं को पुनः हरा किया। उन लम्बे केशों की छटापूर्ण लटों पर वह पुनः मुग्ध होगई। दूर जाते उस स्वजन के सुगठित शरीर को गति से मोहक बनी भंगिमा को पुनः हृदय में उतार लिया। पथ मुड़ने पर, रा' के अदृष्ट होने पर, उसने परिचित स्वर की प्रतिध्वनि को हृदय में प्रतिष्ठित करके सम्पूर्ण जीवन के स्नेह-भरे संस्कारों को जगाया। स्वर बद होगया। अंत में प्रतिध्वनि भी

बँद होगई। उसकी आंखों से आंसुओं की धारा बह चली। उसने एक हृदय को चीर देनेवाली सिसकी भरी और वहां से फिरी।

आकर उसने हाथ की चूड़ियाँ निकाल दीं। रनिवास की स्त्रियाँ यह देख कर स्तब्ध हो गईं।

: २३ :

जयसिंहदेव महाराज फिर युद्ध में

गर्व से धड़कते हुए हृदय से जयसिंहदेव ने जूनागढ़ में पाँव रखा। वर्षों से जूनागढ़ उनके जीवन का लक्ष्य था, वह पूरा हुआ।

अंदर केवल तीस-चालीस सैनिक थे। परशुराम और अन्य आदमियों को न देखकर महाराज विस्मित हो गए।

'देशलदेवजी !' उन्होंने धीमे-से कहा।

'यह रहा, महाराज !' देशलदेव बोला।

'परशुराम किधर गए ?'

'महाराज ! उन्हें आपकी प्रतीक्षा करना उचित न जान पड़ा। खेंगार गढ़ छोड़कर जा रहा है यह सुनकर वे उसके पीछे गए हैं। कुछ सैनिक मुख-द्वार पर, कुछ गिरनार की ओर वाली खिड़की पर, और कुछ सैनिक राजमहल की ओर भेज दिये गए हैं। आपके लिए इनको रहने दिया है।'

'वाह ! मेरे परशुराम।' राजा बोले, 'बस खेंगार सूचना पाते ही भागा ?'

'नहीं, महाराज ! अभी तो वह एभल नायक की चौकी लेने जा रहा था।'

'अच्छा ! ले अब चौकी, हो साहस तो !' महाराज ने क्रूरता से कहा, 'सोलंकी आ पहुंचा है। देशलदेव जी ! इधर आओ तो !'

'जी' कहकर देशलदेव महाराज के साथ थोड़ी दूर गया।

'कहो, तुम्हारा दूसरा वचन ?' चमकती हुई आँखों से जयसिंहदेव ने पूछा ।

'मैं अपना वचन रखने को तैयार हूं ।'

'किस प्रकार ?'

'चलिए । राणक महल में है । जो चाहे कीजिए ।'

'किन्तु न करे तो—' राजा को संशय हुआ ।

'महाराज ! लड़की है हठी । किन्तु आप समर्थ हैं और मैंने एक दूसरा मार्ग सोच रखा है ।'

'क्या ?'

'अधिक समय लगे तो उसे यहाँ से उठाकर ले जाइए । फिर ठीक हो जायगी ।'

'हाँ, यह बात ठीक है ।' जयसिंहदेव ने विचार करते-करते कहा, 'किन्तु जाऊं कहाँ ?'

'उसकी मैंने व्यवस्था कर रखी है। हवा से बातें करने वाली सांडनी प्रस्तुत है । जहाँ ठीक समझें जा सकते हैं ।'

'अच्छा। वंथली ठीक न होगा ।'

'महाराज ! सरधार जाइए, वढ़वाण जाइए, जहाँ जाने चाहिए, किंतु जितना दूर बन सके उतना अच्छा ।'

'अच्छी—'

'महाराज—' अर्थ-भरे स्वर में देशलदेव बोला ।

'क्या ?'

'अब जूनागढ़ पराजित होगया । मेरे लिए आज्ञा—'

जयसिंह की भवें तन गईं—'यह भी कोई आज्ञा-पत्र देने का समय है ?' अधीर होकर उन्होंने पूछा ।

'मैंने वंथली में तैयार करवा लिया था । आपके हस्ताक्षर—'

'देशलदेव मेरा वचन वचन है । इस समय उसी पर श्रद्धा रखनी

होगी।' महाराज ने हठीले स्वर में कहा, 'परमार! इस द्वार पर दो आदमी छोड़कर मेरे साथ चल।'

'महाराज! इसे साथ लीजिएगा?' देशलदेव ने पूछा।

'हाँ।' कठोरता से महाराज ने उत्तर दिया। देशलदेव मौन रहा। उसने महाराज को जितना भोला और कच्चा समझा वैसे वे न निकले। 'चलो, मार्ग दिखाओ।'

देशलदेव आगे बढ़ा, किन्तु महाराज वहां से न हटे। वे गहरे विचार में पड़ गए। उसने जूनागढ़ लिया—देशलदेव की युक्ति से, वह राणक को उठा ले जाने वाला था—देशलदेव की सलाह से। उसकी कीर्ति का क्या? वह राणक के पीछे पागल था, उससे मिलने के लिए व्यग्र था, उससे ब्याह कर उसे पटरानी बनाने का उसने निश्चय किया था। किन्तु क्या मुंह लेकर वह राणक के पास जायगा? किस मुँह से वह मुंजाल महेता से अपनी वीरता की बात करेगा? और किस मुंह से अपनी दुर्जयता का दावा सिद्ध करेगा? कल तक वह विजेता था—देशलदेव ने आज उसे चोर बनाया। नहीं, उसके होंठ फड़क उठे। खेंगार का सिर जब तक धड़ पर है तब तक कैसे उसकी स्त्री के निकट जाय?

'देशलदेव!' वे अधीर स्वर में बोले, 'मैं खेंगार के साथ युद्ध करने जाता हूँ।'

'किन्तु महाराज!'

'धीरज रखो। परमार! देशलदेव के साथ जाकर महल को घेर ले। चिड़िया तक न घुसने पावे। मैं अभी आ पहुँचता हूँ।'

'आप अकेले कहां जा रहे हैं?' परमार ने पूछा।

'देशलदेव जी मुझे मार्ग दिखाएँगे। चलो। परमार, तू यहीं खड़ा रह।' कहकर देशलदेव को लेकर महाराज चले। एक लम्बा पट्टणी सैनिक दूर खड़ा यह सब देख रहा था। वह मन-ही-मन हँसा। 'अन्त में जयदेव का मस्तिष्क ठिकाने आया ही।'

जयसिंहदेव शीघ्र ही नगर में गये। गढ़ की अभेद्यता और गढ़ रक्षकों की प्रामाणिकता को ध्यान में रखकर खेंगार ने नगर में बहुत कम सैनिक रखे थे। अधिकतर योद्धा चौकियों पर गये हुए थे। नगर-वासी दिन भर इन योद्धाओं को विदा करने में व्यस्त थे और संध्या को उन्होंने खेंगार के जाने की तैयारी में उत्साह से भाग लिया था, अतः इस समय वे निश्चिंत होकर सो रहे थे। गलियाँ निर्जन थीं। किसी-किसी चबूतरे पर वृद्ध पुरुष सोए पड़े थे।

वे चुपचाप 'गिरनारी' द्वार की ओर गये।

परशुराम लगभग तीन सौ आदमी लेकर इसी द्वार की ओर आया था। ये आदमी चुने हुए थे अतः सावधानी और शांति से आगे बढ़ रहे थे। उन्हें चुपचाप, बिना धाँधल किये मारकाट करने की आज्ञा मिली थी और उसका पालन करने के लिए वे तैयार थे।

उसके निकट ही जहां आजकल अड़ाकड़ी बावड़ी है 'गिरनारी' द्वार था। समीप ही खेंगार के पिता नवघण के नाम से अमर हुआ विशाल कुँआ था। परशुराम के आदमियों के वहाँ पहुँचने तक खेंगार के साथ बाहर जाने वाले योद्धा सब-के-सब गढ़ के बाहर न गये थे। खेंगार गढ़ के बाहर वजेसंग आदि सामंतों के साथ वार्तालाप कर रहा था, कुछ सैनिक द्वार से बाहर निकल रहे थे, कुछ द्वार के सामने खड़े हुए थे। सभी में विजय का उत्साह था। एकाएक एक काले, निकट आते समूह ने देखते-ही-देखते उनको घेर लिया मानो किसी काले मेघ ने गिरनार के तेजस्वी शृंग को घेर लिया हो। खड़े हुए मनुष्य चिल्लाएं उसके पहले ही मार डाले गए। किसीको कुछ भी स्पष्ट न दिखाई पड़ा, कोई कुछ न समझ सका। सोरठी योद्धा इस दैवी कोप के समान सर्वग्राही विनाशकारी शक्ति को देखकर घबरा गए।

एक चिल्लाया 'अर बाप रे!' दूसरे ने पूछा—'कौन है?' किन्तु

ये शब्द आधे ही मुंह से निकले थे कि बोलने वाले मौत के घाट उतार दिये गए।

बाहर खेंगार बड़े उत्साह से बातें कर रहा था। वह धाँधल का अस्पष्ट शब्द सुनकर चमका, 'यह कौन है?' द्वार में खड़ा एक सैनिक दौड़ता हुआ आया, 'महाराज! सोलंकी की सेना ने नगर में मारकाट मचा रखी है।'

'क्या कहता है?'

इतने में 'बापरे' का शब्द और मारते हुए सैनिक की चीत्कार सुनाई पड़ी। खेंगार ने सिर ऊपर उठाया। उसकी आँखों से तेज फूटने लगा। होंठ पीसकर वह लौटा।

'लौट कर देख क्या है।'

एक सामंत आगे आया। 'बापू इस मार्ग से बाहर उतर जाइए। मैं देखकर आता हूं। सोलंकियों ने गढ़ ले लिया लगता है।'

'असंभव! ऐसा कैसे हो सकता है?'

इतने में मारकाट का शब्द सुनाई पड़ा। 'स्वामी।' एक सामंत बोला, 'आप गिरनार पर जाइए। आप जीते रहेंगे तो सब ठीक हो जायगा।'

'चोर के समान सोलंकी आजाए तो क्या मैं भी चोर के समान भाग जाऊं? जहाँ जूनागढ़ वहाँ उसका रा'। सोरठियो! लौट चलो।' उसने आज्ञा दी और द्वार के निकट आया। द्वार से सैनिक घबराकर बाहर निकल रहे थे। खेंगार ने क्रोधित होकर पूछा—पागलो! भागते क्यों हो? तुम्हारे हाथों को क्या हो गया? लौट चलो।' खेंगार का स्वर सुनकर सब रुक गए। उसने तलवार निकाल कर आज्ञा दी '—लौट चले। जय महादेव! अम्बा माता की जय!' कहकर खेंगार द्वार से घुसा।

द्वार में खड़े हुए सोरठी सैनिक लौट पड़े और शस्त्र चलाने लगे।

खेंगार द्वार में से छलांग मारकर आगे कूदा। उसके साथ के योद्धा भी उसी प्रकार आगे बढ़े। आगे बढ़ती हुई पट्टणी सैनिकों की पंक्ति टूट गई—पाँच-सात पट्टणी भूमिसात् हो गए।

खेंगार एक क्षण में स्थिति समझ गया। विश्वासघात से पट्टणी गढ़ में घुस आए थे। निर्जन नगर निराधार था अतः उसकी रक्षा करना अशक्य था। उसकी आशाओं का अंत आगया—उसकी रानी की वाणी सत्य निकली। अपने जीवन को अमर कीर्ति में मढ़ने की भयानक परीक्षा का समय आ गया था। उल्लासोन्मत्त वर जैसे नव-परिणीता से सोत्साह मिलने दौड़ता है वैसे ही वह इस परीक्षा के अवसर से मिलने दौड़ पड़ा। उसके हाथ रक्त के प्यासे हो उठे। उसके हृदय में विजय-घंट का नाद हुआ। उसका स्वर भारी और भयंकर होकर गरज पड़ा। 'वजेसंग! द्वार बन्द करदे। सोरठिओ! टूट पड़ो, राजमहल की ओर बढ़ो। सतीकी जय! अम्बाभवानी की जय!' प्रत्येक घोष के साथ एक पट्टणी गिरा। तलवार के प्रत्येक वार के साथ पट्टणियों की पंक्ति टूट गई।

किसी सोरठी ने द्वार बन्द कर दिया अतः पीछे हटने का मार्ग भी न रहा। उस सँकड़ी जगह में ही सोरठियों ने व्यूह रचा। पट्टणियों की पंक्ति के सामने सोरठियों की एक छोटी-सी पंक्ति भी बन गई। चंद्रमा अस्त होने की तैयारी कर रहा था और अन्धकार फैलता जा रहा था। इस अन्धकार में योद्धाओं की दो पंक्तियाँ एक दूसरे के साथ भयंकर युद्ध कर रही थीं।

रा' का उत्साह दुःसह था। जिधर वह घूमता उधर पंक्ति का रहना असंभव था। उसकी तलवार विद्युत की माला के समान चारों ओर चमक रही थी। उसके पांव अडिग थे। जहाँ खड़ा होता वहाँ से आगे ही बढ़ता, पीछे न लौटता था। थोड़ी ही देर में वहाँ रक्त की धाराएं बह चलीं। जहाँ दोनों पंक्तियाँ टकरातीं वहीं शब्दों का ढेर लग जाता था।

खेंगार के घोष करने के पश्चात् कोई कुछ न बोलता था। तलवार के वार या मरण-वेदना—इन्हीं दो के कारण कभी-कभी शब्द होता था। ऐसा लग रहा था मानो भूतों की सृष्टि में आपस ही में युद्ध छिड़ गया हो।

: २४ :

जयसिंहदेव महाराज युद्ध से लौटे

परशुराम पीछे थे किन्तु सोरठियों की ओर से आक्रमण होते देखकर वे आगे बढ़े। उनके सामने सोरठियों का ऐसा जमाव था कि उनको पार करके आगे बढ़ना कठिन था। फिर भी वे आगे बढ़े। उनके पिता का और बचपन से उनका स्वयं का लक्ष्य जूनागढ़ पर विजय प्राप्त करना ही था। आज इस धन्य क्षण में, रा' को मारकर अपने लक्ष्य को पूरा करने के लिए वे तत्पर हो गए।

किन्तु सोरठियों का प्रत्याक्रमण भारी था; पट्टणी पीछे हटने लगे। अंधकार में दोनों की शक्ति का अनुमान लगाना सम्भव न था। दोनों में से कोई भी पीछे हट रहा है, यह भी न था। एकाएक पट्टणियों को पीछेसे एक घोष सुनाई पड़ा:—'जय सोमनाथ!' और कोई मनुष्यों की उछलती हुई तरंगों में रौंद पड़ा। स्वर स्पष्ट और गर्व-भरा था। पट्टणियों ने स्वर पहचाना और उनकी छाती में साहस उमड़ पड़ा। उन्होंने प्रतिघोष किया—'जयसिंहदेव महाराज की जय!'

खेंगार ने किसी को आता हुआ देखा और घोष सुना। वह समझ गया कि जयसिंहदेव सोलंकी आगया है। उसका उत्साह-भरी हुंकार से रोम-रोममें आग लग गई। वह हुंकारकर गरज पड़ा, 'सोलंकी! कहां है?'

सोरठियों में पुनः उत्साह उमड़ा और दोनों पक्ष श्वास रोककर एक दूसरे पर विनाश की वर्षा करने लगे। जयसिंहदेव के घोष के पश्चात् उत्तेजना और अधिक फैल गई। दोनों ओर के योद्धा गर्जना करने लगे। मरे और घायल व्यक्तियों की चीत्कारें भी सुनाई पड़ने लगीं। तुमुल युद्ध की मार-काट में सोरठी राजमहल की ओर आगे बढ़ रहे थे।

अंधकार युद्ध में बाधा पहुंचाने लगा। किस पक्ष का योद्धा किसके साथ लड़ रहा है इसका किसी को भान न रहा। योद्धा राजमहल की ओर बढ़ रहा है या बावड़ी की ओर मात्र इसीसे उसका पक्ष पहचाना जा सकता था। अंधकार होते हुए भी जयसिंहदेव पट्टणी सैनिकों के आगे आ गए। उसके प्रत्येक वार के साथ एक योद्धा मृत्यु की शरण चला जाता था। परशुराम उनके समीप ही उन्हें सहायता देने और आवश्यकता पड़ने पर उनकी रक्षा करने के लिए जूझ पड़े। खेंगार और जयदेव एक दूसरे को वैर-यज्ञ में होमने के लिए ढूंढ रहे थे। किन्तु एक तो संकड़ा स्थान और दूसरा अंधकार। ऐसी परिस्थिति में किसीको खोजना सभव न था। युद्ध कुछ ढीला पड़ा। खेंगार का स्वर पुनः सुनाई पड़ा, 'सोरठिओ! राजमहल की ओर बढ़ो!' जयसिंहदेव यह स्वर सुनकर उस ओर बढ़े। चन्द्रमा अस्त हो गया और चारों ओर अंधकार फैल गया। परशुराम को आज का साहस मूर्खतापूर्ण लगा। इस युद्ध का क्या परिणाम होगा? एकाएक सोरठी पीछे हटे, पट्टणी जयघोष करके आगे बढ़े। किस पक्ष में कितने योद्धा बच गए हैं। इसका किसीको भान न था। सबके हृदय में यही प्रश्न रम रहा था कि शेष रात्रि के व्यतीत हो जाने तक कौन विजयी होगा। जैसे-जैसे समय व्यतीत होता जाता था परशुराम की चिंता बढ़ती जाती थी। वे जयसिंहदेव को वापस लौट जाने के लिए कहना चाहते थे किन्तु रण चढ़ा सोलंकी किसीकी सुनने वाला न था।

एकाएक बावड़ीकी ओर विजय करते आगे बढ़ते हुए पट्टणियों पर राज-

महल की ओर से आक्रमण हुआ। 'सोरठिओ ! पट्टणियों को काट डालो।'

आक्रमण करने वाले का स्वर सुनाई पड़ा।

जयसिंहदेव और परशुराम दोनों इस आक्रमण का अर्थ समझे। खेंगार किसी परिचित पथ से घूमकर पीछे से आक्रमण करने आ पहुंचा था। उसके साथ कितने सैनिक थे यह नहीं जाना जा सकता था। पट्टणी सेना 'सरौते' के बीच में आ गई थी। जयसिंहदेव और परशुराम तड़ित्-वेग से प्रहार करने लगे। 'जय सोमनाथ !' का नाद चारों ओर फैल गया। सामने सोरठी 'रा' खेंगार की जय !' का प्रतिघोष कर रहे थे।

परस्पर ही में दो पक्षों में युद्ध के स्थान पर एक पक्ष के योद्धाओं में मार-काट हो रही थी। चारों ओर घोर नाद हो रहा था। दिशा और काल का किसीको भान न रहा। प्रातःकाल तक कौन जीवित रहेगा यह कोई न जानता था। जयसिंहदेव समझ गया था कि वह पूर्णरूप से फंस गया है और दोनों ओर शत्रु-सेना से बच निकलने का कोई मार्ग नहीं रह गया है। निराशा ने उसमें बल का संचार किया। 'जय सोमनाथ !' की गर्जना कर उसने विनाश चालु रखा।

धीमे-धीमे, अनजान में युद्ध-स्थल राजमहल के निकट होता जाता था।

जिस लम्बे पट्टणी सैनिक ने जयसिंहदेव की गति-विधि पर मत प्रकट किया था उसकी स्वयं की गति-विधि विचित्र थी। जैसे ही युद्ध का शब्द उसके कानों में पड़ा वैसे ही वह एक अनुभवी और शीघ्रगामी युद्ध के अश्व की चंचलता से खड़ा हो गया और जिधर से शब्द आ रहा था उधर चला। जहाँ मार-काट चल रही थी उससे दूर एक चबूतरे पर खड़ा होकर वह देखने लगा। खेंगार के सैनिक एक गली में से आकर पट्टणी सेना पर पीछे से टूट पड़े, यह उसने देखा वह पट्टणी सेना की कठिनाई तुरन्त समझ गया और शीघ्रता से राज

महल की ओर गया । वहाँ जगदेव पच्चीस-तीस सैनिकों के साथ पहरा दे रहा था।

'परमार !' उस सैनिक ने सत्ता-भरे स्वर में कहा—'महाराज को सोरठियों ने जहाँ दबा रखा है, वहाँ चलो ।'

मुँह पर वस्त्र बांधे वह सैनिक उसे इस प्रकार सम्बोधित करे यह जगदेव को अच्छा न लगा। उस पर, उसे वहीं रहने की आज्ञा थी, अतः सत्ता का यह स्वांग भी उसे न रुचा।

'तू कौन है ?' उद्धत स्वर में जगदेव बोला।

'मैं युद्ध-स्थल से आ रहा हूँ।'

'किसने कहा कि मुझे वहाँ जाना है ?'

'किसीने नहीं, मैंने।'

'तेरी निर्लज्जता तो कम नहीं। तू अपना काम कर।'

वह सैनिक तनिक सीधा हो गया, उसके स्वर में तलवार की धार के सदृश तीक्ष्णता थी।

'जगदेव ! तुझे न आज्ञा का पालन करना आता है और न उसे भंग करना ही।' उस सैनिक ने सत्ता-भरे स्वर में कहा। जगदेव को स्वर परिचित-सा लगा। वह किसका हो सकता है इस पर विचार करे उसके पहले ही उस सैनिक ने निकट खड़े हुए एक सैनिक की ओर घूमकर आज्ञा दी, 'मूला नायक ! मेरे साथ सैनिकों को ले चल।'

'कौन, महेताजी !' कुछ घबराए-से स्वर में परमार बोला। सैनिक-गण सम्मान से उन्हें घेरकर खड़े हो गए।

'हाँ। पहचानने में अभी तुझे देर लगती है। तुझे यहाँ खड़ा रहना हो तो खड़ा रह। वीरो, चलो मेरे साथ। खेंगार ने वहाँ महाराज को फंसा दिया है।'

'महाराज ! मैं देशलदेव को कह आऊं।'

'हाँ, जा। कहकर शीघ्र आ'। कहकर मुंजाल महेता सैनिकों को लेकर चले। थोड़ी देर में दौड़ते हुए वे युद्ध-स्थल पर आ पहुंचे।

'परम भट्टारक जयसिंहदेव महाराज की जय ! जय सोमनाथ !' मुंजाल महेता ने गगनभेदी गर्जना की। युद्ध की मार-काट में भी वह गर्जना चारों ओर सुनाई दे गई। जयसिंहदेव, परशुराम और अन्य कई सैनिकों ने इस प्रचंड स्वर को पहचाना और उत्तर में—'जय सोमनाथ ! मुंजाल महेता की जय !' कहा।

मुंजाल महेता के नाम से पट्टणी सैनिकों में नया शौर्य प्रकट हुआ। मुंजाल महेता और उनके सैनिकों का—नितान्त स्वस्थ होने के कारण आक्रमण इतना भारी हुआ कि कुछ समय तक सैनिकोंकी पंक्तियाँ इधर-से-उधर धक्के ही खाती रहीं। अब तो प्रतिपक्ष की पंक्ति या दिशा जैसी कोई वस्तु रह ही न गई थी। 'जय सोमनाथ !' और 'रा' खेंगार की जय !' से ही शत्रु पहचाने जा सकते थे। मुंजाल के अद्भुत बल और उसके धावे के असीम वेग का तुरन्त प्रभाव पड़ा। निराश होते पट्टणियों में विजय की श्रद्धा प्रकट हुई; परशुराम को लगा कि वे अपने संकट से मुक्त हुए, और जयसिंहदेव के हाथों में दुगुनी शक्ति आ गई।

किन्तु सोरठी यों ही हार मानने वाले न थे। रह-रहकर 'खेंगार की जय !' का घोष कर उठते थे, और वे धीरे-धीरे युद्ध-स्थल को राजमहल की ओर ले जा रहे थे। नगर के बचे इक्के-दुक्के कुछ लोग भी आ पहुँचे थे। खेंगार उन सबके मध्य में घूम रहा था। थोड़े-थोड़े समय पश्चात् वह विभिन्न दिशाओं में जाता था, और अपनी गर्जना से सोरठियों को प्रेरित करता हुआ पट्टणियों को छका रहा था। वह किधर था इसका ज्ञान केवल सोरठियों की जयघोष की तीव्रता से हो जाता था। किन्तु उधर कोई पट्टणी महारथी जाय उसके पहले ही वह दूसरे स्थान पर चला जाता था।

खेंगार राजमहल तक पहुंचना चाहता था। वहाँ अपने पूर्वजों के जयस्तंत्र के सामने वह अपना कीर्तिस्तम्भ खड़ा करना चाहता था। वह यह भी आशा कर रहा था कि सोरठियों के उत्साह के कारण पट्टणी सेना पराजित हो जायगी अथवा किसी चौकी से लौटती हुई सोरठी

सेना की टुकड़ी सहायता के लिए आ पहुँचेगी। प्रातःकाल से पहले किसकी विजय हुई यह निश्चित नहीं किया जा सकता था। वह जीते-जी क्या विजयी नहीं हो सकता ?

धीरे-धीरे वह जीवित रहने की आशा छोड़कर प्रचंड होगया। जीतने की उसे आशा न रही। वह विनाश की साक्षात् मूर्ति बन गया। उसकी आंखों से चिनगारियां निकलने लगीं। उसके गले से गर्जना निकल रही थी। उसकी तलवार सुदर्शन चक्र के समान चारों ओर घूम रही थी और उसके दूसरे हाथ में की ढाल उसे अमरत्व प्रदान कर रही थी। न उसे थकान लग रही थी और न उसे यही जान पड़ रहा था कि उसे कोई परिश्रम करना पड़ रहा है। तुमुल नाद और शस्त्रों की टक-राहट उसमें भय संचार न कर सके। काल भैरव के समान विशाल बन-कर वह तो विनाश-क्रीड़ा कर रहा था।

जयसिंहदेव भी बड़े उत्साह से युद्ध कर रहे थे, किन्तु वे उकताने लगे थे। इस अंधकार में खेंगार को खोजकर मारना असंभव है तो इस युद्ध के अधिक चलने से लाभ ? इतने में एक दिशा से भारी आक्र-मण हुआ। कई लोग इधर-उधर हट गए। जयसिंहदेव इस आक्रमण के धक्के से एक ओर जा गिरे। पीछे राजमहल था यह उन्होंने देखा और राणक का स्मरण हुआ, रा' खेंगार इस अंधकार में मिलने का न था, अतः उनका मन युद्ध छोड़कर चले जाने का हुआ। किन्तु संभव है उस-की अनुपस्थिति से पट्टणी पराजित हो जायँ तो ?—

एकाएक दूर से दो-चार मशालों का प्रकाश दिखाई पड़ा। दौड़ते हुए कुछ सैनिक आए। पल-भर के लिए सभी युद्ध छोड़कर किस पक्ष के सैनिक आए हैं यह देखने लगे। जयसिंहदेव बिलकुल निकट थे। उन्होंने बढ़े चले आते सैनिकों के नेता को पहचाना। त्रिभुवनपाल और लीला-देवी दौड़ते हुए अपने सैनिकों को लेकर द्वार से सहायता को आगए थे। उन्होंने जयघोष किया—'जय सोमनाथ ! जयसिंहदेव महा-राज की जय !' पट्टणी सैनिकों ने उसे दुहराया।

सोरठियों के हाथों के तोते उड़ गए। उनका विनाश निश्चित हो गया।

जयसिंहदेव ने अब वहाँ रहने में कोई लाभ न देखा। नवागन्तुकों के आक्रमण का लाभ उठाकर वे वहाँ से सबकी दृष्टि बचाकर चले गए।

अन्त में उसने खेंगार को झुकाया और जूनागढ़ लिया—इस विचार से उनके हृदय में हर्ष समाया न पड़ता था।

: २५ :

'खम्मा मेरे रा' को'

जयसिंहदेव महाराज युद्ध-स्थल से कुछ दूर गये। कुछ घाव लगे थे उन पर उन्होंने पट्टी बाँध ली और फिर सियार के समान शब्द किया। तुरंत कहीं छिपा हुआ बाबरा भूत आगया। उसे लेकर नंगी तलवार ही हाथ में लिये महाराज राजमहल की ओर गये। राजमहल अभी अँधकार ही से आवेष्ठित था। उसमें रहनेवाली स्त्रियों ने घबराहट के मारे दीपक भी न जलाए थे। कुछ वृद्ध अनुचर महल की रक्षा करने के हेतु शस्त्र लेकर द्वार के पीछे बैठे हुए थे। जैसे ही महाराज महल में आए कि एक खंभे के पीछे छिपा हुआ देशलदेव निकलकर आया। उसके मुख का रंग उड़ गया था। उसे लग रहा था कि उसका जीवन बावड़ी के सामने चलते हुए युद्ध पर निर्भर करता है।

'महाराज क्या हुआ?' चिंतातुर स्वर में उसने पूछा।

'हुआ क्या? खेंगार को मार डाला।' जयसिंहदेव ने गर्व से विश्वास दिलाया।

'चलो शांति मिली।' देशलदव ने निःश्वास लिया, 'अब किसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं ?'

'किसी की नहीं। अब रनिवास में चलो।'

'किन्तु महाराज ! वहां कुछ अनुचर अवश्य होंगे।'

'क्यों, घबरा गए ?' हँसकर महाराज ने कहा, 'जयसिंहदेव को पराजित करना सरल नहीं है।'

'मैं क्या नहीं जानता महाराज !' देशलदेव बोला। वह आगे हो गया। उसके पीछे महाराज और उनके पीछे बाबरा महल में घुसे।

'देशलदेव जी तुम्हारी सांडनी तैयार है न ?'

'जी हाँ। पीछे की ओर हमीर तैयार खड़ा '

'अच्छा।' वे अंदर घुसे।

'कौन है ?' अनुचर ने पूछा।

'जयसिंहदेव सोलंकी !' और देखते-ही-देखते उसे घायल कर दिया। अंदर के कमरे में तीन-चार लोग शस्त्र लेकर तैयार खड़े हुए थे।

'महाराज ! इन सबसे निपटना पड़ेगा।'

'चिन्ता नहीं। मैं जानता हूं तुम निकम्मे हो।' महाराज ने कटाक्ष किया और पीछे घूमकर बाबरा से कहा, 'मार्ग कर।'

बाबरा ने कमरे के एक कोने से दूसरे कोने तक छलाँग मारी और दो आदमियों को पकड़ा। एक घबराकर भाग गया। चौथा शस्त्र लेकर आगे बढ़ा किन्तु महाराज की तलवार के एक ही प्रहार से वह जाने कहाँ जाकर गिरा। महाराज अंदर के कमरे में गये।

देशलदेव और महाराज एक निर्जन कमरे को पार करके एक छोटी कोठरी में गये।

'महाराज, देवड़ी यहीं होगी।' देशलदेव बोला। उस कोठरी में दीवाल पर लटकी पीतल के दीवट में तेल का दीपक जल रहा था। उस दीपक के निकट भूमि पर एक स्त्री बैठी हुई थी। उसके सामने एक आले में अम्बाजी की मूर्ति थी और उसके दोनों ओर घी के दो दीपक

जल रहे थे। वह सिर नीचा किए माला जप रही थी। दूसरी दीवाल के निकट एक पलंग पर दो लड़के एक दूसरे से लिपटकर सो रहे थे। कुछ स्त्रियां वहां से भाग जाती-सी लगीं।

द्वार के अंदर आकर जयसिंहदेव रुक गए। उनके हृदय की धड़कन बढ़ गई। उस क्षण उन्हें लगा कि इस स्त्री-रत्न के बिना उनका जीवन सदा ही अपूर्ण रहा है। उन्हें उसके पाँव पर गिरने, उसे बाहुओं में भरकर हृदय से लगा लेने का जी हुआ। यदि पंद्रह वर्ष पहले उस से ब्याह किया होता तो जाने क्या-क्या कर डालता? दो पग आगे बढ़ कर देशलदेव ने गला खखारा।

'देवी!' वह बोला।

कोठरी में शांति थी। उस स्त्री ने ऊपर देखते हुए म्लान मुख से किन्तु निर्भयता से पूछा, 'कौन, देशलदेव?'

'हाँ देवी—देवी—' देशलदेव की जिह्वा बड़ी कठिनाई से कुछ कह पा रही थी, 'जयसिंहदेव.....'

'सोलंकी को लाया है?' कटु स्वर में राणकदेवी ने कहा, 'वाह 'भाणु'!' मामा जीवित हैं या—'

'देवड़ी!' जयसिंहदेव ने आकर कहा, 'मैं हूं—जयदेव, कितने वर्षों बाद हम मिले हैं!' महाराज की वाणी क्षोभ से काँप रही थी।

'न मिले होते तो तुम और मैं दोनों सुखी होते।'

'देवड़ी! पन्द्रह वर्षों बाद तू मिली। आज मेरा जीवन सार्थक हो गया।' कुछ उतावलेपन से महाराज बोले।

'सोलंकी! मैं तो रा' की रानी हूँ। तुम क्या बोल रहे हो इसका तुम्हें भान नहीं है।' देवड़ी की वाणी में गर्व और खिन्नता दोनों थे।

'नहीं। तू रा' की रानी नहीं वरन् आज से सोलंकी की पटरानी है।'

'नहीं-नहीं-नहीं—' देवड़ी इस प्रकार बोली मानो उसे वेदना हो रही हो, 'सोलंकी! मैं तो रा' की ब्याहता हूं।'

'नहीं।' जयसिंहदेव ने कहा, 'रा' कभी का यम के घर गया।'

'नहीं, नहीं गए।' विश्वासपूर्वक रानी ने कहा।

जयसिंहदेव चमके, 'तूने कैसे जाना?'

'मैंने? मुझे मालूम है। मेरा रा'—मेरा प्राण अभी इस सँसार को छोड़कर नहीं गया है। सोलंकी, तुम जाओ। इस जन्म में मेरा अन्य व्यक्ति से कोई सम्बन्ध नहीं।'

जयसिंहदेव के होंठ हठ में वक्र हो गए। इस स्त्री के बात करने के ढंग से उसका मोह और बढ़ गया। उसकी दृष्टि फीके किन्तु सुन्दर बोलते हुए होंठों पर टिकी हुई थी।

'देवड़ी! इसी जन्म में तुझे अपना बनाना है। तेरे कारण जूनागढ़ पर घेरा डाला, तेरे कारण खेंगार को मारा और अब तू ऐसा कहे तो चल सकता है? राणक! तुझे तो पाटण की पटरानी बनना ही शोभा देता है।'

'मुझे तुम्हारे पाटण से क्या काम? मेरे सोरठ का मेरे लिए ही तो निर्माण हुआ है।'

'नहीं, तेरे लिए उसका निर्माण नहीं हुआ। उठ!' जयसिंहदेव चिल्लाकर बोले। 'अभी बात करने का समय नहीं है। बाहर सांडनी तैयार है। पन्द्रह वर्ष के वैर का बदला आज निकलेगा। खेंगार पन्द्रह वर्ष पहले तुझे ले गया था, आज मैं वापस ले जाता हूं।'

'सोलंकी! सोलंकी! मुझे ले जाने से कोई लाभ नहीं।' खिन्नता से राणक बोली, 'मैं प्रज्वलित अंगार हूं। छूते ही जल मरोगे।'

'तेरे लिए मैं जल मरने के लिए भी तत्पर हूँ। चल उठ!' कहकर जयसिंहदेव निकट आए।

राणक कुछ खिसक कर खड़ी हो गई, 'हँ-हँ-मुझे छूना मत।' दीनता से वह बोली।

'क्यों, क्या बात है?'

'मुझे—सोरठ के स्वामी की स्त्री को—उसके जीवित रहते कैसे छुआ जा सकता है ?'

'चल मेरे साथ !' महाराज ने अधीर होकर आज्ञा दी।

'रा' और उसके पुत्रों के रहते कौन मुझे इस महल में से ले जाने का साहस कर सकता है ?' कठोरता से राणक ने पूछा।

'कौन ! मैं—जयसिंहदेव—सोरठ का, तेरे रा' का और तेरा स्वामी। चल !' जयसिंहदेव ने मोटे स्वर में कहा।

महाराज का स्वर सुनकर सोए हुए कुंअर जाग पड़े और बिस्तर में बैठकर आंखें मलने लगे।

'मां-मां !' माना ने बिस्तर में खड़े होकर पूछा, 'क्या है ? यह कौन है ?'

जयसिंहदेव उन लड़कों की ओर कठोरता से देखने लगे।

'यह तेरे देश और तेरे पिता का काल—सोलंकी।'

'जयसिंहदेव सोलंकी !' माना चिल्लाया, 'माँ-माँ यह कहाँ से आया ? पिताजी कहाँ हैं ?'

'पूछ सोलंकी को' आँचल से आँसू पोंछते हुए राणक ने कहा, 'बेटा हमारा पुण्य सिधार चला।'

'क्यों, पिताजी मारे गए ?' लड़के ने बिस्तर के नीचे से एक छोटी तलवार निकालते हुए पूछा।

'हाँ, छोकरे !' महाराज ने उत्तर दिया, 'तेरा बाप मारा गया, तेरी माँ मुझसे ब्याह करेगी और तेरा बाप नहीं, जयसिंहदेव तुझे जूनागढ़ की गद्दी पर बिठाएगा।'

'अरर !' राणकदेवी ने कानों पर हाथ रख लिए, 'बोलते हुए तुम्हारी जीभ नहीं जल जाती ?'

'पिता जी ! पिता जी। मेरी सती माता को—'कहकर माना तलवार निकाल कर जयसिंहदेव की ओर दौड़ा। महाराज ने अपनी तलवार से उसकी तलवार इस प्रकार दूर फेंक दी मानो खेल कर रहे हों।

'बाप के समान ही पुत्र भी विषैला है ।' जयसिंहदेव ने कहा, 'राणक ! विलम्ब हो रहा है । चल, चाहे तो लड़कों को साथ में ले ले ।'

'पापी ! अपने बच्चों को लेकर मैं दूसरा घर करने जाऊंगी ?' देवड़ी की आंखों में क्रोध प्रकट हुआ ।

'तो लड़कों के बिना ही चल ।' जयसिंहदेव आधा क्रोध और आधा लिप्सा से कांप रहा था । उसे यह भी भय था कि यदि अधिक देर हो जायगी तो मुंजाल महेता और लीलादेवी आ पहुंचेंगे ।

'देवी, उठो ।' देशलदेव बीच में बोल पड़ा ।

'भाणु !' तिरस्कार से रानी ने कहा, 'मेरे दोषों से तो तू अपवित्र हो गया था न ? अपना मुंह काला क्यों नहीं करता ? सोलंकी ! दुखिया को और दुःखी क्यों करते हो ? तुम भी जाओ ।'

'मैं तुझे लिये बिना नहीं जाने का । राणक ! राणक ! तू तो मेरा जीवन है । तुझे जो चाहिए मांग ले, जो चाहे कर किन्तु तेरे बिना मैं यहाँ से जाने का नहीं ।'

'मेरी माँ को ले जाता है, क्यों ?' माना चिल्लाया ।

इतने में छोटा कुँअर, जो दूर खड़ा देख रहा था, पीछे से आया और माना की पड़ी हुई तलवार को उठाकर जयसिंहदेव के पाँव पर प्रहार कर दिया । जयसिंहदेव वेदना से चीत्कार कर उठे और वेदना के आवेश में अपनी नंगी तलवार कुँअर के शरीर में घुसेड़ दी । उन्होंने होंठ दबाकर कष्ट शमन करने का प्रयत्न किया । राणक ने आंखों पर हाथ रख लिए । माना रोने लगा । एक हृदय-भेदी चीत्कार करके कुँअर धरती पर गिर पड़ा । उसके प्राण निकल गए ।

जयसिंहदेव को अपने अविचारी साहस पर पश्चात्ताप हुआ । पुत्र का रक्त बह रहा हो उस समय क्या राणक मानने वाली थी ? किन्तु पश्चात्ताप करने या भूल हो जाने पर क्षमा मांगने का उनका स्वभाव

न था । वे उलटे और हटी हो गए । उन्होंने नीचे झुककर घाव पर पट्टी बाँधी और क्रूरता से राणक की ओर घूमे ।

'यह तेरे लड़के—'

'माँ-माँ—' रोते-रोते माना बोला ।

'बेटा !' राणक ने शांति से कहा, मरते समय माँ को याद न कर । कुल की कीर्ति कलंकित होती है ।'

इस शांति से जयसिंहदेव भड़क उठे । 'उनका उग्र स्वभाव वशमें न रह सका । वे आवेश में आगे बढ़े, 'मैं थक गया हूँ । चल, नहीं तो उठा ले जाऊँगा,' कहकर वे आगे बढ़े ।

'दुष्ट !' कहकर माना महाराज के आगे बढ़ने से पहले ही कूदकर उनकी गर्दन से ऐसे लिपट गया मानो वृक्ष पर चढ़ रहा हो । लड़का शक्तिवान् था अतः दृढ़ता से चिपका रहा । जयसिंहदेव के हाथों में घाव थे, पाँवोंपर भी गम्भीर घाव लगे थे अतः सशक्त होते हुए भी उससे लिपटकर उसे काटने का प्रयत्न करते हुए लड़के का कुछ न कर सके । उनकी पगड़ी गिर पड़ी । उन्होंने तलवार फेंक दी और दोनों हाथों से माना के काटने के लिए आगे बढ़ते हुए मुख को ज्यों-त्यों करके रोक रखा ।

'राणक ! अपने लड़के को उधर बुला ले ।' महाराज क्रोधित होकर बोले, किन्तु राणक कुछ न बोली । देशलदेव निकट आकर कांपते हुए हाथों से लड़के को छुड़ाने का निष्फल प्रयत्न करने लगा । जयसिंहदेव ने लड़के को हटाने का भारी प्रयत्न किया किन्तु सफलता प्राप्त करने के लिए उन्हें प्रयत्न करके उलटा घूमना पड़ा । इस प्रयत्न में उनकी कलाई एकदम माना के मुंह के निकट आ गई और उसने बहुत ज़ोर से दांत घुसा दिए । उसी स्थान के निकट ही जयसिंहदेव को घाव लगा था अतः उसकी वेदना की सीमा न रही ।

'आं !—' वे चीत्कार कर उठे और माना को दूर करने के लिए अपने भारी शरीरको ऐसे जोर का झटका दिया कि माना झटकेके जोर से

एकदम छूटकर समीप की दीवाल से जाकर टकराया। माना का सिर दीवार से टकराया—एक भयंकर शब्द हुआ। उसका सिर फूट गया और वह अचेत होकर धरती पर गिर पड़ा।

महाराज ने पगड़ी और तलवार उठाकर आराम की सांस ली।

'राणक! चलती है या नहीं?' अपने हाथों किये विनाश की ओर क्रूरता से देखते हुए वे बोले।

देवड़ी का मुख कठोर हो गया। वह खड़ी हो गई और बोली, 'मैंने कह तो दिया। मेरे बच्चे मर गए—किन्तु मेरे स्वामी अभी तक जीवित हैं।'

जयसिंहदेव के होंठ वक्र हो गए। इस हठी स्त्री को पराजित करने का एक विवेकहीन विचार उठा।

'चलती है या नहीं?' कहते हुए वे हाथ लम्बे करके उसे पकड़ने आगे बढ़े।

'ठहरो।' देवड़ी ने क्रोध में हाथ लम्बा किया। वह सीधी खड़ी हो गई। उसके मुख पर तेज छा गया। उसकी आँखें एकदम चमक उठीं। यह परिवर्तन देखकर जयसिंहदेव पीछे हटकर खड़े हो गए। राणक ने चारों ओर इस प्रकार देखा मानो उसका श्वास रुद्ध हो रहा हो। वह भयंकर चीत्कार कर उठी।

'मेरे रा'—मेरे नाथ—मेरे स्वामी।' आंखें फाड़कर वह बोलने लगी, 'धणीखम्मा! खम्मा—खम्मा!' उसने गले पर हाथ रखा, 'जय अम्बे! जय अम्बे! खम्मा मेरे रा'को—'उसकी वाणी भंग होगई। 'ओ मेरे रा'—रे' वह हृदय-भेदी चीत्कार कर उठी और सिसक-सिसककर रोती हुई धरती पर गिर पड़ी।

: २६ :

राणक रा' का महल छोड़ती है

जयदेव की आंखों के सामने अंधेरा छा गया। उन्हें लगा मानो खेंगार उसी क्षण मर गया हो। वह कहाँ था उसे समझ न पड़ा, वह कहाँ क्या कर रहा था इसका भी उसे स्मरण न रहा। वातावरण अपार्थिव तेज से प्रदीप्त हो गया। उसके और राणक के मध्य में तेजपुंज-सा एक पुरुष आकर खड़ा हो गया। उसे उन्होंने पहचान लिया। उसका मुख खेंगार-सा था। उसके हाथ में खड्ग थी। उसकी आँखों में विजय थी। उसके मुख पर हास्य—तिरस्कारका हास्य—था। उनके और इस तेजस्वी मूर्ति के बीच में असीम अन्तर होता जा रहा था.....

जयसिंहदेव दो-चार डग पीछे हट गए और अपने कपाल पर हाथ फेरने लगे।

तेज अन्तर्धान हो गया। अन्धकार फैल गया। एक छोटे तेल के दीपक के मन्द प्रकाश में दो मरे हुए कुंअर, अचेत देवड़ी और एक कोने में मुंह में हाथ रखकर कांपता हुआ देशलदेव उन्हें दिखाई पड़े। पीछे प्रकाशहीन द्वार में बाबरा बैठा हुआ था। उन्हें पुनः सब बातों का ध्यान आया।

'बाबरा! बाबरा! उठा इस देवड़ी को।' दबे हुए स्वर में वे बोले और देशलदेव के समीप जाकर ठोकर मारते हुए कहा—'उठो।'

बाबरा ने कूदकर राणक को उठा लिया और देशलदेव उठ कर चलने को तत्पर हुआ। भय, क्रोध और काम के विभिन्न भावों से संतप्त जयसिंहदेव बिना पीछे देखे हुए चले गए।

'देशलदेवजी! सांडनी कहाँ है?' जयसिंहदेव ने पूछा।

'महाराज—महाराज—इस ओर—' कहकर देशलदेव एक द्वार से बाहर निकला।

बाहर साँडनी लेकर हमीर खड़ा हुआ था।

'बाबरा, चढ़ जा।' महाराज ने आज्ञा दी। बाबरा राणक को लेकर तुरन्त साँडनी पर चढ़ गया। महाराज उसके पीछे बैठने जा ही रहे थे कि देशलदेव ने उन्हें रोका।

'महाराज !'

'क्या है ?'

'महाराज, मैं भी आऊं ?'

'कहाँ ?'

'वढ़वाण।'

'वहाँ तुम्हारा काम नहीं।' धिक्कारते हुए जयसिंहदेव बोले।

'किन्तु महाराज—'

'क्या है ?'

'वह आज्ञापत्र—'

'कैसा ?' तनिक भूल जाने से जयसिंहदेव ने पूछा।

'मुझे जूनागढ़ देने का—'

जयसिंहदेव आपे से बाहर हो गए, 'कुत्ते ! मामा को मारा, मामी को बेचा और अब जूनागढ़ लेकर मुझे नष्ट करना है ? दुष्ट—'

'महाराज ! आपने वचन दिया था।'

'पिशाच !' जयसिंहदेव ने दहाड़ मारी, 'तुझे और वचन ? आज रात्रि के सब कर्मों का पाप तेरे सिर पर है।'

'मेरे कारण तो—' हाथ जोड़ते हुए देशलदेव बोला।

'हाँ, तेरे ही कारण आज मुझे यह सब करना पड़ा। पापी ! तुझे अब धरती का भार बनकर न रहना चाहिए। ये ले अपना पुरस्कार—' कहकर महाराज दाँत कटकटाकर एक ही प्रहार में उसका सिर उड़ाकर सांड़नी पर जा बैठे। 'हमीर ! बड़े द्वार की ओर हांक।' सांड़नी के चलने पर महाराज पीछे घूम कर देशलदेव की ओर देखकर बड़बड़ाए, आज 'सबसे अच्छा काम तो मैंने यही किया।'

हमीर ने भी देखा कि इस समय आज्ञाउल्लंघन करने में ही भलाई है अतः उसने सांढ़नी हांक दी। दूर से युद्ध का शब्द सुनाई पड़ रहा था। शेष जूनागढ़ श्मशान के समान शांत था। सूनी गली में सांढ़नी के पैरों की छप्-छप्-भर सुनाई पड़ रही थी। जिस समय वे मुख-द्वार पर पहुँचे उस समय वहाँ पट्टणी सैनिक पहरा दे रहे थे। उनका नायक तुरन्त बोल उठा, 'कौन है ?'

'नायक कौन है ?' महाराज ने पूछा।

'क्यों ?' कहता हुआ नायक आगे आया।

'कौन, खेमा नायक ?'

'कौन, महाराज ?' खेमा नायक ने स्तंभित होते हुए कहा। उसने आगे बैठे हुए बाबरा के हाथों में पड़े शरीर की ओर घबराते-घबराते देखा।

'चुप ! इधर आ।'

खेमा महाराज के निकट गया।

'खेमा ! मैं आवश्यक काम से जा रहा हूँ। अभी किसीसे न कहना। खेंगार मारा गया। युद्ध अब बन्द हो जायगा। बन्द होते ही मुंजाल महेता से कहना कि मैं वंथली गया हूँ, मेरी चिन्ता न करें।'

'जो आज्ञा।'

'द्वार खोल।'

'जो।' कहकर खेमा ने द्वार खोला और महाराज बाहर हुए।

'हमीर ! वढ़वाण की ओर चल।' धीमे-से महाराज ने कहा।

'जो आज्ञा—'

खेमा ने पुनः द्वार बन्द कर दिए।

'खेमा !' एक परिचित स्वर सुनाई पड़ा।

'कौन काकभटजी !'

'हाँ, तनिक इधर आ तो।'

'कहिए !' कहता हुआ खेमा आया।

'अभी यहाँ से कोई गया ?'

'बापू ! आपसे कहने में कोई चिंता नहीं, लेकिन मन ही में रखिएगा। अभी-अभी महाराज गये हैं।'

'मुझे लगा तो ऐसा ही था। साथ में एक स्त्री थी ?'

'एक काले भूत-सा कोई था—'

'बाबरा ?—'

'हाँ। उसकी गोद में कोई अचेत पड़ा हुआ था।'

'सोंढ़नी थी ?'

'हाँ।'

'कहाँ गए हैं ?'

'मुझे तो कह गए हैं कि मुंजाल महेता से कहना कि महाराज वंथली गये हैं।'

काक हँस पड़ा, 'किन्तु गये किस मार्ग से ?'

'इधर उत्तर की ओर गये हैं।'

'कितनी देर हुई ?'

'दो-चार घड़ी हुई होंगी।'

'धत्तेरे—' काक ने गहरी सांस ली, 'चिन्ता नहीं। द्वार खोल।'

'जो आज्ञा' कहकर खेमा ने द्वार खोला और काक बाहर निकला। जिस मार्गसे महाराज गये थे उसी मार्गपर उसने घोड़ा दौड़ा दिया। इतने में खेमा को स्मरण हुआ कि काक को भृगुकच्छ के विषय में कहना तो रह ही गया।

'भटजी ! बापू !—' वह चिल्लाया, किन्तु काक का ध्यान उधर न था। वह तो घोड़े को एड़ मारकर उसकी गति बढ़ाने का प्रयत्न कर रहा था।

: २७ :

काक कैसे आ-पहुंचा ?

रा' खेंगार को विदा करके काक विश्राम करने ऊपर छत पर गया। उसके मस्तिष्क में अशान्ति थी। उसे आने वाले संकटों के तार झनझनाते-से लगे। कुछ देर तक वह विचार करता रहा, फिर उसे नींद आने लगी। कितनी देर तक वह सोता रहा इसका उसे ध्यान न रहा किन्तु जैसे ही वह जागा वैसे ही उठकर बैठ गया और कान लगाकर सुनने लगा। मेंदरड़ा की ओर तो संग्राम चल ही रहा था किन्तु गढ़ में भी कहीं कुछ हो रहा है ऐसा उसे लगा। क्या हो रहा था यह समझ न पड़ा, किसका शब्द था सो भी मालूम नहीं हुआ, और किधर से आ रहा था यह भी न जान पड़ा। शस्त्र धारण करके वह तुरंत गढ़ देखने निकल पड़ा। वह शीघ्रता से महल से निकल कर कोट पर होकर मुख द्वार की ओर गया। एकाएक उसे 'गिरनार' द्वार की ओर से हल्ला सुनाई पड़ा, 'जय जय' का घोष सुनाई पड़ा। उसे शंका हुई—क्या पट्टणी गढ़ में घुस आए ? वह एकदम जिधर से हल्ला आ रहा था उधर घूमा। सामने से पच्चीस-एक आदमी आ रहे थे। वे सोरठी न थे।

'कौन है ?' उसने पुकारा।

उत्तर में वह आदमी उस पर टूट पड़े। काक तुरंत समझ गया कि पट्टणियों ने गढ़ ले लिया है। वह सावधान हो गया। उसने देखा कि इतने आदमियों का सामना करने में लाभ नहीं है अतः उसने गड़बड़ किए बिना अपने आपको पकड़ जाने दिया। न उनमें से किसीने उसे पहचानने का कष्ट उठाया और न उसने ही अपना परिचय देने की चिंता की। स्थिति ठीक से समझे बिना कुछ भी करना उसने उचित न समझा। किस प्रकार यहाँ से छूटकर राणकदेवी और बच्चों की रक्षा करने का खेंगार को दिया हुआ वचन पाला जा

सकता है इसी पर वह विचार करने लगा।

वे लोग मुख-द्वार पर गये और चौकीदारों को बंदी बनाकर द्वार पर अधिकार कर लिया। पकड़े हुए सैनिकों को भी काक के निकट बिठाया। काक बैठे-बैठे सभी पट्टणी सैनिकों को ध्यान से देखने लगा। इतने में उनके नायक का स्वर उसने सुना और पहचाना। उसीका खेमा नायक इस टुकड़ी का नायक था। खेमा नायक उसके सामने से होकर निकला तो वह बोला, 'अरे खेमा नायक! मैं सोरठियों का भी बंदी हूँ और पट्टणियों का भी।'

खेमा ने अपने स्वामी का स्वर पहचाना और मरे माने हुए भटराज को यहाँ देखकर हर्ष से पागल होकर 'कौन मेरे भटराज !' कहता हुआ हाथ लंबे कर दौड़ता हुआ आया।

'कोई मेरे हाथ भी छोड़ेगा !' हँसते हुए काक बोला।

'गधा !' खेमा नायक ने, जिस सैनिक ने काक के हाथ बांधे थे उसे उपाधि दी, उसके लक्षणों का स्मरण करते हुए एक ठोकर मारी। 'लाट का होकर भटराज को नहीं पहचानता ?' खेमा ने काक के बंधन खोल दिए। काक ने खेमा का आलिंगन किया।

'तू तो बहुत विश्वासपात्र हो गया लगता है ?'

'हाँ।'

'यहाँ कैसे ?'

'पिछले द्वार से चुपचाप आए हैं।'

'कौन-कौन ?'

'महाराज, दंड नायक, परशुराम और वही परमार।'

'कितने सैनिक हो ?'

'लगभग चार सौ।'

'कितना समय हुआ आए ?'

'चार-एक घड़ी हुई होंगी।'

काक निश्चिंत हुआ। यदि पट्टणी सेना चारेक घड़ी पहले ही

आई है तब तो खेंगार कभी का बाहर निकल गया होगा। इतने में एक व्यक्ति खेमा के पास दौड़ता हुआ आया, 'नायक ! नायक ! बाहर कुछ व्यक्ति आए हैं।'

खेमा और काक शीघ्र ही द्वार के निकट गये और छिद्र में से बाहर देखा। चार-पाँच सौ सैनिक थे।

'कौन है ?' खेमा ने पुकारा।

'जय सोमनाथ !' बाहर से घोष हुआ।

'त्रिभुवनपाल महाराज की जय !' एक-दो सैनिकों ने घोष किया।

'कौन मेरे महाराज !' काक बोला, 'जय सोमनाथ ! त्रिभुवनपाल महाराज की जय ! खेमा द्वार खोल। अरे ए ! उस ओर कोने में मशाल पड़ी होगी, जला।'

तुरंत द्वार खुले। मशालें जलीं। त्रिभुवनपाल मंडलेश्वर लीलादेवी और उनके साथ के आदमियों ने प्रवेश किया। जयसिंहदेव महाराज की युक्ति तो यह थी कि त्रिभुवनपाल और लीलादेवी की टुकड़ी बड़ी चौकी पर पीछे से हमला करे जिससे मेंदरड़े से आने वाली सेना को सहायता मिले और लीलादेवी प्रातःकाल होने से पहले जूनागढ़ भी न पहुँच सके।

किन्तु, मुंजाल महेता चाहे जितना विश्वास दिलाएँ वे अपने पति को उनसे अधिक अच्छी प्रकार जानती थीं। लीलादेवी इस प्रकार बातों में आजाने वाली न थीं। जैसे ही वे महाराज से विदा हुईं वैसे ही उनने त्रिभुवनपाल के सामने महाराज के विषय में चिन्ता प्रकट करना आरंभ किया—संभव है खेंगार पराजित कर दे, मार डाले आदि भय पल-पल पर अधिक-से-अधिक बढ़ते गए और अंत में इतने बढ़ गए कि उनके कहने से त्रिभुवनपाल बड़ी चौकी की ओर जाना स्थगित कर अपनी टुकड़ी को लेकर मुख-द्वार की ओर मुड़ गया। उन्हें विश्वास था कि यदि सब कुछ ठीक हुआ होगा तो मुख-द्वार पट्टणियों के अधिकार में होगा। इस समय काक को

मुख-द्वार पर देखकर उनके हर्ष की सीमा न रही। त्रिभुवनपाल तो उसके गले से लिपटकर चिपक गए। लीलादेवी की आँखों में हँसी खिल उठी।

'क्यों, महाराज के क्या समाचार हैं ?' लीलादेवी ने पूछा।

'मुझे मालूम नहीं,' काक बोला। 'मुझे पहले पट्टरिणयों ने ही बंदी बनाया। मेरे भाग्य में बंदी बनना ही लिखा लगता था कि खेमा ने आकर मुझे छुड़ाया।'

'तो चलो महाराज को खोज लें।' लीलादेवी बोली।

'चलिए।' कहकर काक, त्रिभुवनपाल, और लीलादेवी अपने मनुष्यों सहित जिस ओर से युद्ध का शब्द आ रहा था उस ओर दौड़ पड़े। वे युद्ध-स्थल पर किस प्रकार पहुँचे यह हम देख चुके हैं। वहाँ पहुँचने पर काक ने वहाँ से खिसककर राणकदेवी और उसके कुँअरों को कहीं रख आने का विचार किया। मुख-द्वार पर खेमा नायक था यह भी उसके लिए संतोष की बात थी। हाँ, तो पहले तो वह युद्ध में भाग लेने के लिए घुसा और अपनी उपस्थिति जताने के हेतु उसने जयघोष किया। इतने में मशालें बुझ गईं और पहले-सा अँधकार छा गया। काक तुरंत युद्ध से निकलकर दौड़ता-दौड़ता राजमहल की ओर गया।

राजमहल शांत और अन्धकारावेष्ठित था। क्या पट्टरिणयों की विनाशलिप्सा महल पर भी मंडरा गई ? वह अन्दर गया। सब द्वारपाल भयभीत होकर भागे जा रहे थे। एक द्वार पर उसका पाँव एक आदमी से टकराया। उसने तुरन्त चकमक निकालकर मशाल जलाकर देखा—दो आदमी मरे हुए पड़े थे। काक को चिंता हुई। वह तो सोच रहा था कि जयसिंहदेव महाराज युद्ध में थे, कहीं वे रनिवास में तो नहीं आ पहुँचे ?

वह अन्दर के कमरे में गया। वहाँ दीवाल पर तेल का दीपक जल रहा था। खण्ड निर्जन था—किन्तु ध्यान से देखने पर दोनों कुँअर

भूमि पर पड़े दिखाई दिए। आले में बैठी अंबाभवानी घी के दीपक के चंचल प्रकाश में इस भयंकर निर्जनता को इस प्रकार क्रोध से देख रही थीं मानो वे सजीव हों।

'हाय! हाय! मुझे देर होगई।' काक बोला और उन दो लड़कों को देखनेके लिए नीचे बैठा। उन्हें देखते-देखते उसका मुख उतर गया। दोनों कुंअर मर चुके थे।

काक को क्रोध आया। अधमता, क्रूरता, विनाशवृत्ति की भी सीमा होती है। माता को वश में करने के लिए पुत्रों को मारने वाले राक्षसी प्रणयी का स्वभाव कैसा होगा? ऐसा है उसका स्वामी—उसका राजा, ऐसे की सेवा में उसने जीवन व्यतीत कर दिया! उसे अपने प्रति तिरस्कार हो गया। इस नराधम को शिक्षा देने के लिए वह आतुर हो उठा।

'कोई है? यह तो मैं हूं—काक। कोई है?' उत्तरमें इन्हीं शब्दों की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ी। सभी घबराकर कहीं छिप गए थे।

'हे भोलानाथ! सोरठ के स्वामी की यह दशा? अंबा माँ! तू बैठी-बैठी क्या देख रही है? यही है तेरा न्याय?'

काक को वहाँ और अधिक रुकना उचित न लगा। वह कुँअरों पर एक दृष्टि डालकर श्मशान से भी अधिक भयंकर कमरे से अन्दर के कमरे में गया। वहाँ भी कोई न था। जयसिंहदेव आ पहुँचे थे और राणक को भी वे ही उठा ले गए इसमें उसे कोई सन्देह न रहा। नहीं तो कुंअरों को यों मरा हुआ छोड़कर देवड़ी जाने वाली नहीं थी। देवड़ी को कहाँ खोजे? जयसिंहदेव उसे यहीं रहने दें इतने भोले न थे।

ध्यान से देखने पर एक स्थान पर उसे रक्त से सनी हुई नंगी तलवार दिखाई पड़ी। वह सीधी पड़ी हुई थी अतः रक्त की बूंदें टपकती दिखाई दे रही थीं। वहाँ रक्त का गड्ढा बन गया था। बाहर निकलकर आगे के कमरे में उसने एक और अनुचर मरा पड़ा देखा। उसने ठीक से देखा—तलवार धरती पर घसीटी गई थी। तलवार द्वारा किये हुए चिन्हों को ध्यानपूर्वक देखता हुआ वह बाहर निकला। वहां

से उसने दूर एक आदमी को पड़ा हुआ देखा। काक ने जाकर उसे देखा और पहचाना। देशलदेव का सिर और धड़ अलग-अलग पड़े हुए थे।

'दुष्ट! अच्छा हुआ तू भी मरा।' दांत पीसकर काक बोला। वहीं उसे एक सांडनी के बैठने के चिह्न-से दिखाई पड़े। 'लगता है जयसिंह-देव पलायन कर गए हैं। कहाँ गए होंगे? देवड़ी को लेकर वंथली तो क्या मुंह लेकर जाएंगे। चलो, मुख द्वार पर छानबीन की जाए।'

वह तुरन्त अस्तबल में गया और एक तेज घोड़े पर बैठकर मुख-द्वार पर गया।

: २८ :

'जय सोमनाथ'

त्रिभुवनपाल के सैनिकों के आ जाने के कारण सोरठियों का अन्त आ पहुँचा। अब प्रश्न सामना करने का नहीं वरन् किस प्रकार सोर-ठियों को चुन-चुन कर मौत के घाट उतारना, यही रह गया था। 'रा' खेंगार की जय' या 'जय अम्बे' से 'जय सोमनाथ' का घोष तिगुना बढ़ गया था। कई बार तो पट्टणी आपस ही में भिड़ पड़ते थे और एक-दो प्रहार करने के पश्चात् पहचानते थे। सोरठी अद्‌भुत पराक्रम दिखा रहे थे। प्रत्येक सैनिक सभी दिशाओं में जाकर वेग से शत्रु को ठिकाने लगा रहा था। कई बार तो गिर पड़ा सोरठी पुनः उठकर युद्ध करने लगता था। कभी-कभी लेटे-लेटे ही कोई सोरठी सैनिक तनिक ऊंचा होकर पट्टणी सैनिक के पाँव काट डालता था। इस प्रकार जहां-तहां शवों के ढेर लग गए।

लड़ते-लड़ते ही खेंगार ने पट्टणियों की नई सेना को आते देखा, उसकी भुजाओं में नया उत्साह आ गया। उसके अंग-अंग से रुधिर बह रहा था। कई बार वह हाथ पलट चुका था, कई बार गिरकर खड़ा हो गया था। उसकी वीरता चोटी को पहुंच गई। वह चेतना खोने लगा किन्तु उसके हाथ न रुके। उसमें एक ही इच्छा रह गई थी—विनाश करने की। उसका मस्तिष्क और किसी ओर काम न कर रहा था। उसे लगा मानो किसी विशाल काले बर्तन में मनुष्य उबल रहे हों। उसे लगने लगा मानो अन्धकार मथा जा रहा हो, शस्त्रधारी पुरुष उसमें ऊपर-नीचे हो रहे हों और यह सब वर्तुलाकार चक्कर काट रहा हो। इस वर्तुलाकार प्रवृत्ति का वह स्वयं मध्यबिन्दु था, जैसे वह घूमता वैसे ही और सब घूमते।

यह सब क्या कर रहे थे यह उसे स्मरण न रहा। सब घूम नहीं रहे थे वरन् चक्राकार नाच रहे थे। सभी पर मस्ती छा गई थी। किसीको किसीकी चिन्ता न रह गई थी। वह स्वयं सबसे अधिक नाच रहा था और 'जय अम्बे! जय अम्बे!' पुकार रहा था। उसके कितने हाथ थे वह भूल गया किन्तु उसके हाथ और धड़ बराबर घूम रहे थे।

धीरे-धीरे उसके मस्तिष्क से अंधकार हट गया। उसे लाल-पीले मेघ दृष्टिगोचर होने लगे। वे रंग-बिरंगे मेघ ऊंचे-नीचे होकर नृत्य करने लगे। कभी-कभी, रह-रहकर श्वेत बिजली भी चमक उठती थी। सभी कुछ घूम रहा था। वह स्वयं भी मानो इन मेघों पर नाच रहा था। वह धरती पर पांव रखता था या नहीं, बिलकुल भूल गया।

मेघ रक्तवर्ण हो गए, गहरे हो गए; उसे मात्र लाल रंग ही दिखाई पड़ने लगा। वह लाल रंग नाचता ही जा रहा था। उसमें श्याम मेघ आने लगे, किन्तु वह तो नाचता ही गया। उसके कानों में धड़ाके का—बिजली के कड़ाके-सा—शब्द आता रहा। उसे कोई परिचित-सा स्वर 'जय अम्बे' कहता हुआ सुनाई पड़ा। उसे हँसी आ गई।

एकाएक लाल वातावरण में श्वेत मूर्ति दिखाई पड़ी। उसने उसे पहचाना। मूर्ति स्त्री की थी। कौन थी यह? उससे बहुत परिचित थी। वह उसकी प्राण थी। पहचाना—उसकी राणक-सती! यह कहां से आई, किस प्रकार आई—यह आश्चर्य होने लगा। वह सती थी। उसकी विशाल आँखें गर्व से देख रही थीं। 'सती की जय!' 'जय अंबे!' वह बोल उठा। स्वर बहुत दूर से आता सुनाई पड़ा। किन्तु वह तो नाचता ही गया।

राणक का गौर वर्ण म्लान होने लगा, रक्तवर्ण मेघ श्याम वर्ण के होने लगे। वह घूर-घूरकर देखने लगा और नाचता ही गया। वह 'जय अम्बे' कहने लगा किन्तु गले में कुछ अटक गया। उसने खखारा और बोल उठा—'सती की जय!'

एकाएक मेघ और मूर्ति—सम्पूर्ण दृश्य डाँवाडोल होने लगा, ऊंचा-नीचा होने लगा। वह उसे ठीक करने आगे बढ़ा तो वह श्याम-वर्ण का हो गया। एकाएक कुछ हुआ और सब कुछ गोल-गोल घूमने लगा। वह चिल्लाने का प्रयत्न करने लगा किन्तु चिल्ला न सका—अंधकार छा गया।

खेंगार धरती पर गिर पड़ा। कुछ देर पश्चात् उसे चेत हुआ और वह उठने लगा। एक लाल बिजली कड़की और पुनः अंधकार छा गया। वह पुनः गिर पड़ा—दो-चार शवों की शय्या पर। उसके मुंह से रक्त निकला और उसके प्राण निकल गए।

इस प्रकार विश्वासघात का भोग बनकर जूनागढ़ का अन्तिम स्वतन्त्र रा' गिरा। चूड़ासमा कुल का यह मुकुटमणि मध्यकालीन गुजरात की वीरता का अप्रतिम प्रतिनिधि तो था ही, किन्तु उसकी सहृदयता और स्मृतियाँ भी शताब्दियों से लोक हृदय में बसी हुई थीं। उसका औदार्य न कभी समाप्त हुआ और न कभी बदला, उसका शौर्य वर्षों के प्रयत्न के पश्चात् भी पाटण की सर्वभक्षी सत्ता से न कम हुआ और न पीछे हटा; उसका गर्व, जिसने निर्धनता, निःसहायता और विपत्तियों

में भी सोरठ का मान और महत्व बनाए रखा, उसकी गिरनार के समान अडिग टेक जिसने असीम कठिनाइयों में भी उसके चरित्र को निष्कलंक बनाए रखा, उसकी स्वदेश के लिए लगन और उसका स्वातन्त्र्य प्रेम जिन्हें जीवन को विशुद्ध रखने के लिए उसने आपत्तियों के यज्ञ में होम दिया—ये सब उसे मध्यकालीन हिन्दुओं की वीर गाथाओं में अग्रगण्य स्थान देते हैं। राजपूताना के राजपूत वीरों में मेवाड़ के शूरवीर महारथियों में उसकी बराबरी करने वाला सम्भव है कोई मिल जाय, किन्तु उसे कोई भुला नहीं सकता। करुण भव्यता में उसकी जोड़ी ढूँढनी हो तो सहस्रों वर्षों की इतिहासयात्रा करके, भारत के धुंधले जीवनकाल में वीर श्रेष्ठ, दानियों में दानवीर, अद्वितीय टेक वाले, पाप सृष्टि में भी पुण्यधाम के समान, निष्ठुर माता से लेकर अन्याई गुरु तक सब की अनुदारता द्वारा रचे हुए प्रतिकूल संयोगों से निरंतर संग्राम करते हुए दानवीर कुंती-पुत्र कर्ण तक जाना होगा। खेंगार के साथ जूनागढ़ की टेक गई, सोरठ का स्वातन्त्र्य गया; मात्र शौर्य के बल पर निर्मित सत्ता की भावना गई—और इनके साथ अमर कीर्ति भी! वह सिर धुनती प्रजा और सती राणक को छोड़ गया—

धीमे-धीमे 'जय अंबे' की ध्वनि बहुत कम हो गई और थोड़ी देर पश्चात् तो मात्र नाम ही को सुनाई पड़ने लगी। कई बार तो 'जय सोमनाथ' का घोष करते हुए पट्टणी सैनिक आपस ही में भिड़ पड़ते, किन्तु इस डर से कि कहीं सोरठी कोई दाव न खेल बैठें पट्टणियों ने युद्ध चालू ही रखा।

'महाराज! लीलादेवी! परशुराम! त्रिभुवनपाल! जगदेव! सभी हो न? पट्टणियों ने विजय प्राप्त की है। बोलो 'जय सोमनाथ।'

'जय सोमनाथ' का घोष चारों ओर गूंज उठा। 'महेता जी, मैं हूँ परशुराम।' 'मैं लीलादेवी' एक चबूतरे पर बैठी हुई रानी का स्वर आया। 'मैं जगदेव।'

'भाभा!' एक कोने से त्रिभुवनपाल का स्वर आया। 'मैं जीवित

हूं किन्तु मेरे पांव में घाव लगा है। और मुझ पर तीन शव पड़े हुए हैं। घबराना मत।'

'महाराज! हम सब पट्टणी हैं।' जीवित बचे हुए सैनिकों ने कहा।

'किन्तु महाराज कहाँ हैं?' परशुराम ने कहा।

'महाराज! महाराज!' मुंजाल ने पुकारा।

'और काक कहां है?' लीलादेवी ने पूछा।

'काक! काक!' परशुराम ने पुकारा।

'ये सैनिक सब कहां चले गए? जाओ मशालें ले आओ।' मुंजाल महेता ने आज्ञा दी।

कुछ सैनिक मशालें लाने के लिए दौड़े। इतने में भूमि पर पड़े हुए एक सोरठी सैनिक ने आधा उठकर तलवार से मुंजाल महेता पर प्रहार किया और बोला, 'जय अम्बे!' दूसरे ही पल महाअामात्य ने तलवार से उसे ठिकाने लगा दिया और बोले 'जय सोमनाथ'। 'यह अच्छी रही। मरते-मरते मुझी पर प्रहार कर बैठा। घबराओ मत, थोड़ी ही लगी है। मैं उस चबूतरे पर बैठता हूं।'

इतने में राजमहल के चौक के सामने के एक घर की खिड़की में से आग की लपटें निकलीं। थोड़ी देर पश्चात् घर के छप्पर से लपटें निकलने लगीं। चारों ओर लाल प्रकाश फैल गया। किसी ने घर को आग लगा दी थी। उस घर के जलने से तुरंत दूसरा भी जल उठा और चारों ओर तीव्र प्रकाश छा गया। उस प्रकाश में रणक्षेत्र भयंकर दिखाई पड़ रहा था। सात सौ-आठ सौ शव एक-दूसरेके ऊपर अस्त-व्यस्त पड़े हुए थे। रह-रहकर वेदना की चीत्कारें सुनाई पड़ती थीं। रुधिर से लिप्त लगभग दो सौ पट्टणी सैनिक एक साथ धीमे-धीमे इस प्रकार चले आ रहे थे मानो प्रेतलोक से लौट रहे हों। अनुभवी वृद्ध योद्धा भी इस दृश्य को देखकर कांप उठे।

'परशुराम! उठो। जल की व्यवस्था करो। किसी ने नगर में

आग लगा दी है।' मुंजाल महेता ने पाँव पर पट्टी बाँधते हुए कहा।

परशुराम ने अनाहत सैनिकों को बावड़ी की ओर भेजा। घरों में छिपी हुई स्त्रियाँ और बच्चे घबराकर, कोलाहल करते हुए घरों के बाहर निकले। मुंजाल महेता लंगड़ाते-लंगड़ाते उधर गये, 'कोई मत घबराओ। जूनागढ़ में जयसिंहदेव सोलंकी की सत्ता स्थापित हो गई है। सब निर्भय हो जाओ। चलो, आग बुझाओ। परशुराम! तुम आग बुझाओ। परमार! तू मशाल ला। जल्दी कर और महाराज और काक को खोज।'

सबने एकदम चुपचाप आज्ञाओं का पालन करना आरंभ कर दिया। स्त्रियाँ घरों में से पानी लाने लगीं, पट्टणी सैनिक बावड़ी से पानी लाने लगे, और इस प्रकार आग बुझाने का प्रयत्न होने लगा। नगर के रहे-सहे मनुष्य भी आग के भय से आ गए। पट्टणियों ने तुरंत उन्हें पकड़-पकड़कर बांधना आरंभ किया।

इतने में खेमा नायक मशालें लेकर आ पहुंचा।

'कौन खेमा?' मुंजाल महेता बोले, 'तू कहाँ से आ गया?'

'मैं मुख-द्वार पर पहरा दे रहा था।'

'तू और परमार इन शवों को देखो। जीते और मरे हुओं को अलग करो। सैनिको! चलो, जल्दी करो। महाराज और काक दोनों नहीं मिल रहे हैं। परमार! शीघ्रता करो।' मुंजाल ने कहा।

'महाराज! एक बात कहूँ?' खेमा ने मुंजाल के निकट आकर धीमे-से कान में कहा—'दोनों में से एक की भी खोज करने की आवश्यकता नहीं।'

'क्यों?'

'महाराज नगर के बाहर गये हैं और मुझे आपसे कहने को कह गए हैं कि वे वंथली गये हैं।'

'वंथली! किसलिए?'

'मुझे नहीं मालूम।'

'और काक ?'

'भटराज घोड़े पर बैठकर उनके पीछे गये हैं।'

मुंजाल चकित हो गया—'दोनों साथ गये ?'

'नहीं बापू ! पहले महाराज गये।'

'घोड़े पर ?'

'नहीं, साँढ़नी पर।'

'कितने आदमी थे ?'

खेमा हिचकिचाया।

'घबरा मत, जो हो सो सच-सच कह दे।'

'एक भूत था और एक अचेत स्त्री थी।'

मुंजाल महेता की आँखें चमकने लगीं।

'खेमा ! एक साँढ़नी तैयार कर, मैं अभी आता हूँ।' उसने धीमे-से कहा और फिर ज़ोर से परशुराम से बोला, 'परशुराम ! महाराज वंथली गये हैं। मैं भी जाता हूँ। तुम आग बुझाकर जूनागढ़ पर अधिकार करो। मैं प्रातःकाल लौट आऊंगा। ध्यान रहे, सोरठी धोखा न कर जायँ। लीलादेवी ! इधर आइए तो।' मुंजाल ने कहा।

लीलादेवी मुंजाल के निकट आई। मुंजाल ने धीरे-से कहा—'आप मेरे साथ चलिए।'

रानी समझ गई और मुंजाल के साथ जाने के लिए तैयार हो गई। मुंजाल और रानी धीरे-धीरे मुख-द्वार पर गये। वहाँ साढ़नी तैयार थी। दोनों उस पर सवार हो गए।

'खेमा ! महाराज किस मार्ग से गये ?'

'उस मार्ग से।'

'यह मार्ग कहाँ जाता है ?'

'मैंने यहाँ के लोगों से पूछा है। वे कहते हैं यह मार्ग वढ़वाण जाता है।'

'मुझे वंथली ले जा सके ऐसा व्यक्ति दे।'

'महाराज। साँड़नी वाला सोरठी है किन्तु हमारा है। वह सब मार्ग जानता है।'

'अच्छा तो चल, देखता हूँ,' मुंजाल ने कहा। साँड़नी चली।

नगर के बाहर निकलने पर मुंजाल ने धीमे-से रानी से कहा — 'बहन! शिकार हाथ से निकल गया।'

'कैसे?'

'महाराज राणक को लेकर चल दिए।'

'अच्छा?' तिरस्कार से लीलादेवी ने कहा।

'हाँ, चिन्ता नहीं। मैं उन्हें पाताल में से खोज निकालूंगा। अभी तो वंथली जाकर मीनलदेवी को सूचना देनी चाहिए। महाराज के जाने की बात को ढंकी रखने की भी व्यवस्था करनी है।'

'महेताजा! कब तक आप इन लोगों को ढंकते रहेंगे?'

'जब तक जीवित हूँ। मैं जैसा भी हूं, हूँ तो पाटण का सेवक न!' हंसकर मुंजाल ने कहा।

: २६ :

भावी महापुरुष से प्रथम परिचय

महाराज की आज्ञा से हमीर ने जितना बन सका उतने वेग से सांड़नी को भगाया। हमीर के तो होश ही उड़ गए थे। जूनागढ़ का पतन, खेंगार और उसके स्वामी देशलदेव की दुर्दशा, जयसिंहदेव जैसे महा-प्रतापी महाराज का सान्निध्य, और बाबरा जैसे अमानुषी और भयंकर प्राणी के संग से वह इतना घबरा गया था कि पीछे देखे बिना हाँके ही गया। प्रातःकाल होते ही अचेत राणक को जयसिंहदेव को सौंपकर बाबरा साँड़नी पर पीछे मुंह, नीचा करके, पड़ गया। कोई बाबरा के

विषय में जान न सके इसलिए दिन में उसे सबसे दूर ही रखा जाता था, किन्तु यदि साथ में लेना ही पड़ता था तो वह सिर नीचा करके पड़ा रहता था। प्रातःकाल होते ही एक छोटे गाँव के सामने साँडनी खड़ी करके सब एक वृक्ष के नीचे उतरे। हमीर महाराज के लिए थोड़ा-बहुत भोजन बनाने लगा और महाराज पानी छिड़क कर राणक की मूर्छा भंग करने का प्रयत्न करने लगे। बड़ी कठिनाई से राणक की चेतना लौटी। जैसे ही उसकी चेतना लौटी वैसे ही वह उठकर दूर जा बैठी और सिर पकड़कर रात्रि की भयंकर घटनाओं का स्मरण करने लगी। उसका मुख कुम्हला गया था।

'मुझे कहाँ ले जा रहे हो?' उसने भावहीन स्वर में पूछा।

'वढ़वाण, वहाँ हमारा ब्याह होगा।'

'क्यों व्यर्थ में हाथ-पांव मार रहे हो?'

'क्यों?'

'जहां ले जाओगे वहां मेरा तो एक ही मार्ग है।'

'कौनसा?'

'मेरे रा' का।' उसकी आँखों में अश्रु न थे किन्तु उनसे भी अधिक शोकदर्शक शुष्कता थी।

'राणक! उतावला मत कर। वढ़वाण पहुंचने पर हम निश्चिंत हो कर बातें करेंगे।'

राणक ने उत्तर नहीं दिया। इसके पश्चात् वह मौन ही रही। उसने भोजन करना अस्वीकार कर दिया। वह मौन होकर सांडनी पर चढ़ी और हमीर ने सांडनी हांक दी। थोड़ी ही देर पश्चात् पीछे से घोड़े की टाप का-सा शब्द सुनाई पड़ा। महाराज ने हमीर को सांडनी खड़ी करने की आज्ञा दी। सांडनी खड़ी होगई। राजा कान लगाकर सुनने लगे। किन्तु घोड़ा इधर ही आ रहा था या नहीं यह न समझ पड़ा। थोड़ी देर पश्चात् टाप बंद होगई। कोई निरर्थक शब्द होगा ऐसा मानकर महाराज ने सांडनी को भगाने की आज्ञा दी।

संध्या को वे पुनः विश्राम करने के लिए रुक गए। मार्ग में थोड़ी-थोड़ी दूरी पर पट्टणी चौकियाँ थीं। पाटण के राजा का संदेशा ले जा रहा हूं, यह बहाना बना देने पर कोई रोकता न था। रात को चन्द्रमा के प्रकाश में भी उन्होंने यात्रा जारी ही रखी। कभी-कभी राजा को घोड़े की टाप सुनाई पड़ती थी किन्तु उसकी उन्होंने चिंता नहीं की। चन्द्रमा के अस्त होते-होते वे वढ़वाण आ पहुंचे। महाराज की आज्ञा से हमीर ने द्वार से चौकीदार को बुलाया।

'किससे काम है?'

'विजयधवल गढ़रक्षक को बुला।' महाराजा ने आज्ञा दी।

'तुम कौन हो?'

'जयसिंहदेव सोलंकी।'

चौकीदार स्तब्ध होगया और बिना कुछ बोले गढ़रक्षक को बुलाने चला गया। थोड़ी ही देर पश्चात् मशालें लेकर विजयधवल गढ़रक्षक आ पहुंचा।

'गढ़रक्षक! द्वार खोल। कब तक मुझे यहाँ खड़ा रखेगा?' महाराज चिल्लाए। विजयधवल ने खिड़की खोलकर देखा और महाराज को देखकर चकित हो गया। क्या कहे उसे कुछ सूझा नहीं। उसने एकदम द्वार खोले।

'हमें राजगढ़ में ले जा, और ध्यान रहे, मैं यहाँ आया हूं यह किसी को मालूम न हो।'

'जो आज्ञा।' कहता हुआ विजयधवल आगे हुआ।

राजगढ़ समीप ही था। मकान नया था। अधिकतर लोग युद्ध में चले गए थे। अतः इस समय उसमें कोई न था। अँधेरी रात्रि में छोटे पर्वत के समान वह अस्पष्ट दिखाई पड़ रहा था।

'अन्नदाता!' विजयधवल किसी प्रकार अपनी उत्सुकता न रोक सका।

'क्या है?'

'देवी कैसी हैं ?'

'अच्छी हैं ।' राजा ने तिरस्कारपूर्वक उत्तर दिया। विजयधवल आगे पूछने का साहस न कर सका।

'विजयधवल ! रा' को मारकर जूनागढ़ ले लिया है।'

'हैं !' आश्चर्यचकित होकर गढ़रक्षक ने इस विचित्र ढंग से पदार्पण करने वाले राजा के सामने देखते हुए कहा।

'हाँ।' राजा ने कहा।

राजगढ़ आगया और गढ़रक्षक के आदमियों ने द्वार खोल दिए।

'हमीर ! देवी को अन्दर ले जाकर बिठा, मैं अभी आता हूं,' महाराज ने आज्ञा दी।

राणक सांडनी से उतरकर मौन होकर राजा के पीछे चल रही थी। उसके निस्तेज मुख पर एक प्रकार की निश्चलता छाई हुई थी। वह ऐसे चल रही थी मानो उसे कोई घसीट रहा हो। राजा की आज्ञा सुनकर वह यंत्रवत् हमीर के साथ चबूतरे पर चढ़कर अंदर चली गई। साथ में एक मशालची अंदर गया। राजा गढ़रक्षक की ओर घूमे। 'गढ़रक्षक !'

'अन्नदाता !'

'यहाँ कोई ब्राह्मण है ?'

'महाराज—'

'राजगढ़ का पुजारी है ?' महाराज ने अधीर होकर कहा।

'अन्नदाता !' हाथ जोड़कर गढ़रक्षक बोला, 'यहां कोई नहीं है, अतः वह सोने के लिए गाँव में जाता है। देखता हूँ, उसका कोई शिष्य हो तो —'

मानो गढ़रक्षक के वाक्य का उत्तर देने के लिए दूर से वेदोच्चार करती हुई एक ध्वनि सुनाई पड़ी—

चत्वारि शृंगात्रयोऽस्यपादा द्वे शीर्षे सप्तहस्तासोरिऽस्य।

'अवश्य कोई ब्राह्मण है।,' राजा ने कहा। गढ़रक्षक दौड़कर उस ध्वनि की ओर गया और थोड़ी देर पश्चात् एक लम्बे लड़के को साथ

लेकर आया। राजा तब तक अधीर होकर खड़े रहे।

'अन्नदाता! यह लड़का है।'

नवागन्तुक लगभग पन्द्रह वर्ष का लड़का था। उसने एक छोटी-सी धोती पहन रखी थी और शरीर पर भस्म लगा रखी थी। उसके भाल पर त्रिपुंड था। गढ़रक्षक के शब्द सुनकर वह अभिमान से हंस पड़ा, 'लड़का लगता हूं तो मुझे यहां लाए किसलिए?' और किसीके न समझ में आने पर भी आत्मसंतोष के लिए बोला—

गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वयः।

'छोकरे!' अधीर राजा ने पूछा, 'कैसा ब्राह्मण है?'

'कान्यकुब्जों में मेरा जन्म हुआ है।'

'कुछ आता-जाता है?'

पुनः वह लड़का अभिमान से हंस पड़ा, 'काम क्या है?'

'गढ़रक्षक! तुम जाओ।' राजा ने विजयधवल को आज्ञा दी, 'प्रातः-काल होने पर आ जाना।'

गढ़रक्षक स्पष्ट रूप से समझ गया था कि कोई विचित्र प्रसंग आ गया है, किन्तु राजा की आज्ञा का अनादर तो किया नहीं जा सकता था अतः इच्छा न होते हुए भी विदा हुआ।

'ब्राह्मण! तुझे ब्याह कराना आता है?'

'आप ब्रह्म या गंधर्व, पिशाच या राक्षसी, कौनसी विधि से ब्याह कराना चाहते हैं, वही कहिए न!'

'कोई भी चलेगी, चल।'

'अन्नदाता!' शांति से लड़के ने कहा, 'इतने उतावले क्यों हो रहे हैं? आप कौन हैं यह तो बताइए।'

'मैं कोई भी होऊं, तू चल।'

यह आया। किन्तु जितनी शीघ्रता आपको ब्याह करने की है उतनी हीजल्दी मुझे आप से परिचय प्राप्त करने की है।' लड़के ने शान्ति से कहा।

'क्यों ?' लड़के के बोलने के उद्धत ढंग से विस्मित होकर राजा ने कहा।

'मैं बिना योग्य दक्षिणा के आपके समान शीघ्रता में कोई कार्य नहीं करता। आप जल्दी में हैं और कोई बड़े आदमी हैं।'

तुझे क्या चाहिए ?' क्रोधित होकर महाराज बोले।

'आप कौन हैं ?' मुस्कराकर शांति से लड़के ने पूछा।

'पाटण का जयसिंहदेव सोलंकी,' कुढ़ते हुए राजा बोले। 'मुझे जानता नहीं ?'

'ओहो पृथ्वीपति !' लड़के ने मुस्कराकर हाथ जोड़े, 'मेरे धन्यभाग्य, चलिए क्या करना है ?'

'तुझे क्या चाहिए ?'

'अब मुझे दक्षिणा की चिंता नहीं। परम भट्टारक जहसिंहदेव महाराज के चरणों की तो रज हूं मैं, चलिए।' कहकर वह लड़का तनिक मुस्कराकर आगे बढ़ा।

'तेरा नाम क्या है ?' राजा ने पूछा।

'भाव।' लड़के ने आत्मविश्वास के साथ कहा। राजा ने बहुत ध्यान नहीं दिया। उन्हें क्या मालूम कि कितने वर्षों पश्चात् और किस प्रकार भविष्य में यह नाम उनके कानों से आकर टकराएगा ? राजा को यह लड़का बहुत विचित्र लगा और उसकी छोटी उम्र देखते हुए उसके बोलने का ढंग भी असाधारण लगा। किन्तु इस समय लड़केके विषय में विचार करनेका उनको अवकाश नहीं था। उन्होंने लड़केको अंदर आनेकी आज्ञा दी। महाराज अंदर के कमरे में गये। प्रातःकाल होने आया था अतः महल में थोड़ा-बहुत प्रकाश फैल गया था। उस प्रकाश में उन्होंने राणकको एक कोने में बैठा हुआ देखा। कुछ दूर पर हमीर खड़ा हुआ था।

'हमीर ! बाहर जा और सांडनी संभाल।'

'जो आज्ञा।' हमीर बोला और वहाँ से चला गया। जैसे ही वह गया महाराज ने तुरंत द्वार बन्द कर दिया और अर्गला लगा दी।

लड़का यह सब ध्यान से देख रहा था।

'देवड़ी !'

राणकदेवी ने उत्तर नहीं दिया।

'राणक !' जयसिंहदेव गला खखारकर बोले, 'यह ब्राह्मण तैयार है। चलो, अब लग्न कर लें।'

राणकदेवी ने नीचे झुका सिर ऊपर उठाया। उसकी म्लान आंखें राजा को देखने लगीं। 'मुझे क्यों क्लेश पहुँचाते हो? मैं तो सोरठ के जीवनसर्वस्व के चले जाने पर वैसे ही मर रही हूँ।'

'नहीं, राणक ! जयसिंहदेव की पटरानी बनकर तू पुनः सजीव हो जायगी।'

'जयसिंह ! जयसिंह ! खेंगार जैसे रणवीर चले गए फिर भी तुम्हारा गर्व न गया। मेरे सोरठ का अजित रा' चला गया तो तुम कौन ?' तनिक अधीर होकर राणक बोली।

'सारी पृथ्वी मुझे मानती है और आज तुझे भी मानना पड़ेगा।' गर्व से राजा ने उत्तर दिया।

'मूर्ख राजा ! मैंने अपना हृदय केवल एक पुरुष को दिया था, वह मर गया और मुझे और धरती दोनों को विधवा कर गया। धरती चाहे तुझे स्वीकार करले—मैं तो उसीकी थी और रहने की हूँ।'

'राणक ! पृथ्वी न कभी उसकी थी और न होने की है। तू भी कभी उसकी न थी न रहने की है। उठ ! चल, इस ब्राह्मण को विलंब हो रहा है। ब्राह्मण, चल, तुझे जो करना हो करना आरंभ कर।'

'सावधान !' देवड़ी ने भाव से कहा। उसके बैठते हुए स्वर में भी तनिक सत्ता प्रकट हुई। 'ब्राह्मण का पुत्र होकर यह अत्याचार खड़ा-खड़ा देख रहा है ?'

'देवी !' निःसीम शांति से भाव बोला, 'इतना हठ क्यों कर रही हो ? शास्त्र का वचन है कि जो देश जीतता है वह देशाधिपति की स्त्री भी जीत लेता है। आपसे विवाह करने का महाराज

को अधिकार है। महाराज को वरमाला पहनाने का अधिकार आप-

राणकदेवी ने कानों पर हाथ रख लिया। उसके मुख से क्षोभ टपक रहा था। 'जूनागढ़ में रहते हुए मुझे क्या मालूम कि ऐसा घोर कलियुग आ गया है? यह राजा और यह ब्राह्मण! जाओ, चले जाओ! अपना जला मुँह काला करो। मुझे क्यों सताते हो?'

'राणकदेवी!' अधीर होकर राजा बोला, 'मैं जैसा हूँ, हूँ। चल।' कहकर उन्होंने हाथ लंबा किया। राणकदेवी ने अपना हाथ आँचल में छिपा लिया।

'हाथ ला।'

'सात भव तक सिर मारे तो भी इस हाथ का स्वामी तू नहीं होने का।' देवड़ी क्रोधित होकर बोली।

'देखता हूँ तू कैसे ना करती है?' होंठ पीसते हुए राजा बोले। उनकी आँखों की पुतलियाँ बाहर निकल आईं। उनके नथुने फूल उठे। उनके कपाल पर बीच की नस उभर आई। 'इस समय तू मर भी जायगी तो भी मेरी ही स्त्री होकर मरेगी। चल, हाथ ला।' राजा गरज उठे और अंत में अपना हाथ राणक की ओर बढ़ाया। भाव पाणिग्रहण के मन्त्रोच्चार करने के लिए तत्पर हुआ।

राणक ने हाथ को और अधिक आँचल में छिपा लिया।

'ला, नहीं तो पूरी-की-पूरी उठा लूँगा।' क्रोध में राजा ने कहा।

'मुझे छूने का पाप करेगा? दुष्ट! तू जीते-जी नरक में जायगा।' राणक ने होंठ काट लिए।

एकाएक उसका मुख वैसा ही शववत् और निश्चेतन हो गया जैसा भविष्यवाणी करते समय हो गया था। उसकी आँखों की पुतलियों के वर्ण में परिवर्तन हो गया और उनमें ज्योति प्रकट हुई।

भाव यह परिवर्तन देखकर चकित हो गया, राजा तनिक पीछे हट गए।

शीघ्र ही राजा का क्रोध पुनः फट पड़ा। उसके हृदय में से विषमता, क्रूरता, आवेश, और क्रोध—सबकी मिलकर एक विशाल ज्वाला निकली। कोई उनका विरोध करे यह उनसे सहन नहीं होता था और इस समय हठी स्त्री के हठ को तोड़ने की प्रबल इच्छा से वे भला-बुरा सब भूल गए।

'तू—तू मेरा विरोध करती है?' उन्होंने दाँत पीसे। उनकी आँखें आरक्त हो गईं। उन्होंने क्रूरता से हाथ उठाया।

अमानवीय शुष्कता से—धीरे-से राणक ने उत्तर दिया, 'हाँ।'

राजा का हाथ राणक को ज़ोर से धरती पर गिरा देने के आवेश का अनुभव करके काँपने लगा।

सूर्योदय होने पर पूर्व की जाली में से एक चमकती रक्त की धारा के समान लाल किरण कमरे के मध्य में आई। बाहर से किसी ने बंद द्वार पर ठोकर मारी।

'द्वार खोलो!' एक प्रचंड स्वर सुनाई पड़ा।

: ३० :

महाराज को कैद

इस अचानक आने वाले स्वर से जयसिंहदेव चमके और राणक को मारने के लिए उठाया हुआ हाथ वे तलवार की मूठ पर ले गए। उनकी हिंसकवृत्ति जाग उठी और वे द्वार की ओर घूमे।

'अन्नदाता! ये भले चिल्लाएं, आप अपना कीजिए न!' भाव ने राजा को सलाह दी, 'आप क्यों व्यर्थ में समय गँवाते हैं?'

महाराज को यह सलाह अच्छी लगी और वे पुनः राणक की ओर घूमे। बाहर आगन्तुक की अधीरता बढ़ती चली जा रही थी। वह ज़ोर से द्वार खोलने का प्रयत्न करने लगा। उसने एक-दो-तीन-चार लातें इतने ज़ोर से मारीं कि द्वार की अर्गला ढीली हो गई और राजा के राणक को स्पर्श करने से पहले ही पांचवीं लात से अर्गला के दो टुकड़े हो गए और एक झटका देकर द्वार खुल पड़ा। महाराज क्रोधित होकर घूमे। द्वार में रौद्र रूप धारण किये हुए हाथ में नंगी तलवार लेकर काक खड़ा हुआ था।

क्रोध से काक का मुख लाल हो रहा था। उसकी आंखें ऐसी हो रही थीं मानो एक ही दृष्टि में सबको भस्म कर देंगी। वह हाँप रहा था किन्तु नितान्त निरुद्वेग था।

'आप यहाँ ?' कटाक्ष करते हुए काक बोला, 'पाटण का स्वामी सेना को छोड़, शिविर त्यागकर चोर के समान देवड़ी को लेकर इस प्रकार भागता फिर रहा है ?' काक की दृष्टि भाव पर पड़ी। 'तू कौन है ? ब्राह्मण है ? यहाँ क्या कर रहा है ? क्या राजा का विवाह कराने आया है ?' काक तिरस्कार से मुस्करा दिया।

'तू क्यों आया ? चला जा।' महाराज क्षुब्ध थे और उन्हें क्रोध आ रहा था अतः बड़ी कठिनाई से वे बोल सके।

'घबराइए नहीं, महाराज !' काक शांति से बोला, 'मैं यहीं रहूँग देवी के सती होने के पश्चात् चला जाऊंगा।'

'क क ! निर्लज्ज ! नमकहराम ! तूने मेरा पीछा किया है, क्यों ? ठहर।' कहकर महाराज तलवार निकालकर प्रहार करने के लिए तत्पर हुए।

'शान्त रहिए।' काक बोला, 'आप स्वामी थे और हैं। आपके विरुद्ध मैं शस्त्र का उपयोग नहीं करना चाहता किन्तु यदि आपक नीयत देवड़ी से ब्याह करने की हो – '

'जो मेरी इच्छा होगी वही करूंगा।'

'मैं आपको वैसा नहीं करने दूँगा।'

'तू—तू है कौन ? मेरा दास—'

'हाँ। इस समय मेरी मानिए। मेरा रक्त खौल रहा है। मैं कहीं कुछ-का-कुछ—' किन्तु उसके अधिक बोलने से पहले ही महाराज छलांग मारकर उस पर कूदे। काक सावधान था। महाराज की तलवार उसकी तलवार से टकराई और उनसे चिनगारियां निकल पड़ीं। दोनों ने अपनी तलवारें हटा लीं। राजा ने काक को घायल करने के लिए पुनः तलवार उठाई।

'जयसिंहदेव !' गर्जना के समान गम्भीर स्वर में काक बोला, 'आपको मरना है ?'

उत्तर में राजा ने एक प्रहार किया। काक ने एक ओर कूदकर प्रहार को व्यर्थ किया और राजा के पुनः प्रहार करने के पहले ही वह उनके निकट जा पहुंचा। महाराज ने तलवार पीछे खींचकर उठाने के लिए जैसे ही झुकाई वैसे ही काक ने एकदम उनके निकट आकर उनकी कलाई पकड़कर मरोड़ दी। काक ने उनकी कलाई इतनी शीघ्रता से पकड़ी और इतने ज़ोर से मरोड़ी कि महाराज सँभलें-संभलें उससे पहले तो उन्हें अपना हाथ कुहनी से टूटता-सा लगा।

'तलवार छोड़ दीजिए—छोड़िए—छोड़िए।' कलाई मरोड़ते हुए वह बोला, 'नहीं तो अभी यह हाथ टूट जायगा।'

राजा ने काक के मुख की ओर देखा। उसकी आंखों में गहनता थी और उन्हें ऐसा लगा मानो उनसे फूटती किरणें जला रही हों। वे समझ गए कि काक इस समय न मान की ओर देखेगा न दया करेगा। राजा ने दांत पीसकर तलवार छोड़ दी। काक ने उस पर अपना पाँव रखा और महाराज का हाथ छोड़ दिया।

'जयसिंहदेव ! अब दूर जाकर बैठ जाओ। मैं देवड़ी को ले जाता हूँ।'

'तू—!' द्वेष से गर्दन हिलाते हुए महाराज बोले—'देखता हूँ मैं !'

'तो देखिए।' कहकर काक देवड़ी की ओर एक डग बढ़ा। देवड़ी खड़ी होने के लिए तनिक सीधी हो गई। महाराज ने उछलकर काक को कमर में से पकड़ लिया। तलवार हाथ से निकल जाने पर महाराज यों शारीरिक युद्ध प्रारम्भ करेंगे यह काक ने न सोचा था। काक को क्रोध आ गया। उसने तलवार फेंक दी और पीछे लिपटे हुए महाराज को उलटे हाथ से पकड़ा। कुछ क्षण तक दोनों एक-दूसरे के बल पर अडिग खड़े रहे। महाराज ने दबाव डाला। काक नीचे झुका। ऐसा लगा कि वह अभी भूमिसात् हो जायगा कि एकाएक काक ने निःसीम बल लगाकर पिछले हाथ से महाराज को पकड़कर उलटा किया।

महाराज ने पशु की-सी एक चीत्कार की। चीत्कार करते समय उनका ध्यान कुछ हट गया अतः काक ने उन्हें उलटा करके, अपने शरीर से छुड़ाकर एक कोने में पटक दिया। महाराज ज़ोर से धरती पर गिरे। उनका मान भंग हो गया। वे उठे नहीं। काक ने महाराज की चीत्कार सुन ली थी अतः वह द्वार की ओर देखता हुआ खड़ा हो गया। एकाएक जाने कहाँ से एक काला स्वरूप कूदकर कमरे में आ गया।

'बाबरा! इसे पकड़ ले।' राजा ने आज्ञा दी।

बाबरा काक पर कूदने के लिए घूमा ही था कि काक बोला, 'सावधान बाबरा, यदि मुझे छेड़ा तो! एक बार तो जीवित छोड़ दिया किन्तु इस बार जीवित नहीं छोड़ूंगा।'

बाबरा ने भवों के लम्बे केशों को ऊंचा करके दृष्टि डालकर अपने विजेता काक को पहचाना। उसके पांव जहाँ थे वहीं रुक गए। उसकी आँखें भय से श्वेत हो गईं। उसके काले मुख का भी रंग उड़ता दिखाई पड़ा।

'पकड़ इसे—' जयसिंहदेव ने आज्ञा दी।

उत्तर में भयभीत श्वान जैसे गुर्राता है वैसे ही गुर्राकर वह पीछे

हट गया। नीचे का होंठ लटका रहने देकर वह एकटक काक की ओर देखने लगा। राजा यह परिवर्तन देखकर घबरा गए।

काक हँस पड़ा। 'क्यों महाराज! बहुत ज़ोर आ रहा है? और किसीको बुलाना है? चलिए, उस कोने में बैठ जाइए।'

राजा ने आवेश में कोई उत्तर न दिया और तिरस्कार से बाबरा की ओर देखा, 'तेरी मौत आई है क्या?'

'महाराज! पराई आशा रखने वाला सदा निराश होता है।' काक ने कहा।

राजा उसकी ओर देखे बिना ही द्वार की ओर जाने लगे। काक द्वार के बीच में जाकर खड़ा हो गया।

'महाराज! इस समय यह सब ताव रहने दीजिए। मैंने बाहर का द्वार बन्द कर दिया है और विजयधवल गढ़रक्षक को घायल करके एक कोठरी में बन्द कर दिया है। बुद्धिमान हों तो चुपचाप एक कोने में बैठ जाइए।'

महाराज मौन होकर द्वार के आगे खड़े रहे।

'चलिए बैठ जाइये।'

महाराज ने देखा कि वे अधिक चीं-चपड़ करेंगे तो काक उन्हें ज़बरदस्ती बिठा देगा। वे चुपचाप दूर जाकर खड़े हो गए। बाबरा इधर-उधर देखता हुआ चला गया।

'ए छोकरे! यहाँ आ।'

'क्यों, क्या है?' भाव दूर एक कोने में खड़ा हुआ था सो आगे आय।

'इधर आ।' काक ने डाँटते हुए स्वर में आज्ञा दी। भाव आया।

'राजगढ़ का तलगृह कहाँ है?'

भाव ने उत्तर नहीं दिया।

'सुनता है या नहीं?' काक ने पूछा।

'अंदर की दूसरी कोठरी में से होकर जाना पड़ता है।'

'तुझे मार्ग मालूम है ?'

'हाँ।'

'चल, मार्ग बता।' भाव ने महाराज की ओर देखा।

'सुना कि नहीं ?' भाव का कान पकड़कर काक ने कहा।

'हाँ।' कान सहलाते-सहलाते भाव बोला।

'तो चल।' काक महाराज के निकट गया, 'अन्नदाता ! आगे चलिए।'

'कहाँ ?' आवेश में राजा ने पूछा।

'जहाँ मैं कहूँ वहाँ। उस तलगृह में।' महाराज ने चकित होकर काक के सामने देखा। उसके मुख से भयंकर निश्चय टपक रहा था, 'चलिए।'

'क्यों ?' राजा ने चारों ओर अपनी निःसहाय अवस्था का अनुभव करके पूछा।

'आमात्य और रानी के बिना राजा अकेला शोभा नहीं देता। थोड़े समय के लिए अलग रहने पर देखिए आपने क्या-क्या कर डाला ? अब आप दो-एक दिन के लिए इसी तलगृह में विश्राम करिए। मैंने मुंजाल महेता और लीलादेवी को संदेशा भेज दिया है। दो-एक दिन में रा' का माथा लेकर राणकदेवी को चिता पर चढ़ाने के लिए आ पहुँचेंगे। फिर जो आपकी इच्छा हो करना। अभी तो जो मैं कहता हूं वही करिए। आइए, पधारिए।'

महाराज ने काक के सामने हठ से देखा। विरोध करने का विचार हुआ किन्तु उन्होंने सोचा इस समय विरोध करने से क्या लाभ !

'क्यों महाराज, पाँव नहीं उठते क्या ? मैं उठाऊँ ?' तनिक हाथ ऊँचा करके काक ने कहा।

महाराज ने एक तिरस्कार-भरी दृष्टि काक पर डाली और फिर दाँत पीसकर दिखाए मार्ग पर धीरे-धीरे चलने लगे। 'चल, ब्राह्मण ! मार्ग

दिखा,' काक ने भाव से कहा। भाव इस विचित्र और दुर्जय योद्धा से डर गया था। वह चुपचाप मार्ग दिखाने लगा।

'देवी, तनिक बैठना। मैं अभी आया।' काक ने राणकदेवी से कहा।

आगे भाव, पीछे महाराज और अन्त में काक इस प्रकार वे तीनों एक-दो खण्ड पार करके अन्दर के भाग में गये। वे एक आधे अँधेरे खण्ड में आ पहुँचे।

'महाराज! यह रहा तलगृह।' भाव बोला।

'पत्थर उठा,' काक बोला।

'मुझ अकेले से कैसे उठेगा?'

'अन्नदाता, तनिक नीचे झुकिए, इससे प्रतिष्ठा नहीं चली जायगी।'

जयसिंहदेव ने गर्व से गर्दन हिलाई।

'अब भी आपने अपनी स्थिति नहीं पहचानी, क्यों?' काक ने कठोर स्वर में प्रश्न किया। 'मैं नीचे झुकूँ और आप कुछ गड़बड़ कर सकें, यही न! चलिए।' कहकर काक ने महाराज की भुजा पकड़ी। आँखों में द्वेष और क्रोध की ज्वाला जलने पर भी उन्होंने झुककर काक को पत्थर उठाने में सहायता की। पत्थर के उठ जाने पर सीढ़ियों पर का द्वार दिखाई पड़ा।

'चल, द्वार खोल,' काक ने भाव को आज्ञा दी। द्वार खुलने पर अन्दर हवा की सरसराहट सुनाई पड़ी।

'चलो तलगृह तो अच्छा है। पधारिए, अन्नदाता!' काक ने महाराज से कहा।

जयसिंहदेव ने अन्तिम बार काक की ओर देखा।

'मालूम है इसके कारण तेरी क्या दशा होगी?' द्वेष-भरे स्वर में राजा बोले।

'मैं आपको भली भाँति जानता हूँ।' काक ने शांति से कहा, 'मेरी चिन्ता न कीजिए। चलिए।'

'अब तेरी चिन्ता करने को रह ही क्या गया है ?' तिरस्कार से राजा ने कहा, 'तेरे स्त्री-बच्चे भृगुकच्छ में भूखों मर रहे हैं और तुझे मैं यहाँ ठिकाने लगा दूंगा।'

'क्या ?' काक ने आँखें फाड़कर पूछा।

राजा उदासीनता से तलगृह में उतरने लगे। काक की भवें तन गईं। उसने महाराज की ठोढ़ी पर हाथ रखा।

'बोलो, क्या कहा ?'

कुछ नहीं।' राजा ने उत्तर दिया। काक ने उनकी ठोढ़ी पकड़ कर हिलाई।

'बोलो, क्या कहा ?'

'क्या कहा, क्या ? रेवापाल ने लाट में विद्रोह किया। तेरे स्त्री-बच्चे गढ़ में चले गए हैं और वहाँ अनाज कभी का समाप्त हो गया है। अब तक तो कभी के मर गए होंगे।'

'कैसे जाना ?' काक गरज उठा।

'तेरा कोई सोमेश्वर कह गया था।'

'फिर आपने क्या किया ?' काक की आँखें फट गईं। उसके स्वस्थ मस्तिष्क से अपरिचित अन्धड़ उसके मन में खड़ा हो गया।

'कुछ नहीं। तू जाने और तेरी लाट जाने ?'

'कृतघ्नी, घातक, अविचारी, दम्भी, तुम सोलंकियों के गर्भ से कैसे पैदा हो गए ?' सांप के मुख से निकलती हुई फूत्कार के समान फूत्कार करते हुए काक बोला, 'याद रखना यदि मेरी स्त्री और मेरे बच्चों को कुछ हो गया तो तुम्हारा चिह्न तक शेष न रहने दूँगा।' भयंकर आंधी में बिजली के कड़ाके के साथ घोर गर्जना होने पर जैसा वातावरण हो जाता है वैसा ही वातावरण इस समय हो गया। महाराज की आंखों से भय प्रकट हुआ और वे तलगृह में उतर पड़े। काक ने भाव को भी उतरने की आज्ञा दी।

'मैं ?' भाव बोला, 'मैं क्यों ?'

'बाहर जाकर सच-झूठ बकना है क्या ? और फिर महाराज की देख-भाल कौन करेगा ? चल उतर ।'

'आदमी तुम भारी हो ।' बड़बड़ाता हुआ भाव तलगृह की सीढ़ियां उतरा ।

'मैं कुछ ही देर में तुम्हारे खाने-पीने के लिए ले आता हूँ । मैं तुम्हें भूखों नहीं मारूंगा ।' काक ने राजा के लिए संदेशा कहा ।

काक ने सीढ़ियों का द्वार बन्द कर दिया, ऊपर पत्थर को दृढ़ता से जमा कर लौह शलाका लगा दी और फिर राणकदेवी के निकट गया ।

: ३१ :

काक का प्रस्थान

काक जब वहाँ से बाहर निकला उस समय उसके हृदय में क्रोध के स्थान पर चिन्ता प्रकट हुई। जिस उत्साह से वह आया था और जिस लगन से वह प्रेरित हो रहा था वे जाते रहे । निराशा का शीत उसके हृदय में छाने लगा ।

क्या महाराज ने जो कहा वह सत्य है ? क्या वास्तव में भृगुकच्छ में विद्रोह हुआ ? क्या पट्टणी सेना कट मरी ? क्या रेवापाल ने वचन का पालन नहीं किया ? क्या देवानायक विश्वासघाती निकला ? क्या गढ़ में से अनाज चुरा लिया गया ? ऐसे अनेक सम-विषम भावों की भयंकर झंकार से उसका मस्तिष्क चकरा गया । उसके मनमें ऐसा भय घर कर गया जैसा उसने पहले कभी अनुभव न किया था ।

उसकी क्रोध से जलती हुई आँखें निस्तेज हो गईं । वह धीरे-धीरे बाहर राणकदेवी के निकट आया ।

'देवी !' उसने गला ठीक करके कहा, 'अब कोई चिंता नहीं ।'

'भाई ! इन दो-दो उपकारों का ऋण किस भव में चुकाऊंगी ?'

'देवी ! इसी भव में चुकाने का समय आ गया है ।'

चकित होकर राणक ने उसकी ओर देखा, 'कैसे ?'

'मेरे अन्नदाता ने मुझे अभी-अभी कहा है कि भृगुकच्छ में विद्रोह हो गया है और मेरी स्त्री और मेरे बच्चे गढ़ में भूखों मर रहे हैं । देवी ! सती ! आप आशीष दीजिए । मुझे इस आशीष की अत्यन्त आवश्यकता है । मेरे निःसहाय बच्चे, मेरी—मेरी—'काक का गला क्षोभ से भर आया—'मंजरी भूखों मर रही होगी । मैं यहाँ—वह वहां ।' काक ने कपाल पर से स्वेद पोंछ लिया । 'भोलानाथ ! मुझे ऐसे स्वामी की सेवा करने की क्यों बुद्धि दी ?'

'मेरे भाई !' राणक ने मृदुल स्वर में आश्वासन दिया, 'अम्बा माँ तेरी सहायता करेंगी । मुझे सहायता देने वाले को मां कभी दुःखी नहीं करेंगी । अब तू यहां से जा ।'

'नहीं देवी !' काक ने सिर हिलाकर कहा, 'मेरा अन्नदाता विषक्त नाग है । मेरी पीठ पीछे जाने क्या कर डाले । इतने दिवस इस प्रकार व्यतीत हो गए तो दो और सही । रानी आजायं तो आपको उन्हें सौंपने के पश्चात् मैं चला जाऊँगा । देवी ! अब आप निश्चिंत होकर बैठिए । मैं बाहर जाकर सब व्यवस्था कर आऊँ और कुछ खाने-पीने की भी व्यवस्था करूं ।' काक वहाँ से उठकर बाहर गया ।

बाहर जाकर पहले उसने जिस गढ़रक्षक को घायल करके कोठरी में डाल दिया था उसको सँभाला ।

'गढ़रक्षक जी ! अब तुम निश्चिंत हो जाओ ? मैं करता भी तो क्या ? महाराज की आज्ञानुसार करना ही पड़ा । बहुत लगी तो नहीं ? शीघ्र अच्छे हो जाओगे । महाराज की आज्ञा है कि किसी को एक अक्षर भी न कहना । नहीं तो प्राणों पर आ बनेगी ।'

गढ़रक्षक ने कपाल पर हाथ ठोंका, 'मेरा ऐसा क्या अपराध—'

'गढ़रक्षकजी ! यह पूछनेसे कोई लाभ नहीं । तुम्हारा घर कहाँ है ? मुझे

बताओ तो मैं वहाँ जाकर आदमियों को बुला लाऊं। तुमने मुझे नहीं पहचाना ?'

'नहीं—'

'मेरा नाम भटराज काक है।'

'भृगुकच्छ वाले—'

'हाँ, वही। देखो, खेंगार की रानी को सती होना है अतः महाराज उन्हें यहाँ लाए हैं। लोग यह बात न जानने पाएं। एक-दो दिन में मीनलदेवी, मुंजाल महेता और रानी के आजाने पर राणकदेवी सती होंगी। तब तक सब गुप्त रखना।'

'अच्छा।'

'अब तुम घर जाओ और मुझे चार-पांच विश्वासपात्र आदमी दो।'

'भटराज ! इतनी-सी बात थी तो मुझे पहले ही कह दिया होता न ! मेरा पैर क्यों व्यर्थ में काट डाला ?' कुढ़ते हुए गढ़रक्षक ने कहा।

'चिंता न करो, कल अच्छे हो जाओगे।'

गढ़रक्षक ने काक को अपने घर का ठिकाना बताया। काक ने वहाँ जाकर आदमियों को सूचना दी। आदमी आकर गढ़रक्षक को पालकी में बिठाकर घर ले गए। गढ़रक्षक ने कुछ आदमी काक के साथ कर दिए। काक ने पुजारी को बुलवाकर भोजन बनवाया, खाया और फिर महाराज और भाव को जाकर भोजन दे आया। थोड़ी देर पश्चात् उसने महाराज को एक-दो गद्दे ले जाकर दिये और आराम से नींद लेने के लिए कहा।

बाहर आकर काक ने जूनागढ़ के पराजित होने के उपलक्ष में पूजा का ढिंढोरा पिटवाया, और साथ ही-साथ जयसिंहदेव के वहाँ आने की बात कहकर स्वागत के लिए उत्सव की तैयारियां करने की आज्ञा दी। कुछ सैनिकों को महाराज का स्वागत करने के लिए आगे भी भेज दिया। यह सब करने पर भी काक की स्थिरता जैसी थी वैसी न रही। उसकी आँखों से स्पष्ट लगता था कि उसके मस्तिष्क पर कोई भारी भार पड़ा हुआ है। जो सदा शांत रहता था वह दबाई हुई भावनाओं के कारण

अस्पष्ट रूप से अशांत दिखाई दे रहा था। सन्ध्या को उसके हृदय की व्यथा बढ़ गई। गढ़ पर चढ़कर जाने कब तक वह भृगुकच्छ की ओर देखता रहा। उसे मानो शांत संध्या में पीड़ित प्रियतम का क्रंदन सुनाई पड़ने लगा। समय और स्थान का अंतर भूलकर, उसकी देह को त्याग कर मंजरी से मिलने के लिए उत्सुक उसके हृदय ने यात्रा आरम्भ की।

पहले अनेक बार वह मंजरी को छोड़कर युद्ध में गया था किन्तु कभी उसे ऐसा भय न लगा था। इस समय क्यों ऐसा भय घर कर गया यह वह नहीं समझ पाया। ऐसा अपरिचित भय मानो किसी भयंकर परिणाम की भविष्यवाणी करता-सा लगा। संध्या का मन्द पवन उसके शरीरसे टकराने लगा। उसे लगा मानो वह पवन उसके हस्तस्पर्श की मृदुता और उसका उच्छ्वास-गंध लेकर आया हो। ऐसा भास हुआ मानो उसने अभी-अभी उसका चुम्बन किया है। अब तक युद्ध के कारण और राज्य-कार्य की निरन्तर खटपट के कारण सूक्ष्म भावों पर मनन करने और उनका विश्लेषण करने का उसे समय न मिला था, किन्तु इस समय सम्पूर्ण जीवन के संचय किये हुए संस्कारों ने भाव-परम्परा खड़ी कर दी। उसके हृदय में इस समय मंजरी का क्या स्थान था यह वह स्पष्ट रूप से समझने लगा। वह विभिन्न देहवाली स्त्री उसकी स्त्री या उसके बच्चों की माँ नहीं थी, वह उसकी प्राणेश्वरी होनेके कारण ही निराले सिंहासन पर विराजमान न थी, वह उसका प्राण थी—उसके प्राणों की भी प्राण थी। वह जीवित ही उसके आधार पर था। जिस प्रकार प्राण जब निकलने की तैयारी में हों तो सम्पूर्ण देह भी उसके पीछे जाने को तत्पर हो जाती है उसी प्रकार वह भी आपत्तियों में पड़ी हुई मंजरी के पास दौड़ जाने को तत्पर—व्यग्र हो उठा। उसका मस्तिष्क एक ही बात सोच रहा था—मंजरी से मिलने की। उसकी आत्मा एक ही काम के लिए छटपटा रही थी—मंजरी से भेंट करने के लिए। भीम द्वारा चीर दी गई जरासंध की जंघा के दो टुकड़े जैसे एक दूसरे से मिलने के लिए आतुर हो उठे थे उसी प्रकार काक

मंजरी से मिलने लिए अधीर हो गया। कई बार तो उसे लगा कि राणक को वहाँ छोड़कर जाने में अब कोई भय नहीं है किन्तु सती को इस प्रकार छोड़कर जानेमें उसे फिर भय लगा। उसकी कर्तव्य-परायणता और उसकी मित्र-भक्ति ऐसी थी कि वे उसे इस संकट को झेलनेके लिए उत्साहित कर रही थीं।

दूसरा दिन भी यों ही निकल गया। तीसरे दिन उसकी अधीरता की सीमा न रही। अन्त में थककर उसने वंथलीकी ओर जानेका निश्चय किया। तीसरे दिन की संध्या को एक अश्वारोही मीनलदेवी आदि के आने का समाचार लेकर आया। काक घोड़े पर बैठकर उनका स्वागत करने गया। वढ़वाण से पाँचेक कोस दूर मीनलदेवी, लीलादेवी और मुंजाल महेता अश्वारोहियों के साथ मिल गये। वे सब सराय में बैठे ही थे कि घोड़ा दौड़ाते हुए काक आ पहुँचा। सब काक को देखकर कुछ चमके। उसका मुख दृढ़ता से बन्द था, उसकी आंखें फटी हुई थीं और उनमें विक्षिप्ततापूर्ण निस्तेज स्थिरता थी। मुंजाल महेता उठकर आगे आए। 'क्यों, क्या बात है काक ?' बढ़ती उम्र के साथ महाआमात्य ने वात्सल्य-भाव प्रकट करना भी बहुत सीख लिया था।

'सब अच्छे हैं।' खोखले गले से वह बोला और चारों ओर देखकर दोनों रानियों को नमस्कार किया। मुंजाल के आँख से संकेत करने पर सभी सैनिक दूर जा खड़े हुए।

'देवी ! महेता जी ! इस समय मैंने पाटण की कीर्ति की रक्षा की है—अंतिम समय।' काक ने आराम की साँस ली।

तीनों जिज्ञासा से देखने लगे, 'क्या हुआ ?' मीनलदेवी ने पूछा।

'देवी ! मैं आया उस समय वे ब्राह्मण से लग्न पढ़वा रहे थे। द्वार तोड़कर मैंने अन्दर प्रवेश किया। महाराज को निःशस्त्र किया। उनके बाबराभूत को भगाया और बड़ी कठिनाई से उन्हें तलगृह में बन्द किया। नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया है कि आपके जाने पर कल राणक-देवी सती होंगी। रा' का शव लाए हैं न ?'

'हाँ, माथा लाया हूँ।' मुंजाल ने कहा। महाराज तलगृह में बन्द हैं यह सुनकर लीलादेवी के मुख पर अस्पष्ट हास्य आया और गया।

'अच्छा किया देवी!' मीनलदेवी की ओर घूमकर काक बोला, 'इस सती का आशीर्वाद माँगिए कि पाटण का राज्य अमर रहे। उसे छेड़ने से कोई लाभ नहीं। अच्छा अब आज्ञा दीजिए।'

'आज्ञा?' मीनलदेवी ने पूछा।

'कहाँ जा रहा है?' लीलादेवीने आश्चर्यचकित होकर आँखें फाड़ीं।

'हूँ!' दाँत पीसकर काक बोला, 'देवी! आपके पुत्र की सेवा करने में कोई लाभ नहीं है। मैं उन्हें जब तलगृह में बन्द कर रहा था उस समय उन्होंने मुझे सूचना दी कि मेरे स्त्री-बच्चे भृगुकच्छ के गढ़ में भूखों मर रहे हैं। इतने वर्षों की सेवा का यह पुरस्कार! और आप में से किसी को भृगुकच्छ सेना भेजने का भी अवकाश न था?' क्रोध में वह मुंजाल की ओर देखने लगा।

'काक! शांत रह,' मुंजाल ने कहा। 'मैंने तेरे सोमेश्वर और उदा महेता के पुत्र वाहड़ को कभी का सेना लेकर भेज दिया है और हम भी अभी चल रहे हैं।' काक कुछ देर तक घूरता रहा।

'महेता जी! यह लाट जीतने का प्रश्न नहीं है वरन् गढ़ में प्रवेश करने का प्रश्न है। सेना लेकर रेवापाल को पराजित करने में समय लगेगा किन्तु मुझे तो गढ़ में अनाज ले जाना है। मुझे अब आपकी जय-पराजय की चिन्ता नहीं। या तो मैं अपनी स्त्री की रक्षा करूंगा या मर जाऊंगा।'

मुंजाल ने जाकर काक की पीठ पर हाथ फेरा।

'भाई! उद्विग्न मत हो। तेरी बात सत्य है, तू भले जा। तुझे सैनिक चाहिएं? बैठ। दो घड़ी में कुछ बहुत नहीं बिगड़ जायगा।'

काक निःश्वास लेकर बैठ गया।

'सैनिकों की मुझे आवश्यकता नहीं। खेमा को लाए हैं?'

'नहीं। वह जूनागढ़ ही रह गया है।'

'अच्छा, मैं अकेला ही पर्याप्त हूं। खंभात से दो साँडनियाँ ले लूंगा। सोमनाथ पाटण से मुझे आवश्यकतानुसार सहायता मिल जाय ऐसा आज्ञा-पत्र लिख दीजिए।'

'अच्छा, हम भी कुछ ही दिनों में आ पहुँचेंगे।'

कठोर भाव से काक मुस्करा दिया।

'देवी!' मुंजाल ने मीनलदेवी से कहा, 'तनिक अन्दर आइए। एक बात कहनी है।' मीनलदेवी उठकर मुंजाल के साथ अन्दर गई। लीलादेवी ने काक पर स्नेह-भरी दृष्टि डाली।

'काक! यों उद्विग्न क्यों हो रहा है? भोलानाथ सब ठीक करेंगे।'

काक ने मौन रहकर गर्दन हिलाई।

'तूने यह सब मेरे लिए किया। इसका ऋण कैसे चुकाऊं?'

काक ने ऊपर देखा, 'देवी! मुझे कुछ समझ नहीं पड़ता। मुझे कुछ हो जाय तो बेचारे लाट का ध्यान रखना। अब कोई रहा नहीं।'

'काक! ऐसी अमंगल बात क्यों बोल रहा है? तुझे क्या हो सकता है?'

'मुझे कुछ समझ में नहीं आ रहा है।' काक ने गर्दन हिलाई। रानी ने कभी काक को इस प्रकार अस्थिर और निराश न देखा था। उसके हृदय में भी विचित्र-सा भय घर कर गया।

थोड़ी देर पश्चात् काक ने सिर ऊपर उठाया, 'महेता जी ने आज्ञा-पत्र लिखा?'

'यह रहा।' कहकर मुंजाल महेता ने काक को आज्ञापत्र दिया।

'तलगृह अन्दर के खण्ड में—राणकदेवी जहाँ हैं वहाँ से तीसरे खण्ड में है। ऊपर पत्थर है। राणकदेवी को मैंने दिखा दिया है।'

'अच्छा, तू चिन्ता न कर, जा।'

काक एक अक्षर भी न बोला। बाहर निकलकर वह साँडनी पर जा बैठा। मुंजाल महेता और लीलादेवी देखने लगे। शांत चन्द्रिका के क्रूर प्रकाश में दूर जाती हुई काक की साँडनी अदृष्ट हो गई।

: ३२ :

भोगावा के तीर पर

बहुत रात बीते मीनलदेवी की सवारी वढ़वाण पहुँची और बाजे-गाजे के साथ राजगढ़ में प्रविष्ट हुई । साँडनी पर से उतरते ही मीनलदेवी तुरंत राणकदेवी के निकट गई । मीनलदेवी का रा' खेंगार से चाहे जितना वैर हो और उनके पुत्र को छोड़कर रा' से ब्याह करने के कारण राणक पर चाहे जितना द्वेष हो किन्तु इस समय तो वे पराजित शत्रु की विधवा को योग्य मान देने के लिए तत्पर हो गईं । वे अपने पुत्र की स्त्रियोंके प्रति मोह की बात भली भाँति जानती थीं । उन के बुरे चाल-चलन पर उन्हें पश्चात्ताप भी होता था ।

वे और रानी राणकदेवी के निकट गईं और 'जय अम्बे !' गुनगुनाती हुई सती का चरण-स्पर्श किया । राणक की आँखों में दैवी तटस्थता आ गई थी ।

'अम्बाभवानी माँ तुम्हारा भला करें ।' सती ने शत्रु की माँ और पत्नी को आशीर्वाद दिया । 'मीनलदेवी ! मेरे रा' को लाईं ?' उसकी आँखें म्लान हो गई थीं ।

'हाँ । माथा ले आई हूं ।'

राणक ने निःश्वास लिया, 'कल प्रातःकाल मुझे सती होना है ।'

'जैसी सती की आज्ञा ।'

'मेरे रा' को यहाँ भिजवा दो ।'

'माना ! ला तो !' मीनलदेवी ने अनुचर को आज्ञा दी ।

अनुचर दुशाले में लिपटा हुआ रा' का सिर ले आया । पल भर के लिए राणक के मुख पर से म्लानता जाती रही । वह एक दम खड़ी हो गई । आगे बढ़कर उसने अनुचर से सिर ले लिया । राणक ने वह अपने हाथ में—मानो वस्त्र में लिपटा नन्हा शिशु हो—लेकर धीरे-से अनिर्वचनीय मृदुता से ऊपर का आँचल हटा दिया ।

'मेरे रा'—' राणक का अश्रु-भरा स्वर आया किन्तु उसकी आंखों में आँसू न थे।

थोड़ी देर तक वह रा' के आहत मुख की ओर देखती रही और फिर बड़े स्नेह से उसने कपाल पर आए हुए रक्त से सने केशों को ऊपर किया। वह धीमे-से मुस्करा दी—म्लान मुख से 'मेरे रा'! मेरे सोरठके स्वामी! मैं आती हूं।' उसने अपने पतिके मस्तकको छातीसे चिपटा लिया।

मीनलदेवी और लीलादेवी की आँखें सजल हो उठीं।

राणक ने रा' का माथा चौकी पर रख दिया, 'मैं घी का दीपक करना चाहती हूँ।'

'हाँ, अभी भिजवाती हूँ,' कहकर मीनलदेवी उठी। दोनों पट्टणी रानियाँ वहाँ से चली गईं।

थोड़ी देर के पश्चात् रा' के माथे के सामने घी के दो दीपक रखकर राणक उसके सामने बैठकर एकाग्र होकर देखने लगी। उसकी आंखों में न जाने क्या भाव आये और गये।

वह रह-रह कर 'मेरे रा' के सिवा और कोई दूसरा शब्द नहीं उच्चारती थी।

धीरे-धीरे रात व्यतीत होने आई।

पौ फटने के समय भी राणक वहीं-की-वहीं बैठी हुई थी।

मुंजाल महेता आये। एक-दो विश्वासपात्र आदमी लेकर वे सीधे अन्दरके खण्डमें गए और तलगृह ढूंढकर उसे खुलवाया और स्वयं अन्दर उतरे। दो गद्दों पर जयसिंहदेव निस्तेज और म्लान होकर पड़े हुए थे।

'क्यों आया है?' जयसिंहदेव ने निर्बल स्वर में पूछा।

'यह तो मैं हूं महाराज!' मुंजाल बोला।

राजा जैसे-तैसे करके हाथ टेककर उठ बैठे।

'कौन, महेता जी! आप आ गए? किधर गया वह भामटा? उसे पकड़ो, कहीं भाग न जाय।'

'चिन्ता न करिए। सब ठीक कर दिया है। चलिए।'

राजा मौन होकर उठे और मुंजाल के निकट आए। 'आपके साथ ब्राह्मण था वह कहाँ गया?'

'यह रहा।' भाव कोने में से निकलकर आगे आया।

'देख छोकरे!' मुंजालने कठोर स्वर में कहा,'चुप रहना आता है?'

'उसके लिए मुझे कहना नहीं पड़ेगा।' भाव ने हंसकर कहा।

'मुझसे फिर मिलना।'

'जी हां, अवश्य।' भाव बोला।

मुंजाल महेता महाराज को ऊपर ले गए। महाराज के शरीर पर धूल थी और उनके पांव लड़खड़ा रहे थे।

'महाराज! सीधे निवास में जाइए और स्नानादि करके भोजन कर लीजिए।'

'साथ में और कौन आया है?'

'मीनलदेवी और लाटीराणी।'

'सारे नगर ही को न्यौता देकर आते न!' कुढ़ करके राजा ने कहा, 'काक किधर गया?'

'कहीं नहीं। आप स्वस्थ तो हो जाइए।'

'किन्तु है कहां?' राजा ने हठ किया।

'जयसिंहदेव!' मुंजाल ने तनिक कठोरता से कहा, 'हम श्रावकों के पांचवें व्रत के अनुसार परस्त्रीगमन से विमुख होने वाले और कराने वाले, दोनों को पुण्य मिलता है। अभी तो जो मैं कहता हूं वह करो, फिर देखा जायगा।'

राजा का मन उत्तर देने को हुआ किन्तु निर्बल होने के कारण मौन रहे। रनिवास में लीलादेवी का शांत तिरस्कार झेलने के लिए जाना उन्हें मर्मान्तक लगा। किन्तु और कोई मार्ग न होने के कारण उन्होंने मुंजाल की सलाह स्वीकार की।

प्रातःकाल होने से पहले ही संपूर्ण नगर घरोंसे बाहर निकल आया। पुरुष और स्त्री खेंगार की सती हो रही रानी को कुंकुम और फूल से

पूजने के लिए निकल पड़े। मार्ग में अपार भीड़ थी और लोग भोगावा के तीर पर श्मशान की ओर जा रहे थे। डंकों और शहनाइयों की ध्वनि गूंज रही थी। अश्वारोहियों और पैदलों का जलूस चला। नगर-भर में 'जय अंबे !' 'जय अंबे !' की ध्वनि गूंज रही थी। सूर्योदय के साथ-साथ लोग राजगढ़ से श्मशान की ओर चले। स्वर्ण-खचित वस्त्र से सुसज्जित डोली पर फूलों के ढेर पर रा' का माथा रखा हुआ था। श्मशान की ओर जाते हुए लोगों में दुःखी देख पड़ते महाराजाधिराज और मुंजाल महेता की ओर लोग देखने लगे।

पीछे सती राणक 'जय अंबे' का उच्चारण करती हुई आई। उसके पीछे राजमाता, रानी और अन्य स्त्रियां थीं। सती जिधर जाती उधर हजारों आदमी 'जय अंबे' का घोष करके कुंकुम उछालते और फूल चढ़ाते। 'सती माता की जय !' की ध्वनि सुनाई पड़ रही थी। मार्ग के दोनों ओर खड़े हुए स्त्री-पुरुष सती के निकट आते, साष्टांग प्रणाम करते और आशीर्वाद की याचना करते। वढ़वाण का राजमार्ग सती के चरण-स्पर्श से कुचले हुए फूलों से सुशोभित हो रहा था।

सब लोग भोगावा के तीर पर आए। चारों ओर सैनिक खड़े हो गए और मध्य में स्त्रियां और डोली उठाकर चलने वाले खड़े हो गए। सबकी आँखों में अश्रु बहने लगे।

चिता चुन दी गई। धीमे, निडरता से राणक उस पर चढ़ गई। उसके मुख पर आनन्द छा रहा था। ब्राह्मण ने उसके ललाट पर कुंकुम-तिलक किया। निकट ही श्रीफल रखा और रा' का माथा उसे दे दिया 'खम्मा मेरे रा' को' कहकर राणक ने पति का माथा ले लिया और स्नेह से उसे गोद में रखकर 'जय अंबे !' 'जय अंबे !' बोली। जयसिंह-देव ने अग्नि दी—और डंकों शहनाइयों और तूर्य के नाद से गगन गूंज उठा। गुलाल और कुंकुम ने चारों ओर का वातारण लाल कर दिया।

'जय अंबे ! सती माता की जय !' का घोष होता ही रहा। चिता के

चारों ओर गुलाल और कुंकुम उड़ते ही रहे। वैश्वानर एक लकड़ी से दूसरी लकड़ी पर कूदा। एक महाज्वाल उठी और राणक के केश जल उठे।

चारों ओर तुमुल नाद हुआ। चारों ओर का वातावरण कुंकुम-मय हो गया। 'जय अम्बे' की एक चीत्कार इस हल्ले-गुल्ले में सुनाई पड़ी। सती राणक देह छोड़कर रा' के साथ चल दी।

भोगावा इस सती की भक्ति की परम कसौटी को देखती रही।

चौथा खण्ड

: १ :

भृगुकच्छ के गढ़ में

भृगुकच्छ के गढ़ में किसी प्रकार समय कटता ही नहीं था। मंजरी का उत्साह बिलकुल भंग हो गया था। थोड़ा-बहुत समय तो वह महादेव के मंदिर में या पुत्र के निकट काटती, और शेष समय कोट पर, नष्ट हुए राजा के निर्जन प्रासादों में घूमती—राज्यलक्ष्मी के समान गर्वीली फिर भी सुन्दर, निस्तेज फिर भी मोहक, वह घूमा करती। फिर-फिरकर वह नदी के स्रोत की ओर दृष्टि डालती। कई बार उसकी उन आंखों में अवर्णनीय भाव प्रकट होते। आज रात को काक अवश्य लौट आयगा ऐसा उसे लगता और प्रणयिनी की अधीरता से वह उसके लौटने की बाट देखती रहती।

प्रणयी की प्रतीक्षा करने से बढ़कर हृदयभेदक अनुभव जीवन में और नहीं होता। किसी दूसरी वस्तु में ध्यान लगता ही नहीं। कोई नहीं आया है ऐसा विश्वास होते हुए भी आनेवाले को देखने की उसकी उत्सुकता बढ़ती जा रही थी। हजारों काम छोड़कर दृष्टि टिकाकर देखते रहने में ही उसे जीवन का सार दिखाई पड़ता। सम्भव है वहाँ से हट जाने पर आनेवाला न आए ऐसा कुछ भय उसे लगता था। वहाँ खड़े-खड़े की हुई तपस्या के बल से आनेवाला खिंचा हुआ चला आयगा ऐसी उसकी श्रद्धा थी।

यह सब होते हुए भी आनेवाला न आया। पत्तों या कंकड़ों के गिरनेमें उसे परिचित पगध्वनि सुनाई देती। क्षितिज पर सूर्य-किरण के फूटते ही पति की आती हुई नौका दिखाई पड़ती, उड़ता हुआ पंछी उसमें आशा का संचार करता मानो वह उसकी नौका का पाल हो। पवन की सनसनाहट में, दूर से आती हुई किसी भी ध्वनि में काक ही की वाणी सुनाई देती। ऐसा अनुभव होते ही पल-भर के लिए हृदय धड़क उठता, और आशा-भरी दृष्टि से वह चारों ओर देखती, आशा

द्वारा रचे हुए मृगजल को देखती और दूसरे ही क्षण अकुलाने लगती। कंठावरोध करने वाली निराशा चारों ओर फैलकर उसे डुबो देती।

इस प्रकार आनेवाले प्रणयी की प्रतीक्षा करने में मँजरी को चौरासी लाख जन्मों के दुख का अनुभव होता था। एक-एक पल एक-एक युग के समान लगने लगा। एक क्षण की वेदना या भावना में जीवन-भर की करुण-कथा समाई हुई थी, किन्तु उसने साहस न छोड़ा। अपने पति के साहस, उसकी शक्ति और चतुराई में उसे विश्वास था। उसके भाग्य में उसे श्रद्धा थी। वह लौटेगा अवश्य इसका उसे विश्वास था।

जब बच्चे अधीर हो उठते थे तब साहस रखना कठिन हो जाता था। महाश्वेता कभी-कभी दयापूर्ण मुख से पूछती, 'देवी! पिताजी कब लौटेंगे?' उसे उत्तर देते समय मंजरी की आंखें सजल हो उठती थीं।

किन्तु ऐसी निर्बलता वह अधिक समय तक न रहने देती। इस निर्बलता से उसके पति का गौरव खंडित होता था ऐसा वह मानती थी, और अपनेको उसकी महत्ता का कीर्ति ध्वज समझकर साहस बनाए रखती थी। उसका सुकुमार शरीर क्षीण होता जा रहा था। उसका कोमल मुख निस्तेज होता जा रहा था। उसकी विशाल आंखें और भी बड़ी दिखाई देती थीं किन्तु उसका गौरव अधिक-से-अधिक अडिग होता जा रहा था। निर्बलता बढ़ जाने की सम्भावना के कारण अपने अंतर के भावों को वह अंतर ही में दबाए रखती थी।

उसका विश्वास होता जा रहा था कि शस्त्रप्रयोग करना उसे कभी न आएगा फिर भी उसने अभ्यास चालू रखा। उससे समय कटता था, रात्रि को नींद आती थी और स्वयं पति के योग्य होती जा रही है इस विचार से उसके हृदय को कुछ सांत्वना मिलती थी।

थोड़े दिनों पश्चात् आँबड़ महेता में भी आमूल परिवर्तन हो चुका था। वह गंभीर हो गया था और उसका मोह बिलकुल जाता रहा था। उसे लगा कि पाटण की कीर्ति उसके साहस पर अवलंबित है, अतः उस का लड़कपन और अविचार जाते रहे। पाटण के सत्ताधीश होने का उसे

जो गर्व था वह टेक का रूप लेकर और भी व्यापक हो गया। काक और त्रिभुवनपाल, परशुराम और मुंजाल, देवप्रसाद, विमलमंत्री और महान् शक्तिशाली भीम की वीरता के संस्मरण उसके चरित्र का निर्माण कर रहे थे। इन सभी की कीर्ति का वह उत्तराधिकारी था अतः उत्तराधिकारी की योग्यता प्राप्त करने के लिए व्याकुल हो रहा था। वह सभी को उत्साह दिलाता, गढ़ के चारों ओर दृष्टि रखता, और भृगुकच्छ की हलचल पर भी ध्यान देता। गंभीर और सत्ताशील—वह शिशु न रहकर वीर हो गया था।

मंजरी के प्रति भी उसकी दृष्टिमें परिवर्तन हो गया था। वह मंजरी से स्नेह करता था - किन्तु दूसरी ही भावना से। उसको सुविधा देने में, उसके अभ्यास में, उसके उत्साह को बनाए रखने में वह सदा लगा रहता था—प्रणयी के पागलपन से नहीं, भक्ति से। उसके लिए मंजरी पार्थिव न थी, बल्कि उसके जीवन की अधिष्ठात्री—कोई देवी। मानो वह कोई अस्पृश्य शक्ति हो इस प्रकार वह उसकी ओर देखता रहता था। उसकी दृष्टि से विकार जाता रहा और उसकी भक्ति से वासना जाती रही। विशुद्ध भावनाओं के अर्घ्य से ही सदा पूजने योग्य उसकी मंजरी उसके मन की जोगमाया थी। माता का निर्मल प्रेम, बहन का शुद्ध स्नेह—उसके प्रति मंजरी की ये भावनाएं उसे भली लगती थीं। काक के स्मरण से अब वह चिढ़ता नहीं था; बल्कि उसे लगता मानो काक उसी का हो, और उसके स्मरणसे उसका स्वयंका गौरव बढ़ता हो।

महाश्वेता और मंजरी दोनों के निर्मल मस्तिष्क पर भी मेघ छा गए थे। सभी उनसे लाड-प्यार करते थे किन्तु उन्हें चैन न था। गंभीर मणिभद्र भोजन बनाता और बच्चों को रखता। नेरा की स्त्री गंगली तेलन सभी काम करती, देवा कोट पर पहरा में देता और नेरा काम में लगे रहने का स्वांग रचता।

एक दिन प्रातःकाल देवा आँबड़ महेता को कोट पर ले गया। नीचे एक सैनिक दस-बारह दूसरे सैनिकों को गढ़ में से नीचे आने का

पथ दिखा रहा था। उसे देखकर आँबड़ चिंतित हो गया।

'ये क्या पहरा दे रहे हैं ?'

'ऐसा ही लगता है।' देवा ने कहा।

'रेवापाल को अभी अवकाश नहीं है क्या ?'

'विजय प्राप्त करके निश्चिन्त होगया होगा।' देवा ने कुढ़कर कहा, 'देवी कहाँ हैं ?'

'पूजा करने गई हैं, क्यों ?'

'अन्नदाता !' देवा ने धीमे स्वर में कहा, 'देवी को, 'कीकाभाई' और 'कीकीबहन' को यहाँ से हटा देना चाहिए।'

आम्रभट चकित होगया, 'क्यों ?'

'दस-ग्यारह दिन हो गए किन्तु कोई सूचना नहीं मिली। भाई—' देवा का स्वर टूट गया, 'नहीं आने के।' उसने गर्दन हिलाई, 'वे गये उस समय मेरी झोंपड़ी पर उल्लू बोल रहा था।' वृद्ध ने इस प्रकार कहा मानो सभी भय इस अपशकुन के कारण ही सत्य हो जाते हों।

'किन्तु यहाँ अपने पास अभी अनाज तो पर्याप्त है।'

'आठ दिन भी न चलेगा।'

आँबड़ की आँखें फट गईं, 'हैं ?'

'हाँ, आज से हम एक समय ही खायँगे।'

थोड़ी देर तक आंबड़ महेता एकटक देखते रहे। स्थिति गम्भीर होती दिखाई दे रही थी।

'और वह देखा—' देवा ने पुनः नीचे खड़े हुए मनुष्यों की हल-चल की ओर आम्रभट का ध्यान आकर्षित किया।

आम्रभट मौन होकर खड़ा रहा।

'बाहर निकलने का मार्ग बंद हो जायगा।'

'तब ?'

'देवी और बच्चों को गाँव में ले जाकर छिपा दीजिए। हम लोग गढ़ टिकाए रखेंगे।'

आँबड़ थोड़ी देर विचार करता रहा और फिर गर्दन हिलाने लगा। की बात जँच गई।'नहीं तो मेरी झोंपड़ी पर उल्लू बोलता ही क्यों?'

आँबड़ वहां से महादेव के मन्दिर की ओर मुड़ा। सदा इसी समय री पूजा करने जाती थी। वहां जाकर आंबड़ ने देव को नमस्कार ा और चबूतरे पर बैठ गया।

मंजरी पूजा करके बाहर आई। पहले वाला उसका गौर वर्ण इस य फीका पड़ गया था। उसके मुख पर चिन्ता थी।

'देवी !'

'क्यों भाई।' उसके उत्तर में मिठास था।

'यहाँ का अनाज तो घटने लगा,' आंबड़ ने कहा।

'मणिभद्र ने मुझसे कहा था,' मंजरी ने उत्तर दिया। 'क्या अभी ती सूचना नहीं पहुंची होगी ?'

'देवी ! ये अशान्ति के दिन हैं। सम्भव है सूचना न मिली हो।'

'आज से ये सब एक समय ही खायंगे।'

'हाँ। इससे कम-से-कम पन्द्रह दिन तो चल जायगा। किन्तु उस ाश्चात् ?'

'मैं भी एक समय खाऊँगी।'

आम्रभट चबूतरे पर से उठ खड़ा हुआ।

'क्या पागल होगई हैं ?'

'क्यों ?'

'आप एक समय खायँगी तो गढ़ की रक्षा कैसे होगी ?' आंबड़ को री की काया का कुम्हला जाने का भय हुआ, 'आपको चाहिए उतना ाज है।'

'किन्तु सब एक समय और मैं दो समय खाऊँ ?'

'नहीं, आप, बच्चे और मैं दो समय खायंगे। अन्तिम समय तक गढ़ ठिका रखना है। पांच दिन तक प्रतीक्षा करेंगे। फिर आवश्य- ा होगी तो देखा जायगा। आप भूखी कैसे रह सकेंगी ?'

'अन्य स्त्रियाँ तो दिनों तक उपवास करती हैं ।'

'वे तो भूखों मर-मरकर आदी हो जाती हैं ।आप तो मर जायँगी ।'

'अच्छी बात है, देखूंगी,' हंसकर मंजरी ने कहा, 'किन्तु ऐसा किये बिना और कोई चारा नहीं है ।' मंजरी का हास्य अब भी वैसा ही मोहक था ।

'देवी ! इससे तो एक दूसरा काम क्यों न करें ? आपको और बच्चों को गाँव में छिपा दें तो कैसा ? हम गढ की रक्षा करेंगे ।'

मंजरी का हास्य जाता रहा । उसकी विशाल आंखें स्थिर होगईं ।

'आँबड़ महेता ! यह गढ़ तुम्हारे राजा का नहीं है, मेरे दुर्गपाल का है ।' जब तक देह में प्राण हैं तब तक मैं तो इसी में रहूंगी ।'

'बहुत कष्ट सहना पड़ेगा, देवी !' आग्रह से आंबड़ ने कहा, 'और गढ़ की रक्षा करने के लिए हम तो हैं ।'

'आंबड़ महेता !'गर्व से सिर ऊंचा करके मंजरी ने कहा,'गढ़ छोड़ना ही होगा तो जीते-जी नहीं छोड़ने की । दुर्गपाल आवें और मैं कहीं छिपकर बैठी रहूं—नहीं । उन्होंने भी सोच रखा है कि वे नहीं हैं तो अन्तिम समय तक मैं ही गढ़ की रक्षा करूंगी ।'

आँबड़ ने देखा कि मंजरी मानने की नहीं अतः वह मौन रहा । इस स्त्री की सहज दृढ़ता के सामने वह सदा पराजित हो जाता था ।'

: २ :

नेरा तोतला का अंतिम पराक्रम

उसी दिन देवा, मणिभद्र और गंगली ने अनाज के भाग कर लिये और यह निश्चय किया कि मंजरी, आंबड़ महेता और बच्चों को छोड़ सभी एक समय खाएंगे ।

इतने दिनों में सचमुच का दुःख तो नेरा तोतला को उठाना पड़ा। स्वच्छन्द घूमना, दिन में चार-छः बार पेट भरकर खाना, दुपहर को चार-छः घड़ी विश्राम करना और हो सके वहाँ तक सेका हुआ पापड़ नहीं तोड़ना यही उसके जीवन के अटल सिद्धांत थे। धार्मिक श्रद्धा से इतने वर्षों तक तत्परता से यह सब निभाया था, और अब एक ही स्थान में बँधे रहना, देवा की अधीनता में रहना, दिन में दो बार खाना और दुपहर को न सोना—आपत्तियों की इस भयंकर परम्परा ने उस पर अपना प्रभाव जमाना आरम्भ कर दिया था। उसकी आंखों में सदा दुख झलकता रहता था। उसकी तीन-तीन ठोड़ियाँ खाली होते थैलों के समान झूलने लगी थीं। उसकी विशाल तुंद ढीली पड़ने लगी थी और उसकी पतली टांगें कांपने लगी थीं। अधिकतर तो वह किसी कोनेमें ही पड़ा रहता था और किसी आने-जाने वालेके सामने मरते हुए श्वान की-सी करुण दृष्टिसे देखने लगता था।

ऐसे कष्टों की भीड़ के कारण उसे आंबड़ महेता का भय न रहा; मंजरी के प्रति सम्मान न रहा, बच्चों के स्नेह न रहा—उसे सभी अपने शत्रु लगते। वे सब न उसे पेट-भर खाने को देते, न जी भरकर सोने देते और न ही गांव में भाग जाने देते। उस पर से अपनी तेलन से तो वह घबरा गया था। उसकी भयंकर जिह्वा देवी की लाठी से भी अधिक शक्तिवान् थी और भूख और दुःखसे बचे-खुचे प्राणको गंगली निकाले बिना न रहती। जब वह बोलने लगती तो बिचारे नेरा को प्रेतलोक भी अच्छा मालूम होने लगता था। जैसे भैंसासुर के लिए कालिका थी वैसे उसके लिए उसकी पत्नी। वह उससे त्रस्त हो गया था और उसकी धाक से जाल में फँसी मछली की मनोदशा का अनुभव करता था।

वह एक दीवाल के सहारे पड़ा हुआ था। मुँह फाड़कर पेट की भूख को हवा खाकर शांत करने का निष्फल प्रयत्न कर रहा था। मानो यह सुख भी बहुत अधिक था कि उसकी पत्नी ने आज्ञा सुना दी कि आजसे एक ही समय खाना होगा। नेराने पहले तो सुनी-अनसुनी कर दी।

'बहरा हो गया है क्या ?' गंगली ने कहा, 'अबसे एक ही समय खाना पड़ेगा। अनाज समाप्त होने आया है—अनाज।' जैसे-तैसे करके नेरा उठकर बैठा। उसकी समझ ही में न आया कि यह अनाज कैसे अकस्मात् समाप्त होने आ गया।

'क....क....क....कैसे स....समाप्त हुआ ?'

'तेरा भाग्य !'

'ए...एक बार ख...खाना हो...गा ?' नेरा के होंठ टेढ़े होकर लटक गए। यह नया दुःख इतना भारी लगा कि उसमें पुकार करने की सामर्थ्य भी न रही। अब तक दो बार खाने को मिलता था वह उसके लिए पानी पीकर उपवास करने के ही समान था।

'हाँ, एक बार—'

'च....च....चल ना यहाँ--से च....च....चले चलें।' उसने गंगली से प्रार्थना की। उसकी आधी सूजी हुई आंख में से आँसू गिरने लगे। भूख के कारण उसकी जिह्वा भी लड़खड़ाने लगी थी।

'कुछ लाज शर्म भी है, निर्लज्ज !' तेलन ने आंखें निकालीं, 'देवी और 'कीकाभाई' और सबको छोड़कर चले जायँ ? जन्म लेकर खाने के सिवा और कुछ सीखा है ? तुझे पाटण का भट किस मूर्ख बनिए ने बना दिया ? तेरी माँ के पेट से पत्थर गिरा होता तो भी अच्छा होता, साड़ी फींचने के काम तो आता।' गंगली गर्व से बोली, 'बोल, अभी खाना है कि दुपहर के बाद ?'

निराशा से नेरा की गर्दन लुढ़क गई। मरने के सिवा और कोई पथ उसे सूझा नहीं। 'अभी,' झाग-भरे मुंह से शब्द निकला। कल रात खाने के दो घड़ी बाद से ही उसे कड़ाके की भूख लग रही थी।

'तो कल दुपहर तक रहेगा कैसे ?'

'रह लूंगा।' कहकर नेरा ने ऐसा निःश्वास भरा कि पत्थर भी पिघल जाय। किन्तु उसकी स्त्री में कहीं एक खरोंच भी पड़ी हो ऐसा न लगा। वह जाकर खाने को ले आई। पतिव्रत धर्म की प्रेरणा से कुछ

अपना भाग भी उसके भाग में मिला दिया।

भोजन आया तो नेरा बैठा रहा और उसकी ओर देखने लगा। उसकी आंखों में पागलों की-सी चमक आ गई, उसके मुंह में पानी आ गया, उसके मुख पर लिप्सा का बेढंगा हास्य झलक उठा; उसके गले में से हर्ष का घरघर शब्द हुआ। वह प्रसन्नता के मारे पागल हो उठा।

गंगली उसकी ओर तिरस्कार से देखने लगी।

'चल, खा। यह पानी रहा, हाथ तो धो।'

वह बोले, बोले तब तक तो नेरा ने खाना आरम्भ कर दिया था। डेढ़ 'रोटला', दो कड़छी दाल-भात, प्याज और नमक—देखते-ही-देखते चट कर गया। खाकर अधिक की आशा से नेरा ने गंगली की ओर देखा, 'द....दूसरी....'

'दूसरी क्या, तेरा सिर! एक 'रोटला' तेरा था, और आधा मैंने अपना दिया। अब कुछ नहीं है।'

'पर कल तो दो थे।' नेरा ने अपना विरोध प्रकट किया।

'आज से एक ही मिलेगा।' गंगली ने क्रोध में कहा।

'क....क....कल तक क....कुछ नहीं?' नेरा ने विस्मित होकर पूछा।

'अधिक चाहिए तो आग है।' कहकर गंगली चली गई।

कुछ समय तक निःसहाय बनकर नेरा देखता रहा, फिर एक ऐसा महानिःश्वास भरकर जैसा गिरिगह्वर में ही सुनाई दे सकता है, मुंह धोकर पानी पिया।

कितने ही दिन हो गए। उसकी क्षुधा शांत न हुई थी, आज तो उसे छेड़ा भर गया था। और उस पर एक पूरे दिवस निराहार रहने की विपत्ति। क्यों ये मूर्ख लोग यहाँ पड़े हुए हैं? क्यों उसे यहाँ से जाने नहीं देते? वह इतना थक गया था कि और आगे विचार किए बिना ही झोंके खाने लगा।

नींद में उसे हलवाई की दूकानों, लड्डू-दूधपाक की पंक्तियों, मालपुओं और जलेबियों के ढेर के स्वप्न-पर-स्वप्न आते रहे। सदा मुँह के सामने भरा पात्र दिखाई पड़ता कि दुष्ट गंगली उसे खींच ले जाती—स्वयं जैसा भूखा था वैसा ही भूखा रह जाता, पेट में ऐसे होता रहता मानो सतत होली जल रही हो।

कुछ देर पश्चात् वह जागा। दुःखमय स्वप्न जाते रहे या नहीं यह देखने के लिए वह कुछ ऊपर उठा, उसे वास्तविक परिस्थिति का भान हुआ। सुख तो स्वप्न में ही था जिसमें लड्डू और मालपुए देख-केर मुँह में पानी आता था। जागने पर तो दो ही बातें होती थीं—निर्जन गढ़ और अनन्त काल तक निराहार। वह एकाएक काँप उठा—ऐसे पुरुष के समान जो अनगिनत पीड़ाओं द्वारा कुचला गया हो। दुपहर से पहले उसने डेढ़ 'रोटला' खाया था या नहीं यह भी उसे याद न रहा। उसकी दशा तो ऐसी थी मानो दिनों से उसके पेट में अन्न ने प्रवेश न किया हो।

थोड़ी देर तक वह होंठ चाटता हुआ सूजी हुई आँख से आकाश की ओर देखता रहा। ऐसा लग रहा था मानो उसके मुख की रेखाओं में निराहारी की वेदना का सृजन करने के लिए वह सिरजनहार से प्रार्थना कर रहा हो। पेट दिया तो पेट-भर खाने को क्यों नहीं देता? थोड़ी देर पश्चात् उसने देवा नायक को उधर जाते देखकर पुकारा—'न....न....नायक!'

'क्या है?' देवा ने इस आलसी की ओर देखकर कठोरता से कहा।

'आज....दू....दूसरी बार ख....ख....खाना नहीं मिलेगा?'

'नहीं—' देवा ने कहा।

नेरा ने अपना सिर धरती पर इस प्रकार पटक दिया मानो कोई प्राणघातक चोट लगी हो। इस आलसी और भुक्खड़ के प्रति देवा को इतना तिरस्कार था कि एक भी शब्द कहे बिना वह वहाँ से चला गया

उसकी चलती तो वह नीचे जाकर इस पट्टणी सैनिक को रेवापाल की भेंट कर आता।

थोड़ी देर नेरा पड़ा रहा। उसे लगा कि ये सब उसे जान-बूझकर भूखों मारना चाहते हैं। उसे अपनी स्त्री पर घोर क्रोध आया, 'शं—' कहकर वह गाली देने जा रहा था, किन्तु वह इतना निर्बल हो गया था कि मौन होकर पड़ रहा।

उसका मुख क्षीण हो गया और उसकी जिह्वा तालु से चिपक गई। वह किसी प्रकार उठ बैठा और घिसटता-घिसटता कुँए के निकट आया। वहां एक घड़ा आधा भरा हुआ पड़ा था। उसे मुंह से लगाकर वह सब-का-सब पानी पी गया।

उसे कुछ सांत्वना मिली। पैरों में तनिक शक्ति आई। वह खड़ा हुआ किन्तु चक्करखाकर गिर पड़ा। बड़ी कठिनाई से घुटनों का सहारा लेकर वह पुनः उठ खड़ा हुआ। सूर्य अस्त हो रहा था। उसे ध्यान हुआ कि संध्या काल होते ही भोजन का समय हो जायगा, किन्तु इतने में उसे अपनी स्त्री के शब्दों का स्मरण हो आया—'एक ही बार खाना पड़ेगा!' किन्तु एक समय भी खाया कब था? गिरता-पड़ता वह रसोई-घर की ओर गया। वहां शांति थी। रसोईघर पर साँकल चढ़ाकर मणि-भद्र चला गया था। उसमें कुछ-न-कुछ अवश्य होगा यह सोचकर वह अंधेरे की प्रतीक्षा में दीवाल का सहारा लेकर बैठ गया। सम्भव है गंगली उसे देख ले इसलिए वह एक कोने में सिमटकर बैठ गया।

किसी भी प्रकार समय व्यतीत नहीं हो रहा था और उसके पेट में ज्वाला बढ़ती जा रही थी। उसके सिर में चक्कर आने लगे अतः उसने सिर पर हाथ रख लिया किन्तु उससे कुछ लाभ न हुआ। एक-दो बार उलटी हुई, उसका जी अकुलाने लगा।

अंधेरा होने पर वह साहस करके उठा और रसोईघर की सांकल खोली। अन्दर अंधेरा था। चोर के समान वह सब कुछ इधर-उधर करने लगा किन्तु कुछ हाथ न लगा। मणिभद्र ने आवश्यकता से

अधिक बनाया ही न था।

वह निश्वास लेकर वहीं गिर पड़ा। उसके प्राण तिलमिलाने लगे। उसे अब किसीकी चिंता न रही, उसे तो मात्र इतना भान था कि भूख से वह छटपटा रहा था।

नेराने जबसे जन्म लिया तब से सदा आवश्यकतासे अधिक ही खाया था, कम नहीं। भूख शब्द का उसके लिए कोई अर्थ न था। अतः सचमुच की भूख की शक्ति का अनुभव करके उसकी सुध-बुध जाती रही।

कल दुपहर तक कैसे रहा जायगा। उसके पेट की अंतड़ियां इस प्रकार हिल उठीं मानो अनेक बिल्लियां पंजे से कुरेद रही हों। उसने उलटी करने का प्रयत्न किया—पेट पर हाथ धरा—किन्तु वेदना बढ़ती ही गई।

एकाएक उसे कुछ याद आया। कोठार पास ही था। कोठार! कोठार! उसके शुष्क मुख में पानी आया, किन्तु उसे आंबड़ महेता, देवा, गंगली का भय लगा। वे सब उसके प्राण ले लेंगे। उसकी दृष्टि कोठार के द्वार पर जो टिकी तो फिर नहीं हटी।

'एक-दो मुट्ठी खा लूंगा तो कोई न जानेगा,' उसने सोचा। वह लड़खड़ाकर उठ खड़ा हुआ, गिर पड़ा, पुनः उठ खड़ा हुआ। धीरे-धीरे हाथ-पाँव से चबूतरे पर चढ़कर कोठार के द्वार तक आया। उसने चारों ओर देखा—अंधकार था। कान लगाए—सुनसान था। थोड़ी देर तक वह पड़ा रहा, स्वभाव से शिथिल और भूख से व्याकुल अंतःकरण ने डंक मारा। डंक इतना हलका था कि भूख की वेदना से ही दब गया।

वह एकदम उठा और दीवाल का सहारा लेकर खड़ा हो गया। चारों ओर सन्नाटा था। रात गहरी हो चली थी अतः भूख और थकान से सभी निश्चिन्त होकर सोए पड़े थे। धीरे-से कोठार की सांकल खोली और चौकन्ना होकर देखने लगा। थोड़ी देर तक सुनता रहा किन्तु कोई शब्द नहीं आया। द्वार खोलकर वह अंदर गया।

वह क्या कर रहा था इसका उसे भान न था, वह तो मात्र यह

जानता था कि जो कुछ वह कर रहा है उससे क्षुधा शांत हो जायगी।

वह हाथ और घुटनों के बल होकर अनाज ढूंढ़ने लगा। अन्त में एक कोने में चार मटकियाँ मिलीं।

उसके मुंह से लार पड़ने लगी। उसकी अधीरता की सीमा न रही।

एक मटकी में हाथ डालने का उसने प्रयत्न किया किन्तु मुंह संकरा होने के कारण हाथ न जा सका। अंधेरे में उसकी आंखें चमक रही थीं। उसने मटकी को उलटकर अनाज से मुट्ठी भरी। मटकी में से दाल निकली देखकर उसने मुट्ठी खोल दी और दूसरी मटकी की ओर मुड़ा। जल्दी-जल्दी उसने मटकी उलटी की। उसमें से चावल निकले। वह तीसरी मटकी की ओर मुड़ा। उसमें से पिसा हुआ आटा निकला। इस समय उसकी दशा पागल की-सी थी। अविचारी विनाशक वृत्ति ही उसे प्रेरित कर रही थी। उसने चौथी मटकी उलटी। उसमें से भी आटा निकला। उसने अनाज और आटे का ढेर लगा दिया। अनाज का ढेर लगाने में नेरा की कल्पनाशक्ति को कलाकार को सृजन करने पर जैसा आह्लाद होता है, वैसा आह्लाद हुआ।

पागल की भांति वह हंसा और उस ढेर में बड़े प्यार से हाथ फेरने लगा। इतने में बाहर किसीकी पगध्वनि सुनाई पड़ी। वह चौंका। वह काँप उठा। ऐसा लगा कोई बिल्ली भागी है। उसने सोचा, अधिक देर यहाँ न रुकना चाहिए।

भूख के कारण उसकी आकुलता बढ़ी। राँधूं ? कैसे राँधा जाय ? कच्चा खाया जायगा ? ऐसे कई प्रश्न उसके मस्तिष्क में उठ खड़े हुए। उसका मस्तिष्क विक्षिप्त सा हो गया, ऐसा लगा मानो कोई तार टूट गया हो। पशु की लोलुपता से वह वहाँ पड़े हुए ढेर में से दो मुट्ठी भरकर खाने लगा। वह खड़खड़ हंस दिया—खाता ही चला गया। कच्चा आटा, चावल, और दाल बड़े वेग से लुप्त होने लगे।

अन्त में वह थक गया, गले में कुछ बेचैनी होने लगी। एक बार

खांसी आने पर मुंह में का सब आटा चारों ओर फैल गया। उसने पुनः खाना आरम्भ किया। किन्तु बेचैनी के कारण गले से नीचे कुछ उतरा नहीं। उसके पेटमें पीड़ा होने लगी। उठने की शक्ति न रही इसलिए वह वहीं अनाज पर गिर पड़ा। थोड़ी देर बाद कच्चे दानों ने भी अपना प्रभाव दिखाना आरंभ किया। उसके पेट में, गले में, उन्होंने तांडव नृत्य प्रारम्भ कर दिया। उसकी आँखें बावली हो गईं। उसने उठने का प्रयत्न किया किन्तु उठते ही गिर पड़ा। गिरते ही उलटी हुई, वर्षों मौन रहकर दासता करने वाली देह ने अंत में क्रांति कर दी। क्रांति ने महाविप्लव का रूप धारण किया।

मणिभद्र पिछले चबूतरे पर सोया हुआ था। वह एकदम उठा, कोठार से किसी बीमार का स्वर सुनाई पड़ा। वह दौड़कर आया। कोठार में कोई व्याकुल होकर मर रहा था। उसने मशाल जलाई और कोठार की ओर गया।

अनाज और आटे के ढेर में लोटता, समुद्र की तरंगों में नए तारे के हिलने-डोलने के समान तकुलाता, घबराता नेरा छटपटा रहा था.... कोठार कोढ़ के समान हो गया था। सारा अनाज निरर्थक हो गया था। उसके हाथ से मशाल गिर पड़ी और वह नेरा को उठाने के लिए दौड़ पड़ा।

: २ :

माता या अर्द्धांगिनी

मंजरी कच्ची नींद से जाग पड़ी। ऐसा लगा मानो बाहर कोलाहल हो रहा हो। उसका हृदय धड़क उठा। उसने भी आज एक ही समय खाया था इसलिए उसके सिर में पीड़ा हो रही थी।

उसने बच्चों की ओर देखा। महाश्वेता और वौसरि फूल की कलियों के समान एक दूसरे से चिपटकर सोये हुए थे। पल-भर के लिए माँ का हृदय स्नेह से उमड़ पड़ा।

साहस करके वह उठी, दीपक जलाया और फिर पुकारा, 'गंगली!'

गंगली एकदम चौंककर उठी, 'देवी!'

'कुछ कोलाहल सुनाई दे रहा है।'

गंगली दौड़कर ऊपर गई और खिड़की में से झुककर नीचे देखा, 'रसोईघर के निकट कुछ गड़बड़ है। ठहरिए, मैं देख आती हूँ।'

'नहीं,' मंजरी ने आज्ञा दी। 'तू यहाँ बच्चों के निकट बैठ। मैं देख आती हूँ।' कहकर कन्धे पर साड़ी डालकर वह जल्दी-जल्दी रसोईघर की ओर चली।

वहाँ मणिभद्र और देवा छटपटाते नेरा को चबूतरे के नीचे लिटा रहे थे।

'मणिभद्र!'

'अरे, देवी! आप कैसे? लौट जाइए। इधर आने जैसा नहीं है।'

'क्यों, है क्या?'

'कुछ नहीं' देवा ने कहा, 'यह हरामखोर कोठार में घुस गया था।'

मंजरी ने छटपटाते हुए नेरा की ओर देखा। वह कुछ-कुछ होश में था। कोठार में से दुर्गन्ध आ रही थी। कुछ सोचकर मंजरी चबूतरे पर चढ़ी और कोठार में झांका। मंजरी को घृणा हो आई और वह एकदम पीछे हट गई। उसे चक्कर आने लगे।

'देवी! यह आपका काम नहीं, आप जाइए।' मणिभद्र ने प्रार्थना की।

'कितना अनाज बिगड़ा?' मंजरी का हृदय बैठने लगा।

'जितना बच जाय उतना ही सही।' खेद-भरी वाणी में मणिभद्र बोला। उसके स्वर में निराशा थी।

मंजरी समझ गई और वहाँ से चली गई। उसे लगा कि विधि ने

अन्तिम प्रहार किया है। वह कुछ सोच न सकी।

अपने स्थान पर जाकर उसने गंगली को भेजा, 'देख, तेरा नेरा वहाँ छटपटा रहा है। उसने जाकर कोठार नष्ट कर दिया।'

'मरे.....' भृगुकच्छ के तेलीवाड़े के शब्द-लालित्य का प्रदर्शन करती हुई गंगली उठकर गई।

मंजरी हताश होकर बैठ गई। कम खाकर पन्द्रह दिन तक गढ़ को टिकाए रखने की उसकी इच्छा भंग हो गई। नेरा द्वारा किया हुआ थोड़ा-बहुत विनाश उसने देखा था, और शेष की उसने कल्पना कर ली। पन्द्रह दिवस छोड़ पाँच दिवस भी टिका जा सकेगा या नहीं, यह प्रश्न था। 'देव, तूने क्या सोचा है? उसने प्रश्न किया और सिर पर हाथ रख लिया। भूख और निराशा से उसका माथा फट रहा था। 'नाथ! जल्दी न लौटोगे?' उसने दीनता से आकाश की ओर देखकर प्रश्न किया।

उसने बच्चों की ओर देखा। कितने सुहाने, सुन्दर बच्चे! कितने सुन्दर स्वप्न देख रहे होंगे अभी! उनके नन्हें हृदय में माता और पिता के प्रति श्रद्धा थी। उन्हें विश्वास था कि उनका प्रतापी पिता अवश्य आ पहुंचेगा। किन्तु ये श्रद्धा और विश्वास कितने मिथ्या थे।

उसके निर्दोष बच्चे, उसका वीर पति, उसकी भावना, उसका प्रेम—सबका समय आ पहुंचा था। बच्चे व्याकुल थे, पति संभवतः कारागार में सड़ रहा हो या युद्ध में काम आया हो। उसकी भावना उसका प्रेम, उसके सभी स्वप्न अभी-अभी एक सैनिक ने धूल में मिला दिए थे। उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी।

क्या खाने का सब कुछ समाप्त हो जायगा? क्या वे सब भूखे मर जायँगे? क्या उसका पति सचमुच शीघ्र न लौटेगा? सबका यह अंत? उसने कपाल पर हाथ मारा और जाने कब तक रोती रही। महाश्वेता के मुख पर हास्य छा रहा था। नीचे झुककर उसने धीरे-से उसे चूम लिया। वह काँप उठी। अकस्मात् कुछ हो जाय और उनकी रक्षा होजाय तो ठीक, नहीं तो—'नाथ! नाथ तुम्हें देखने तक

नहीं पाएंगे !' उसका हृदय क्रंदन कर उठा ।

वास्तविक कसौटी का यही समय था। इस समय झुका कैसे जाय ? यदि वह बच्चों को लेकर बेनां के पास चली जाती है तो अवश्य उनकी रक्षा हो जाती है। उसकी नाक गर्व से फूल उठी । लाड़-प्यार में पले हुए बच्चे शत्रु के यहाँ दीन-हीन बनकर रहें ? और वह—काक की पत्नी—संरक्षण की याचना करे ? उसकी विशाल आँखें गर्व से दीप्त हो उठीं ।

स्वयं तो कभी गढ़ छोड़ने की नहीं । उसके होंठ गर्व से बन्द हो गए । यह गढ काक की दुर्धर्षता का प्रतिनिधि था। स्वयं—काक की दुर्जयता की उत्तराधिकारिणी—इस समय इसकी शरण छोड़कर चली जाय ? नहीं । काक की निष्कलंक कीर्ति के अवतार के समान वह प्राण रहते इसी गढ़ में रहेगी ।

किन्तु इन बच्चोंको तो यहाँसे हटा ही देना होगा । आँबड़ गढ़ छोड़कर शायद ही जाय । देवा या मणिभद्र भृगुकच्छ में छिपाने की कोई व्यवस्था न कर सकते थे । तो क्या इन बच्चों को तेलन के भरोसे छोड़ दे ? उसकी छाती काँप उठी । उसके सलोने बच्चे इस असंस्कृत तेलन की शरण लें ?

उसने बहुत विचार किया किन्तु इसके सिवा और कोई मार्ग सूझता ही न था । उसका हृदय फटने लगा । वह रह-रहकर काँप उठती थी । इन सुकुमार बच्चों को त्यागना होगा ? क्या फिर उनके मृदुल, मनोहर मुख न देख सकेगी ? उत्तर मिलने से पहले ही वह रो पड़ी ।

उसने रोना बन्द किया । वह अपने पति की अर्धांगिनी थी । उसकी कीर्ति के लिए अपने प्राण दे देना उसका कर्तव्य था। किन्तु इन बच्चों की क्यों न रक्षा की जाय ?

'पतिदेव ! भूल कर रही हूँ तो क्षमा करना,' वह रो पड़ी, 'क्षमा मांगने के लिए सम्भव है जीवित न रह सकूं ।'

उसने बच्चोंको भेज देनेका ही निश्चय किया । न जाने कब तक वह उनकी ओर देखती रही । इतने वर्षों से उनके मुख की अनदेखी

रेखाओं को एकाग्र होकर हृदय में उतारने लगी। 'कैसी माँ हूँ मैं ? अपने गर्व के लिए इन शिशुओं को आश्रयहीन कर रही हूं। इनका क्या होगा ?' पुनः उसकी आंखों से आंसुओं की झड़ी लग गई। उसके मन में एक प्रश्न उठा—'मैं किसकी ? अपने दुर्गपाल की या जिन्हें जन्म दिया उन बच्चों की ?' देर तक वह मौन बैठी रही। जननी तुम्हारा रक्षण न करेगी तो कौन करेगा ? नहीं—नहीं—नहीं। मैं तुम्हारी नहीं,इनकी हूँ। तुम प्यारे हो उससे अधिक ये प्यारे हैं। तुम्हारे बिना चल सकता है, इनके बिना नहीं....मेरे नाथने मुझे दोनों सौंपे हैं—उनकी कीर्ति और उन के बच्चे। बच्चों को छोड़ा जा सकता है ? कीर्ति ! कीर्ति ! लोग आज स्मरण करेंगे कल भूल जायँगे। बच्चे भी आज हैं कल नहीं। हाय ! हाय !' उसने क्रंदन किया, 'मैं माँ नहीं चुड़ैल हूँ।'

'मैं विश्वासघातिनी हूं ? मैं माँ हूं इसलिए मुझे बच्चे प्यारे हैं; मुझे कीर्ति भी प्रिय है क्योंकि मैं अर्धांगिनी हूं। ओह ! मां बनूं कि अर्धांगिनी ? रेवा मां !' वह पुनः रो पड़ी, 'कुछ तो मार्ग दिखाओ।'

'मां—मां—मां ! किसलिए मां बनूं ? बचपन से स्वप्नों में मैंने अपने काल्पनिक पति की सेवा की। जन्म से ही मैं मन से अपने वीर की अर्धांगिनी बनी हूं। मेरा वीर—मेरा वीर अन्त में आया और उसे मैंने प्राणों से भी अधिक प्रिय समझा। मेरा जीवन सफल होगया। मेरे स्वप्न सत्य होगए। वीर अंगकी मैं अर्धांगिनी हुई। मैं उनकी अर्धांगिनी हूं—और कुछ नहीं होना चाहती। नन्हो ! मेरी आंखों के तारो ! तुम्हारी मां पीछे—अपने वीर की अर्धांगिनी पहले ! मैं—मंजरी—काक की पत्नी—और कुछ नहीं।' उसने आंसू पोंछ लिए। 'मेरे नाथ ! मुझे इस जन्म में और जन्म-जन्मान्तर में, और कुछ नहीं चाहिए,हां ! अपने नाथ की वीरांगना !' वह उठ खड़ी हुई।

पूर्व दिशा में राजपीपला के कंगूरों पर उषा का प्रकाश फैल रहा था।

: ४ :

मां का हृदय

मंजरी उठी, और स्नानादि से निवृत्त हो मंदिर में जा बैठी । उस के अस्वस्थ चित्त को स्थिरता की बहुत आवश्यकता थी ।

जाने कब तक वह उमापति की आराधना करती रही; स्तवन, पुष्प और प्रार्थना द्वारा महादेव को सहायता की याचना करती रही । शनैः शनैः उसके अन्तर में शांति रमने लगी । रात को जो भय निःसीम हो उठा था वह इस समय शांत मन्दिर में निरर्थक लगने लगा । जो हो ठीक है —उसने अपना, अपने बच्चों का और अपने पति का भविष्य महादेव के हाथों सौंप दिया ।

जब वह मन्दिर से बाहर निकली तो आँबड़ महेता उसकी प्रतीक्षा में खड़ा हुआ था । उसका मुख निस्तेज था, उसकी आंखें चिन्ता-ग्रस्त थीं ।

'देवी ! सब सुन लिया ?' उसने खिन्न वाणी में पूछा ।

'हाँ भाई ! मैंने तो देख भी लिया । रात ही को उठकर देख आई थी । भाग्य ही प्रतिकूल है ।'

'अब क्या करेंगे ?' आँबड़ ने पूछा ।

'कुछ खाने के लिए बचा है ?'

'माणिभद्र और गंगली ने बड़ी कठिनाई से धो-धोकर कुछ दाल-चावल अलग किये हैं । उन्हें सूखने डाल दिया है ।'

'अच्छा' उन्हें सेंकने से काम चलेगा ।' स्वच्छता की परमपुजारिणी ने साहस से कहा ।

'चलिए, देख आएं ।'

वे दोनों धीरे-धीरे म्लान मुख से रसोईघर में गये । वहां सारी रात परिश्रम करके गंगली ने सब धोकर लीप दिया था । चबूतरे पर कुछ दाल-चावल सूखने को पड़े थे ।

'मणिभद्र !' आंबड़ बोला,'यह इतना ही है ?'

'हाँ, बापू ।' एक निःश्वास भरकर मणिभद्र रसोईघर से बाहर चला गया ।

गंगली बाहर बच्चों के लिए पानी गरम करने के लिए चूल्हा सुलगा रही थी । वह आई । दूर बैठा देवा सबको इकट्ठे देखकर निकट चला आया । सबके मुखों पर निराशा थी । अब क्या होगा, यही चिंता सबकी आँखों में, सबके मुखों पर, सबकी वाणी में स्पष्ट दीख पड़ती थी । सब बिना बोले ही समझ गए कि जीवन-मृत्यु का प्रश्न सामने खड़ा हो गया है ।

'सब एक बार भी खायं तो भी यह दो दिन से अधिक चलने का नहीं ।' अन्त में मंजरी ने गला ठीक करके कहा ।

भयंकर शांति छाई हुई थी । इस शांति से उत्पन्न व्याकुलता दूर करने के लिए थोड़ी देर बाद मणिभद्र ने ठण्डा आह भरते हुए कहा, 'अधिक-से-अधिक तीन दिन—हर भोलानाथ !'

'नेगा कैसा है ?' मंजरी ने पूछा ।

'उस झोंपड़ी में डाल दिया है । उसका जी ठिकाने नहीं है ।' तेलन ने उत्तर दिया ।

'अब क्या करेंगे ?' आंबड़ महेता ने प्रश्न किया । सभी के मस्तिष्क में यही प्रश्न था किन्तु कोई पूछ न पा रहा था ।

'भाई ! तुमने मुझे गांव में ले जाकर छिपने की सलाह दी थी न ?' मंजरी ने पूछा ।

'हाँ !' हठ छोड़कर मंजरी बच जायगी ऐसी आशा से आंबड़ का हृदय खिल उठा । मनुष्य-हृदय विचित्र होता है । मंजरी को उसी क्षण लगा मानो वह गौरव-भ्रष्ट हो गई है । 'तुम्हें—'

'नहीं ।' मंजरी बीच ही में बोल उठी ।

'बच्चों को यदि गंगली गांव में ले जा कर छिपा दे तो कैसा ?'

'और आप ?' मणिभद्र ने कहा ।

'भाई ! मेरी चिन्ता करना व्यर्थ है,' मंजरी ने गर्व से कहा। 'मैं तो यहीं तेरे भाई के दुर्ग में रहूंगी।' देवा की आंखों के सामने अंधेरा छा गया। छोटे बच्चे के समान उसने हाथ से आंसू पोंछ लिए।

'आंबड़ महेता ! क्या विचार है ?'

'देवी—देवी !' आंबड़ के हृदय में गर्व की तरंगें उठ रही थीं। 'तुम मनुष्य हो या देवी, मेरे समझ में नहीं आ रहा है। क्यों व्यर्थ हठ कर रही हो ?' बच्चों को आश्रयहीन कर रही हो और प्राण भी जोखिम में डाल रही हो।'

'भाई !' मृदुलाता से मंजरी ने कहा, 'मैं रात-भर विचार करती रही। गंगली यहाँ आई है यह कोई नहीं जानता। तेलीवाड़े में मेरे बच्चों को खोजने कोई जायगा नहीं, अतः किसीको कोई डर न रहेगा। रहे हम लोग, सो यहीं पड़ रहेंगे।' कहकर उसने गर्व से अपने तेजस्वी देह की ओर देखा, 'हम चलेंगे तो उलटे बच्चे भी पकड़ा जायँगे।'

'मैं तो जाऊंगा ही नहीं, जब तक पाटण की ध्वजा यहाँ फहरा रही है तब तक यहाँ का सत्ताधीश मैं हूँ—मैं खिसकने का नहीं।'

'तो भाई !' मंजरी ने भावावेश से कांपती हुई वाणी में कहा, 'तुम्हें तो दूसरों की टेक की रक्षा करनी है किन्तु मुझे तो अपनी ही टेक की रक्षा करनी है। मैं कैसे जाऊं ?'

'किन्तु तब होगा क्या ?'

'होगा क्या ? कुछ दिवस पश्चात् आंबड़ महेता इस कुक्कुट-ध्वज की रक्षा करते हुए प्राण देंगे और, मैं—सरिता में आती नौका—' मंजरी के गले में स्वर रुंध गया। उसने गला खखार कर कहा—'नौका की प्रतीक्षा करते हुए देह त्याग दूंगी।' मंजरी के क्षीण मुख पर दृढ़ता थी। दुःख में, खेद में, निर्बलता में भी वह लक्ष्मी के समान ही तेजस्वी थी।

'देवी ! जहाँ आप वहाँ मैं। हर भोलानाथ ! मैं आपके चरणों की

रज सिर चढ़ाते-चढ़ाते मर जाऊंगा।' मणिभद्र ने खोखली हंसी हँसकर कहा।

आंबड़ महेता से कुछ न बोला गया। उसकी दृष्टि के सामने संपूर्ण संसार तैर रहा था।

'गंगली! तुझसे यह हो सकेगा?'

गंगली इस तेजस्वी स्त्री की ओर देखने लगी। उसका असंस्कृत हृदय सम्मान और सेवा के भाव से भर आया।

'देवी! तनिक भी चिन्ता न करो। मैं 'कीकाभाई' और 'कीकी बहन' की जब तक देह में प्राण हैं तब तक रक्षा करूंगी। किन्तु गांव में जाऊंगी कैसे?'

'चौकी पार करना सहज काम है,' देवा ने कहा।

'तो ठीक है, रात को गाँव में जाना भी सरल होगा।' गंगली ने कहा।

'और इतने में यदि दुर्गपाल आ पहुंचें तो फिर कोई चिन्ता नहीं—' अमर आशा को व्यक्त करते-करते मंजरी का मुख पुलक उठा, 'गंगली! उस नेरा का क्या होगा?'

'देवी! तनिक भी न घबराओ,' हँसकर गंगली ने कहा, 'उसे कुछ न होगा, और होगा भी तो नायक सब ठीक कर देगा।' मंजरी इस स्त्री की सेवा-वृत्ति और उसके कठोर हृदय दोनों को ठीक से न समझ सकी।

'चलो, मैं बच्चों को उठाती हूँ।' कहकर मंजरी वहाँ से चल दी। मौन होकर आँबड़ महेता उसके साथ हो लिया। 'भाई!' कुछ देर पश्चात् मंजरी ने म्लान मुख से हंसकर कहा—'चिन्ता क्यों करते हो? देवा मां ने जो सोचा होगा वही होगा।'

'देवी! किन्तु आपको कु—'

'मुझे कुछ नहीं होने का। तुम पाटण के लिए, और मैं अपने पति के लिए मृत्यु-पर्यन्त इस गढ़ में रहेंगे। जाओ, अब स्नानादि से

निवृत्त हो लो। इस प्रकार निराश क्यों होते हो ?' मंजरी अपने स्थान पर चली गई।

आंबड़ देखता रहा। 'कैसा रूप और गुण !' उसके मुख पर भक्ति भाव छा गया। 'निश्चय ही रेवा माँ की अवतार हैं।' वह नर्मदा की ओर देखकर वहाँ से चल पड़ा।

मंजरी ऊपर गई और सोते हुए बच्चों की ओर कुछ देर तक देखती रही। उसके अन्तर में से वात्सल्य की सरिता सम्पूर्ण वेग के साथ बह रही थी।

वह दोनों बच्चों के बीच में सो गई, धीरे-से दोनों के सिर के बीच में अपना सिर रखकर दोनों पर एक-एक हाथ रख दिया। दोनों बच्चों ने आंखें खोलकर मां का सिर देखा और हंस पड़े। मंजरी ने पड़े-पड़े दोनों के सिर दो हाथों में लेकर छाती से चिपटा लिए।

'उठो, अब तक सो रहे हो ?' उसने हंसते-हंसते कहा। इस हास्य के लिए उसे प्रयत्न करना पड़ा था, किन्तु बच्चे इसे न परख सके। उसके आलिंगन में मातृहृदय की उमड़ती भावनाएँ थीं।

इन बच्चों से आज उसकी अंतिम भेंट थी। आज से वे दयाहीन पराए लोगों की शरण में चले जायँगे, माता की भाव-भरी दृष्टि फिर कभी उन पर न पड़ेगी, अंतर की वेदना का अनुभव कर वह उठ बैठी और दोनों का पुनः आलिंगन कर लिया।

बच्चों को दातौन करवाकर नहलाने के लिए उन्हें कुएं पर ले गई। गंगली गरम पानी ले आई। रह-रहकर उसने उनकी ओर देखा, उन्हें घिस-घिसकर स्नान कराया। स्नान से स्वच्छ और तेजस्वी हुए बच्चों को वह गर्व से देखती रही। वह उन्हें फिर कभी स्नान न करा सकेगी, यह सोचकर उसका हृदय फटने लगा। बच्चे न देख सकें इस प्रकार सिर नीचा करके उसने आंसू पोंछे और फिर उनका चुम्बन किया।

उन्हें वह महादेव के मंदिर में ले गई और स्तवन कराया।

'बेटी महाश्वेता !' उसने लड़की से कहा, 'तुझे और 'कीकाभाई'

को आज गंगली के साथ गांव जाना है।'

'और तुम ?' महाश्वेता ने करुणापूर्ण मुख से मां की ओर देखा। वौसरि पूरा-पूरा समझ न पाया किन्तु आंखें फाड़कर उत्सुकता अवश्य प्रकट कर रहा था।

'मैं यहीं रहूँगी,' मंजरी ने कहा। वह सिसक उठना चाहती थी किन्तु किसी प्रकार उसने अपने को वश में किया। 'और तेरे पिताजी आयंगे तो आऊंगी, अच्छा !'

'पिताजी कब आयंगे ?' वौसरि ने तुतलाती वाणी में पूछा।

'भाई, कल आएंगे।' मंजरी ने उनके सिर पर हाथ फेरा।

'तो हम भी कल जायँ तो ?'

'नहीं भाई ! जाना आज ही पड़ेगा। तू तो समझदार है न ? युद्ध का समय है। गंगली तुझे सम्भालकर रखेगी।'

'अपने घर ?' वौसरि ने पूछा।

'नहीं, गंगली के घर। इसका घर बहुत अच्छा है, चलो।' मंजरी अब और अपने को सम्भाल न सकी। किसी प्रकार आंसू रोककर वह बच्चों को लेकर अपने निवास-स्थान पर आई। महाश्वेता माधुर्य का अवतार थी। क्या बोले यह उसे न सूझा, किन्तु आंसुओं से सूजी हुई आखें देखकर उसके नन्हे हृदय को चोट लगी। चोटी हिलाते-हिलाते उसके मस्तिष्क में न जाने कैसे-कैसे विचार आए।

'मां !' उसने साहस से गर्दन ऊपर उठाकर पूछा, 'पिताजी न आएंगे तो ?'

मंजरी का मुख पीला पड़ गया उसके होंठ कठोर होगए। 'आएंगे क्यों नहीं?' उसने साहस प्रकट किया। 'देख बेटी ! तू तो बड़ी है। भाई का ध्यान रखना, हां ! इसे कष्ट मत देना।'

'माँ, मैं नहीं जाऊंगा।' वौसरि ने कहा।

'अरे, क्या पागल हो गया है ? देख, माँ का कहना मानेगा न ?'

'नहीं, मैं नहीं जाऊँगा।' लड़के ने कहा।

मंजरी से न रहा गया। वह सिसक उठी।

'माँ! तू रोती क्यों है?' एकाएक वौसरि ने पूछा।

'तू मेरी बात नहीं मानता इसलिए।' मंजरी रो पड़ी।

'माँ! मानूंगा, माँ! मानूंगा। मैं जाऊंगा।' वौसरि ने मंजरी की ठोड़ी पकड़कर उसकी गर्दन घुमाई। वह हंस रहा था। जाना तो उ के लिए खेल था अतः माँ प्रसन्न हो जाय और खेल-का-खेल हो जाय, इन दो बातों में उसे कोई हानि न दिखाई दी।

'मेरा अच्छा समझदार भाई! चलो, हम कोट पर घूम आवें।'

मंजरी बच्चों को लेकर घूमने गई। उसने बच्चों को दौड़ाया, खिलाया, हंसाया। प्रतिपल उसे यही लग रहा था कि मातृपद का आज अन्तिम दिवस है। बच्चे थक गए थे; वह उन्हें लौटाकर ले आई।

मणिभद्र मामा बच्चों के लिए खाने को ले आए जिसे उन्होंने खाया, ज्यों-त्यों करके मंजरी ने उन्हें सुला दिया। दोनों बच्चे व्याकुल थे अतः रह-रहकर जाग पड़ते थे और नींद में उसाँसें भरते थे।

मध्याह्न होने पर मंजरी ने भोजन किया और फिर थकी-हारी जी को किसी दूसरी ओर लगाने के लिए लेट गई। आज सम्पूर्ण गढ़ में उदासी छाई हुई थी। कोई किसी के साथ बोल नहीं रहा था। सभी मंजरी की अंतर्व्यथा समझते थे और मौन रहकर ही अपनी सहानुभूति प्रकट कर रहे थे।

बच्चों को छोड़कर मरना बहुत दुःखपूर्ण वस्तु है। किन्तु बच्चों को अपने सामने ही प्राण देते देखना तो इससे भी अधिक दुःखदायक है; और बच्चों को स्वेच्छा से त्याग देने की व्यथा तो अकल्पनीय है। जैसे-जैसे उनके जाने का समय निकट आने लगा वैसे-वैसे मंजरी के हृदय के तार खिंच-खिंचकर टूटने की तैयारी करने लगे। उसके अंतर में एक व्यथा तो थी नहीं, हजारों थीं। दुःखों का कोल्हू पल-पल उसके प्राणों को पीस रहा था।

बच्चों को फिर नहीं देख सकेगी; उनकी किलकारियां फिर न सुन

सकेगी, उनके हास्य के साथ हँस न सकेगी। किन्तु अपने ही हाथों उन्हें निराधार,दूसरों का आश्रित बनाकर स्नेहहीन जगत में भटकनेके लिए छोड़ देने से और बड़ी क्या व्यथा हो सकती है? अब किसके पास बच्चे रोएंगे। किसके पास हठ करेंगे? किसकी गोद में चढ़ कर बैठेंगे? और स्वयं को बच्चों के होते हुए वंध्या से भी निकृष्ट दशा हो जायगी। बच्चों के बिना वह जिएगी कैसे?

उसने धरती पर सिर रखकर अपनी कनपटी दबाई। 'कल मुझे माँ कहकर कौन बुलाएगा? और कल तुम्हारा क्या हाल होगा?' उसकी आँखें सजल हो गईं। 'मैंने तुम्हें जन्म दिया और आज इस प्रकार निराधार कर रही हूँ, मेरे जैसी अभागी भी कोई होगी?....कितने सुन्दर हैं?' ऐसे बच्चों की माता कितनी भाग्यशाली होती होगी?' वह गुनगुना उठी, 'धन्यास्तदन्य रजसा मलिनी भवन्ति।'

'हाँ, इस समय मैं भाग्यशाली हूं, रात को हतभागी हो जाऊंगी। लाड़लो! किसी दिवस मुझे याद तो करोगे न?'

धीरे-धीरे सूर्य अस्त होने लगा। मंजरी रो-रोकर थक गई। बच्चे उठे। उन्हें पुनः भोजन कराया, वस्त्र पहिनाए। वह बच्चों को लेकर गढ़ पर चढ़ गई और एक टक पश्चिम दिशा की ओर देखने लगी। नदी के संपूर्ण पाट पर एक बगुला तक नहीं दृष्टिगोचर हो रहा था। वह व्याकुल हो उठी।

'माँ! क्या देख रही है?'

'तेरे पिताजी इस समय आने वाले हैं।' मंजरी ने सुनाई पड़ने वाली वाणी में कहा।

'आ गए?' बौसरि ने पूछा।

'नहीं।'

वह बहुत देर तक नदी की ओर देखती खड़ी रही। बच्चों के साथ बोलने का उसमें साहस न रहा। वहाँ से हटकर वह देवल के चबूतरे पर बैठ गई।

सन्ध्या होते ही आँबड़ महेता, मणिभद्र और गंगली आये।

'समय हो गया ?'

'नहीं अभी समय है। देवा तैयार होने गया है।'

'मां ! जाने का समय हो गया ?' महाश्वेता ने पूछा।

'हां, बेटी। गंगली ! तैयार हो गई ?'

'गंगली !' आँबड़ ने कहा, 'ले यह कड़ा। यदि तुझे कोई आवश्यकता हो तो मेरा भाई वाहड़ महेता है। खम्भात में खोजने पर मिल जायगा। उसे यह पत्र देना। तेरी वह बहुत सहायता करेगा।'

गंगली ने चुपचाप कड़ा ले लिया और कमर में बांध लिया।

'जितना शीघ्र हो सके पाटण जाकर त्रिभुवनपाल महाराज की रानी काश्मीरादेवी को बच्चे सौंप आना।' मंजरी ने कहा।

'अच्छा देवी ! आप तनिक भी चिन्ता न कीजिएगा। भोलानाथ करेंगे तो सब ठीक हो जायगा।' तेलन की आंखों में आंसू आ गए।

वौसरि ने जमुहाई ली। 'थोड़ी देर हो जाय तो चिन्ता नहीं, इसे तनिक सुला लूं।' कहकर मंजरी कुछ खिसकी और थोड़ी दूर बैठकर वौसरि को थपथपाकर सुलाने लगी।

मंजरी को लगा मानो वह अपने पुत्र के गले पर कटार फेर रही हो। थोड़ी देर में वौसरि सो गया।

'बेटी महाश्वेता !' मंजरी ने आलिंगन करते हुए कहा, 'जाते समय रोना मत, हां ! तू तो वीर है न ?'

'माँ !' महाश्वेता रो पड़ी। 'तुम्हारे बिना मुझे कैसे अच्छा लगेगा ?'

'तेरे पिताजी के आते ही मैं आ जाऊँगी। देख, तू तो समझदार है भाई को सँभालना और काश्मीरादेवी के यहां सयानी बनकर रहना। और तेरे पिताजी—' मंजरी न बोल सकी—'देख तेरे पिताजी आवें तो उनकी सेवा करना, मेरी लाड़ली !'

'—और मां तुम ?' अधीर होकर सिसकते हुए महाश्वेता ने पूछा।

'मैं न आऊँ—तो—मुझे...भूल मत जाना।' मंजरी सिसक उठी। साहस करके उसने आँसू रोक लिए और वौसरि को उठा लिया।

उसकी आँखों में स्थिर तेज प्रकट हुआ। गर्दन ऊंची करके दृढ़ता से वह द्वार तक गई और वौसरि को गँगली के हाथों पर रख दिया। 'गंगली ! मेरे प्यार में पले पुष्पों को सँभालना।' मंजरी ने निःश्वास लिया। सबकी आँखें सजल हो गईं।

'देवा !' आंबड़ ने कहा, 'पथ में असुविधा तो नहीं होगी न ? न हो तो तो मैं आऊँ।'

'बापू ! तनिक भी चिन्ता न करो। गंगली को ठीक स्थान पर पहुँचा दूंगा।' कहकर उसने ज़ोर से नाक साफ की।

देवा खिड़की खोलकर बाहर गया और वौसरि को थाम लिया। इसके बाद महाश्वेता को बाहर लिया। उस वीर बालिका ने एक शब्द बोले बिना हाथों ही से माँ से विदा मांगी।

उसके नन्हें नासमझ हृदय में इस समय न जाने क्या-क्या उठ रहा होगा ? किन्तु क्या—यही तो समझ नहीं पड़ता था। वह मात्र रो-रो उठता था।

'बेटी ! अच्छी रहना !' मंजरी ने कहा। देवा ने खिड़की बन्द की और आँबड़ ने अंदर से ताला लगा दिया।

मंजरी अधिक समय तक वहां खड़ी न रह सकी। वह अकेली जल्दी -जल्दी गढ़ के कँगूरे पर चली गई।

इतने अपार शोक में कोई उसे सांत्वना देने का साहस न कर सका।

: ५ :

देवा और नेरा एक ही मार्ग पर

मंजरी कँगूरे पर चढ़ गई। नदी का पाट ज्योत्स्ना में डूबा हुआ था। निर्मल आकाश से शांत चन्द्र मानवपीड़ा का उपहास करता हुआ देख रहा था।

जिस प्रकार हिंसक पशु की आँखों की ओर देखकर उसका अहेर उस पर से दृष्टि नहीं हटा सकता उसी प्रकार मंजरी नदी में कौमुदी के प्रतिबिम्ब पर से दृष्टि न हटा सकी। कौमुदी और उसके प्रतिबिम्ब से तो उसकी पुरानी मैत्री थी। भृगुकच्छ आने के पश्चात् शायद ही कोई ऐसी पूर्णिमा बीती हो जिसके आह्लादका आस्वादन उसने न किया हो। इस समय वह कटु लगते हुए भी आकर्षक लग रही थी।

एक प्रकार की शून्यता उसके हृदय में घर कर गई थी। न वह विचार कर सकती थी, न भावनाएं ही जागरित हो रही थीं। प्रस्तर मूर्ति की भाँति वह खड़ी हुई थी। उसकी निस्तेज आँख नदी के ज्योत्स्नामय पाट पर टिकी हुई थीं।

नेरा द्वारा किये गए विनाश में से बचे हुए दाल-चावल को सेंक-बाँटकर बनाई हुई 'राबड़ी' मात्र ही उसने दुपहर को पी थी। सम्पूर्ण दिन उसका उद्वेग में कटा था। सन्ध्या को मन की स्थिरता बनाए रखने के लिए उसने भारी प्रयत्न किया था। इस समय उसके पेट और माथे पर शारीरिक निर्बलता अपना प्रभाव दिखा रही थी किन्तु इस ओर ध्यान दे सके इतना भान उसे न था। दुःखों ने उसे जड़ बना दिया था।

एक भटका हुआ पंछी फड़-फड़ करता हुआ कोट से टकरा कर उड़ गया। उसकी फड़फड़ाहट से मंजरी की जड़ता भंग हुई। उसने घबराकर चारों ओर देखा, और धड़कते हृदय को हाथों से दबाया। उसकी सब भावनाएं तीव्र हो उठीं। भूख, अस्वस्थता, निःसहायावस्था, वात्सल्य-पीड़ा, पति विरह सभी भावनाओं का उसे ध्यान हुआ। कोट पकड़कर

वह खड़ी रही। उसके दुःखों का कहीं कूल-किनारा न था।

वह धीमे-धीमे महादेव के मन्दिर में गई किन्तु कल न पड़ी। जिस देवता ने उसकी यह दशा की उससे और अधिक क्या कहे ?

थोड़ी देर पश्चात् खोजता-खोजता मणिभद्र आया।

'देवी ! रात बहुत होगई, अब सो जाइए, नहीं तो जी बिगड़ जायगा।'

'अच्छा, भाई !' बड़ी कठिनाई से उसने उत्तर दिया। 'आँबड़ महेता सो गए ?'

'नहीं। वे तो देवा की प्रतीक्षा में बैठे हुए हैं। वे बहुत बेकल हैं।'

'देवा अभी तक नहीं आया ?'

'नहीं।'

'क्यों क्या हो गया ?'

'नीचे पहरा बहुत कठोर है इसीसे विलंब होगया होगा। किन्तु देवा बहुत चतुर है, सोचा हुआ काम करके रहेगा।'

'और उस नेरा की क्या दशा है ? मैंने उसे देखा ही नहीं है।'

'देवी ! उसकी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है।'

'क्यों ?'

'गंभीर विशूचिका हो गई है। घड़ी-दो-घड़ी का अतिथि है।'

'अरेरे !—और वह बेचारी गंगली—'

'वह सुखी हो जायगी। अब आप नीचे चलिए और तनिक विश्राम कीजिए।'

'चलो, मैं आँबड़ महेता को देख लूं।' कहकर मंजरी होंठ दबाकर आगे बढ़ी। एकाएक उसके पेट में शूल उठा और वह बैठ गई। मणिभद्र उसकी सहायता को दौड़ा।

'कुछ नहीं।' हाँपती हुई मंजरी मणिभद्र को विश्वास दिलाने के लिए क्षीण हंसी हंसकर बोली, 'सभी ने मुझे फूल की तरह रखा है, तो ऐसा तो होगा ही।'

मणिभद्र इस सुकुमार स्त्री के साहस पर मुग्ध हो गया। कुछ देर पश्चात् होंठ दबाकर वह कोट का सहारा लेकर सीधी खड़ी हो गई और मणिभद्र का सहारा लेकर द्वार की ओर चली।

द्वार के सामने हाथ से पेट को दबाये हुए उदा महेता का सुकुमार कुँअर पाटण के गौरव की रक्षा कर रहा था। वह खड़ा-खड़ा सोच रहा था कि अपने पिता की सलाह मानकर अपने भाई के समान एकाहार किए होते तो इस समय यह दशा न होती। सम्पूर्ण जीवन आनंद में व्यतीत करने के कारण भूख बहुत अधिक पीड़ा पहुंचा रही थी।

'भाई! कैसे हो?' बड़ी कठिनाई से मंजरी के शुष्क कंठ से स्वर निकला।

'अच्छा हूं।' पेट पर से हाथ हटाते हुए आँबड़ बोला, 'अब आप सो जाइए।'

'देवा के लौट आने पर सो जाऊंगी।'

'उसे विलम्ब होगा। तनिक लेट तो जाइए।'

मंजरी जानती थी कि उससे और अधिक न बैठा जायगा अतः वह बोली, 'अच्छा, देवा आजाए तो मुझे सूचित करना।'

'अच्छा बहन।'

चंद्रमा के प्रकाश में मणिभद्र के हाथ पर हाथ रखकर जैसे-तैसे चल रही सुकुमार सुन्दरी की ओर आँबड़ स्नेह-भरी दृष्टि से देखने लगा। 'बेचारी की कैसी दशा है! उसकी सहायता करने जितनी शक्ति ही यदि प्रभु दे देता तो!' दुःखी अवस्था में भी उसे साहस का संचार हुआ। सम्पूर्ण विश्वमें वह और यह निःसहायावस्था में एक साथ मिले हैं। यह निःसहायावस्था न होती तो मिलते कैसे?'

जैसे ही मंजरी जाकर लेटी उसे नींद लग गई। किन्तु थोड़ी ही देर पश्चात् पुनः जाग पड़ी। द्वार के सामने कोई बात करता-सा लगा। बच्चों का क्या हुआ? वह एकदम उठी, साड़ी ओढ़ी और नीचे उतरकर जितना शीघ्र बन सका द्वार की ओर गई।

देवा भूमि पर पड़ा हुआ था और आँबड़ मशाल जलाकर उसकी ओर देख रहा था। मंजरी के पेट में दबका पड़ा। वह दौड़कर गई।

'क्या है ?'

'कुछ नहीं देवी !' देवा गले पर हाथ रखकर बोल रहा था, 'कीका-भाई और बहन और गंगली सुरक्षित पहुंच गए हैं। चौकी पार कर ली, किंतु मैंने कहा नहीं था।' वह साँस बिलकुल नहीं ले पा रहा था और उसके मुंह में झाग आ रहे थे। उसके गलेमें एक तीर लगा था। उसका पिछला भाग दिखाई दे रहा था।

'किन्तु तुझे यह क्या लगा है ?'

'देवी !—मैं लौट रहा था। झाड़ीमें कुछ खड़खड़ हुआ और किसी चौकीदार ने तीर मारा। मैंने कहा न था—मेरी झोंपड़ी पर यों ही उल्लू नहीं बोलता।' देवा ने गर्दन हिलाते हुए कहा। उससे स्पष्ट बोला नहीं जा रहा था और उसकी जिह्वा अटकी-अटकी पड़ती थी।

'देवा !' आँबड़ बोला, 'तीर निकाल लूं ?'

'नहीं—बा—पू, नहीं।' गर्दन को एक ओर लुढ़काते हुए देवा ने कहा, अदर घुस गया है। निकालोगे तो—मेरा समय आ गया है। अभी नहीं। ओह—देवी—देवी—भाई आवें तो कहना—कि—देवा ने भूलकर—को—को—ठार फेंक दिया। मेरे भाई ! भाई।' वृद्ध की आंखें पथराने लगीं। मंजरी उसके निकट जाकर बैठ गई और उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगी। थोड़ी देर पश्चात् वृद्ध की मूर्छा कुछ दूर हुई। उसने आंखें फाड़कर मंजरी की ओर देखा।

'देवी ! 'कीका...भाई' सुरक्षित हैं। सोए....हुए थे। किसीने नहीं देखा। देवी ! भाई—ओ भाई—देवी !' उसने गले पर हाथ रखा। 'पानी !' उसकी आंखें फिरने लगीं। मणिभद्र दौड़कर पानी लाया और उंगली से देवा के मुँह में डाला। 'देवी....भोलानाथ....भला करे। जाइए....आ....प जाइए। आपस दखा न जायगा। हर....भोलानाथ।'

'तू घबरा मत,' मंजरी ने कहा। 'कुछ दवाई लाऊँ।'

'देवी—देवी ! इसकी दवा....होती....ही....नहीं....जाइए ।' वृद्ध ने चिढ़कर कहा, 'आप....जाइए...नही देखा जायगा ।'

मंजरी वृद्ध का मन रखने के लिए उसे मणिभद्र को सौंपकर उठ खड़ी हुई ।

'देवा ! मैं जाती हूँ ।'

'जा....इए.... दे....वी...ओ...ओ,' कहकर उसने पुनः अपना गला पकड़ा ।

मंजरी जल्दी-जल्दी चली गई । उसका मस्तिष्क काम नहीं कर रहा था और उसे चक्कर आरहे थे ।

मंजरीके चले जाने पर देवा ने तीर निकालने के लिए कहा । आँबड़ ने उसे धीरे-से खींच लिया; घाव में से वेग से रक्त बह निकला । वृद्ध का सिर मणिभद्र के हाथ पर लुढ़क गया । उसके गले में थोड़ी देर तक घरघराहट हुई; उसकी आंखें फट गईं । उसके प्राण निकल गए ।

'हर-हर शंभो' मणिभद्र ने कहा, 'आँबड़ भाई !' शव को धरती पर लिटाकर मणिभद्र उठ खड़ा हुआ, 'यमराज पुनः आ पहुंचा है ।'

आँबड़ पीला पड़ गया था । उसने कल्पना भी न की थी कि इतनी विडंबना, इतने दुःख, और इतने संकट का सामना करना पड़ेगा । किंतु आपत्ति के समय में उसका आत्मबल घटा नहीं ।

'मणिभद्र ! जो पार्श्वनाथ भगवान् करें वही ठीक । इसे चलकर अभी ही जला दे ।'

'भाई, उसकी भी तो ऐसी ही दशा है ।'

'किसकी ? नेरा की ?'

'हां ।' दोनों चुपचाप जिसमें नेरा पड़ा था उस झोंपड़ी में गये । नेरा को गम्भीर विशूचिका हो गई थी । इस समय दूर ही से उसका श्वास सुनाई पड़ रहा था ।

दोनों जाकर झोंपड़ी के द्वार के सामने ही खड़े हो गए, क्योंकि अन्दर से आती हुई दुर्गन्ध असहनीय थी । नेरा को 'एकदंडी' श्वास

चल रहा था। यम के सान्निध्य से वे दोनों अपने दुःख को भूल गए और त्रास से उनके हृदय बैठ गए। एक ही दिवस में उनका जीवन-स्रोत वेग से अन्त की ओर प्रवाहित होने लग गया था।

आधी घड़ी में नेरा का श्वास बन्द हो गया। आंबड़ और मणिभद्र को कँपकँपी छूट गई।

'भाई !' मणिभद्र बोला, 'तुम उस ओर लकड़ियां चुनो तब तक मैं इसे स्नान करा दूं। इसके पश्चात् दोनों को चिता पर रख देंगे।'

आंबड़ महेता चुपचाप काममें लग गया। उसका उत्साह ठण्डा पड़ गया था। जो जीवन-भर उस पर नहीं बीता वह एक दिनमें बीत गया।

मणिभद्र कुंए से पानी ले आया और जैसे-तैसे करके नेरा के गंद शव को पानी से धोया। आँबड़ महेता के आने पर दोनों ने उसके शव को चिता पर रखा, देवा के शव को भी लाकर चिता पर रख दिया।

मणिभद्र ने कुछ मन्त्र पढ़कर चिता में आग लगा दी।

मणिभद्र से आंबड़ बोला, 'मुझे चक्कर आ रहे हैं। मैं जाता हूं। मुझसे खड़ा नहीं रहा जाता।'

'जाओ ! सो जाओ। लकड़ियाँ थोड़ी जलने लग जायं तो मैं भी आता हूँ।'

'मैं देवी के निवास-स्थान के नीचे के कमरे में बैठा हूं। मुझे देवी से दूर सोना अच्छा नहीं लगता। उनका भी जी अच्छा नहीं है।' जैसे-तैसे चलते हुए आंबड़ बोला।

'हाँ, यही ठीक है।'

मणिभद्र का शरीर परिश्रम, व्रत और उपवास करके पुष्ट हो गया था। अतः निर्बलता को छोड़ इस समय उसे और किसी बात का अनुभव नहीं होरहा था। किन्तु अभी-अभीके परिश्रम से वह भी थक गया था।

कुछ देर तक वह चिता की ओर देखता रहा, अग्नि ठीक प्रकार से जलती देखकर वह जाने के लिए उठा। 'चलो जीव ! अब और ठहरने

से क्या होगा ? हर भोलानाथ ! जाने किस नक्षत्र में मैं भृगुकच्छ आया। उस पर से सामने यति मिल गया था ! हर-हर-हर-फिर क्या है ?'

देवा के भाग्य में नेरा की संगति लिखी थी सो मिथ्या नहीं हुई।

: ६ :

नाथ की आज्ञा

जिस समय मंजरी अपने वास-स्थान तक आई उस समय उसके हृदय की आकुलता अपनी पराकाष्ठा को पहुंच गई थी। उसने सब कुछ धैर्य से सहन किया था, किन्तु मृत्यु के घातक दर्शन से वह साहस खो बैठी। इस समय वह न वेदना और न दुःख का अनुभव कर रही थी, किन्तु त्रास उसके रोम-रोम में समाया हुआ था। सुख, शांति और लाड़-प्यार में पली वह सुन्दरी आज के प्रसंगों से छली जाकर मरने जैसी हो गई थी। वह सिहर उठी। कहां जाऊँ ? क्या करूं ? किसकी शरण जाऊं ? घोर निराशा से त्रस्त—वह उत्तर न खोज सकी।

वह अपने वास स्थान पर आई। मणिभद्र का 'हर-हर शंभो' सुना और काँप उठी। देवा मर गया, नेरा मरने को पड़ा था, कल किसकी बारी होगी ? मणिभद्र की, आँबड़ की या उसकी ?

उसने बिस्तर पर लेटकर कानों पर हाथ रख लिए। 'ओः !' इस जीवलेवा त्रास में उसे रोने की भी इच्छा न हुई। उसे सोना भी अच्छा न लगा। वह उठ बैठी। खिड़की में खड़ी रही। नदी की ओर देखने लगी।

'माँ ! माँ ! तू सुनती क्यों नहीं ? क्या कर रही है ? हमारा क्या होने को है ? मेरे दुर्गपाल कहाँ ! मैं कहाँ ! बच्चे कहाँ ! दुर्गपाल !

नाथ ! तुम भी निर्दयी हो गए ? तुम कहाँ चले गए ? तुम्हें क्या हो गया है ? जयसिंहदेव ने मरवा दिया ?' उसके धड़कते हुए हृदय में नया धक्का लगा। 'नहीं, नहीं, किसकी मजाल कि तुम्हारा बाल भी बाँका कर सके।'

'किन्तु मैं किधर जाऊं ? नाथ ! नाथ ! तुम मुझे क्यों छोड़ गए ? तुम निकट होते तो मरना भी प्यारा लगता। तुम्हारी गोद में सिर रख-कर तो मरती.....'

'क्या यमदूत आ पहुंचा ? उन्हें फिर न देख सकूंगी ? अपने बच्चों को न खिला सकूंगी ? अकेली और निःसहाय इस गढ़ में मरूँगी ? मेरे प्रीतम ! तुम्हें देखे बिना मेरे प्राण कैसे निकलेंगे ?'

वह बोल न सकी। उसका जी भर आया। वह धाड़ मारकर रो पड़ी। वह उठ बैठा और मुँह ढंककर रोने लगी। 'मेरे नाथ—मेरे—स्वामी—' को छोड़ और कोई शब्द नहीं निकल रहा था।

वह देर तक रोती रही और पागल की भाँति बोलने लगी। धीरे-धीरे रोने का वेग कम हुआ, अब वह क्रन्दन करने लगी, 'नाथ ! नाथ ! यह क्या कर रहे हो ?'

हा नाथ हा महाराज हा स्वामिन्किं जहासि माम्।
हा हातास्मि विनष्टास्मि भीतास्मि निर्जने वने ॥
ननु नाम महाराज धर्मज्ञः सत्यवागसि।
कथं विधंस्त्वं हि तथा सुप्तामुत्सृज्य मांगत ॥
कथमुत्सृज्य गन्तासि वश्यां भार्यामनुव्रताम्।
विशेषतो नापकृतः परेणापकृतो ह्यसि। ❀

❀ हे नाथ ! हे महाराज ! हे स्वामी ! आप मुझे त्याग क्यों रहे हैं ? मैं मारी गई—मेरा नाश हो गया— निर्जन वन में मैं डर गई। हे महाराज ! आप तो धर्मज्ञ और सत्यवक्ता हैं।

महाभारतः वनपर्व, अध्याय ६०

उसका स्वर भंग हो गया और सिसकते-सिसकते वह मूर्छित हो गई।

सारी रात वह निर्बल अवस्था में पड़ी रही। नर्मदा के जल से शीतल होकर प्रभात का मन्द-मन्द पवन जब बहने लगा तो वह जागी। जागते ही वह उठ बैठी।

उसका शरीर टूट रहा था, उसका सिर फट रहा था। रगों में रक्त इतने वेग से प्रवाहित हो रहा था मानो उसे ज्वर हो। पिछले दिन की घटनाओं को स्मरण हो आने पर उसके क्षीण होंठ बन्द हो गए और निस्तेज आंखों में तेज आ गया।

'मैं रोई, मैंने क्रन्दन किया। बच्चों को भेजते समय साधारण स्त्री की भांति मेरी छाती फट गई।' उसे अपने प्रति तिरस्कार हो आया। 'मैं दीन बन गई, असहाय हो गई। मैंने तुम्हें दोष दिया—मेरे नाथ को दोष दिया? मुझे हो क्या गया है? अपने नाथ को मैंने अविचारी, घातकी नल की पंक्ति में रख दिया? मुझे यह क्या हो गया? मैं वैदर्भी की भाँति निराधार बनकर क्रन्दन कर उठी?' उसकी भवें खिंचकर निकट आ गईं। 'मेरी निर्बलता, मेरी अधोगति की सीमा न रही। मुझसे तो आँबड़ और बेचारा मणिभद्र ही अच्छे। उन्होंने अब तक आँख से एक आंसू तक न गिरने दिया।

'नाथ! तुम मुझमें कैसा विश्वास कर गए? तुम वीर हो तो मुझे वीरांगना समझ बैठे। और मैं तो इस प्रकार रो रही हूँ। मेरे वीर! क्षमा करो। मुझे नहीं मालूम था कि कवि-कुल-शिरोमणि की कन्या और तुम्हारी पत्नी इस प्रकार निर्बल हो जायगी।'

'नाथ! क्षमा करो! अब ऐसी निर्बलता न दिखाऊँगी। संसार से मेरा क्या सम्बन्ध? मुझे जीवन और मृत्यु से क्या? तुम और मैं—एक दूसरे के—अमर वीरता के दो स्फुलिंग। जहाँ हो वहाँ देव! विजयी होना, जीवन में और मृत्यु में—मैं तुम्हारी दासी—मैं भी विजयी ही होऊंगी। मुझे न शत्रु का डर और न यम का—'

उसने केश सँवारे। ओढ़नी ठीक की। नीचे उतरना सहज न था क्योंकि उसके पांव स्थिर न रह पाते थे, फिर भी जैसे-तैसे करके वह उतरी।

सामर्थ्य न होते हुए भी दृढ़ता से डग भरती हुई वह रसोईघर की ओर गई। वहां आंबड़ और मणिभद्र बैठे-बैठे बातें कर रहे थे। मंजरी को देखकर वे चौंके।

वह एक दिन और रात में सूख गई थी। उसकी श्वेत त्वचा संगमरमर से भी अधिक श्वेत हो गई थी। केवल उसके मुख पर तेज की लाली तनिक दिखाई दे रही थी। उसकी आंखों के आस-पास काली रेखाएं पड़ गई थीं। उसकी पागल की-सी आंखें अपार्थिव तेज से ज्वलंत थीं। वह सावधानी से, किन्तु महाकठिनाई से, आगे बढ़ रही थी। वह तेजस्वी, सुन्दर, और मदमाती मंजरी की परछाईं मात्र रह गई थी।

'देवी, कैसी हैं?' आंबड़ दौड़कर आगे आया।

'अच्छी हूँ, भाई!' उसके उच्चारण से लगता था कि वह वाणी में स्थिरता लाने का प्रयत्न कर रही है।

'बैठिए, देवी!' कहकर मणिभद्र ने पीठक दिया। मंजरी ओढ़नी सिमटाकर धीरे-से बैठ गई।

'तेरा कैसा है?'

'उसने भी देह छोड़ दी।'

'दोनों का अग्निदाह किया?'

'हाँ।'

मंजरी कृत्रिम हास्य कर बोली, 'हम आठ थे, उनमें से तीन बच गए हैं।'

'देवी! हम एक विचार कर रहे थे।' आँबड़ ने खखार कर कहा।

'क्या?'

'दो दिवस में खाद्य तो चुक जायगा। कुछ दिनों में हम भी इन दो के पथ का अनुसरण करेंगे। फिर तो गढ़ गिरेगा ही।'

मंजरी देखती रही किन्तु कुछ बोली नहीं।

'इसमें तो यहांसे बच निकलनेका प्रयत्न करें तो कैसा?' आंबड़ने पूछा।

मंजरी विस्मित हो गई। उसकी विशाल आंखों में तिरस्कार प्रकट हुआ और उसके हाथ कांप उठे।

'आंबड़ महेता! मणिभद्र और तुम दोनों में से जिसे जाना हो वह जाय,' वह तिरस्कार से बोली। 'किन्तु याद रहे मणिभद्र को तो भीख मांगकर जीवन-यापन करना है, तुम्हारा क्या होगा? उदा महेता के पुत्र को मृत्युपर्यन्त लज्जित होकर जीना होगा।' बोलते-बोलते मंजरी का श्वास चढ़ गया अतः वह कुछ ठहर गई।

'किन्तु देवी, यहाँ रहने में कोई लाभ नहीं दीख पड़ता।' डरते-डरते आंबड़ बोला।

'लाभ!' तनिक खांसकर मंजरी कहने लगी। उसकी निर्बल वाणी में भी तेज और संस्कार प्रतिध्वनित हो रहे थे। 'भाग जाओगे तो लाभ होगा। स्त्री मिलेगी, पिता की सम्पत्ति मिलेगी, चाटुकार महान् भी कहेंगे। किन्तु अकेले हाथ भृगुकच्छ का गढ़ टिका रखने का यश नहीं मिलेगा। और कहीं शत्रुओं के हाथ में पड़कर मरे तो मां की कोख लाजेगा। और यहाँ—' मंजरी पुनः खाँस उठी, 'और यहाँ....म....रोगे तो....जहाँ तक एक भी गुजराती रहेगा वहाँ तक तुम्हारी कीर्ति अमर रहेगी।'

'देवी! किन्तु इस प्रकार जीवन नष्ट कर देना—' मणिभद्र कहने लगा।

'भाई!' कठोरता से मंजरी ने कहा, 'जीवन और मृत्यु कायर के लिए होते हैं, किन्तु वीर के लिए तो केवल एक कीर्ति ही होती है।'

'किन्तु देवी!' आंबड़ ने कहा, 'आपका जी बिगड़ रहा है। गढ़ का जो होना होगा सो होगा किन्तु यदि आपको कहीं कुछ हो गया तो दुर्गपाल और संसार को हम क्या मुँह दिखाएंगे?'

'महेता!' मंजरी ने कहा, 'कल तो मैं पागल हो गई थी। तुम्हें

प्राणरक्षा करनी हो तो प्रसन्नता से जाओ। किन्तु मैं—जब तक दुर्ग-पाल न आ जायं या गढ़ न गिर जाय तब तक—जीते-जी यहाँ से जाने की नहीं।' कुछ देर तक वह चुप रही। उसकी कनपटी की नसें वेग से उठ-गिर रही थीं। 'मेरे लिए जीवन क्या, और मृत्यु क्या? मैं—शेषनाग को मात करने वाले महारथी की अर्द्धाङ्गिनी।' उसकी आंखें चौड़ी हो गईं। 'मैं तो यहीं रहूंगी, यहीं अपने दुर्गपाल की प्रतीक्षा करूंगी। मर जाऊंगी तो मृत्यु में भी अपने प्रचण्ड वीर का वामांग.... इस गढ़ पर....उनकी कीर्ति के समान ज्वलंत और अडिग....' उससे वाक्य पूरा न हो सका, उसे खांसी आ गई। जैसे-तैसे खांसी रोककर उसने ओढ़नी के आंचल से मुंह पोंछा तो ओढ़नी पर रक्त दिखाई दिया। उसके नथुने फट रहे थे।

'देवी! मुंह में से रक्त निकला है।' मणिभद्र ने कहा।

'मुझे थोड़ा जल दे।'

मणिभद्र ने जल दिया।

'मैं अपने स्थान पर जाऊंगी। मुझे सहारा दे। मुझे चक्कर आ रहे हैं।'

मणिभद्र मंजरी का हाथ पकड़कर ले गया और बिस्तर पर लिटा दिया। वह और आंबड़ अपना दुःख भूलकर मंजरी की टहल में लग गए। दोनों के हृदय में अकथ्य चिंता थी। दोनों को लगा कि मणिभद्र के कहने के अनुसार सचमुच यमराज का पुनः आगमन हुआ है।

मंजरी को ज्वर चढ़ने लगा, थोड़ी ही देर पश्चात् उसे सन्निपात-सा होने लगा। मणिभद्र और आंबड़ ने बारी-बारी से वहीं बैठने का निश्चय किया।

मंजरी कुछ देर तक तो मौन पड़ी रहती और फिर कुछ देर तक अस्पष्ट रूप से बड़बड़ाने लगती। प्रलाप में अधिकतर वह काक ही को सम्बोधित करती। मणिभद्र आग जलाकर मंजरी के लिए 'राबड़ी'

बना लाया और थोड़ी-थोड़ी करके उसके गले उतारी, किन्तु थोड़े ही समय बाद उसने उलटी कर दी।

'मणिभद्र ! अपना समय आ गया।' आंबड़ ने कहा।

'भाई ! मैंने तो देवी की रक्षा करने की योजना रची थी। पन्द्रह वर्ष पहले जब देवी को देखा था तबसे इनकी सेवा में प्राण अर्पण कर देने का निश्चय किया था। आज मेरा निश्चय सफल हुआ।'

'पन्द्रह वर्ष पहले ?'

'हाँ। मेरे गुरू इनके दादा होते हैं। इतने वर्ष तो जैसे-तैसे काट दिए और अन्त में भाग्य में था तो यहाँ आया। हर-हर-महादेव।' बोलते-बोलते मणिभद्र सिसक उठा।

'सच बात है भाई !' स्नेह से मणिभद्र के पांव पर हाथ रखते हुए आंबड़ बोला, 'ये कोई स्त्री हैं ! देवी हैं !' मंजरी के लिए उसके पास और कोई शब्द न था।

आंबड़ की आंखें सजल हो गईं। मणिभद्र ने सहानुभूति से उसका हाथ दबा दिया। पाटण के धनाढ्य मंत्री के अविचारी कुंअर और जूनागढ़ के भटकते हुए ब्राह्मण को एक देवी की भक्ति में मातृ-भाव का अनुभव हो रहा था। इस भक्ति की पात्र अचेत होकर अपने दूरवासी पति का नाम रट रही थी।

मध्याह्न के पश्चात् थोड़ी देर तक मंजरी शांत और निश्चेष्ट पड़ी रही। रह-रहकर उसे खांसी आती थी, टहल करने वालों की चिंता भी बढ़ रही थी।

संध्या को मंजरी का ज्वर उतर गया और उसने आंखें खोलीं।

'आए ?' उसने पूछा।

मणिभद्र और आंबड़ ने एक-दूसरे के सामने देखा। 'अभी आते हैं।' मणिभद्र ने कहा।

मंजरी ने पुनः आंखें मींच लीं। मणिभद्र पुनः 'राबड़ी' बना लाया और मंजरी को पिलाने का प्रयत्न किया किन्तु वह टिकी नहीं। तीव्र

ज्वर और उन्मत्त कल्पना के पंखों पर चढ़कर मंजरी सन्निपात की सृष्टि में विचरण कर रही थी। वह एक ही नाम रट रही थी। सृष्टि में वह एक ही मूर्ति की खोज कर रही थी। उसने त्रिभुवन खोज डाले किन्तु उसका दुर्गपाल न मिला। उसका वेग बढ़ा, उसकी अधीरता बढ़ी किन्तु उसके दुर्गपाल का पता न मिला। 'नाथ! नाथ!' वह इतना ही बोलती रही।

रक्तिम ज्वाला से भयानक बने अंधकारमय प्रदेश में त्रस्त हृदय से उसने प्रवेश किया। कोई उसे खींचे लिये जा रहा था। 'मेरे नाथ!' वह बोलती। एकाएक न जाने कहाँ से एक प्रचण्ड स्वरूप उसकी अंगार-भरी आंखों ने देखा। वह काला था। उसका मुख कुछ-कुछ देवा के मुख से मिलता-जुलता था। उसकी आंखों में रक्त था, मुंह पर कठोरता थी। मंजरी को कंपकंपी छूटी। 'नाथ!' उसने उड़कर जाते-से स्वर में कहा।

चारों ओर ज्वालामय अन्धकार था। मध्य में निरंतर विकराल होता हुआ वह स्वरूप निकट आता जा रहा था। उसने मंजरी को आने का संकेत किया—आंख से या हाथ से—यह नहीं दीख पड़ा।

मंजरी को क्रोध आया—ऐसा क्रोध आया कि उसका श्वास रुद्ध-सा होता लगा। 'मेरे नाथ की आज्ञा बिना तू बुलाने वाला कौन!' वह स्वरूप और भयंकर हो उठा। मंजरी गर्व से हंस दी—वह तो शेष और भैरव को हराने वाले काक की अर्द्धांङ्गिनी थी। 'मेरे नाथ की आज्ञा!' उसने अतलतट से घोषणा की। 'नाथ की आज्ञा' की भयंकर ध्वनि भुवनत्रय में गूंज उठी। उस अन्धकार के त्रासदायक वातावरण में से—मानो विनष्ट होती हुई सृष्टि के कड़कड़ सुनाई पड़नेवाले शब्द में से, पल-पल सर्व-व्यापी होते हुए उस भयंकर स्वरूप के विशाल होते मुख में से प्रचण्ड, सर्वग्राही प्रतिध्वनि हुई, 'नाथ की आज्ञा।' और ब्राह्मण-श्रेष्ठ पितरों के तपोबल के प्रभाव से, अपने दुर्धर्ष और दुर्जय, प्रतापी वीर की अडिगता से, अपने गगनचुम्बी गर्व के गौरव

से अनुप्राणित हृदय और रगों ने उसे उत्तर दिया, 'नाथ की आज्ञा !' और तांडव प्रारम्भ करते त्रिपुरारी के डमरू और घुंघठओं के शब्द में से—उखड़ते पर्वत, फटती धरती, डगमगाते ग्रहों के प्रलय-तूफान से उद्भूत तुमुल नाद में से मस्त नंदी के शंख के समान अपार्थिव और हृदयभेदक ध्वनि सुनाई दी—'आज्ञा ले आ।'

एकाएक मंजरी ज़ोर से उठ बैठी। 'यह ले आई।' उसने चारों ओर देखकर कहा, 'नाथ, कहाँ हो ?' उसकी आंखें फट गई थीं। 'नाथ !'कहकर उसने ओढ़नी संभाली और उठकर सीढ़ियां उतरने लगी।

आंबड़ महेता के पेट में पीड़ा हो रही थी अतः उसे सोने के लिए जाने देकर मणिभद्र एक कोने में बैठा हुआ था। थोड़ी देर हुई, उसे झपकी आ गई थी। मंजरी को सीढ़ियाँ उतरते देखकर वह चौंका। 'देवी ! देवी !'

'आज्ञा ले आती हूँ।' कहकर मंजरी शीघ्रता से नीचे उतरकर बाहर निकली।

'किसकी ?' मणिभद्र हांपता-हांपता उसके पीछे दौड़ा। वह बिलकुल घबरा गया था।

'मेरे—नाथ—'

आगे मंजरी और पीछे मणिभद्र—इस तरह चले जा रहे थे। मंजरी शववत् किन्तु दृढ़ता से शीघ्रगति से चली जा रही थी। उसकी विक्षिप्त-सी आंखें गढ़ के पश्चिमी कंगूरों पर टिकी हुई थीं।

'देवी ! देवी !' डरकर मणिभद्र बोला। उसे धरती डोलती-सी लगी।

मंजरी ने उत्तर नहीं दिया।

'नाथ ! ओ नाथ !' मंजरी बड़बड़ाई। पश्चिमी कंगूरे तक पहुँचने से पहले ही वह लड़खड़ाकर गिर पड़ी, और मणिभद्र उसे सँभाले उससे पहले ही वह पत्थर पर गिर पड़ी। मणिभद्र उसके निकट जा बैठा। मंजरी अचेत पड़ी थी और उसके सिर से रुधिर बह रहा था।

मणिभद्र घबरा गया। उसने आंबड़ महेता को पुकारने के लिए ऊपर देखा।

—एकाएक थोड़ी दूर पर धरती ऊपर उठी और उसमें से धीरे-धीरे देवा नायक का प्रेत हाथ में मशाल लेकर ऊपर उठता हुआ दिखाई पड़ा।

बेचारे ब्राह्मण का कलेजा मुँह को आ गया। वह सिर पर पांव रखकर भागा। 'ओ बाप रे!' की चीत्कार—माँस ऊंची-की-ऊंची और नीची-की-नीची रह जाने के कारण—गले में ही अटक गई।

: ७ :

प्रेम समाधि का अन्त

मीनलदेवी से छुट्टी पाकर जितना शीघ्र बन सका काक लाटी की ओर चला। सोरठ की योजन-पर-योजन चल जाने वाली साँडनियों ने ऐसा अधीर आरोही कभी न देखा था। सूर्य के प्रखर ताप में, सन्ध्या की शांति में, या चन्द्रिका से शोभित रात्रि में यह आरोही आगे बढ़ता ही चला जाता था। थकावट वह नहीं जानता था और किसी दूसरे को थकान लग सकती है इसका भी उसे भान न था।

काक जल्दी-जल्दी खा लेता था और चलती साँडनी पर ही सो लेता था। उसकी अधीरता मिटती ही न थी।

अन्त में वह लाटी पहुँचा। दामा नायक, सामंत, कावा सुकानी आदि उसके खलासी वहां उसकी प्रतीक्षा ही कर रहे थे। उन्होंने पोत भी देख रखा था। मुंजाल महेता का आज्ञा-पत्र लेकर काकने सोमनाथ

पाटण के दुर्गपाल से भेंट की और उसने तुरन्त पोत का प्रबन्ध किया। काक—काल के समान भयंकर, मौन और गम्भीर—एक शब्द से, आंख की पलक से आज्ञाएं देता था। उसके आदमियों को यह गाम्भीर्य समझ में नहीं आया किन्तु उन पर उसका प्रभाव अवश्य पड़ा। उन्होंने पोत को इतनी अधीरता और इतने वेग से चलाना आरम्भ किया मानो सिंधु के जल के प्रति अपना द्वेष प्रकट कर रहे हों।

नदी के मुहाने के निकट लखी गांव में रेवापाल की चौकी होनी चाहिए यह सोचकर काक ने पोत को नदी में ही रहने दिया, और मध्यरात्रि के पश्चात् वह, दामा, और सामंत कूदकर नदी में आ गए। काव्या सुकानी तीन खलासियों के साथ एक छोटी नौका में बैठकर पीछे-पीछे आया और लखी गांव को पार करके काक, दामा, और सामंत को उसमें ले लिया। काक के कथनानुसार उन्होंने नाव में पन्द्रह दिन चल सके उतना खाद्य, गोह, कुदाली, फावड़ा और फाजी अपने साथ ले लिये थे।

लखी गांव से भाड़भूत तक की यात्रा बड़ी कठिन रही। इस किनारे वे उतर सकें यह संभव नहीं था। उस पर सामने आती हुई नैया निकट न आ जाय इसका ध्यान रखना पड़ता था। ज्वार-भाटे की भी चिन्ता करनी पड़ती थी। उजली रातें थीं अतः संभव है कोई देख ले। दृष्टि से बचने के लिए बहुत बार किनारे-किनारे चलना पड़ता था। काक अधीर अवश्य था, किन्तु उसकी सावधानी कम नहीं हुई थी। रात और दिन समान परिश्रम करता था और जैसे-जैसे समय व्यतीत होता जाता था उसकी चिन्ता बढ़ती चली जाती थी।

जैसे-तैसे करके वे भाड़भूत पहुंचे। उसके और भड़ौंच के बीच छोटे गांव थे अतः ध्यान आकर्षित किये बिना ही वे नौका को किनारे-किनारे ले जा सके।

कृष्णपक्ष आरंभ हो गया था अतः सन्ध्याकाल के पश्चात् अंधेरे का लाभ उठाकर वे कोट के नीचे आ लगे। कोट के पश्चिम की ओर

कंगूरे के नीचे पत्थर पर वह और दामा उतरे; नौका चारों ओर ले जाकर देख आए—सब कुछ शांत और निर्जन था। चन्द्रमा उदय हो रहा था।

यह दुर्धर्ष कोट कैसे लांघा जाय यह किसी के समझ में न आया। किन्तु काक इस ओर से निश्चिन्त था। समय आने पर गढ़ में से निकल भागने के लिए उसने कई सुरंगें बनवा रखी थीं। उनमें से एक पश्चिमी कंगूरे के नीचे नदी पर आकर समाप्त होती थी। इस सुरंग से वह, सोमेश्वर और देवा ये तीन ही परिचित थे। यदि उस सुरंग से बाहर निकला जा सकता है तो अन्दर क्यों नहीं प्रवेश किया जा सकता?

काक ने सबको यहां आने का रहस्य बता दिया था। एक खलासी नौका में बैठा रहा, शेष सबने कमर से अनाज बांधा और हाथ में एक-एक औज़ार ले लिया।

काक ने ध्यान से देखा और काले पत्थरों में ऊपर सुरंग का छिद्र पहचाना। गोह को उसने तुरंत वहाँ फेंका। सब लोगों को हटकर खड़ा रहने के लिए कहकर वह गोह से बँधी रस्सी को पकड़कर ऊपर चढ़ गया; बड़ी कठिनाई से उसने एक वृक्ष के खोखले स्थान में अपना पैर टिकाया और उसी वृक्ष को पकड़कर खड़ा हुआ। वह खोखला स्थान छोटा था, फिर भी उसमें व्यर्थ ही एक बड़ा पत्थर रखा हुआ था। फाली से उसने उस पत्थर को ढीला किया और सावधान रहने की एक हाँक मारकर फाली की सहायता से उसने पत्थर नीचे धकेल दिया। पत्थर पानी में गिरा। काक ने नीचे खड़े हुए लोगों को ऊपर आने के लिए कहा और स्वयं सुरंग में घुस गया।

सुरंगमें जाकर काकने मशाल जलाई। सुरंग में वास करने वाले जीव-जंतुओं और पंछियों ने इधर-उधर उड़ना-भागना आरंभ किया। चमगीदड़ भयंकर चीत्कार करके चक्कर काटने लगे। धीरे-धीरे सभी आदमी ऊपर आगए और जीव-जंतुओं को रौंदते हुए एक के पीछे एक होकर चलना प्रारंभ किया। काक की दृष्टि सचेत थी, भवें उठी हुई थीं, और डग स्थिर थे। वह ऐसा लग रहा था मानो भूतनाथ भैरव हो। प्रेतलोक से

भी अधिक भयंकर वातावरण था। काक के अनुयाइयों के भी जी घबराने लगे।

सुरंग में चलते-चलते सीढ़ियाँ मिलीं। सीढ़ियों के ऊपर छिद्र पर पत्थर रखा हुआ किन्तु वह उठाया जा सकता था। फावड़ी और कुदाली लेकर सब उस पत्थर को उठाने के लिए पिल पड़े। थोड़ी देर में पत्थर ढीला पड़ गया। छः मनुष्यों ने शक्ति लगाकर उसे उठाया। उसके ऊपर की मिट्टी की पतली झिल्ली टूट गई और पत्थर उठ गया।

हाथ में मशाल लेकर काक ऊपर चढ़ा। पहले तो गढ का भाग निर्जन दिखाई दिया किन्तु थोड़ी देर उसकी दृष्टि टिकी—उसे भागता हुआ एक मनुष्य दिखाई दिया।

काक उसके पीछे दौड़ा और कुछ ही छलांगों मे उसके निकट जा पहुँचा।

'कौन है ?' काक ने पूछा।

मणिभद्र की संज्ञा अंतर्धान हो चुकी थी। वह काक को पहचान न सका। काक ने उसका मुँह ऊपर उठाया और उसे पहचाना।

'कौन मणिभद्र ! मुझे नहीं पहचानता ? भागता क्यों है ? मैं हूं—काक, मूर्ख ! मैं भूत नहीं हूं।'

'कौन, दुर्गपाल ?' मणिभद्र काक से लिपट गया।

'हाँ, भाई, हाँ। तेरी बहन कहाँ है ?'

'उस कंगूरे पर निश्चेत पड़ी हैं। सन्निपात होगया है।' काक को संतोष हुआ, वह समय पर आ तो गया। 'बच्चे ?' जल्दी से कँगूरे की ओर मुड़ते हुए उसने कहा।

'खाद्य घट गया था इसलिए गांव में छिपा दिये हैं।' काक ने शांति की सांस ली।

'और देवा ?'

'कल मर गया।'

'और कौन है ?'

'उधर आंबड़ महेता भूख के मारे मरने के लिए पड़े हैं।'

'और कोई।'

'कोई नहीं।'

'दामा! इन सबके लिए भोजन की व्यवस्था कर।' कहकर काक कँगूरे पर बैठ गया और मंजरी के मुँह पर हाथ फेरने लगा। उसका हृदय धड़क रहा था। काक ने उसके सिर से बहता हुआ रक्त पोंछकर उसे उठा लिया।

'आवास कहाँ है?'

'चलिए बताता हूं।' मणिभद्र आगे हो गया।

काक मंजरी को उठाकर वास स्थान पर ले गया और बिस्तर में लिटाकर उपचार में लगा। सब वहां से चले गए।

काक ने अपनी प्रियतमा को देखा। भाव इतने उठे कि हृदय में समा न सके। कितने ही दिन हुए उसकी चिंता की सीमा न रही थी। उसने मंजरी को देखने की आशा ही त्याग दी थी। किन्तु अन्त में वह मिली। उसने उसका सिर अपनी गोद में ले लिया और उसकी बंद आँखों की ओर देखने लगा।

जैसे-जैसे वह उसकी ओर अधिक ध्यान से देखता वैसे-वैसे उसके हृदय को भारी धक्का लगता। मंजरी का शरीर गल गया था और उसकी त्वचा ऐसी लग रही थी मानो उस पर कालिमा छा गई हो। उसके होंठ सिकुड़कर तनिक भयानक हो गए थे। उसकी आंखों के चारों ओर काले धब्बे दिखाई पड़ रहे थे। फिर भी अनंत आशा ने उसके अंतर में साहस बनाए रखा।

उसने उसके सिर पर हाथ फेरा। उसका सिर अँगारे के समान जल रहा था। कंठ की एक रग फड़क रही थी।

एकाएक मंजरी ने आंखें खोलीं। उसने काक को देखा—पहचाना। 'नाथ! नाथ! आ पहुंचे मेरे प्रियतम!' एकदम शक्ति लगाकर

वह उठ बैठी। 'आगए, सचमुच ? मैं होश में हूं ? आगए ?' उसने काक पर हाथ फेरा।

'हाँ, मैं ही हूं। शांत हो। सो जा। देख, मैं आ पहुंचा।' काक ने उसे पुनः लिटाने का प्रयत्न किया।

'आगए ? मैं जानती थी, तुम से भेंट किये बिना मैं मरने की नहीं मैंने यमराज से स्पष्ट कह दिया था कि अपने नाथ की आज्ञा बिना मैं नहीं आऊंगी।' वह काक से लिपट गई और उन्मत्त के समान बोलने लगी, 'दुर्गपाल स्वामी ! अब अन्तिम समय तक मुझे न छोड़ना मुझे यहां अपनी गोद में मरने दो।'

'तुझे कुछ नहीं होगा।'

मंजरी हंस पड़ी और और अधिक वेग से काक से लिपट गई।

'मृत्यु प्रतीक्षा कर रही है, प्रियतम ! एक-दो घड़ी के लिए शांति क्यों ? नाथ ! अपना हाथ लाओ। मुझे कितना प्यारा लगता है ! मुझे अपने हाथों में ले लो। मेरे निकट आओ। अमृत की वर्षा करती हुई चन्द्रिका का आनन्द अब कब मिलेगा ? अब समय थोड़ा है।'

'अच्छा, लेता हूं।' काक ने उसे अपने हाथों में ले लिया। उसका शरीर जल रहा था।

'ओ :!' मंजरी ने कहा, 'मैं तुम्हारी प्रतीक्षा ही कर रही थी।' उसने काक के मुँह पर हाथ फेरा, 'मैंने उसे भी डरा दिया। नाथ ! ओ नाथ ! बोलो न ?'

'हाँ, बोलता हूं। देख, तू घबराती क्यों है ?'

'मैं नहीं घबराती। मेरे सौभाग्यनाथ ! बच्चे प्रसन्न हैं....भेज दिये....उन्हें देखना....मैं तो चली।' थकान के कारण वह थोड़ी देर तब पड़ी रही।

'नाथ ! नाथ !' वह पुनः बोलने लगी, 'मुझे जाना अच्छा नहीं लगता। जाते हुए मेरे प्राण निकल रहे हैं। हमारे संसार का—मनोरथ का क्या होगा ? तुम्हारी कीर्ति का गान कौन करेगा ? और थके-माँ

होने पर किसके पास जाओगे ? मंजरी को खांसी आई । खांसी चलते समय मुँह में रक्तमय झाग आए । काक घबराया । उसने मणिभद्र को पुकारा ।

'क्यों बुलाते हो ? हम अकेले ही बैठें, प्राण ! निकट आओ, आओ ।' वाणी मंद हो गई और मंजरी अचेत हो गई ।

मणिभद्र 'राबड़ी' बनाकर लाया था उसे एक ओर रखने के लिए कहकर काक ने उससे सब बातें पूछीं । मणिभद्र ने सम्पूर्ण इतिहास काक को सुना दिया ।

'यह कैसा शब्द है ?' काक ने पूछा । मंजरी का सिर बिस्तर पर रखकर उसने खिड़की से बाहर देखा ।

उत्तर की ओर क्षितिज पर कुछ गड़बड़ हो रही थी उसीका शब्द आ रहा था । ऐसा लगता था वहाँ आग लग रही है ।

'जो हो' कहकर वह पुनः मंजरी के निकट बैठ गया और उसके मुख में थोड़ा पानी डाला । होंठ बन्दकर वह विचार करने लगा । उसे आना न आना एक-सा लगा । एकाएक मंजरी चौंककर पुनः जाग पड़ी ।

'मैं अपने वीर की अर्द्धांगिनी, शेष के विजेता की पत्नी, मैं गढ़ त्याग दूँ ?'

'मंजरी ! मंजरी !' काक बोला । उसने उसका सिर पुनः गोद में ले लिया । वह उसे 'राबड़ी पिलाने लगा किन्तु मंजरी ने गला हटा लिया । मंजरी का स्वर उसके कानों में गया 'मेरे नाथ !' उसने कहा, 'मैं अच्छी हूँ, मुझे आज्ञा दो....आज्ञा...आ....ज्ञा....स्वामी....मेरे... कंथ....आज्ञा....' इतना बोलते-बोलते वह अचेत हो गई । काक ने उसके मुंह में पानी डाला ।

दो-तीन घड़ी वह इसी प्रकार अचेत पड़ी रही और उसकी रगें फड़कती रहीं । पुनः वह जागी और धीमी वाणी में बोली, 'किधर गए ? जाती हूँ । तुम्हारी...हूं कि....तुम्हारी....'

और उसका श्वास उखड़ गया । काक ने उसका आलिंगन किया,

चुंबन किया। मरती हुई प्रियतमा को हृदय से चिपका लिया। उसका हृदय टूट गया।

इसके मस्तिष्क में विभिन्न भावों की आँधी ने एक अन्धकार फैला दिया। किन्तु तुरन्त ही प्रयत्न करके उसने अपने मस्तिष्क को स्थिर किया। भावोंकी आँधी को निरकुंश बन जाने देने की उसकी टेव नथी।

'मणिभद्र ! स्नान करवानेका पानी ला।' काक ने पुकारा। मणिभद्र के पानी लाने से पहले ही मंजरी की देह ने अन्तिम प्रयत्न किया और स्त्रियों में श्रेष्ठ मंजरी का शव-मात्र काक के हाथों में पड़ा रह गया।

: ८ :

स्वातंत्र्य-यज्ञ की समाप्ति

काक ने उत्तर दिशा में जो हलचल देखी थी वह रेवापाल की सेना की थी।

लाट पर थोड़ा-बहुत अधिकार करके रेवापाल की सेना विश्वामित्री के कूल पर पड़ाव डाले हुए थी। जैसे एकाएक अनपेक्षित आंधी चल पड़े वैसे ही अचानक पाटण की सेना उस पर टूट पड़ी। लाट में गड़-बड़ हुई है यह सुनकर चांपानेर, खंभात, कर्णावती और खेटकपुर की पट्टणी सेना आगे बढ़ रही थी। गोधरा के आगे वे सब मिल गईं और नई सेना लेकर मुंजाल महेता द्वारा भेजे सोमेश्वर और वाग्भट ने पट्टणी सेना का सेनापतित्व अपने हाथ में लिया। वे तीव्र गति से रेवा-पाल के पड़ाव को खोजते-खोजते विश्वामित्री के तीर पर आ पहुंचे।

पाटण की सेना अनुभवी और व्यवस्थित थी; रेवापाल की नई और अव्यवस्थित थी। बिखरते-मिलते, गिरते-पड़ते, मरते रेवापाल की

सेना मध्यरात्रि को भृगुकच्छ आ पहुँची। सेना क्षीण हो गई थी—और पीछे चौगुनी पट्टणी सेना पीछा करती चली आ रही थी। रेवापाल गांव में आया। हारी हुई सेना और गांव वालों की घबराहट का पार न रहा।

रेवापाल को कोई युक्ति न सूझी। उसे पाटण की शक्ति का विचार होने लगा। उसने पद्मविजय धनुष का फुंदना ब्रह्मानन्द स्वामी के पास भिजवा दिया। ध्रुवसेन सेनापति जोगिया उतारें तभी लोगों में साहस आ सकता है।

वचन के धनी ध्रुवसेन ने जोगिया उतारा और कवच धारण करके रेवापाल की सहायता को आये। गांव वालों और हताश सेना में नए प्राण आए। ध्रुवसेन और रेवापाल ने मंत्रणा की और प्रातःकाल भृगुकच्छ के दुर्जय गढ़ पर अधिकार करके उसमें चले जाने का निश्चय किया।

दूसरे दिन प्रातःकाल उषा का प्रकाश फैला ही था कि रेवापाल और उसके आदमी गढ़ की ओर चले। वे खाई की ओर आए और ऊपर की ओर दृष्टि की—और उनके हृदय काँप उठे।

सामने गढ़ से निकलकर दो व्यक्ति एक अर्थी लिये हुए चले आ रहे थे। उससे थोड़ी दूर पर चार-पाँच आदमी चल रहे थे। केवल सामने के उठाने वाले ने पतली धोती पहिन रखी थी। सबने उसे देखा, उसे पहचाना और इस प्रकार भौंचक हो गए मानो उन पर बिजली गिर पड़ी हो। जूनागढ़ में मरा माना जाने वाला भृगुकच्छ का दुर्गपाल अग्निवर्षा करती हुई आँखों से सबको हँकालता हुआ आगे आ रहा था।

सब घबरा गए और सिमटकर खड़े हो गए। कोई कुछ न समझ सका।

काक आगे बढ़ा और निर्जल खाई में होकर इस पार आया। किसी ने रेवापाल को सूचित किया अतः वह आगे आया और काक को देख

कर मौन खड़ा हो गया। यह कहां से ? किन्तु रेवापाल के हृदय में निराशा और उद्वेग की ज्वाला प्रज्वलित थी। अतः उसकी ज्वाला का भोग काक—पाटण की सत्ता का स्तंभ, उसकी योजनाओं का विनाशक—बन गया। उसने काक को पकड़कर बन्दी बना लेने का निश्चय किया।

'किधर जाता है ?'

काक ने शव भूमि पर रख दिया और कन्धे पर रखा हुआ वस्त्र कमर में खोंस लिया।

"वहां तेरे और मेरे बाप दादा जलकर भस्म होगए वहाँ—दशाश्व-मेध—जहाँ वामन ने बलिराजा को दबाया !'

उसके भयंकर स्वर से सबके कलेजे मुँह को आ गए। उसकी आँखें ऐसी लग रही थीं मानो बाहर निकल पड़ेंगी।

रेवापाल ने होंठ पीसे। उसके मुख पर का घाव बिलकुल नितांत लाल हो उठा। 'लाट के द्रोही ! सावधान, एक भी डग आगे बढ़ा तो ! इसको पकड़ लो।' कहकर उसने अपने अनुयाइयों को आज्ञा दी।

काक ने मात्र संबोधन सुना। उसके हाथों में विनाश उछल ही रहा था। उसके मस्तिष्क में प्रलय मारुत का सीत्कार हो ही रहा था। उसकी कुचली हुई भावनाएं किसी-न-किसी प्रकार व्यक्त होने के लिए व्यग्र थीं। उसने दाँत कटकटाए—निकट ही खड़े हुए एक सैनिक के हाथ में से टेढ़ी लकड़ी खींच ली और इसके पहले की रेवापाल उसकी ओर फिरे, या उसके अनुयायी उसके आदेश का पालन करें—उसे उसके सिर पर दे मारा। मानो कुल्हाड़ा गिरा, वृक्ष की डाल टूटने जैसा कड़ाका हुआ, और लाट की स्वतंत्रता का पुजारी निर्जीव लट्ठे के समान भूमि पर गिर पड़ा। लोगों में हाहाकार फैल गया।

'चांडाल ! मेरी स्त्री को मरने दिया—वचन नहीं रखा—और उसका अग्निसंस्कार भी करने नहीं देता ?' काक ने मोटे स्वर में

कहा। उसकी दहाड़ भूखे सिंह जैसी त्रासदायक थी।

लोग डरकर पीछे हट गए। काक ने उन्हें घुड़का, 'तुम्हारे भृगुकच्छ का शृंगार—मंजरी—गढ़ में भूखी मर गई। उसका अग्निसंस्कार करने दो। फिर मेरा जो करना हो करना।' कहकर काक ने लकड़ी फेंक दी।

मणिभद्र ने मंजरी का मुख उघाड़ा, एकत्रित हुए लोगों के अंतर में उद्वेग का कंपन छूट गया। किसीने निकट से, किसीने दूर से देवी के समान दैदीप्यमान और सरस्वती के अवतार के समान गंभीर दुर्गपाल की पत्नी को देखा था। सबमें उसके लिए मान था। उसका तेज, उसका रूप, उसका यौवन और उसकी विद्या का स्मरण। उसे मरा हुआ मान लेना अशक्य था। फिर भी, उसके शव को वैसे पड़ा हुआ देखकर लोग लाट का स्वातंत्र्य-विग्रह भूल गए, मरे पड़े रेवापाल को भूल गए, और उनके मन में खेद की भावना जागरित हो गई।

काक निःशंक था। थोड़ी दूर पर खाड़ी में जहाँ पानी था वहाँ जाकर उसने स्नान किया और गीले ही वस्त्रों सहित पुनः शव को दशाश्वमेध तीर्थ तक ले जाने के लिए आया।

लोगों ने मार्ग दिया और शोक, भय और अनिश्चितताके बीच झूलते हुए काक के पीछे-पीछे श्मशान तक गए।

एक वृद्ध वणिक ने दूर से, आधी मीची हुई आँखों से यह सब देखा। उसने काक को देखा, रेवापाल को गिरते हुए देखा, मृत मंजरी को देखा और लोगों की भावुकता देखी। उसने हृदय पर हुए आघात को दबाया। वह समझ गया—लाट की स्वतंत्रता समाप्त हो गई। उसने विचार किया—यह अवसर खोने जैसा नहीं है। निकट खड़े हुए घोड़े पर बैठकर वह भृगुकच्छ के कोट के द्वार की ओर गया। बंद द्वार के बाहर सोमेश्वर और वाहड़ की सेना आ पहुँची थी और घेरा डालने की सोच रही थी।

वृद्ध ने द्वार-रक्षक को द्वार खोलने के लिए कहा।

'क्यों ?'

'मुझे पहचानता नहीं ? मैं तेजपाल सेठ हूं। पागल ! मेरा पुत्र रेवापाल मर गया, गढ़ में से आदमी लेकर काक आया है, बाहर पट्टणी सेना आई है। मरने के लिए द्वार बंद कर रखे हैं।' द्वार-रक्षक समझा, चतुर तेजपाल से सभी परिचित थे। उसने द्वार खोल दिए।

तेजपाल नगरसेठ ने पट्टणी सेना के सेनापति को खोज निकाला, और सोमेश्वर को रेवापाल और मंजरी की मृत्यु की बात कही। शोकग्रस्त सोमेश्वर और वाग्भट सेना लेकर गाँव में गये, और कुछ लोगों को गाँव पर अधिकार करने के लिए छोड़कर शेष सेना के साथ दशाश्वमेध गये।

चिता वेग से जल रही थी। हाथ में बाँस लेकर चिता को हिलाता हुआ भयंकर काक स्थिर नयनों से अग्नि की ज्वाला में प्रियतमा का मुख-दर्शन कर रहा था।

सोमेश्वर ने हथियार फेंक दिए और निकट आकर चिता के सामने अश्रुपूर्ण नयनों से देखने लगा।

वहाँ अग्नि-संस्कार करने के लिए आये हुए एक व्यक्ति से वाग्भट ने आंबड़ महेता के विषय में पूछा। मणिभद्र ने भूमि पर उलटे पड़े एक मनुष्य की ओर संकेत किया। वाग्भट वहाँ गया। मैले वस्त्र और निस्तेज शरीर वाले सिसकते निराधार प्राणी में अपने रसिक भाई को पहचानने में उसे देर लगी।

'भाई !' वाग्भट ने उसे पुकारा।

रोने से सूजा हुआ मुख आंबड़ ने ऊंचा किया और अश्रुपूर्ण आंखों से देखने लगा।

'कौन, वाहड़ ?'

'भाई ! यह क्या ?'

'वाहह ! अन्त में वे न जी सकीं ।' निःश्वास लेकर आंबड़ बोला।

'कौन ?'

'मेरी देवी—मेरी माँ।'

वाग्भट को लगा कि उसके भाई का मस्तिष्क फिर गया है।

चिता जल गई। आग शांत कर दी गई। अस्थि रेवा मां में विसर्जित कर दी गई और काक, बिना कुछ बोले, एक आंसू भी गिराए—सबके साथ श्मशान से लौटा।

गांव में बात फैल गई थी अतः पथ में विलाप करती हुई स्त्रियां मिलीं। एक स्त्री दो बच्चों को लेकर खड़ी हुई थी। बालिका ने काक को देखा और पुकारा, 'पिताजी !'

काक ने दृष्टि घुमाई और महाश्वेता और तौसरि को देखा। उसने छलांग मारी और बच्चों को छाती से चिपटा लिया। निर्दोष बच्चे पिता से मिलने पर हँस रहे थे।

उपसंहार

भृगुकच्छ पर कुक्कुटध्वज फहराने लगा। 'जय सोमनाथ !' का निनाद चारों ओर गूंज उठा।

संवत् ११६६ की आषाढ़ शुक्ला प्रथमा को पुण्यतिथि थी। उस दिन राजावलिविराजित बर्बरक विजेता, परम भट्टारक महाराजाधिराज जयसिंहदेव वर्मा निर्धारित किये हुए महोत्सव के लिए भृगुकच्छ पधारे थे। उस दिन नर्मदा-तीर पर स्थित सोमनाथ महादेवके मन्दिर पर कलश चढ़ाना था। उस दिन जयसिंहदेव वर्मा 'त्रिभुवन गंड' की प्रतापी उपाधि धारण करने वाले थे, और उस महाप्रतापी नरपति के पराक्रम की अमर कीर्ति विक्रम राजा की कीर्ति के बराबर हो गई थी, अतः उस दिन से 'सिंह' नाम का संवत्सर भी प्रारम्भ किया जाने वाला था।

भृगुकच्छ में हलचल मची हुई थी। पट्टणी और लाट की सेना का ऐसा दबदबा और पट्टणी और लाट के धनाढ्यों की ऐसी सज-धज किसीने न कभी देखी और न कभी सुनी थी। लोग हँस रहे थे और मगन हो रहे थे, स्त्रियां शृङ्गार करके घूम रही थीं और किसी प्रकार मुस्कराना रोक नहीं पा रहीं थीं।

मध्यान्ह के पश्चात् तीन घटिका, छत्तीस पल और बारह विपल पर कलश चढ़ाने, उपाधि धारण करने, और संवत्सर स्थापित करने का शुभ मुहूर्त प्रत्येक गांव और शाखा के ज्योतिषियों ने निकाला था।

गांव का एक भाग उजाड़-सा हो गया था। वह साम्बा बृहस्पति का बाड़ा था। वहाँ लोग आ-जा रहे थे—धीरे और निरुत्साह होकर।

वहाँ पिछले दिन रात को पट्टणी श्वेत पगड़ी पहने हुए एक ऊंचा और वृद्ध राजपुरुष और दूसरा बहुमूल्य दुशाले में लिपटा पुरुष चुप-

चाप आए थे। एक मुंजाल महामन्त्री थे और दूसरे जयसिंहदेव महाराज स्वयं। वे आकर एकान्तवासी काक से भेंट करके लौट गए। ऐसा लगता था वे निराश होकर जा रहे हैं।

गाँव में बात फैल रही थी। काक सन्यास लेकर काशी की ओर जानेवाला था। इस बात से सभी के मन उदास थे।

सारी रात राजगढ़ में मंत्रणाएं चलती रहीं और वे काक के सम्बन्ध में ही थीं—ऐसी लोकधारणा थी।

प्रभात होते-होते दो व्यक्ति साम्बा बृहस्पति के बाड़े में आए। एक वृद्ध सन्यासी था और एक स्त्री थी। बाड़ा निर्जन था। एक अनुचर ने देखा और उसके आश्चर्य की सीमा न रही। वे ब्रह्मानंद सरस्वती और रानी लीलादेवी थे।

बहुत समय पश्चात् वे बाहर निकले।

'गुरुदेव! आज आपने मुझे और पाटण को जीवनदान दिया है।'

'बेटी! मैंने आज लाट की मरनेसे रक्षा कर ली।' पद्मनाभ महाराज के वृद्ध सेनापति ने सन्यासी को शोभा देने वाली शांति से उत्तर दिया।

थोड़ी देर पश्चात् दो युवक कुछ अश्वारोही और पालकी लेकर साम्बा बृहस्पति के बाड़े में आए। दोनों सुन्दर थे।

एक आगे आया, 'भटराज, आजाऊं?'

'कौन आँबड़?' काक ने कहा। इन दोनों में पिता-पुत्र का सम्बन्ध हो गया था।

'हाँ।' आँबड़ ने कहा। 'और यह मेरा भाई वाग्भट।'

'आओ।'

'भटराज! मेरा भाई एक याचना करने आया है।'

'क्या?'

लजीले वाग्भटको मौन बैठा रहने देकर आँबड़ ने धीरे-से कुछ कहा। काक के मुख पर तनिक मुस्कराहट दौड़ गई—'वह गाती थी वही?'

काक को स्मरण हुआ।

'हाँ।'

'किन्तु यह बात—'

'भटराज! परशुराम आपके सिवा किसीकी मानने के नहीं।' प्यार में पले पुत्र की स्वतन्त्रता से आंबड़ ने कहा, 'और फिर मेरा भाई कवि है, कहीं कुछ पागल हो गया तो—'

'अच्छा, देखूंगा।'

'भटराज!' वाग्भट बोला, 'मैं जन्म-जन्मान्तर में आपका उपकार नहीं भूलूंगा।'

काक दोनों की ओर देखने लगा। कहां उदा महेता कहां उसके पुत्र और कहां उनकी नम्रता! उसे विधि की विचित्रता देखकर हँसी आ गई।

मध्यान्ह को राजा की सवारी निकली। हौद पर महाराज के पो महामंत्री मुंजाल और भटराज काक बैठे हुए थे।

मध्याह्न के पश्चात् तीन घटिका, छत्तीस पल, और बारह विपल के मंगल मुहूर्त में सोमनाथ भगवान पर कलश चढ़ा, जयसिंहदेव ने त्रिभुवनगंड की उपाधि धारण की, और सिंह संवत्सर की स्थापना हुई। धौंसा-निशान गड़गड़ा उठा।

प्रतापी जयसिंहदेव महाराज की कीर्ति और समृद्धि देखकर वहां एकत्रित हुए गुजरात और लाट के लोग नाच उठे।

उदार महाराज ने उपाधि-वितरण किया।

भटराज काक सेनापति हो गया। आंबड़, वाहड़, सोमेश्वर आदि असंख्य वीर भटराज बन गए।

चारों ओर जयजयकार हो रहा था।

रात्रि को परशुराम दंडनायक के स्थान पर पागल-सी एक लड़की—समर्थ—गा रही थी—

—और पाटण के महाराज की कीर्ति का दसों दिशाओं में प्रसार हो गया।